श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके संरक्षक महानुभाव—

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ संरक्षक, अध्यक्ष एवं प्रधान ट्रस्टी

(२) श्रीमती सौ० फूलमाला देवी, धर्मपत्नी श्री ला० महावीरप्रसाद जी जैन बैंकर्स, सदर मेरठ, संरक्षिका

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके प्रवर्तक महानुभाव—

१	श्रीमान् लाला लालचन्द जी जैन सर्राफ		सहारनपुर
२	"	सेठ भवरीलाल जी जैन पाण्ड्या	झूमरीतिलैया
३	"	कृष्णचन्द जी रईस	देहरादून
४	"	सेठ जगन्नाथ जी जैन पाण्ड्या	झूमरीतिलैया
५	"	श्रीमती सावत्री देवी जैन	गिरीडीह
६	"	मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन	मुजफ्फरनगर
७	"	प्रेमचन्द ओमप्रकाश जी जैन प्रेमपुरी	मेरठ
८	"	सलेकचन्द लालचन्द जी जैन	मुजफ्फरनगर
९	"	दीपचन्द जी जैन रईस	देहरादून
१०	"	बारूमल प्रेमचन्द जी जैन	मसूरी
११	"	बाबूराम मुरारीलाल जी जैन	ज्वालापुर
१२	"	केवलराम उग्रसैन जी जैन	जगाधरी
१३	"	गेंदामल दगडू शाह जी जैन	सनावद
१४	"	मुकन्दलाल गुलशनराय जी जैन नई मण्डी	मुजफ्फरनगर
१५	"	श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन	देहरादून
१६	"	जयकुमार वीरसैन जी जैन सर्राफ	सदर मेरठ
१७	"	मन्त्री दिगम्बर जैन समाज	खण्डवा
१८	"	बाबूराम अकलङ्कप्रसाद जी जैन	तिस्सा
१९	"	विशालचन्द जी जैन रईस	सहारनपुर
२०	"	हरीचन्द ज्योतिप्रसाद जी जैन ओवरसियर	इटावा
२१	"	सौ० प्रेम देवीशाह सु० बा० फतेहलाल जी जैन संघी	जयपुर
२२	"	मन्त्राणी दिगम्बर जैन महिला समाज	खण्डवा
२३	"	सागरमल जी जैन पाण्ड्या	गिरीडीह
२४	"	गिरनारीलाल चिरञ्जीलाल जी जैन	गिरीडीह
२५	"	राधेलाल कालूराम जी जैन मोदी	गिरीडीह
२६	"	फूलचन्द बैजनाथ जी जैन नई मण्डी	मुजफ्फरनगर
२७	"	सुखबीरसिंह हेमचन्द जी जैन सर्राफ	बड़ौत
२८	"	गोकुलचन्द हरकचन्द जी जैन गोधा	लालगोला
२९	"	दीपचन्द जी जैन सुपरिन्टेण्डेण्ट इञ्जीनियर	कानपुर

३०	श्रीमान् लाला मन्त्री दि० जैन समाज नाई की मण्डी		आगरा
३१	,,	सचालिका दि० जैन महिलामण्डल नमककी मण्डी	आगरा
३२	,,	नेमिचन्द जी जैन रुडकी प्रेस	रुडकी
३३	,,	झब्बनलाल शिवप्रसाद जी जैन चिलकाना वाले	सहारनपुर
३४	,,	रोशनलाल के० सी० जैन	सहारनपुर
३५	,,	मोल्हडमल श्रीपाल जी जैन, जैन वेस्ट	सहारनपुर
३६	,,	शीतलप्रसाद जी जैन	सदर मेरठ
३७	,,	❀ जीतमल इन्द्रकुमार जी जैन छावडा	झूमरीतिलैया
३८	,,	❀ इन्द्रजीत जी जैन वकील स्वरूपनगर	कानपुर
३९	,,	❀ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बडजात्या	जयपुर
४०	,,	❀ दयाराम जी जैन आर. ए डी ओ.	सदर मेरठ
४१	,,	❀ मुन्नालाल यादवराम जी जैन	सदर मेरठ
४२	,,	+ जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन	सहारनपुर
४३	,,	+ जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन	शिमला
४४	,,	+ बनवारीलाल निरञ्जनलाल जी जैन	शिमला

नोटः—जिन नामोके पहिले ❀ ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आये हैं, शेष आने हैं। तथा जिनके पहिले + ऐसा चिन्ह लगा है उनकी स्वीकृत सदस्यताका रुपया अभी तक कुछ नही आया, सभी बाकी है।

सम्पादकीय

जैन न्यायके महान् प्रतिष्ठापक कुशाग्रबुद्धि तार्किकशिरोमणि वादीभकेशरी श्री समन्तभद्र श्री अकलङ्कदेव आदि महापुरुषोने जैन न्यायके मौलिक तत्त्वोकी समीचीन विवेचना आप्तमीमासा, प्रमाणसग्रह, न्यायविनिश्चयादि कारिकात्मक रचनाओंके द्वारा की। जैनदर्शनके प्रणेता भगवान उमास्वामीके दार्शनिक शास्त्र श्री तत्त्वार्थसूत्र के सदृश जैन न्यायको सूत्रबद्ध करने वाली "जैन न्याय सूत्र ग्रन्थ" जैन परम्परामें नहीं बन पाया थां। इसी कमीको आचार्यप्रवर श्री माणिक्यनन्दीने आचार्य स्मृति-परम्परासे आये हुए जैन न्यायरूप सागरको परीक्षामुखसूत्ररूप गागरमे पूर्ण करके जैन न्यायका गौरव बढाया है। यह जैन न्यायका प्राथमिक सूत्रग्रन्थ है जो कि भारतीय न्याय विषयक कृतियोंमें अद्वितीय है।

यह ग्रन्थ ६ परिच्छेदोमें विभाजित है। इसके सूत्रोकी सख्या २१२ है। ये सूत्र सरल, विशद एव नपे-तुले हैं। वस्तु विचारमें अति गम्भीर, अन्तस्तलस्पर्शी तथा अर्थ-गौरवसे ओतःप्रोत हैं। सभी सूत्र सस्कृत गद्यमे हैं, किन्तु उनके आदि अन्तमें एक २ श्लोक हैं :—

प्रमाणादर्थसंसिद्धिस्तदाभासाद्विपर्ययः ।
इतिवक्ष्ये तयोर्लक्ष्म सिद्धमल्प लघीयसः ।
परीक्षामुखमादर्शं हेयोपादेयतत्त्वयो. ।
संविदे मादृशो बाल: परीक्षादक्षवद् व्यधाम् ॥

आद्य श्लोकमें ग्रन्थ प्रयोजन तथा उसकी रचनाकी प्रतिज्ञा की है । और प्रतिज्ञानुसार ग्रन्थ रचना की है । सूत्रकारने हेय–उपादेय तत्त्वका यथार्थ बोध कराने के लिए परीक्षकके समान दर्पण कृतिवत् बनाई ।

प्रतिपाद्य विषय:—प्रथम परिच्छेदमें १३ सूत्रो द्वारा प्रमाणका स्वरूप तथा प्रमाणके प्रामाण्यके स्वतस्तत्व परतस्तत्वका निर्णय किया है द्वितीय परिच्छेदमे प्रमाण के प्रत्यक्ष परोक्ष दो भेद बताये हैं । प्रत्यक्षके साव्यवहारिक तथा मुख्य भेदोको १२ सूत्रोसे प्रतिपादन किया है । तृतीय परिच्छेदमें परोक्ष प्रमाणके स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान, आगमका १०१ सूत्रोंमें कथन है। चतुर्थमें ९ सूत्रों द्वारा प्रमाणके विषय सामान्यविशेषात्मकको समझाया है । सामान्य विशेषके भेद भी दर्शायें हैं । पाचवें परिच्छेदमें ३ सूत्रो द्वारा प्रमाणका फल साक्षात्, अज्ञाननिवारण, परम्परा हान–उपादान उपेक्षा कहकर उसे प्रमाणसे कथचित् भिन्न अभिन्न सिद्ध किया है । छठे परिच्छेदोमे प्रत्यक्षाभास परोक्षाभासका स्वरूप बताकर जय–पराजय व्यवस्था बताई है । इसमे ७४ सूत्र हैं । इस प्रकार इस ग्रन्थमें जैन न्यायके सभी मौलिक ग्राह्य विषयोंका पूर्ण व्यवस्थित चयन हुआ है ।

न्याय विषयके ऐसे कठिन दार्शनिक विषयका आध्यात्मिक सम्बन्ध दिखाकर न्यायादि अनेक विषयके पारखी, मनीषी, विद्वान् श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराजने परीक्षामुखसूत्रप्रवचन द्वारा सरल सुबोध स्पष्ट किया है । समय-सारादि अनेक ग्रन्थोपर प्रवचन करने वाले विद्वानके प्रौढ ज्ञानने इसे दुरूहतासे बचाया है जो कि न्याय विषयक गम्भीर अध्ययन चिन्तन एव सुयोग्य विद्वत्ताका ही सुन्दर मधुर फल है । न्यायविषयक क्षेत्रमें तत्त्व निर्णयका आधार प्रमाण ही होता है । इसलिये प्रमाण और प्रामाण्यकी परीक्षा करना अत्यावश्यक है । इन प्रवचनो द्वारा लोकमें प्रमाणविषयक विपरीत धारणायें दूर होगी ।

मुझे इन प्रवचनोका प्रूफ शोधनका अवसर मिला है । मैं आशा करता हूं कि आध्यात्मिक तत्त्वके विज्ञ रसिक जन इनके स्वाध्याय द्वारा लाभ उठायेंगे ।

—देवचन्द जैन, एम० ए०

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[अष्टादश भाग]

(प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी)

प्रमाणके विषयकी जिज्ञासा—परीक्षामुखसूत्र ग्रन्थके गत तीन अध्यायोंमें प्रमाणके लक्षणका विवरण किया गया। प्रमाणका लक्षण किया है जो स्व और पदार्थका निश्चय कराने वाला ज्ञान है उसको प्रमाण कहते हैं उस प्रमाणकी उत्पत्ति, प्रमाणके भेद भेदका स्वरूप, उनके गुण उनके दोष इन सबके वर्णनमें प्रमाणके लक्षण का स्पष्ट रूपसे विवरण हुआ है। अब इस परिच्छेदमें यह पूछा जा रहा है कि इस स्व अपूर्व अर्थके व्यवस्थात्मक ज्ञानका प्रमाणका कुछ विषय है या उस प्रमाणका विषय नहीं है यहाँ यह पूछ रहे हैं कि ज्ञान निर्विषय होता है या विषय सहित होता है अर्थात् ज्ञानमें किसी चीजका प्रतिभास होता है या कोई चीज ज्ञानमें नहीं आती और ज्ञान बन जाया करता है ? निर्विषय तो कह नहीं सकते कि ज्ञानमें विषय कुछ नहीं आता, चीज कुछ नहीं आती और वह प्रमाण होता है। यह बात यों नहीं कह सकते कि फिर तो सारे भ्रान्त ज्ञान मिथ्या ज्ञान सभी प्रमाण हो जायेंगे। जैसे कि कभी आकाशमें बालोंका गुच्छा सा दिखता है अथवा छोटे पतिंगेसे नजर आते हैं तो फिर वे भी प्रमाण बन बैठेंगे। जब निर्विषय प्रमाण मान लिया। जब प्रमाणका विषयभूत कोई पदार्थ ही नहीं है तब कुछ भी विकल्प चल रहा हो वह भी प्रमाण बन बैठेगा। यदि कहो कि प्रमाण सविषय है। प्रमाणका है विषय कुछ तो वह विषय क्या है ऐसी एक आशंका होती है, तो प्रमाणके विषयका विवाद निपटानेके लिए सूत्र कहते हैं।

सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषय ॥ ४-१ ॥

सामान्यविशेषात्मक पदार्थकी सामान्यविशेषरूपता—सामान्य विशेषात्मक पदार्थ प्रमाणका विषय है अर्थात् सामान्य विशेषात्मक पदार्थ ज्ञानमें आता है। न केवल सामान्य ज्ञानमें आता, न केवल विशेष ज्ञानमें आता, किन्तु पदार्थ ही सामान्य विशेषात्मक है और वही ज्ञानमें आ पाता है। जैसे एक मनुष्य जो व्यक्तिरूप है, जो काम करने वाला है, जिसमें अर्थक्रिया होती है यह तो है विशेष और सब मनुष्योंमें रहने वाला जो मनुष्यत्व है वह है सामान्य। तो किसी आदमीको देखकर क्या केवल

सामान्य समझमें आ रहा या विशेष समझमें आ रहा ? भले ही कोई सामान्यकी व्याख्या न जाने सामान्यका अर्थ न जाने और उसके ज्ञानमें केवल वहां पुरुष विशेष विषयमें आ रहा है, किन्तु पदार्थ तो सामान्यरहित न बन जायगा। जितने भी पदार्थ हैं वे सब सामान्य विशेषात्मक हैं। मनुष्य है तो उसमें सदृश परिणामवाला मनुष्य सामान्य है। जो अर्थक्रियापरिणत व्यक्ति है वह मनुष्य विशेष है। तो ज्ञानमें जो विषय आया हुआ जाना गया वह पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है। कैसे जाना कि वह ज्ञानका विशेषात्मक है, उसे अब कहते हैं।

पूर्वोत्तराकार परिहारावाप्तिस्थितिलक्षणपरिणामेनार्थक्रियोपपत्तेश्च ।४-१२

सामान्यविशेषात्मक पदार्थके ही प्रमाणविषयत्व होनेका कारण—प्रमाणका विषय सामान्य विशेषात्मक पदार्थ है क्योंकि उसमें अर्थक्रिया हो रही है। उसमें काम होता है। परिणति हो रही है। इससे मालूम होता है कि वह सामान्य विशेषात्मक है। अर्थक्रिया परिणति उसमें ही हुआ करती है, जहां परिणाम होता हो अर्थात् पहिली पर्यायका ग्रहण करे और पूर्व एवं नवीन पर्यायोंमें रहे उसे कहते हैं परिणाम। और, ऐसा परिणाम होनेसे ही पदार्थमें अर्थक्रिया बनती है। जैसे सामने के किसी मनुष्यको देखा तो उस मनुष्यमें ये तीन बातें हैं कि नहीं कि नवीन पर्याय उसमें उत्पन्न होती है और पूर्व पर्याय विलीन होती है और दोनों पर्यायोंमें वह एक रह रहा है। सो अपने अनुभवसे सोचलो— मैं एक मनुष्य जन्मसे लेकर मरण तक वही का वही रहता हूं। लेकिन मेरी हालत रोज रोज बदलती है। और, मोटे रूपसे बचपन गुजरा जवानी आयी। जवानी गुजरी बुढ़ापा आया। पर मनुष्य तो मैं वही का वही हूं वही बचपनमें, वही जवानीमें और वही बुढ़ापेमें। तो देखो मनुष्यमें ये तीनों ही काम हुए। पहिली पर्याय छूटी, नवीन पर्याय हुई और उन सब पर्यायोंमें स्थिति एककी रही। इससे सिद्ध होता है कि समस्त पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होते हैं। और, पदार्थोंमें दो प्रकारकी बुद्धियां जग ही रही हैं—अनुवृत्त ज्ञान और व्यावृत्त ज्ञान। मनुष्यको देखते ही यह ज्ञान बना है ना कि गाय बैल, भैंस, घोड़ा आदिक से विलक्षण जातिका है यह मनुष्य और मनुष्य मनुष्य जितने हैं वे सब एक सदृश हैं। ये दो बातें सिखानेकी नहीं, किन्तु प्रत्येकके ज्ञानमें यह बात होती है तभी वे व्यवहार कर सकते हैं। अगर ज्ञानमें यह न बसा हो कि यह मनुष्य गाय, बैल, भैंस, बकरी, घोड़ा आदिकसे बिल्कुल जुदा है तो इसका मतलब क्या कि ये गाय, बैल भैंस आदिक रूपसे बात भी हुआ करती है क्या। तो यह बात बसी गई है कि यह व्यक्ति अन्य विलक्षण पदार्थोंसे व्यावृत्त है तभी उनसे बात की जाती है। तो यह तो ध्वनित हो ही गया कि यह विशिष्ट है उनसे न्यारा है और इसके साथ यह भी बात आयी है कि जैसे और मनुष्य होते हैं तैसे ये भी हैं, यह सामान्य है अब एक ही मनुष्यमें देखो तो बचपनमें था वह अब नहीं है यह तो व्यावृत्तरूप है—इसका। अन्यथा यह तो नहीं देखा

जा रहा कि छोटे बच्चे जैसे जमीनपर उल्टे औंधे सीधे खेलते रहते हैं इस तरह तो कोई बूढ़ा नही करता तो मालूम होता है कि वह परिणमन अन्य है यह परिणमन अन्य है पर व्यक्ति तो वही है जो बचपनमे था और अब है। इससे यह सिद्ध है कि प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होता है।

सामान्यविशेषात्मक पदार्थके प्रमाणविषयत्व जाननेका स्वयंके लिये स्वयं पर प्रभावित परिणाम अब अपनेको भी सामान्य विशेषात्मक समझनो, इस भवको नही, इस शरीरको नही, किन्तु जो चैतन्यस्वरूप आत्मा है उस आत्माको समझिये सामान्य विशेषात्मक विशेष अवस्था तो उसका विकल्प करनेकी विकल्प न करनेकी हुआ करती है और सामान्यस्वरूप उन सब पर्यायोमे रहने वाला जो एक चैतन्यमात्र तत्व है वह है उसका सामान्यस्वरूप। ऐसी श्रद्धा करनेसे इसको क्या बल मिलता है उस विशेषमे आज ससारी हू भव भ्रमणमे रहने वाला हूँ, विकल्पोमे रहने वाला हू, किन्तु यह विशेष है, परिणतियाँ क्षणिक हैं मिट जायेगी, इनसे निपटकर मैं निर्विकल्प भी बन सकता हूँ। मुक्त भी हो सकता हू। यह विकृत विशेष मिटकर अविकृत विशेष हो सकता है। यह विशेष निर्मलताकी अवस्था इस सामान्य तत्वके अवलम्बनसे प्राप्त होगी, जिस सामान्यस्वरूपमेसे यह विशेष पर्याय प्रकट होती है उस सामान्य स्वरूपका ज्ञान करनेसे इस विशेष पर्यायमे परिवर्तन हो जाता है। बहुत विकाररूप परिणमन चलते-चलते अब निर्विकार परिणमन चलने लगा। तो सामान्य विशेषात्मक मैं हूँ ऐसी श्रद्धा इसके भीतर हो यह बहुत ही उपयोगी अमूल्त तत्व है। तो ये समस्त पदार्थ सामान्य विशेषात्मक हैं क्योकि इनमें अनुवृत्त व्यावृत्त ज्ञान चल रहा है। ये अनुवृत्त व्यावृत्त ज्ञानके विषयभूत हैं। जो जिस आकारको प्रतिभासित करने वाले ज्ञानका विषय है वह तदात्मक देखा गया है। जैसे कि नीलाकारका प्रतिभास करने वाले ज्ञानका विषय क्या ? नील स्वभावी पदार्थ। जितने ये बाह्य पदार्थों के आकार ज्ञानमे प्रतिभासित हो रहे हैं वे यह सिद्ध करते हैं कि बाह्यमे इस प्रकारके पदार्थ हैं। तो जब सामान्य विशेषाकार रूपसे प्रतिभास होने वाले अनुवृत्त व्यावृत्त प्रत्ययके विषयभूत हैं ये सारे पदार्थ तो बाह्य प्रमेय और आध्यात्मिक प्रमेय, ये सब सामान्य विशेषात्मक होते हैं और केवल इस ही हेतुसे पदार्थ सामान्य विशेषात्मक हो सो नही किन्तु पूर्व आकारका वह परित्याग करता है अर्थात् परिहार करता है और उत्तर आकारको वह ग्रहण करता है और दोनो आकारोमे वस्तु बनी रहती है इससे इनमे अर्थक्रिया बनती है। यदि कोई पदार्थ नित्य ही है अपरिणामी है, जरा भी नही बदलता है तो उस पदार्थमे अर्थक्रिया नही बन सकती। यदि कोई पदार्थ क्षण-क्षणमे नष्ट होने वाला माना जाय तो उसमे भी अर्थक्रिया नही बन सकती। तो इन सब पदार्थोंमें जो अर्थक्रिया चल रही है वह यह सिद्ध करती हैं कि ये समस्त पदार्थ सामान्य विशेषात्मक हैं। यो समस्त पदार्थोंकी सामान्य विशेषात्मकतासे संक्षेप रूपमे बनाकर उसीके विवरणके लिए इस समय सामान्यके सम्बन्धमे कहा जा रहा है कि वह

सामान्य कितने प्रकारका होता है ?

सामान्य द्वेधा ॥ ४-३ ॥

तिर्यगूर्ध्वताभेदात् ॥ ४-४ ॥

सामान्यके प्रकार, सामान्य दो प्रकारका होता है तिर्यक् सामान्य और ऊर्ध्वता सामान्य। तिर्यक् सामान्य तो उसका नाम है जो एक ही समय अनेक जगह सामान्य पाया जाय और ऊर्ध्वता सामान्य उसे कहते हैं कि एक पदार्थ एक ही व्यक्तिमे कालभेदसे उनकी भिन्न पर्यायें हैं उन सबमे सामान्यरूपसे पाया जाय। जैसे १०८ मनुष्य बैठे हैं और वहां कहा कि मनुष्य हैं। तो सबमे जो मनुष्यत्व सामान्य है वह मनुष्य-सामान्य तिर्यक् सामान्य है। और एक ही मनुष्यमें यह बचपनमें भी मनुष्य था, अब भी मनुष्य है और वृद्धपनेमे भी मनुष्य है। ऐसी उसकी सब पर्यायोंमे मनुष्यत्व निरखना यह कौनसा सामान्य है ? यह ऊर्ध्वता सामान्य है। पदार्थोंका स्वरूप बतानेके लिए दो प्रकारके सामान्योंकी बात जाननी होती है—लेकिन ऊर्ध्वता विशेषतः ऊर्ध्वता सामान्यसे वस्तुका स्वरूप व्यवस्थित होता है। प्रत्येक पदार्थ नित्य है और अनित्य है, प्रत्येक पदार्थ सदा रहता है और उसमें बनता बिगड़ता भी रहता है। यहाँ पर जो सदा रहने वाला सामान्य कहा है यह ऊर्ध्वता सामान्य है और एक साथ रहने वाले समस्त पदार्थोंमें जिनकी सदृशता करना यह तिर्यक् सामान्य है। जैसे कहा—द्रव्य छह हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल तो ये जीव तो अनन्तानन्त हैं। उन अनन्तानन्त जीवोंको जीव द्रव्य कह दें। यह हुआ तिर्यक् सामान्य। और जब यह कहा जायगा कि जीव नित्यानित्यात्मक है, सदा रहने वाला है और क्षण-क्षणमें नवीन-नवीन पर्याय करने वाला है, तो इसमें जो सदा रहने वाला है यह जो अंश है, यह है ऊर्ध्वतासामान्य। पदार्थको स्वरूप बतानेमें विशेष सामान्यका कथन होता है यह है ऊर्ध्वता सामान्य और एक साथ पड़े हुए पदार्थोंमें जो जातिरूपसे कहना, वहाँ आ गया तिर्यक् सामान्य। इन्हीं दोनों प्रकारके सामान्योंके उदाहरण दे रहे हैं।

सदृशपरिणामस्तिर्यक् खण्डमुण्डादिषु गोत्ववत् ॥ ४-५ ॥

तिर्यक्सामान्यका स्वरूप—जो सदृश परिणमन है वह तो है तिर्यक् सामान्य। जैसे गेहूँके दाने अरबों पड़े हैं, ढेर लगा है तो वे सब गेहूँ सदृश धर्म वाले हैं। जो आकार जो रंग जो प्रकार गेहूँके है वही रंग वही आकार अन्य गेहुँओंमे है यों उन सारे ढेरोंमे एक गेहूँ शब्दसे कहा यह हुआ तिर्यक् सामान्य। जैसे अनेक गायें खड़ी हैं—कोई चितकबरी, कोई लाल, कोई काली कोई सफेद, कोई खंडी कोई मुण्डी आदिक तो उन सब गायोंमें जो गायपन है वे सब गायें कहलाती हैं। ऐसा जो गौत्व सामान्य है वह है तिर्यक् सामान्य, क्योंकि यहां सदृश परिणमन आया। है एकाकार

चटाई है, और उसमें अर्थक्रिया बनती है। उससे तृप्ति होती है। अनुगत आकार इस ज्ञानमें झलक रहा है और अनुगत आकार झलके बिना तो आत्माका स्वानुभव भी नहीं बन सकता। स्वानुभवमें किस प्रकारका आत्मा ज्ञानमें रहता है ऐसा सामान्य हुआ केवल चैतन्यमात्र। मनुष्य नहीं। देव नहीं। इस एक सामान्य चित्स्वरूप अन्तस्तत्त्वके बोधसे प्रतिभाससे स्वानुभव होता है। तो अनुगताकार ज्ञानमें आया यह बिना अनुभवकी बात है। इससे यह भी सिद्ध है कि जो बुद्धि ऐसी अव्यवहित है कि उसमें अनुगताकार प्रतिभासित हो रहा है जो अनुगत आकार सबमें पाया जाने वाला है वह व्यावृत्त आकारके अनुभवसे अनिश्चित है। दोनो ही प्रतिभासमें पाये जाते हैं। यह गाय है ऐसा ज्ञान करनेके ही साथ यह भैंसा घोड़ा आदिक नहीं है, यह भी साथमें ज्ञान हो रहा है। ये सब गायें हैं ऐसा ज्ञान होनेके साथ, सबमें गायपना है, एक समान है, यह भी बोधमें आ रहा है। तो सामान्य और विशेष दोनों बुद्धि में आते। जिस बुद्धिमें यह अनुगत आकार प्रतिभासमें आ रहा है कि यह अन्य पदार्थों बिल्कुल जुदा है, व्यावृत्त आकार बनता है ऐसी बुद्धि अनुगताकार वस्तुकी व्यवस्था करती है। यहाँ जो सर्वथा नित्य मानने वाले हैं वे विशेष नहीं मान सकते। क्योंकि विशेष मानेंगे तो पर्याय माननी पड़ेगी। तब अनित्य बन जायगा। क्षणिकवादी लोग सामान्य नहीं मान सकते। फिर सामान्य मानेंगे तो उन्हें वस्तुका नित्य मानना पड़ेगा, किन्तु वस्तुकी व्यवस्था इस ही प्रकार है कि प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होता है। ऐसा सबका ही ज्ञान हो रहा है। सब चीजें हैं, बदलती रहती हैं फिर भी उनमें वस्तुसामान्य वही एक सदा रहता है और पहिलेसे था। किसी भी पदार्थकी चर्चा करो जीवके सम्बन्धमें यही बात है कि अपनी पर्यायसे तो परिणमते हैं और जो एक सामान्य तत्त्व है सदा रहने वाला है वह शाश्वत रहा करता है। पुद्गल परमाणु ले लो। उसमें रूप, रस, गंध स्पर्श बदलते रहते हैं पर रूप सामान्य, रस सामान्य आदिक गुण ये तो सदा शाश्वत हैं। कोई भी रूप बदले, रूप तो रहेगा। कोई भी परिणति बनो वस्तु तो रहेगा। तो यों प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है और पदार्थ ही ज्ञानमें आया करता है। सो ज्ञानका विषय सामान्य विशेषात्मक पदार्थ है, इस हीको प्रमाणका विषय कहते हैं। इस अध्यायमें प्रमाणके विषयकी चर्चा की गई है कि प्रमाणका विषय क्या होता है इस एक सामान्य विशेषात्मक पदार्थके विवरण पर बहुतसे तत्त्व और समस्यायें हल हो जाया करती हैं। पदार्थका सामान्य विशेषात्मक जाने बिना गुण विकासके लिए उत्साह नहीं हो सकता मैं वही हूं जो सदा रहता हूं। मैं अभी मलिन पर्यायमें हूं। इस पर मलिन पर्यायको छोड़कर निर्मल पर्यायमें आ सकता हूं। यह उत्साह सामान्य विशेषात्मक आत्मपदार्थके व अन्तस्तत्त्व के बोधमेंसे ही आ सकता है।

बुद्धि भेदसे सामान्य विशेष तत्त्वकी सिद्धि—जितने भी पदार्थ होते हैं वे सामान्य विशेषात्मक होते हैं। सामान्य धर्म तो जाना जाता है सदृश परिणामोंको

देखकर । एक समान परिणमनोको देखकर, आकार प्रकारोको देखकर तो सामान्यका ज्ञान होता है और एक दूसरेसे भिन्न है। ऐसी भिन्नता देखकर विशेषका ज्ञान होता है। तो उस सम्बन्धमे दार्शनिक ऐसे हैं जो केवल सामान्यको ही मानते हैं पदार्थमे और कुछ ऐसे हैं जो केवल विशेष ही मानते हैं। तो यह जो केवल विशेष ही मान रहा है वह शकाकार कुछ कह रहा है। केवल विशेष ही माने यह कौन हो सकता है? क्षणिकवादी क्योंकि विशेषका, भेदका अधिकसे अधिक भेद माननेपर क्षणिकपनेकी सिद्धि होगी। सं शकाकार कह रहा कि विशेषके अलावा कोई कुछ सामान्य समझमे ही नही आता। सब विशेष ही विशेष है। सामान्य रही कुछ नही है, क्योंकि यह सामान्य है, यह विशेष है ऐसी बुद्धिमे कोई भेद नही आता। किसी चीजको देख कर उनमें ऐसा तो कोई नही निरखता कि इसमे यह तो सामान्य है और यह विशेष है। इस प्रकारका बुद्धि भेद न होनेसे सामान्य कुछ चीज नही है। जो देखा, जो जाना सो सब विशेष ही विशेष है। बुद्धि भेदके बिना पदार्थके भेदकी व्यवस्था नही की जा सकती। यदि बुद्धि भेद न होनेपर पदार्थ भेद मान लिया जाय, प्रतिभास तो एकरूप है और वहा पदार्थ भेद मान लिया जाय तो इसमे बड़ा अनर्थ होता है। ऐसा शकाकार विशेष तत्त्वका वर्णन कर रहा है। उत्तरमे कहते हैं कि यह बात भी अयुक्त है। सामान्यका स्वरूप और है, विशेषका स्वरूप और है। जैसे किसी पदार्थमे रूप, रस, गध, स्पर्श अनेक धर्म हैं। एक पदार्थमे हैं और एक ही समयमें हैं तो एक ही पदार्थके आश्रय रहने वाले जो रूप, रस, आदिक हैं देखो इनमे बुद्धि भेदसे भेद सिद्ध है कि नही। चीजको उठाकर कौन कह सकता है कि देखो इसमे यह तो रूप है और यह रस है। ऐसा कोई बता तो नही सकता। किन्तु क्या बुद्धि भेद नही जानता कि रूप यह है और रस यह कहलाता है? चक्षुरिन्द्रियके द्वारा जो नजर आया वह तो रूप है और रसनाइन्द्रियसे जो समझमे आया सो रस है। तो जैसे एक ही पदार्थमे रूप, रस एक साथ है और एक पदार्थका हम ज्ञान कर रहे हैं लेकिन वहा भी बुद्धि से ये दोनो गुण अलग अलग समझमे आते हैं। रूप इसका नाम है और रस इस का नाम है।

एकेन्द्रियगम्य तथा एक पदार्थमें प्रतिभासभेदकी सिद्धि—शकाकार कहता है कि जो पदार्थ एक ही इन्द्रियके द्वारा जाना जाता है, उसमें जाति और व्यक्ति का भेद कैसे बन सकता है? जाति मायने सामान्य। व्यक्ति मायने विशेष। जब हम चक्षुरिन्द्रियसे ही देख रहे हैं गाय तो अब उसमें उसमें यह छाट कैसे बन जायगी कि इसमें गोत्व तो सामान्य है और यह चार लम्बे पेट वाला जो जानवर खड़ा है यह व्यक्ति विशेष है। यह जातिका और व्यक्तिका याने सामान्यका और विशेषका भेद कैसे बन जायगा जब कि वह एक चीज ज्ञानमें आ रही है और एक इन्द्रियसे ज्ञानमे आ रही। और, जब सामान्य और विशेषका भेद न बन सका तो इसके मायने यह है कि विशेष तो दिख ही रहा, सामान्य कुछ चीज नही है। तो यो विशेषवादी सामा-

न्यका निराकरण कर रहा और केवल विशेषका ही मत बना रहा। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात युक्त नहीं है कि जो चीज एक ही इन्द्रियके द्वारा जानी जाय उनमें भेद नहीं होता। देखो गर्मीके दिनोंमें हवा भी चल रही है। गैस [illegible] रही है, तो स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा हवा जानी जाती है सो यह कहना युक्त नहीं है कि स्पर्शनेन्द्रियके द्वारा जो ज्ञेय होता है उसमें भेद नहीं रहता। देख लीजिए हवामें और गर्मीमें भेद समझमें आता कि नहीं कि यह तो गर्मी लगी और यह हवा लगी — और ये दोनों एक ही इन्द्रियसे जाने गए। तो हवा और गर्मीमें जो यह भेद दिख रहा है उसका कारण प्रतिभास भेद होता है। गर्मीका और हवामें प्रतिभास हो रहा हवाका और उष्णमें प्रतिभास हो रहा। तो रहा एक ही स्पर्श इन्द्रियसे, पर प्रतिभास भेद होनेसे हम यहाँ भेद व्यवस्था कर लेते हैं। यह तो हवा है और यह गर्मी है। इसी प्रकार और रस, एक पदार्थमें रह रहे हैं और एक जाति और व्यक्ति सामान्य और विशेष ये दोनों धर्म एक पदार्थमें हैं और उन्हें हम उपयोगसे जान रहे हैं लेकिन प्रतिभास भेद तो हैं। जो सदृश परिणाम वाला तत्त्व है वह तो है सामान्य और जो विलक्षण परिणाम वाला तत्व है वह है विशेष। गायको देखकर तुरन्त ही क्या यह ज्ञान नहीं बनता कि घोड़ा, भैंस, बकरी, आदिक सबसे निराला पदार्थ है। और, क्या यह प्रतिभास नहीं होता कि ऐसी गाय हुआ करती है। सो यह उनमेंसे एक है। अर्थात् अनुगताकार और व्यावृत्ताकार दोनों ही पदार्थोंके जाननेमें सबसे आ जाते हैं। अनुगताकार तो कहते हैं सदृश परिणामको। हर एक गायमें जो चीज पायी जाय जैसे गलेके नीचे लटकने वाली सास्ना [पतली खाल]। तो उस सदृश लक्षणसे यह ध्यान नहीं है क्या कि ऐसी गाय होती है और यह गाय है? तो किसी पदार्थको देखकर अनुवृत्त व्यावृत्तका याने सदृश धर्मका ज्ञान और विसदृश धर्मका ज्ञान दोनों एक साथ चलते हैं। तो सामान्य और विशेषमें भी प्रतिभास भेद बराबर होता है। सामान्य प्रतिभास तो है अनुगताकार। जैसे गाय, गाय, गाय सबसे यह बुद्धि चल रही है, यह तो है सामान्य प्रतिभास। और, विशेष प्रतिभास होता है व्यावृत्ताकार। यह इनसे भिन्न है ऐसा जो बुद्धिमें आता है उसे कहते हैं व्यावृत्ताकार। तो सामान्य और विशेषमें भेद प्रतिभास बराबर सही है। ऐसा पदार्थ सामान्यविशेषात्मक है, केवल व्यक्तिरूप, विशेषरूप भेदरूप ही नहीं है।

व्यवहारमें भी एक ही वस्तुमें सामान्य विशेषका प्रतिभास — और भी देखिये। चले जा रहे हैं घूमने कहीं, वहाँ बड़ी दूर से जो वृक्षोंका समुदाय नजरमें आता है तो वहाँ केवल अर्द्धाकार सामान्य नजरमें आता है अर्थात् ऊँचा ऊँचा है ऐसा भर ज्ञानमें आता कि यह आमका वृक्ष है, यह जामुनका वृक्ष है, यह ठूंठ है आदि। ठूंठ है या वृक्ष है इसका तो संदेह बना हुआ है, तो इस संदेहको दूर करनेके लिये जब प्रतिभास होता है सामान्यका अर्थात् ऊँची ऊँची चीजको सामान्य प्रतिभासमें आया था, फिर उसमें हुआ सन्देह कि यह ठूंठ खड़ा है या व्यक्ति है। उस सन्देहको दूर

था, फिर उसमे हुआ सन्देह कि यह ठूठ खडा है या व्यक्ति है। उस सन्देहको दूर करने के रूपसे उस हीका विशेष है, क्योंकि भेदका यही लक्षण है कि दूसरेके परिहारपूर्वक रहे। सामान्यमे केवल एक ऊर्ध्वाकार ही आना था। ठूठ है या पुरुष इसके सन्देहका मौका था। अब यह ठूठ ही है, पुरुष नही है ऐसा जो प्रतिभासमे आया सो क्या दूसरा कुछ आया। वही पदार्थ तो आया, किन्तु अब वह विशेष कहलाने लगा।

सामान्य विशेष दोनोके प्रतिभासके सम्बन्धमें प्रश्न और उत्तर— शकाकार कहता है कि वह जो व्यतिरेक प्रतिभास हुआ है—स्थाणुका पुरुषसे जो भिन्न प्रतिभास हुआ है वहाँ निकट होनेपर फिर ऊर्ध्वाकार सामान्य प्रतिभास क्यो नही होता जब ज्ञानमे विशेष बात आ गई, यह पुरुष है या ठूठ है कुछ भी एक ज्ञानमे आ गया तो उसके बाद कुछ ऊँचा-ऊँचा उठा हुआ है यह प्रतिभास तो नही रहता है, क्यो नही रहता? बहुत दूरसे जो बात ज्ञानमे आ रही थी निकट पहुचनेपर फिर उतना ही क्यो नही ज्ञानमे रहता? स्पष्ट क्यो प्रतिभास होने लगता सामान्य विशेष दोनो ही क्या ज्ञानमे नही आते? ऐसा शकाकार अब विकल्प उठाकर सामान्यका निराकरण करना चाह रहा कि सामान्य कुछ चीज नही। विशेष ही वस्तु है। उत्तर देते हैं कि यह बात युक्तियुक्त नही है क्योंकि यह इस विशेषमे भी घटित हो जायगा। विशेष भी यदि सामान्यमें अलग है तो दूर होनेपर वस्तुका स्वरूप सामान्य जैसे प्रतिभास मान होता है, वहा विशेष क्यो कुछ नही प्रतिभासमान होता। जैसे कि कहते हो कि सामान्य अब क्यो नही प्रतिभासमान होता जब कि उस पदार्थके पास पहुँच गए? दूरसे देखनेमे ऊर्ध्वाकार मालूम होता था पर निकट पहुँचनेपर यह तो प्रतिभासमे नही रहता कि यह इतना ऊँचा उठा हुआ है। शकाकारने यह कहा था कि सामान्य यदि कोई वास्तविक बात होती तो निकट पहुचनेपर यह ठूठ है ऐसा ज्ञान होनेपर फिर वह ऊर्ध्वाकार सामान्य भी प्रतिभासमे रहता किन्तु ऐसा है नही इससे सिद्ध है कि सामान्य कुछ चीज नही है। उसके उत्तरमे कर रहे हैं कि ऐसी बात तो हम विशेषमे भी घटा सकते हैं। दूरसे जब हम वस्तुका सामान्य स्वरूप अपने प्रतिभामे ले रहे हैं तो वहाँ विशेष क्यो प्रतिभासमे नही आ रहा? इससे सिद्ध है कि विशेष नामका तत्त्व कुछ नही है। यो विशेषका भी हम असत्त्व कह सकेंगे। देखो जब इन्द्रधनुष नीले, पीले आदिक रूप मे प्रतिभासित होता है तो दूरसे ही नीले पीले आदिक सब रूपोका प्रतिभास नही होता यह तो बात नही है। जैसे इन्द्रधनुषमे दूरसे ही नीले पीले आदिक रूप दिख रहे हैं इसी तरह किसी स्थलपर जब सामान्यका प्रतिभास हो रहा है तो वहाँ विशेषका भी प्रतिभास हो रहा है। ऐसा विशेषमें भी हम कह सकते हैं। आक्षेप प्रतिक्षेप यहाँ उस तरह दिये जा रहे हैं कि क्षणिकवादी लोग यह कह रहे हैं कि पदार्थमे सामान्य धर्म नही हुआ करता। एक विशेष ही होता है। और उसके लिये इसकी युक्ति दी कि सामान्य और विशेष दोनो ही यदि धर्म होते तो किसी वृक्षके ठूठके निकट पहुचनेपर जो विशेष प्रतिभास हो रहा है उस समय सामान्य क्यो नही प्रतिभासमे आ रहा कि

यह ऊँचा उठा हुआ कुछ खड़ा है। यह सामान्य भी तो बीचमें रहना चाहिए जब कि वस्तु सामान्य विशेषात्मक माना जा रहा। केवल वस्तु ही नजर आ रहा सामान्य वहाँ होता नही, इससे विशेष ही तत्त्व है सामान्य नही। इसके उत्तरमें ठीक उनकी ही पद्धतिके अनुसार यह भी कहा जा सकता है कि विशेष यदि कोई तत्त्व होता तो जब दूरसे ऊर्ध्वाकार दिख रहा था कुछ ऊँचा सा उठा था तो उस समय ठूठ आदिक व्यक्ति क्यों नही प्रतिभासमें आ रहे थे ? इससे सिद्ध है कि विशेष कुछ चीज नही है। दोनो ही बातें गलत कि विशेष ही होता, सामान्य कुछ नही होता अथवा सामान्य ही तत्त्व हो विशेष न हो। वस्तु तो सामान्य विशेषात्मक होती है। उनमेंसे जो केवल विशेष तत्त्व मान रहा है और सामान्यका खण्डन कर रहा है उसको समझ लेना प्रसगमें यह आपत्ति दी जा रही है कि यों सामान्य ही तत्त्व रहेगा विशेष तत्त्व न रहेगा।

दूरनिकटदेशसामग्रीकी सामान्यविशेषात्मक पदार्थके स्पष्टास्पष्ट प्रतिभासमे हेतुरूपता—अब शङ्काकार कहता है कि निकट देश सामग्री विशेष प्रतिभासको उत्पन्न करने वाली होती है। दूर देशमें रहने वाले पुरुष को यह सामग्री प्राप्त नही है। वह अभी दूर ही खड़ा है इस कारण से उसे विशेषका प्रतिभास नही होता। सामनो ऊर्ध्वाकार सामान्यका प्रतिभास हो रहा है। है कुछ ऊँचा खड़ा—खड़ा सा! कहते हैं कि इस तरह तो यह भी कह सकते हैं कि सामान्य प्रतिभास को उत्पन्न करने वाली सामग्री है दूरदेशसामग्री, बहुत दूर स्थायी खड़ा हुआ हो तो सामान्यका प्रतिभास होता है और दूरदेशसामग्री निकट रहने वाले पुरुषोंको प्राप्त नही है। इस कारण निकट मे रहने वाले लोगो को सामान्य प्रतिभास नही होता अर्थात् यह है कुछ ऊँचा उठा सा ऐसा प्रतिभास नही होता। इस तरह तो समान समाधान है। और है निकटमें सामान्यका प्रतिभास जैसे कि विशेषका प्रतिभास स्पष्ट है। यह तो शङ्काके उत्तरमें कहा गया था, पर वास्तविकता यह है कि जिस समय कोई दूर देशमें खड़ा हुआ पुरुष कुछ पदार्थ निरख रहा है तब भी सामान्य विशेष दोनोका प्रतिभास है और जब यह निकट देशमें आ गया, जो पदार्थ जाना जा रहा है तो वहा भी सामान्य और विशेष दोनोका प्रतिभास है। अब जो यह प्रतिभासभेद है कि जैसे दूरमें खड़े रहकर पदार्थका अस्पष्ट धुधला प्रतिभास हो रहा है उस प्रकारका अस्पष्ट प्रतिभास निकट पहुँचनेपर नहीं होता क्योंकि अस्पष्ट प्रतिभासमे सामग्री है, दूरदेश व सामग्री वह तो अब नहीं रही। तो अब तो यह जानने वाला पुरुष ज्ञेय पदार्थके निकट क्षेत्रमें पहुँच गया है। सो सामग्रीके भेदसे स्पष्ट और अस्पष्ट प्रतिभास हो रहा है लेकिन समस्त ज्ञानोके समय सामान्यविशेषात्मक पदार्थ ही प्रतिभासमें आया करता है।

व्यावृत्ताकार प्रतिभासवत् अनुगताकार प्रतिभासमे बाह्य साधारण

निमित्तनिरपेक्षताका अभाव— अनुगताकारका प्रतिभास भी बाह्य साधारण निमित्त की अपेक्षा न रखकर घटित नही होता। जैसे निर्विशेष व्यावृत्त आकारका प्रतिभास बाह्य सामग्री निमित्तकी अपेक्षा न रखकर नही होता यो ही सामान्य प्रतिभास भी बाह्य निमित्तकी अपेक्षा न रखकर नही होता अन्यथा प्रतिनियत देशमे प्रतिनियत कालमे इस प्रकारकी क्रियारूपसे उसका प्रतिभास न हो सकेगा। कोई पुरुष सुबहके समय जब कि कुछ अधेला उजेला रहता है, घूमने गया। उसे रास्तेमे कोई स्थित ऊँचा खडा सा पदार्थ नजर आया। था वह ठूठ, पर उसको दृष्टिमे लेकर यो ज्ञान कर रहा है कि यह तो कुछ ऊँचा सा है, यह है उसका सामान्य प्रतिभास। और जब जब उसके निकट पहुच गया तो वहा समझमे आया कि यह ठूठ है। अब इसमे जो पहिले सामान्यसा ज्ञान हुआ था कि यह है कुछ ऊँचा उठा हुआसा पदार्थ। तो हुआ सामान्यका ज्ञान मगर निमित्त निरपेक्ष वह भी नही है। वहापर भी इस जगह है यह ऊँचा उठा हुआ-सा पदार्थ। या इस सुबहके समय यह दिख रहा है ऊँचा उठा हुआ सा पदार्थ। तो प्रतिनियत देश कालके आकार रूपसे उसका प्रतिभास तो हो ही रहा है तो निमित्त निरपेक्ष नही रहा प्रतिनियत देश कालमे। वह ऊर्ध्वाकार सामान्य समझमें आ रहा है। ऐसा नही है कि बाह्य साधारण निमित्त सामान्यमे तो होते नही हो और व्यक्तिमे विशेषमें बाह्य साधारण निमित्त होते हैं। ऐसा भी नही है कि असाधारण व्यक्तिया ही उस सामान्यमे निमित्त पडती हैं। और कुछ नही, ऐसी बात यो नही है कि फिर वह व्यक्तिया भेदरूपसे व्यापक हैना। फिर भी उन असाधारण व्यक्तियोका सामान्य प्रतिभासमे निमित्त माना जाय तो घोडा आदिक जो अनेक व्यक्ति हैं उनमे भी गौ गौ एक दशा बननेका निमित्त हो जाना चाहिये। शंकाकार यहो यह कह रहा है कि सामान्य प्रतिभास एक तो होता नही। और जैसे जाना मान भी ले तो उस सामान्य प्रतिभासमे वह व्यक्ति ही निमित्त है। अन्य कोई कही उनमे निमित्त नही है। उसके उत्तरमे कहते हैं कि व्यक्ति ही सामान्य प्रतिभासमे निमित्त बन जाय तो घोडा गधा गाय सुवर आदिक सब खडे हो तो उनमे यह गाय है, गाय है- ऐसा सामान्य प्रतिभास हो जाना चाहिये। और जब यह मान लोगे कि बाह्यमे जो उनमे सदृश परिणाम वाले पदार्थ हैं उनका स्मरण निमित्त होता है तो फिर कोई व्यवस्था नही रहती सामान्यकी सिद्धिमे और विशेषकी सिद्धिमें।

सामान्यविशेषात्मक-पदार्थके ही प्रमाणविषयत्वका निष्कर्ष—उक्त कथनसे यह निष्कर्ष निकला कि जितने भी पदार्थ है लोकमे सद्भूत, जीव हो, पुद्गल हो, धर्म, अधर्म, आकाश, काल आदिक पदार्थ हो, प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होता है। पदार्थ हैं इस नातेसे उनमे प्रतिक्षण परिणमन भी होता रहता है। तो जो परिणमन है वह तो है विशेषतत्त्व और अनादि अनन्त अहेतुक जो कुछ स्वभाव है वस्तुका वह है सामान्य तत्त्व। यो प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होते हैं, और, यह सामान्य है, यह विशेष तत्त्व है इस प्रकारका प्रतिभास भेद भी हो रहा। इससे

वस्तुमें सामान्य धर्म भी है और विशेष धर्म भी है, और वे दोनों एक ही वस्तुके आधार में हैं उनमें ये सब कुछ हम समझनेके लिए उपचारका कथन किया करते हैं। वस्तु सामान्य विशेषात्मक वही पदार्थ है प्रतिभास भेदमें बराबर ध्यानमें आ रहा। प्रमाण का विषय केवल विशेष न रहा, केवल सामान्य न रहा किन्तु सामान्य विशेषात्मक जो कुछ पदार्थ है वह ज्ञानका विषय और वही कहलाता है प्रमाणका विषय। तो यों प्रमाणके विषयकी आलोचना करनेके प्रसंगमें यह कहा गया है कि ज्ञानका विषय है सामान्य विशेषात्मक पदार्थ। सामान्य दो प्रकारका है—तिर्यक् सामान्य और ऊर्ध्वता सामान्य। तो यहाँ जो सदृश परिणमन वाला है वह तो है तिर्यक् सामान्य और जो अनेक पर्यायोंमें शाश्वत रहने वाला है वह है ऊर्ध्वता सामान्य सामान्य माने बिना विशेषका टिकाव नहीं हो सकता और विशेष तत्त्वके माने बिना सामान्यका टिकाव नहीं हो सकता। और, सामान्य विशेषात्मक पदार्थको निरखनेपर ज्ञान भी सही बनता, कषायों का क्षय होता है और आत्माको शान्तिपथपर चलनेकी प्रेरणा मिलती है। यों पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है, और ऐसे ही पदार्थ ज्ञानमें आते हैं।

अतत्कार्यकारणव्यावृत्तिसे एकत्व प्रत्यय होनेका शंकाकार द्वारा वर्णन

ज्ञानका विषयभूत पदार्थ कैसा हो सकता है, इस सम्बन्धमें चर्चा चल रही है। सिद्धान्त यह रखा कि सामान्यविशेषात्मक पदार्थ प्रमाणका विषय होता है। अर्थात् ज्ञान जिस किसीको भी जानता है वह पदार्थ सामान्यविशेषात्मक है। न केवल सामान्यरूप न केवल विशेषरूप। तो इस प्रसङ्गमें विशेषवादी (क्षणिकवादी) कह रहा है कि सामान्य तो अवस्तु है, कुछ चीज ही नहीं है। वस्तु तो केवल विशेष है। फिर यह पूछते हैं कि जब केवल विशेष विशेष ही पदार्थ है, भिन्न-भिन्न है तो फिर अनेक पदार्थोंमें जो एकत्वकी बुद्धि होती है वह क्यों होती है? जैसे बहुतसे मनुष्योंमें यह मनुष्य है, मनुष्यत्वसामान्यका जो बोध होता है वह क्यों होता है? केवल विशेष विशेष ही तत्त्व रहे तो फिर सामान्यका बोध न होना चाहिये। इसपर शंकाकार कह रहा है अतत्कार्य कारण व्यावृत्ति पदार्थोंके अभेद प्रतिभासका कारण होता है। अर्थात् जैसे किसी पदार्थको समझा जा रहा है जैसे गाय, गाय, गाय सब गायोंमें जो एक गौ गौ का ही निश्चय रखने वाले एक अर्थका प्रतिभास हो रहा है, जिसे अन्य लोग सामान्य शब्दसे कहते हैं उस एक अर्थ सामान्यके प्रतिभासका कारण यह है कि जो गायके कार्य नहीं है, गायके कारण नहीं हैं उनमें यह अलग है इस कारण 'गाय गाय, इस प्रकार एकत्वका बोध होता है। सीधी बात तो इसमें यह निकली कि जो गाय नहीं है घोड़ा बकरी आदिक हैं उनकी व्यावृत्ति है इसमें। इससे गाय गाय सामान्यका ज्ञान कर लिया जाता है। वस्तुतः सामान्य कोई तत्त्व नहीं है। विशेष ही तत्त्व है। ये अश्व आदिक न तो गायके कार्य हैं और न गायके कारण हैं विशेषवादमें कारण तो होता है उत्तर समयमें और कार्य होता है पूर्व समयमें। जैसे आज अपशकुन देखा। मान लो काग सूखे वृक्षपर बैठा हुआ रो रहा है। तो इस अपशकुनका अर्थ माना जाता

है कि ६ महीने बाद मृत्यु होगी। तो यह जो वर्तमान दृश्य है यह ६ महीने आगे होने वाले मरणका कार्य है याने कारण तो ६ महीने बाद होने वाला है। उसका काम यह है—जो ६ महीने पहिले यह असगुन हुआ है। तो गायका अश्वादि नही है। अश्वादिककी उत्तर पर्याय नहीं है और कार्य भी नही है। ऐसा जो परिज्ञान है कि यही सब गायोंमें गाय गाय, गाय ऐसे बोधका अनत्कार्यकारण व्यावृत्ति कारण होता है न कि कोई गाय सामान्य तत्त्व है जिसकी वजहसे गाय, गायको यह बोध होता है।

दृष्टान्तपूर्वक अनेक कारणोंमे एकत्वप्रतिभासका शङ्काकार द्वारा विवेचन अनेकोमे एकत्वप्रतिभासपनकी बात अत्यन्त भिन्न पदार्थोंमे भी अन्य पदार्थोंके निर्णयका हेतुपना देखा जाता है। जैसे पदार्थका परिज्ञान करनेमे इन्द्रिय कारण है, पदार्थ कारण है, क्षणिकवादमें जो वस्तुका परिज्ञान होता है उसके कारण तीन बताये गए हैं पदार्थ, प्रकाश और इन्द्रिय। ये तीनों होते हैं तब पदार्थका ज्ञान होता है। और, इन तीनोमें पदार्थ तो है तदुत्पत्ति वाला कारण और प्रकाश और इन्द्रिय हैं सहयोगी कारण। अर्थात् जो भी ज्ञान हुआ है उस ज्ञानकी उत्पत्ति पदार्थो से हुई है। चौकीका ज्ञान हुआ तो इस ज्ञानकी उत्पत्ति चौकीसे हुई है तभी तो यह कह सकते कि यह ज्ञान चौकीका है। इन्द्रिय और प्रकाश ये तदुत्पत्ति सम्बन्ध रखने वाले कारण नही हैं किन्तु उसमे सहयोगी कारण हैं। तो यो ये तीन कारण कर क्या रहे हैं? किसी एक पदार्थका अवगम कर रहे हैं। एक को जान रहे हैं। तो एकताका जानना अभेदका जानना। यह अनेक कारणोमें भी हो सकता है। इसी तरहसे गाय अनेक हैं। वे कारण बन गए एक गायको समझनेके। पर उन गायोमें एक सामान्य धर्म है सामान्य तत्त्व है। तब वह गाय गाय कहलाती है ऐसा नही है। क्षणिकवादी लोग सामान्यको नही मानते वे विशेषको ही मानते हैं। क्योकि विशेष को माननेपर ही क्षणिकवादका सिद्धान्त कायम रह सकता है। क्षणिक मानो जायगा तो पदार्थमे नित्यत्व सिद्ध हो जायगा। सामान्य शाश्वत है, इसका अर्थ है कि पदार्थ नित्य है तब क्षणिकवादका ही व्याघात हो गया। तो क्षणिकवादी शंकाकार यह कह रहा है कि चीज अत्यन्त भिन्न है, इन्द्रिय आलोक और पदार्थ, तिसपर भी ये तीनोके तीनो एक ही धर्मका बोध करनेमे जुटे हैं। तो देखो ना भिन्न भिन्न होनेपर भी उन कारणोंमें एकका ज्ञान भेदका ज्ञान जिसे अन्य लोग सामान्य कहते हैं उसका ज्ञान हो जाता है। और दूसरा दृष्टान्त भी देखिये जैसे ज्वर शान्त करनेकी कोई औषधि पकायी गयी मानो काढ़ा पकाया गया तो उसमें ८–१० चीजें रहती हैं। तो वे ८–१० चीजे भिन्न भिन्न हैं फिर भी देखो उन ८–१० चीजोके कारणसे एक काम बन गया ज्वरका उपशमन हो गया। तो अत्यन्त भिन्न कारणोमे भी एकत्वका बोध हो जाया करता है इससे कहीं यह न समझना कि वह एकत्व कार्य सामान्य है अथवा कोई अभेद सदृश धर्म है। शंकाकारका यहा यह आशय है कि सामान्य नामका तत्त्व पदार्थमे नही है। सब विशेष ही विशेष है और कदाचित् सामान्यका जो बोध होता

है, एकत्वका जो ज्ञान होता है ये हैं सब गाय, गाय, गाय। तो वह बोध एक भ्रान्तिरूप है, अनेक कारणोसे उत्पन्न हुआ है। वस्तु तो वह एक एक अलग अलग ही है।

अतत्कार्यकारणव्यावृत्तिसे एकत्व प्रत्यय माननेकी शकाका समाधान उक्त आशकाके उत्तरमे कहते हैं कि यह जो तुम्हारा कहना है कि वस्तुमे जो एकत्व का बोध होता है यह सही नही है। जो जातिका बोध होता है वह अतत्कार्य कारण व्यावृत्तिसे होता है, कही सदृश परिणाम पाए जाते हैं इससे नही होता, किन्तु उसका जो कारण नही, उसका जो कार्य नही, उसकी है यहा व्यावृत्ति, उससे समझा जाता है एकत्व। इसके उत्तरमें कह रहे कि समान परिणामका आधार न माननेपर याने सर्वथा ही यह माना जाय कि सदृश परिणाम कुछ चीज ही नही है, तो वस्तुमें अतत् कार्य कारण व्यावृत्ति भी सिद्ध नही कर सकते। यह कहना कि इन समस्त गायोमे गायोसे जो भिन्न पदार्थ हैं उनमें गायके कारणत्वका अभाव है और कार्यत्वका अभाव है इससे यह बोध हुआ कि ये सब गायें हैं। सो यह जो अतत्कार्य कारणकी व्यावृत्ति है, अर्थात् जो कुछ भी गायके कारण नही है और जो गायके कार्य नही है उनकी व्यावृत्ति है, यह तो तब ही समझा जा सकता कि जब गायोके सदृश परिणामका ख्याल हुआ, गायोके कारणभूत अश्व नही बन सकते क्योकि गाय जैसी बात अश्वमें नही है। तो सदृश परिणामपर दृष्टि तो पहुंच ही गयी, तब दूसरे की व्यावृत्ति सिद्ध हुई। जैसे कहा जाय कि जीवमे पुद्गल नही है तो पुद्गलका अभाव कोई तब ही जान सकता है जब जीवके परिणाम क्या हैं और सब जीवोंमे ये चीजें पायी जाती हैं यह बोध हो और तब ही तो अजीवका निषेध किया जा सकता कि जीवमें जीव नही है। तो सदृश परिणाम माने बिना अतत्कार्यकारण व्यावृत्ति सिद्ध नही हो सकती। और, सदृश परिणामका जो कारण है वही सामान्य तत्त्वका मानना कहलाता है।

अतत्कारणव्यावृत्तिसे प्रवृत्तिके अभावका प्रसग—यदि अतत्कार्यकारण व्यावृत्तिसे एकत्वका बोध होता है तो उस एकत्वके बोधसे फिर प्रवृत्ति न बन सकेगी जैसे किसीको गायका दूध चाहिये। गाय दुहने जाना है तो पहिले वह गायको समझे तब ना किसीसे दूध दुह सकेगा। अब गायोंको समझना तो भ्रान्ति है। गोत्व सामान्यका अनुगताकारका बोध होगा तभी तो वह दूध दुहनेके लिये उठेगा, नही गायके बदले घोडा, बैल, भैंसा आदिकपर क्यो नही वह हाथ उठाता ? तो जो अर्थ कार्य कर रहा, जो प्रवृत्ति करना चाह रहा उसे अनुगताकारका बोध है। अब ऐसे बोधमें यह गाय गाय है। क्षणिकवादमें माना गया है 'अतत्कार्यकारण व्यावृत्ति, जो गायमे कारण नही है। जो गायका कार्य नही है उनसे भिन्नता होना यह है एकत्व बोधका कारण। तो व्यावृत्तिमें निषेधसे कोई काम भी बन सकेगा क्या ? अश्वादिकका निषेध – इसका नाम है गाय। तो अश्वादिकके निषेधसे दुग्ध नही निक-

लता, किन्तु अनुगताकार वाले भी अर्थसे दुग्ध प्राप्त होता है, सो अनुगताकार माने बिना, सामान्यतत्त्व माने बिना तो व्यवहारका लोप हो जायगा।

शकाकार द्वारा दिये गये दृष्टान्तमें अनेक कारणोमे सर्वथा भिन्नता का अभाव—शकाकारने जो दृष्टान्त दिया है कि ज्वरको शान्त करना, वह है एक कार्य और वह कार्य हो रहा है उन दस औषधियोके मेलसे, तो वे १० औषधिया भिन्न भिन्न हैं फिर भी उन कारणों द्वारा ज्वरकी शान्ति हो रही है। यह दृष्टान्त देना भी गलत है क्योकि वे दसों औषधियां सर्वथा भिन्न भिन्न नही है। उनमे ज्वर को शान्त करनेका कारणपना पाया जाता है इस दृष्टिसे वे दसो औषधियां कथंचित् अभिन्न है क्योकि ज्वरके शान्ति करनेकी शक्तिकी समानता है उन दस औषधियोमे। यदि यह समान परिणाम न होवे तो यह व्यवस्था नही कर सकते कि गुरमे बेल आदिक ज्वरको शान्त करनेके कारण है और ये ककड़ी खरबूजा आदिक ज्वरकी शान्त करनेके कारण नही हैं। यह भेद आप कैसे करेंगे ? यदि समान परिणाम नही मानते तो यह भेद नही किया जा सकता। जो जो पदार्थ ज्वरको शान्त करनेकी शक्ति रखते हैं उनमे इस दृष्टिसे समानता आ गई। कही समानता आकारसे मानी जाती है। कही समानता रूपतासे मानी जाती है, कहीं समानता कार्यके कारणपनेसे मानी जाती है। तो इन औषधियोमे समानता आकारसे तो नही है कोई कि औषधि गोल हो, कोई लम्बी हो और कोई अन्य किसी आकारकी हो पर ज्वर शान्त होनेमें कारणपना होना इसकी समानता है। तो दृष्टान्तमे जो दस औषधियोकी बात कही यह सर्वथा अभिन्न नही हैं।

समान परिणाम न माननेपर प्रतिनियत इन्द्रियज्ञानविषयकी अव्यवस्था
समान परिणामकी बात न माननेपर सदृशता न माननेपर, सामान्यस्वरूप न मानने पर तो ज्ञानकी भी व्यवस्था नही बन सकती। चक्षु ही रूपके ज्ञानके कारण होते है, रसना आदिक नही होते हैं। यह व्यवस्था कैसे बनायी गयी है इसी सामान्य-समान परिणामके आधारपर। रूपज्ञानको उत्पन्न करनेकी शक्तिकी समानता सबके चक्षुओ मे है। जैसे हम चक्षुके द्वारा पदार्थका रूप देखते हैं उस ही प्रकार अन्य पुरुषोमे भी चक्षुके द्वारा पदार्थका रूप निरखते हैं तो शक्तिकी समानताका बोध है। समानता है यदि सदृश परिणाम न माना जाय जैसा कि विशेषवादकी हठमे केवल विशेष ही तत्त्व है, सामान्य तत्त्व कुछ नही है तो यह व्यवस्था नही बन सकती कि चक्षु रूपके ज्ञानका कारण है और रस ज्ञानका कारण है और रस ज्ञानका कारण नही है। हमारी आखें रूपका ज्ञान करती हैं तो करलें। दूसरेकी आखें उसका ज्ञान करलें; तो यह जो व्यवस्था है कि सबमे चक्षु रूपज्ञानका ही कारण हैं तो यह व्यवस्था किस आधारपर है ? यह सामान्यतत्त्वके आधारपर है। समान परिणाम पाये जाते है ऐसी बात चक्षुवोमे रूपज्ञान करनेकी शक्ति पायी जाती है इस समानताको देखकर हम यह

बोध करते हैं कि चक्षु तो रूपज्ञानके कारण है और रस ज्ञानके कारण नहीं हैं। निष्कर्ष यह है कि वस्तुमे समान परिणाम न माना जाय, सामान्य तत्व न माना जाय तो व्यवहार ज्ञान भी खतम हो जायगा।

व्यावृत्ताकार प्रत्ययकी तरह अनुगताकारप्रत्ययमें वास्तविक आलम्बनरूपता - अब दूसरी बात सुनो क्षणिकवादी, केवल विशेषतत्त्वको ही पदार्थ मानने वाला यह कह रहा है। यहाके अनेक पदार्थोंमें जो अनुगत प्रत्यय हो रहा है। गाय, गाय, गाय हैं सब इस प्रकार जो एक गो जातिका बोध हो रहा है वह सामान्यके बिना ही व्यावृत्तिके आधारपर बोध हो रहा है। तो इसके उत्तरमे यह कह सकते हैं कि व्यावृत्ति प्रत्यय जो हो रहा है याने विशेषका जो बोध हो रहा है ये भिन्न भिन्न व्यक्ति हैं न्यारे न्यारे हैं ऐसा जो व्यावृत्त ज्ञान चल रहा है वह भी विशेषके बिना होता है। जैसे अनुगत प्रत्यय एक समान जातिका बोध सामान्यके बिना बताया है शंकाकारने तो यह उससे निराला है ऐसा व्यावृत्त बोध भी विशेषके बिना होने लगे तो कौनसी आपत्ति है ? हम ऐसा कह सकते हैं कि अभेदकी विशेषता न होनेपर भी एक ही ब्रह्मादिक स्वरूप इन अनेक नीले पीले आदिक पदार्थोंके प्रतिभासमे कारण होता है। फिर अनेक नीले पीले रूप आदिक स्वलक्षण मानना व्यर्थ है अर्थात् एक सामान्यसे ही यह सब व्यवस्था बन रही है सो विशेष माननेकी जरूरत नहीं। सामान्य क्या ? एक ब्रह्म। सर्व एक ब्रह्म। सब कुछ एक ही ब्रह्म है और वही एक ब्रह्म भिन्न भिन्न जो पदार्थ पडे हुए हैं उन पदार्थोंके प्रतिभासका कारण बन रहा है। ये भिन्न भिन्न व्यक्तियाँ कुछ नहीं हैं, ये धोखा हैं, भ्रान्ति हैं। अब क्षणिकवादियोंको उनकी ही शंकाके रूपके अनुरूप ही शब्दो द्वारा उत्तर दे रहे हैं कि यदि सामान्यके बिना सदृश परिणामका बोध होना मान लिया है तो विशेषके बिना विसदृश विलक्षण भिन्न भिन्न पदार्थोंका भी बोध माना जा सकता है। इस कारण रूपादिकके प्रतिभासकी तरह अनुगत प्रतिभासका भी आलम्बन कोई वास्तविक मानना चाहिए। अर्थात् जैसे भिन्न भिन्न अनेक पदार्थोंके बोधका कारण क्या है ? वही विसदृश धर्म। जैसे घोडा, हाथी, बकरी, गाय आदिक। ये सब न्यारे न्यारे हैं, तो ये सब न्यारे हैं, विशेष हैं, भिन्न हैं, विलक्षण हैं ऐसा ज्ञान होनेका कारण है। विशेष, याने पदार्थ विशेषस्वरूप है इस कारणसे ये पदार्थ न्यारे न्यारे जाने जा रहे हैं इसी प्रकार जब किसी जातिका बोध होता है गाय, गाय, गाय, मनुष्य, मनुष्य, मनुष्य, जिस भी जातिका बोध होता है तो उनमें जो सदृश परिणामका बोध हुआ, उनमें सदृश धर्मका जो बोध हुआ, उस बोधका कारण क्या है ? सामान्य तत्त्व। तो विशेष तत्त्वकी तरह सामान्य तत्त्व भी वास्तविक मानना पडेगा और इस तरह जब पदार्थके सम्बन्ध मे जातिरूपका भी बोध होता है और भिन्न भिन्न रूपका भी बोध होता है तब यह मानना सही है कि पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होते हैं।

एककार्यतासादृश्यसे व्यक्तियोंमें एकत्वाध्यवसाय माननेकी अयुक्तता

अब शंकाकार कहता है कि एक कार्यपनेकी सदृशतासे व्यक्तियोंमें भिन्न-भिन्न पदार्थोंके एकत्वका प्रतिभास होता है ये सब पदार्थ जुदे-जुदे हैं इनमें समानता जरा भी नहीं है, सब स्वलक्षणमात्र हैं, लेकिन इन पदार्थोंमें जो एकत्वका बोध हो रहा है-जैसे इन ५८ गायोंमें गाय है, गाय है इस तरह जो एकत्वका बोध हो रहा है उन सबका कार्य एक समान है। सब दूध देती हैं, सबका कार्य एक ढगका है इससे आभास होता है, कि इन अनेक गायोंमें अनेक व्यक्तियोंमें एक गोत्वका, गाय गाय है इस प्रकारके बोध का प्रतिभास होता है। यह भी कहना ठीक नहीं है क्योंकि तुम कह रहे हो कि एक कार्य हो रहा है इस कारणसे उन उन गायोंमें एकत्वका प्रतिभास होता है तो एक कार्य हो रहा है यही कैसे सिद्ध होता है ? एक कार्य क्या ? जैसे दूध दूध तो उन समान दूधोंमें सदृश परिणाम माने गए। यदि वहाँ सदृश धर्म न माने तो एक कार्यको भी सिद्ध नहीं कर सकते कि यह एक कार्य है और जब एक कार्य सिद्ध न हुआ तब फिर उन व्यक्तियोंमें एकत्वका अध्यवसाय भी नहीं बनता। अथवा उन गौ में प्रति-व्यक्तियोंमें कार्य भी अनेक पाये जा रहे हैं। एक कार्य कैसे कहोगे ? बोझा ढोना, दूध दुहा जाना और उनके गधमें कुछ रोग मिट जाना आदिक अनेक कार्य प्रति व्यक्तिमें पाये जाते हैं। तथा एक ही कार्य नहीं। दूध ही दूध दुहना समझें मगर जिस गायका जो दुग्ध कार्य है वह उसीका है, दूसरी गायका कार्य उसका उसीमें है। अब उन गायोंमें हम भेद कैसे सिद्ध करेंगे कि उनका एक कार्य है ? सदृश परिणाम मानेंगे तब ही तो अभेद सिद्ध कर सकेंगे। एक ही दूध है, एक सा स्वाद है, उससे हम यह निर्णय बतायेंगे कि यदि उन एक कार्योंमें भी यह बात लगावेंगे कि वे सब कार्य है ऐसा ज्ञान इसलिए होता कि वे सबके सब किसी कार्यके एक कारण पड़ते हैं तब इस तरह अन-वस्था दोष होगा। गायोंको एक सिद्ध करनेके लिए दुग्ध एक कार्यको सिद्ध किया। उस एक कार्यके सिद्ध करनेसे गायोंमें एकत्वका निश्चय बताता है। तो वे कार्य भी अनेक हैं दुग्ध। उन अनेक कार्योंमें भी एकत्वका अध्यवसाय कैसे हुआ कि वे भी किसी एक कार्यके कारण हैं तो फिर वहाँ भी प्रश्न होगा कि एक कार्य कैसे कहलाये इस तरहसे एक कार्यके कारण है, एक कार्यकी सदृशता है यह बताकर अनवस्था बना लोगे। कहीं व्यवस्था न बनेगी। यदि कोई कहे कि हम केवल एक ही कार्य मानते हैं ज्ञान लक्षण वह ज्ञान लक्षण रूप भी कार्य प्रतिव्यक्ति भिन्न-भिन्न ही पाया जाता है। किन्हीं भी पदार्थोंमें एकताका बोध करने वाला जो ज्ञान है, जितने मनुष्योंको ज्ञान प्राप्त हुआ प्रति व्यक्तिमें भिन्न भिन्न है। इस कारण एक कार्य तुम सिद्ध कर ही नहीं सकते। विशेषकी हठ वालोंने प्रथम तो वे गायें एक जातिकी नहीं बनतीं। भिन्न भिन्न व्यक्तियां हैं। उनका कार्य एक मानते भी नहीं बनता, क्योंकि जितने व्यक्ति हैं उतने कार्य हैं और शायद यह कहो कि उन कार्योंका जो परिज्ञान है वह तो एक है, तो विशेषवादमें परिज्ञान भी एक नहीं बन सकता। जितने व्यक्ति है। जितने ज्ञाता हैं उतने ही उनमें ज्ञान हैं वे ज्ञान धर्मज्ञान परिणमन जितने ज्ञाता हैं उतने ही हैं।

वहा भी अभेद नहीं बन सकता।

पदार्थकी सामान्य विशेषात्मकताका स्पष्ट और सुगम बोध भैया! एक सीधे प्रतिभासमे जो बात आती है। जो सामान्य विशेषात्मक पदार्थ हैं उनमेंसे किसी एकको न मान कर और उसके बिना काम चलता नहीं सो इस कार्यकी पूर्ति करनेके लिये अनेक कल्पनायें जोडना, इस परिश्रमको न करके सीधा मान लीजिये कि पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है तो यह विवादकी बात न होगी। हम किसी भी पदार्थको देखकर ऐसा पदार्थ यह हुआ करता है। यह भी ज्ञान होता है और यह पदार्थ इन अन्य पदार्थोंमे सदृशताका भी धर्म है और विसदृशताका भी धर्म है। इस कारण पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है। इससे यह सिद्ध होता कि पदार्थ उत्पादव्यय ध्रौव्यस्वरूप है। यह तो लोग सुगमतया स्पष्ट जान रहे हैं कि प्रत्येक पदार्थ नवीन पर्यायसे उत्पन्न होता है और पहिली पर्यायका नाश करता है। और सब पर्यायोंमे वही एक बना रहता है। यह उत्पादव्यय ध्रौव्यका आधार मिला कहासे? इस सामान्य विशेषात्मकतासे। पदार्थ सामान्यस्वरूप है अतः तो ध्रुव है, नित्य है और पदार्थ विशेषस्वरूप है सो उत्पादव्ययात्मक है इस तरह सामान्य विशेषात्मक पदार्थ है और ऐसा ही पदार्थ ज्ञानका विषयभूत होता है और सामान्यमात्र कुछ है ही नहीं, विशेष मात्र कुछ है ही नहीं। हो ही नहीं सकता केवल सामान्य और केवल विशेष। किस का नाम लाते? जब भी नाम लोग कि यह है पदार्थ तो उसमे सामान्य धर्म भी है ये दोनो बातें पायी जाती हैं। सो ये जिस ज्ञानको प्रमाणता सिद्ध की गई इस ग्रन्थमें ज्ञानकी उत्पत्तिके साधन बताये गए इस प्रथमे, उस ज्ञानका विषयभूत पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होता है, और सामान्य विशेषात्मक पदार्थकी श्रद्धासे ही हमे कल्याणका मार्ग दिखता है मैं आत्मा हू। सामान्यविशेषात्मक हू। सामान्य धर्मकी अपेक्षा शाश्वत हू। विशेष धर्मकी अपेक्षा क्षण क्षणमे नये नये रूप रखता हू। जब आज यह ससार अवस्था है तो यह मिटाकर हो नि ससार अवस्था हो सकती है। और ससार अवस्था मे भी रहने वाला मैं और हू नि ससार अवस्था परम आनन्दका धाम रखकर भी मैं ही रहता हू। इस प्रकारका सम्यक् बोध सामान्य विशेषात्मकके जाननेसे होता है और फिर कल्याणका मार्ग प्राप्त होता है।

अनुभवोके एकत्वका व्यक्तियोमे उपचार करनेके प्रतिपादनकी अयुक्तता—शकाकार कहता है कि निर्विकल्प प्रत्यक्षज्ञानोमें तो एक वस्तुविषयक ज्ञान के हेतु होनेसे साक्षात् एकत्व है। पदार्थमे एकत्व नहीं किन्तु निर्विकल्प प्रत्यक्षज्ञानमे एकत्व है और वह ज्ञान है पदार्थ हेतुक अर्थात् पदार्थके कारणसे ज्ञान उत्पन्न हुए हैं इस कारण व्यक्तिरूप पदार्थोंमे भी एकत्वका उपचार किया जाता है अर्थात् पदार्थोंमें एकत्व नहीं, सदृशता नहीं, किन्तु अनुभवोमे एकत्व है। तो ज्ञानके एकत्वका उपचार पदार्थोंमे किया जाता है। उत्तर देते हैं कि यह कहना केवल तुम्हारी श्रद्धामात्र है,

वास्तविक प्रतिपादन नहीं है, क्योंकि अनुभव भी तो सारे अत्यन्त विलक्षण हैं। वे एक को स्पर्श करने वाले ज्ञानके कारण कैसे बन सकेंगे। यदि अनुभव निर्विकल्प प्रत्यक्ष ज्ञान एकत्वको ग्रहण करने लगे तो बहुतसे घोड़ा भैंस आदिक व्यक्ति भी अनुभवमे आ रहे हैं। उनसे भी खण्ड मुण्ड आदिक जो गो व्यक्ति हैं उनमे एक धर्मका हो जाय, अर्थात् एकस्पर्शी ज्ञानकी उत्पत्ति हो जाना चाहिए फिर उन अश्वादिकके ज्ञानोसे, क्योंकि अब अनुभवोको निर्विकल्प प्रत्यक्ष ज्ञानोको एक रूप मान लिया है और उस एक रूपतासे व्यक्तियोसे एकरूप मान ली है तो, कुछ भी ज्ञानमें आये ज्ञान तो एक रूप है तब पदार्थोंमे भी सबमे बिना विवेकके, बिना विशेषताके एकत्वका उपचार हो जाय। शंकाकार कहता है कि खण्ड मुण्ड आदिक जितनी गायें हैं, लाल पीली टूटी सींग वाली पूंछ वाली जितनी गायें हैं उन सब गायोंमें प्रत्यासक्ति विशेष है। कुछ धर्मोंमें निकटता है इस कारण खण्ड मुण्ड आदिसे खण्ड मुण्ड आदिकमें एकत्वकी अनुभूति होती है अन्यसे नहीं अर्थात् घोड़ा भैंस आदिक का ज्ञान किया जा रहा हो तो उन ज्ञानोसे गाय गाय ऐसा एकत्वका प्रतिभास नहीं हो सकता है। उत्तरमे कहते हैं तो फिर वह प्रत्यासत्ति विशेष क्या चीज है? जिस निकट धर्मज्ञताके कारण खण्डी मुण्डी आदिक गो व्यक्तियोके ज्ञानसे ही गाय गाय ऐसी एकत्वकी प्रतीति बने वह प्रत्यासत्ति विशेष और कुछ हो ही क्या सकती है सिवाय समान आकारके ज्ञानके। अर्थात् उन सब प्रकारकी गायोमे एक समान आकार जाना गया जिससे यह जाना गया कि ये सब एक जाति हैं और फिर एकका ज्ञान करनेमे कारण रूपसे माने गए निर्विकल्प ज्ञानोकी सिद्धि नहीं होती। निर्विकल्प ज्ञान कोई प्रमाणिक ज्ञान नहीं है। इससे बाधारहित ज्ञानमें यही बात आती है कि सदृशपरिणाम स्वरूप वस्तुभूत कोई सामान्य है।

पदार्थविषयक तत्त्व होनेसे सामान्यकी नित्यता व सर्वव्यापकताकी असिद्धि—अनेक व्यक्तियोमे सदृश परिणामका रहना यह वास्तविक सामान्य है और वह सामान्य अनित्य है, अव्यापक है। यदि सामान्यको नित्य माना जाय, व्यापक स्वभाव वाला माना जाय तो उस सामान्यसे फिर अर्थ क्रिया नहीं बन सकती है। नित्य सर्वगत गो जातिसे बोझा ढोना, दुग्ध दुहना आदिकका उपयोग न होगा, इन कामोके लिए तो व्यक्तियोका ही व्यापार होगा। तो अर्थक्रिया व्यक्तिसे होती है, गो जातिसे नहीं होती और सदृश परिणामरूप धर्म व्यक्तिको छोड़कर अन्यत्र नहीं रहता, इसी कारण सामान्य भी नित्य और सर्वगत नहीं है। यदि कहो कि नित्य व्यापक सामान्य स्वविषयज्ञानका जनक होता है तो यह बतलावो कि यह पदार्थ अपने विषयके ज्ञानको उत्पन्न करता है तो उसमे उस ही के केवलका व्यापार है या व्यक्ति सहित सामान्यका व्यापार है? यदि कहो कि केवल इस ही गोत्व सामान्यका अपने विषयमे ज्ञान उत्पन्न कर देनेका व्यापार होता है तब तो व्यक्तियोके बीचमे भी इस सामान्यकी उपलब्धि होना चाहिये। यदि कहो कि व्यक्ति सहित सामान्यका

अपने विषय ज्ञानमे उत्पन्न होनेका व्यापार है तो यह बतलावो कि प्रतिपन्न (विज्ञात समस्त व्यक्तियोंमे, युक्त होकर इसका युक्त होकर इसका अपने विषयक ज्ञानको उत्पन्न करनेमे व्यापार है या अप्रतिपन्न समस्त व्यक्तियोमे व्यक्ति सहितका व्यापार है ? यदि कहो कि प्रतिपन्न समस्त व्यक्तियोंसे सहित होकर यह अपने विषयक ज्ञान को उत्पन्न करता है या यह बात यों असुंगत है कि हम लोग अल्पज्ञ है। इन सबका समस्त व्यक्तियोंने नही जाना ऐसा व्यक्ति सहितका व्यापार होता है तो जब एक व्यक्तिका भी ग्रहण न हुआ तब तो एक सामान्य ज्ञान बन गया, विशेष ज्ञान नही बना, क्योंकि विशेष ज्ञानमे तो व्यक्तियोंका बोध होता है। यहा व्यक्तियोंका बोध कहाँ है ? अतएव सामान्य ज्ञान ही रहा। यदि कहा कि जाने गये कुछ व्यक्तियों सहित ही अपने विषयक ज्ञानको उत्पन्न करता है तो यह बतलाओ कि व्यक्तियोंके द्वारा उसके सामान्यका कुछ उपकार किया गया अथवा नहीं ? यदि कहा कि किया गया तो सामान्य व्यक्तिका कार्य बन गया। क्योंकि जो उपकार किया वह अभिन्न उपकार किया होगा तो अभिन्न उपकार करनेमें सामान्य व्यक्तिका कार्य बन गया। यदि कहो कि व्यक्तियोंमे भिन्न है उपकार जो कि सामान्यका किया गया तो वहा वह सामान्यका उपकार है ऐसा कहना ही प्रसिद्ध हो जायगा। यदि कहो कि उस सामान्य का जो उपकार है उसके द्वारा अन्य उपकार किया गया है, उसमें जाना गया कि यह इसका उपकार है तो इसमे अनवस्था दोष आता है। यदि कहो कि व्यक्तियोंके द्वारा सामान्यका कुछ उपकार नहीं किया गया तब फिर व्यक्तिके सहयोगकी बात करना व्यर्थ है क्योंकि जब व्यक्तियोंने इस सामान्यमें कुछ नहीं किया ये अकिञ्चित्कर रहे तो अकिञ्चित्करको तो सहकारी कहा नहीं जाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि सामान्य नित्य सर्वव्यापक नही है। कोई स्वतन्त्र जैसा नही है। जो व्यक्ति हैं उन ही व्यक्तियोंमे सदृश परिणमन धर्म देखकर सामान्य समझ लिया जाता है।

सामान्यज्ञानमे व्यक्तिव्यापारकी हेतुताका निराकरण—यदि कहो कि सामान्यके साथ एक (जैसा कि गौ गौ इस प्रकारके) ज्ञानको उत्पन्न करनेमे व्यक्तियोंका व्यापार बना सो व्यक्ति सामान्यके ज्ञानके सहकारी कहलाये। तो पूछते हैं कि व्यक्तियोंका सामान्यके साथ एक जातिका ज्ञान उत्पन्न करनेमे व्यापार कैसे हुआ या व्यक्तियोंका कुछ अविशेषत्व था इसलिये सामान्यके साथ एक ज्ञान उत्पन्न होनेमे व्यापार हुआ ? यदि कहा कि आलम्बन भावसे व्यक्तियोंका सामान्यके साथ एक ज्ञान जननमे व्यापार हुआ तो एक और अनेक आकार वाले सामान्य विशेषज्ञान सर्वदा ही हुआ करे, क्योंकि जितने विज्ञान होते है वे अपने आलम्बनके अनुरूप हुआ करते हैं। सामान्य तो एक है इसलिये एकाकार ज्ञान बना और व्यक्तियां अनेक है इस कारण अनेकाकार ज्ञान बना। अपना जब ज्ञान होता है तो इस ही प्रकार होता है, जैसे पदार्थ एकानेकस्वरूप है, जाति व्यक्तिस्वरूप है तो ज्ञान भी एक अनेकाकार रूप हो जाता है। यदि कहो कि व्यक्तियोंका व्यापार सामान्यके साथ एक ज्ञान उत्पन्न

करनेमे अधिपक्तित्व रूपसे होता है तो यो द्वितीय विकल्प माननेपर अर्थात अधिपतत्व होनेके कारण व्यक्तियोका सामान्यके साथ एक ज्ञानकी उत्पत्तिमें व्यापार होता है, यह माननेपर व्यक्तियोका ज्ञान न होनेपर भी सामान्यज्ञानका प्रसंग हो जायगा। जैसे कि रूपका ज्ञान करनेमे चक्षुका अधिगम न होनेपर भी व्यापार देखा गया है अथवा चक्षुके धर्मका अधिगम (ज्ञान) न होनेपर भी रूपज्ञानमें व्यापार देखा गया है। सामान्यको सर्वथा नित्य माननेपर तो उसका किसी भी अर्थक्रियामे व्यापार हो ही नही सकता है, क्योकि नित्य वस्तुका क्रमसे अथवा क्रमसे भी अर्थ क्रियाका विरोध है। इस तरह किसी भी अर्थ क्रियामे कल्पित नित्य सामान्यका व्यापार न बनेगा और व्यापार बने तो सहकारीकी अपेक्षा न रखनेके कारण सदा कार्यकारी बनता रहे यह दोष आता है। क्योंकि जो नित्य है वह किसीकी अपेक्षा नही रखा करता।

पदार्थोंकी साधारणासाधारणधर्मरूपता—पदार्थोमे साधारण धर्म और असाधारण धर्म होते ही है ऐसा मौलिक नियम है। सबसे प्रारम्भमे वस्तुस्वरूपको जानते हुए देखा कि प्रत्येक पदार्थोमे साधारणधर्म हुआ करते हैं। छह साधारण गुण समस्त पदार्थोंमे है—अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरलघुत्व, प्रदेशवत्व, प्रमेयत्व, इन साधारण धर्मोंके सद्भावके नाते पदार्थ कहनेसे समस्त पदार्थ आ जाते हैं। यह पदार्थ नामक जाति यह साधारण धर्मसे युक्त हुई जाति सब व्यक्तियोमे पायी जाती है। चाहे वह चेतन पदार्थ हो अथवा अचेतन पदार्थ हो, सभी पदार्थोमे साधारण धर्म पाये जाते हैं, और सभी पदार्थोमे असाधारण धर्म पाये जाते हैं। जैसे जीवमे चेतना, पुद्गलमें मूर्तिकता आदिक। ऐसा कोई पदार्थ नही है जिसमे केवल साधारण ही धर्म पाये जायें अथवा जिसमे असाधारण ही असाधारण धर्म पाये जायें। असाधारणके बिना साधारण होते ही नही, तथा यदि साधारण धर्म नही है तो वस्तुत्व ही नही है, फिर असाधारण धर्म कहा विराजे? यदि असाधारण नही है तो उसकी सत्ताका मतलब ही कुछ नही है, फिर साधारण धर्मोंकी वहाँ आवश्यकता क्या है। तो पदार्थ स्वत ही साधारण और असाधारण धर्मोंसे सहित हैं। यह तो एक पदार्थकी बात कही जा रही है। जब एक ही पदार्थमे साधारण धर्म और असाधारण धर्म है, तब अनेक व्यक्तियोमें व्यक्तियोकी सदृशता देखकर उन सब व्यक्तियोका एक जातिमे कहना कसे अयुक्त हो सकता है। जो अनेक व्यक्तियोमे समान धर्म पाये जाते हैं उसकी अपेक्षा तिर्यक् सामान्य जाना जाता है। तो सामान्य न माननेपर केवल विशेष मानने पर कुछ भी व्यवहार नही बन सकता, और विशेष न माननेपर केवल सामान्य मानने पर भी कुछ भी व्यवहार नही बन सकता। जब अनुवृत्ताकारके बोध होनेसे वस्तुका ज्ञान होता है तब व्यवहार चलेगा। और सामान्यमात्र वस्तु है नही, विशेष मात्र वस्तु है नही, तो जैसा वस्तु नही वैसा ज्ञान करना सम्यग्ज्ञान कैसे हो सकता है। पदार्थोंकी जो स्थिति बतायी गई है वह सामान्य और विशेषात्मक न माननेपर नही

बन सकती । सत्त्वकी दृष्टिसे इन साधारण धर्मोंकी दृष्टिसे चूँकि प्रत्येक पदार्थ हैं, अपने स्वरूपसे हैं परके स्वरूपसे नही हैं, निरन्तर परिणम शील हैं, अपने ही प्रदेशमे परिणमते हैं, परमें नही परिणमते हैं। प्रदेशवान हैं और किसी न किसीके ज्ञानमे प्रमेय हैं ऐसे छह साधारण गुणोकी अपेक्षासे प्रत्येक पदार्थ पदार्थ है और इस दृष्टिसे यदि समस्त विश्वको एक सद्रूप ब्रह्मरूप कह दिया जाय तो इसमें कुछ अनुचित नही। क्योंकि दृष्टिमे केवल साधारण धर्मोंको ध्यानमे लेकर सन्मात्र देखा जा रहा है। तो यो साधारण ही धर्म होते, समस्त व्यक्तियोमें, तो ऐसा एकत्व बनता, किन्तु असाधारण धर्मके बिना साधारण धर्मोंके आधारपर पदार्थका अस्तित्व नही रह सकता, इस कारण प्रत्येक पदार्थमे असाधारण धर्मरूपता अस्तित्वके कारण अनादि अनन्त होती है।

पदार्थोंमे जातिरूपता व व्यक्तिरूपता होनेसे ही प्रवृत्ति व अर्थक्रियाकी सम्भवता—जब उस सत् पदार्थमे ६ प्रकार निकले। कोई तो जीव है कोई पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल आदि द्रव्य है। पदार्थकी ये छह ही जातिया बतायी जा सकती हैं। वैसे तो पदार्थोंको दो भेद रूपसे कहा जा सकता है। एक चेतनरूपसे और एक अचेतन रूपसे। किन्तु चेतनत्व होना अनुजीवी धर्म है जबकि, ऐसा अचेतनत्व कोई अनुगत धर्म नही है। चैतन्यका न होना इसको कहते हैं अचेतन। तो अचेतनके कहे जानेसे किसी उपयोगिताका अवगम न हो सका इस कारण चेतन और अचेतन ऐसे दो भेद जातिरूपसे नही किए गए हैं विवेकी जगतमे। द्रव्यके, पदार्थोंके ६ प्रकार बताये गए और उनके उस प्रकार होनेमे कारण है असाधारण धर्म। असाधारण धर्मके हुए बिना साधारण धर्मोंके रहनेका प्रयोजन कुछ नही है। आत्मा जैसे ज्ञान स्वरूप है तब उस स्वरूपके पोषणके लिए छह साधारण गुण उपयोगी हो गए और किसी असाधारण धर्मरूप हो ही नही कोई तो फिर स्वरूप ही क्या रहा? फिर किसके पोषणके लिए छह प्रकारके साधारण धर्म माने जायेंगे? पुद्गलका असाधारण धर्म है मूर्तिकता रूप, रस, गध, स्पर्श होना। उसमें अर्थ क्रिया है। उसके ज्ञानसे लोगोंकी प्रवृत्ति होती है अभीष्ट व्यवहार बन सकता है असाधारण धर्म मान लेनेसे। तो पुद्गलमे रूप, रस, गध, स्पर्शमयताका होना यह असाधारण धर्म है, इस असाधारण धर्मके बिना याने पुद्गलमे रूप, रस, गध, स्पर्श न माना जाय तो छह साधारण धर्म किस लिए फिर रहे? उनका कोई प्रयोजन न रहा। तो यो साधारण धर्म और असाधारण धर्म प्रत्येक पदार्थमे जुटे ही रहते हैं अब इस भेदके विस्तारपर चलिये। ये जो ६ भेद किए गए हैं ये भेद इस आधारपर हैं कि इनमें सबमे साधारण धर्म हैं इस कारण तो यह वस्तु है और इसमे असाधारण धर्म है इस कारण अर्थ क्रिया होती है। काम क्या हो? यदि असाधारण धर्म न माना जाय। साधारण धर्मसे तो जाति बनती है और असाधारण धर्मसे व्यक्तिरूपता आती है, तो जब वस्तुता व व्यक्तिरूपता हो तो, उसमे अर्थक्रिया उसमे प्रवृत्ति सम्भव है।

लोकव्यवहारमें व मोक्षमार्गमें सामान्य विशेषात्मक पदार्थके अवबोध का योग – देखिये लोकव्यवहारमें भी अनुवृत्त और व्यावृत्त आकार न माना जानेसे अव्यवस्था बन जायगी। हम किसी भी मनुष्यको पहिचानते हैं तो पहिचाननेके साथ सामान्यरूपता और विशेषरूपता दोनोका प्रतिभास होता है। जो नाम हमने जिस व्यक्तिका सुन रखा है उस नामको उस ही व्यक्तिमे लगाते हैं कहीं गाय, घोडा आदिक मे नही लगा बैठते। इसका कारण क्या है इसका कारण यह है कि अनुवृत्ताकारका प्रतिभास है। मनुष्य जैसा तो हो कोई तब उसका यह नाम है, न हो मनुष्य, पशु पक्षी हो तो उसका नाम तो नही कहते। तो नाम लेनेका व्यवहार भी तब बन पाता है जब चित्तमे सामान्य और विशेष दोनोका प्रतिभास बना हुआ है। मोक्षमार्गको भी बात देखो—मोक्षमार्ग तब ही बन पाता है जब सामान्य विशेष सस्वरूप पदार्थका बोध होता है। सामान्य धमके बोधके कारण प्रभुस्वरूपमे और साधक स्वरूपमे एक समता का ज्ञान होता है जिससे यह उत्साह जगता है कि मैं भी प्रभुकी तरह निर्मल हो सकता हू इस तरहका सदृश परिणाम बने तो उसका फल है। स्वरूपसे सदृशता है प्रभुमे और अपनेमे। इसीलिए यह विश्वास बना है कि जिस विधिसे प्रभु चले उस ही विधिसे हम चलेंगे तो हम भी इसी तरह सकटोसे मुक्त हो सकेंगे, ऐसा उत्साह जगाने और समस्त पर भावोसे भिन्न स्वचैतन्य तत्त्वका निर्णय करनेके लिए सामान्य विशेषताका बोध होने ही लगेगा मैं सिद्ध समान हूँ ऐसी अपने स्वरूपकी श्रद्धा करूँ ज्ञान करूँ और आचरण करूँ तो ससारकी पर्यायोसे हटकर निर्वाणकी अवस्थामे पहुच सकता हूँ। यह रुचि कैसे उत्पन्न हो? जब सामान्य विशेसात्मक पदार्थ हैं इस प्रकारका निर्णय हो। कोई ऐसा ही मान ले कि मैं तो सामान्य स्वरूप हूँ। नित्य सर्वव्यापी हु, अपरिणामी हूँ मुझे कुछ हैरानी ही नहीं है तो ऐसी दशा वाला पुरुष कैसे मुक्तिके मार्गमे गमन कर सकेगा? उन्हे सामान्यका बोध है जिससे वे प्रभुमें और अपने स्वरूपमे समानता निरख रहे है और उस स्वरूप साम्यके कारण जो हम भक्ति व्यवहार करते हैं उससे हम लाभ उठा लेते हैं। सामान्यके अवगमसे तो हम यह शिक्षा ले कि हम प्रभु वत् हैं ऐसा ही अपना निश्चय बना ले और विशेषके निर्णयसे यह उत्साह जगता है कि आखिर वर्तमान परिणमन विशेष ही तो है। यह विशेष परिणमन मिटकर बदलकर अविशिष्ट अभेद सामान्यरूप परिणमन हो सकता है तो हमे ऐसा ही यत्न करना चाहिये कि जिससे हमारी यह विशेष परिणति उत्तरोत्तर निर्णय होकर सदाके लिए शान्त सुखी बन जाय। यह बात तब हो सकती है, जब हमारा विशेष अपने ही सामान्यका आलम्बन करे। अपने ही सामान्य स्वरूपका आश्रय करनेसे यह परिणमन विशेष निर्मल हो जाया करता है। वह सामान्यस्वरूप वह चैतन्य मात्र स्वरूप, उसकी ओर साधुजनोकी दृष्टि बराबर जाती है। वह है निर्विकल्प अनादि अनन्त अहेतुक विकाररहित। ऐसे सामान्यस्वरूपका जो आलम्बन लेता है, जिस उपयोगमे यह सामान्यस्वरूप विराजा होगा

यह है कि जैसे गायमे गोत्व सामान्य है तो यह गोत्व क्या आकाशके सब प्रदेशोमे सर्व रूपसे भरा पडा है या जो गाय गाय है, जहां है उन-उन गायोमे ही वह सामान्य व्याप कर रहता है'। इन दो विकल्पोमेसे यदि कहोगे कि वह सर्वसर्वगत है, आकाशके समस्त प्रदेशोमे फैला है तो यह बात एकदम अयुक्त है क्योकि सामान्य यदि सर्वसर्वगत है तो व्यक्तियोके अन्तरालमे क्यो नही वह पाया जाता ? जैसे गोत्व सामान्य सर्व सर्वगत है तो जहां गाय नही है ऐसा जो अन्तर उसका स्थान है उसमे गोत्व क्यो नही पाया जा रहा ? जैसे कि गाय सर्वत्र नही पायी जाती है इसी तरह सामान्य भी निरन्तर नही दिख रहा है । गायमे ही गाय सामान्य विदित होता है । तो इसमे सर्वसर्वगत सामान्य है यह बात बनती नही है ।

व्यक्त्यन्तरालमे सामान्यके अनुपलम्भ होनेके कारणके सम्बन्धमे पृष्टव्य छह विकल्प—यदि कहो कि सामान्य है तो सर्वसर्वगत सारे विश्वमे व्यापक है । किन्तु उसकी जो व्यक्तिके अन्तरालमे अनुपलब्धि हो रही है वह किसी कारण से हो रही है तो उन कारणोकी बात बतलावो कि क्या सामान्यका जो व्यक्तिके अन्तरालमे अनुपलम्भ है वह इसलिए है कि अन्तराल सामान्य अव्यक्त है अथवा सामान्यका अनुपलम्भ इस कारण है कि सामान्य व्यवहित है । किसीके व्यवधान मे अडा हुआ है या सामान्य अन्तरालमे इस कारण अनुपलब्ध है कि वह दूरमें स्थित है अथवा अदृश्य होनेसे सामान्यका अनुपलम्भ है या सामान्यके आश्रयभूत व्यक्तिका और इन्द्रियका सम्बन्ध नही हो रहा है इस कारणसे सामान्यका अनुपलम्भ है क्या ? अथवा अपने आश्रयरूप व्यक्तिमे समवेत रूपका अभाव है, सम्बद्ध नही हो रहा है इस कारण सामान्यका अनुपलम्भ है । इस तरह ६ विकल्पोमे यह पूछा गया है कि व्यक्तियोके अन्तरालमे जहा व्यक्ति नही है वहाँ दृष्टान्तमे जैसे कि जहा गाय नही है ऐसी जगहमे सामान्य गोत्व सामान्य जो नही पाया जा रहा है वह क्या इन कारणोसे नही पाया जा रहा ।

अव्यक्त होनेसे व्यक्त्यन्तरालमे सामान्यके अनुपलम्भरूप विकल्पकी असंगतता — उक्त विकल्पोमेसे प्रथम विकल्पका ही विचार कर लीजिये । अन्तरालमे सामान्यका अनुपलम्भ अव्यक्त होनेसे है, यह बात यो नही बनती कि जब एक व्यक्ति में सामान्य प्रकट हो गया तो जब सब व्यक्तियोमे उसी सामान्यकी अभिन्नता है तो सर्वसर्वगत होनेपर सामान्य अन्तरालमे भी क्यो नही व्यक्त हो जाता ?- जैसे आकाश एक सर्वव्यापक है, अनन्त है और समस्त द्रव्योका परिणमन होता है काल के निमित्त से । जैसे जीव द्रव्यका परिणमन कालके निमित्तसे होता है, पुद्गलका भी होता है । इसी तरह धर्मादिक सभी द्रव्योका कालद्रव्यके समय परिणमनके निमित्तसे होता है । तो आकाशका भी परिणमन कालद्रव्यके निमित्तसे होता है । अब यह देखो कि कालद्रव्य तो है लोकाकाशमे । अलोकाकाशमे तो केवल आकाश ही आकाश है । न वहा

जीव है, न पुद्गल, न धर्म अधर्म, न काल। तो जैसे लोकाकाशमें रहने वाले काल-द्रव्यके निमित्तसे जो आकाशका परिणमन है सो समस्त आकाशका परिणमन है। क्योंकि आकाश सर्वव्यापक है एव अखण्ड है इसी कारण अलोकाकाशमें भी परिणमन है तो खण्ड सर्वव्यापक पदार्थका किसी भी जगह परिणमनका निमित्त पडा हो निमित्त चाहे एक देशमे है, पर उसका निमित्त पाकर जो अखण्ड व्यापक पदार्थमे परिणमन होगा वह सबमे होगा। तो इसी तरह जब सामान्य पदार्थ पूरा विश्वव्यापक मान लिया तो जहाँ व्यक्ति है वहाँ भी सामान्य है जहाँ व्यक्ति नही है वहाँ भी सामान्य है, तो जब एक व्यक्तिमें सामान्यकी उपलब्धि हो जानी चाहिये, क्योंकि सामान्य एक है। प्रकट हो तो सारा प्रकट होना चाहिए। यदि कहो कि अन्तरालमें सामान्य अव्यक्त है इस कारण अन्तरालमे अर्थात् जहाँ व्यक्ति नही है उन स्थानोमें सामान्यकी अनुपलब्धि है तब तो इसी कारणसे व्यक्तियोंकी भी अनुपलम्भ हो जावे।—हम यह कह सकते हैं कि व्यक्ति ठसाठस रूपसे भरे पडे है। जैसे गाय। गाय इस विश्वमे सब जगह ठसा-ठस भरी पडी हैं। एक बिन्दुमात्र भी जगह गाय व्यक्तियोसे शून्य नही है तो कोई पूछ बैठे कि ठसाठस गाय तो नही दीखती। कोई गाय कही बँधी है कोई कही बंधा है। तो वहापर भी यह प्रत्युत्तर हो सकता है कि भाई अव्यक्त होनेसे इस बीचमें इन व्यक्तियोका अनुपलम्भ है' जैसे सामान्यको कह डाला कि सामान्य विश्व व्यापक है, पर व्यक्तियोके अन्तरालमे जो उसका अन्तराल है वह अव्यक्त होनेसे है। यदि कहो कि व्यक्तित्वके बारेमे तो यह बात है कि व्यक्तियोके अन्तरालमें व्यक्तिके सद्भावको सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नहीं है इस कारण व्यक्तिया बीचमे नही है। गाय बीचमे नही है, क्योंकि बीचमे नहीं हैं। गाय बीचमे नही हैं, क्योंकि बीचमे गाय व्यक्तिका सद्भाव बताने वाला कोई प्रमाण नही है तो उत्तरमे भी यही बात कहने मे आयगी कि सामान्यका भी व्यक्तिके अन्तरालमें सद्भावको सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नही है इस कारण अन्तरालमें सामान्यका असत्त्व है। कोई कहे कि व्यक्ति अन्तरालमे भी सामान्यकी प्रत्यक्षसे उपलब्धि हो रही है तो यह बात बिल्कुल तथ्य-हीन कही जा रही है ? जहा कुछ व्यक्ति ही नहीं। जहा गाय ही नही वहा गोत्व आँखोसे दिख रहा, यह तो एक अपने हठके आवेशकी बात है। व्यक्तिसे बहिर्गत सामान्य कहाँ पाया जाता ? विशेषरहित सामान्य तो अवस्तु है। जहाँ व्यक्ति नही है वहा सामान्य पाये जानेकी बात कहना बिल्कुल असङ्गत है। जैसे कोई कहे कि हमने ता गधेका सीग देखा तो इसे कौन मान लेगा ? गधेका सीग अवस्तु है। इसी तरह कोई कहे कि गाय व्यक्तियोके अन्तरालमें जहाँ गाय नही है वहा भी गोत्व हमने देखा तो इसे कौन मान लेगा ?

सामान्यमे व्यक्ताव्यक्तस्वभाव भेद होनेसे अनित्यत्वका प्रसग—अब इस विषयमे और भी सुनिये। यह बतलावो कि जब ही प्रथम व्यक्तिका ग्रहण किया, जैसे एक प्रथम गाय का ग्रहण किया, उसे जाना देखा तो उस समयमें उस व्यक्ति

मे प्रकट हुये सामान्यका ग्रहण होनेपर चूंकि वह सामान्य अभेद रूप है इस कारण सामान्य सब जगह सब समय प्रकट हो जाना चाहिए क्योंकि सामान्य मानते हो तो व्यापक और नित्य तो एक व्यक्तिको जब हमने जाना, एक गायको देखा तो उसी समय सब जगह सब समय गाय सामान्यकी उपलब्धि हो बैठना चाहिए, क्योंकि जो नित्य एक सर्वव्यापक है वह अगर अभिव्यक्त होता है तो सर्वात्मरूपसे अभिव्यक्त हो सकेगा। व्यापकमे खड नही हुआ करता। अन्यथा इस सामान्यमे दो स्वभाव पड जायेगे एक स्वभाव और एक अव्यक्त स्वभाव व्यक्तियोमे उसके व्यक्त स्वभाव वाला सामान्य है और व्यक्तियोके अन्तरालमे अव्यक्त स्वभाव वाले सामान्य हैं। इस तरह तो अब सामान्य एक न रहा, सामान्य दो प्रकारके हो गए, व्यक्त स्वभाव सामान्य और अव्यक्तस्वभाव सामान्य। तो जब अनेकता आ गयी तो सामान्य अब सामान्य ही न रहा, असामान्य हो गया। क्योंकि उसमे भेद पड गया ना। तो इस तरह सामान्यको नित्य व्यापक माननेमे जब ये दोष आ रहे हैं तो यह समझना चाहिए कि व्यक्तियोके अन्तरालमे सामान्य नहीं है। जैसे कि व्यक्तियोके अन्तराल मे व्यक्ति नही है गाय जहा जहा खडी है वहा वहा है। अन्यत्र तो नही हैं, इसी तरह सामान्य भी अन्यत्र नही है। अब शकाकार कहता है कि व्यक्तियोके अन्तराल मे सामान्य है जैसे कि जहा गाय नही है उन जगहोमें भी गोत्व सामान्य है, क्योंकि एक साथ भिन्न देशमे अपने आधारमे रहनेकी वृत्ति रखते हुए सामान्य एक होता है, इस कारण सामान्य व्यक्तियोके अन्तरालमे भी है। जैसे कि एक लम्बा बास है। उसका एक पोर एक ओर दीखे, दूसरा पोर दूसरी ओर और बीचके सारे पोर ढके हुए हैं तो वहा यह निर्णय हो जाता है कि इन दोनो पोरोके बीचमे अन्तरालमे भी बाँस रह रहा है। और है वह एक इस कारणसे अन्तरालमे भी है। इस अनुमानसे व्यक्तिके अन्तरालमे सामान्यकी सिद्धि करते हैं। चूंकि सामान्य एक है और एक साथ भिन्न–भिन्न देशोमे सामान्यके आधारभूत गाय व्यक्तिमे वह पाया जा रहा इस से सिद्ध है कि अन्तरालमे भी गोत्व सामान्य है। उत्तरमें कहते है कि यह बात भी असङ्गत है, क्योंकि हेतु प्रतिवादीको मान्य नही है। प्रतिवादीको भी साधन मान्य हो तब तो उससे साध्यकी सिद्धि होती है। जब हेतु ही मान्य नही है तो उससे साध्य कैसे सिद्ध हो? कभी भी भिन्न देश वाले व्यक्तियोमे कोई एक सामान्य प्रत्यक्षसे प्रतीयमान होता हो सो बात नही है जैसे कि किसी लम्बे बासमे वह ओरें से छोर तक एक प्रतीत होता है इस तरहसे सामान्य पूरा सब जगह एक प्रतीत होवें ऐसी बात नहीं है और इस कारण वह बात नही कह सकते हो कि एक साथ भिन्न देशमे अपने आधारमे रहते हुए हुआ सामान्य व्यक्तिके अन्तरालमे भी हैं, क्योंकि एक है यह बात प्रत्यक्ष विरुद्ध है। इस कारण यह तो कह नही सकते कि व्यक्तियो के अन्तरालमे सामान्यका अनुपलम्भ इस कारणसे है कि वहा सामान्य अव्यक्त है। सो सामान्यको यदि सर्व विश्व व्यापक माना जाय तो यह आपत्ति सामने है कि फिर

व्यक्तियोके अन्तरालमें भी जहा व्यक्ति नही है ऐसे स्थानमें भी सामान्यकी उपलब्धि होनी चाहिए ।

व्यवहित व दूरस्थित होनेसे भी व्यक्त्यन्तरालमे सामान्यके अनुपलंम्भकी असिद्धि यदि दूसरा पक्ष लेते तो कि सामान्य है, तो सर्वसर्वगत, किन्तु व्यक्तिके अन्तरालमे जो उसका अनुपलम्भ है, वह व्यवहित होनेके कारण है यह बात भी ठीक नही है, क्योंकि सामान्य तो एक अभेदस्वभावरूप है । वह कहीं व्यवहित हो जाय, कही अव्यवहित हो जाय तब फिर उसमे एकस्वभाव कहां रहा ? व्यापी है सामान्य । शंकाकारके सिद्धान्तमे तो सामान्य दूरस्थित कैसे बन ? सामान्य बहुत दूर मे है इसलिए वह दीख नही रहा है । यह विकल्प मात्र मत हठका पोषक है । सामान्य तो सर्वव्यापक है अतएव व्यक्तिके अन्तरालमें भी सामान्यकी उपलब्धि होनी चाहिए सो हो नही रहा । इससे सिद्ध है कि सामान्य सर्वसर्वगत नहीं है । सामान्य सर्वव्यापक है तो व्यवहित भी नही हो सकता और दूरस्थित भी नही रह सकता । सर्वत्र है तो इस कारणसे व्यक्ति के अन्तरालमे सामान्यका अनुपलम्भ सिद्ध नही होता तो दूर स्थित विकल्पमे भी वही दोष बराबर सिद्ध है जो सर्वव्यापक सामान्य होता तो सब जगह पाया जाता ।

अदृश्य, स्वाश्रयेन्द्रियसम्बन्धविरह व आश्रयसमवेतरूपाभावसे भी व्यक्त्यन्तरालमे सामान्यके अनुपलम्भकी असिद्धि सामान्य नित्य सर्वव्यापक माना है शंकाकारने इसी कारण सामान्यका व्यक्तिके अन्तरालमें अनुपलम्भ नही कह सकते कि सामान्य अदृश्यात्मक है अथवा अपने आश्रयभूत व्यक्ति और इन्द्रियके सम्बन्धसे रहित है या आश्रयमे समवायरूपसे नही है ये भी तीन विकल्प अयुक्त हैं क्योंकि सामान्य तो अभेदरूप है, सर्वव्यापक है उसमे एक जगह अदृश्य हो गया, एक जगह दृश्य हो गया ये दो स्वभाव कहांसे आये ? और, यह कहना कि सामान्यके आश्रयभूत हैं व्यक्ति सो जिस व्यक्तिमें इन्द्रियका सम्बन्ध होता है और जिस व्यक्तिमें इन्द्रियका सम्बन्ध नही होता उस व्यक्तिमें उस जगह उस सामान्यकी उपलब्धि नही होती । अरे तो क्या सामान्यमें दो स्वभाव पड़े हैं ? अथवा सामान्यके आश्रयभूत व्यक्तियोंमें कोई ही व्यक्त है और कही उसके आश्रयभूत व्यक्ति भी अव्यक्त हैं ? ये सब विकल्प मिथ्या है । सामान्य तो पदार्थ नही है वहाँ सामान्य तो पदार्थका धर्म है । पदार्थ जहा है वहा मिलेगा । जहा पदार्थ नही है वहा सामान्य कहाँ मिल जायगा ? पदार्थमें जो सदृश परिणाम नजर आता बस वह ही सामान्यकी बुद्धिका कारण है । और पदार्थमे जो विसदृश धर्म नजर आता वह ही पदार्थ उस विशेषताको समझानेका कारण है । तो किसी भी प्रकार यह बात सिद्ध नहीं हो सकती कि सामान्य सर्वसर्वगत नही रहा ।

सामान्यको सर्वव्यक्तिसर्वगत माननेमे सामान्यकी नित्यता एकता व

व्यापकताकी असिद्धि—सामान्य अपनी व्यक्तियोमे सर्वगत है यह विकल्प भी युक्त नही बन सकता। यदि सामान्य निज निज व्यक्तियोमें ही व्यापक है, इससे व्यक्तियो के अन्तरालमे सामान्य नही है। तो भाई अब तो यह सामान्य प्रत्येक व्यक्तिमे परिसमाप्त हो गया। तब जितने व्यक्ति हैं उतने सामान्य हो गए। जिस व्यक्तिमे जो सदृश परिणाम है वह सामान्य उस व्यक्तिमे है और वह सामान्य उस ही व्यक्तिमे समाप्त हो गया। उससे बाहर अब है नही तो ये यही तो स्पष्ट भाव हुआ कि जितने व्यक्ति हैं उतने ही सामान्य हैं। जैसे कि व्यक्तिका स्वरूप व्यक्तिमे ही समाप्त हो जाता है और अपनी ही व्यक्तिमे पूरे उस रूपसे रहता है। तो वह व्यक्ति अनेक हुआ ना। यो ही सामान्य भी अनेक हो गया। उस सामान्यमे न तो सर्वात्मक रूपमे रहनेकी वृत्ति बन सकती और न एकदेशरूपसे रहनेकी वृत्ति बन सकती जो सामान्य प्रतिव्यक्तिमे सर्वगत है सो सामान्य वह अब सर्वात्मकरूपसे तो नही ठहर सकता। प्रतिव्यक्ति सर्वात्मक रूपसे रहता है सो ठीक है। उसे अनेक मानियेगा। और एक ही सामान्य एक देशरूपसे रहा अर्थात् यदि यह कहो कि सामान्य तो है एक नित्य सर्वव्यापक किन्तु व्यक्ति व्यक्तिमे एक-एक देशरूपसे सामान्य रहा करता है। तो इस का अर्थ यह हुआ कि सामान्य खण्ड खण्ड सहित हो गया। एक सामान्य भिन्न-भिन्न व्यक्तियोमे अश अश रूपसे रह गया तो इस तरह सामान्यको सर्वसर्वगत मान ही नही सकते और स्वव्यक्ति सर्वगत मानते हो तो उसका भाव यह समझिये कि पदार्थ ही व्यक्तिरूप है। उस पदार्थमे जो सदृश परिणाम लक्षण धर्म हैं उनसे तो सामान्य की बुद्धि बनती है और जो विसदृश परिणाम लक्षण धर्म हैं उससे विशेषपनेकी बुद्धि बनती है। सामान्य नामक स्वतन्त्र सद्भूत कोई पदार्थ हो और फिर उसमे व्यवस्था बनाये कि यह सामान्य सर्वसर्वगत है। वह सामान्य स्वव्यक्ति सर्वगत है, ऐसी बात नही है।

सामान्यविशेषात्मक पदार्थ माननेमे ही व्यवस्था—जो बात स्पष्ट है, देखने जानने सबको सुगम विदित हो रहा है कोई पदार्थ और उसमें यह सदृश धर्म है जिससे उस जाति के अनेक पदार्थोमे यह सही यह है ऐसी सामान्यकी बुद्धि होती है और उस ही एक व्यक्तिरूप पदार्थमे जो विसदृश धर्म पाये जाते है उनको देखकर यह बुद्धि होती है कि यह पदार्थ अन्य पदार्थोमे भिन्न है। तो सामान्य और विशेष तत्त्व तो यह पदार्थके प्रात्मामे है। कोई पृथक् तरह सामान्य नामक पदार्थ बन जाय सो बात नही है। पदार्थ तो पदार्थ ही है और वह वस्तुत: अवक्तव्य है। उस अनिर्वचनीय पदार्थ मे तीर्थ प्रवृत्तिके निमित्त व्यवहारसे भेद करके समझाया जाता है कि इस पदार्थमे सदृश परिणमन भी पाया जाता है और विसदृश परिणमन भी पाया जाता है जिससे सिद्ध है कि पदार्थ सामान्य विशेषात्मक हैं। यह तो है तिर्यक सामान्यकी दृष्टि और ऊर्ध्वता सामान्यका भी जब विचार करते हैं तो उस एक ही पदार्थमे जितनी पर्यायें बनती है उन सब पर्यायोमे स्वरूपका सादृश्य पाया जाता है।

कहीं ऐसा नहीं हो बैठता कि जीव पुद्गल जीवकी भांतिसे परिणमन कर बैठे। क्यों नहीं होता यों कि प्रतिवस्तुमे ऊर्द्धता सामान्य है। यो सामान्य विशेषात्मक पदार्थ माननेसे ही सर्व व्यवस्था बन सकती है।

सामान्यको स्वव्यक्ति सर्वगत माननेपर व्यक्त्यन्तरमे सामान्यकी वृत्ति की वर्तनाके कारणके विषयमे चार विकल्प — सामान्य यदि एक व्यक्तिमे सर्वात्मक रूपसे रह रहा है तब फिर अन्य जगह सामान्यकी वृत्ति कैसे हो सकती है ? यदि सामान्य स्वव्यक्ति सर्वगत है तो उस व्यक्तिमे समस्त रूपसे सामान्य रहना है या एक देश रूपसे रहता है ? अगर एक व्यक्तिमे सर्वरूपसे सामान्य रह रहा है उसका फिर सामान्य तो उस एक व्यक्तिमे रह गया, फिर तो अन्य जगह सामान्य न रहना चाहिये एक व्यक्तिमें पूरा सामान्य रह गया, अब दूसरे व्यक्तिमे या अन्य जगह कैसे सामान्य रहेगा ? क्या अन्य व्यक्तियोमे वह सामान्य गमन करता है इसलिए अन्य जगह रह जायगा या दूसरे व्यक्ति पिण्डके साथ ही सामान्य उत्पन्न हो जाता है कि जैसे दूसरा व्यक्ति है उसीके साथ सामान्य भी उत्पन्न हो गया अथवा उस जगह भी सामान्यका सद्भाव है सो व्यक्तिमे वहाँ भी रह गया या कुछ आंशिक रूपसे सामान्य वहाँ रहता है ? इस तरह यहाँ ४ विकल्पोमे पूछा गया है कि एक व्यक्तिमें सर्वरूपसे सामान्य रह जाता है तो अन्य व्यक्तियोमें पहुचता कैसे है ?

सामान्यका गमन मानकर व्यक्त्यन्तरमे सामान्यकी वृत्ति सिद्ध करने का असफल प्रयत्न - उनमेसे यदि पूर्व विकल्पकी बात मानोगे अर्थात् सामान्य गमन करता है इससे अन्य व्यक्तिमे अन्य पिण्डमें सामान्यका रहना बन जाता है तो यह बात यो अयुक्त है कि सामान्यको निष्क्रिय माना है। सामान्यमे क्रिया ही नहीं होती तो वह जायगा कैसे ? अथवा मान लो गया तो पूर्व व्यक्तिका त्याग करके अन्य व्यक्तिमे गया या पूर्व व्यक्तिको न त्यागकर अन्य व्यक्तिमे गया ? जैसे एक गाय यहाँ है और एक गाय दूसरे गाँवमे है तो सामान्य जब यहाँके गायमें पूरे रूपसे रह गया गोत्व सामान्य तो दूसरे गाँवकी गायमें यह गोत्व सामान्य कैसे पहुँच गया ? क्या यहाँकी गायको छोडकर वह सामान्य दूसरे गाँवकी गायमे गया या यहाँकी गाय को न छोडकर दूसरे गाँवकी गायमे सामान्य गया ? यदि कहो कि यहाँ की गाय को छोडकर दूसरी गायमे गोत्व सामान्य गया तो उसका अर्थ यह हुआ कि यहाँ की गाय तो छोड दिया सामान्यने तब यह अगो बन गया यह गाय न रही, गायको छोडकर सामान्य जब गया तो यहाँ तो गोत्व सामान्य न रहा, यह दोष आता है। यदि कहो कि इस पूर्व पिण्डको न छोडकर दूसरी जगह गया तो भला बतलावो कि पूर्वपिण्डको तो छोडा नहीं और सामान्य है अमश तब फिर उसका कैसे गमन सम्भव है ? जैसे रूपादिक जो तत्त्व हैं वे गमन नहीं करते। इसी प्रकार गोत्व आदिक जो सामान्य हैं वे भी गमन नहीं करते, क्योंकि जिन्होंने पूर्व आधार को नहीं छोडा, ऐसे जो रूपादिक

ये अन्य लोग भी इस तरहका प्रयोग करते हैं कि जो जहांपर उत्पन्न नही हुए हैं और न पहिलेसे अवस्थित हैं और न किसी देशसे आते हैं वे वहा असत् ही कहलाते हैं। अब देखिये ! सामान्यके सम्बन्धमे न तो यह सिद्ध हो सकता कि सामान्य व्यक्तिके स्थानमें उत्पन्न हो जाता है और न यह सिद्ध हो सकता कि व्यक्तिमे पहिले भी वहाँ सामान्य है और न यह सिद्ध हो सका कि किसी व्यक्तिके स्थानसे सामान्य चलकर अन्य व्यक्तिमे आता है। तब सामान्य असत् ही ठहरा। जैसे गधेके शिरपर सींग। न तो सींग उत्पन्न होता है न वहाँ सीग पहिलेसे अवस्थित है और न किसी अन्य देशसे वहाँ पर सीग आया हुआ है तब फिर गधेके सीग असत् ही कहलाये ना ? इसी प्रकार सामान्य भी न उस देशमें था, न उस देशमे उत्पन्न होता है और न कहीसे आता है तब सामान्यकी क्या सत्ता रही ?

सामान्यको व्यक्तिस्वभाव माननेकी मान्यताकी मीमांसा—जो पुरुष सामान्यको व्यक्ति स्वभाव मानते है अर्थात् व्यक्ति ही है स्वभाव जिसका ऐसा स्वभाव जिसका ऐसा सामान्य है क्योकि व्यक्ति और स्वभावमें भेद नही है। सो व्यक्ति स्वभाव ही सामान्य माना करते हैं और, कोई पूछे कि उस व्यक्तिमे सामान्यका तादात्म्य कैसे हो गया ? तो उसका उत्तर देते हैं कि स्वभाव ही व्यक्तिमे सामान्यका तादात्म्य है। तो इससे यह सिद्ध हुआ ना कि सामान्य कही कुछ अलग नहीं है। और, जो ऐसा मान रहे हैं कि सामान्य व्यक्तिस्वभाव है तो उनके मतमे भी व्यक्तिकी तरह सामान्यकी असाधारणरूपता हो जायगी व्यक्ति है सो ही सामान्य है। विशेषमे और सामान्यमें अब अन्तर नही रहा, क्योकि व्यक्तिस्वभाव ही सामान्य मान लिया गया। तब व्यक्तिका तो उत्पाद और विनाश होता है, तो सामान्यका भी उत्पाद और विनाश होगा, क्योकि जब सामान्य व्यक्ति स्वभाव माना गया है तो जब व्यक्तिका उत्पाद हुआ तो सामान्यका भी उत्पाद हुआ जब व्यक्तिका विनाश हुआ तो सामान्यका भी विनाश हुआ। फिर सामान्यरूपता ही नही रही। यदि कहो कि सामान्यमें हम असाधारण रूपता नहीं मानते जिससे कि उत्पाद और विनाशका योग जुड जाय। उत्तरमें कहते हैं कि तब तो विरुद्ध धर्म वाला हो गया ना सामान्य। अब व्यक्तिस्वभाव तो न रहा। व्यक्ति तो है असाधारणरूप, उत्पत्ति विनाशका सम्बन्ध रखने वाला और सामान्यको कह रहे हो असाधारणरूप नही है, वह उत्पत्ति और विनाशका सम्बन्ध रखता नही है तब व्यक्तिका धर्म और कुछ हुआ और सामान्यका धर्म और कुछ हुआ तो लो अब व्यक्तियोसे सामान्यका भेद हो गया ना ? फिर तादात्म्य कहा रहा ? फिर सामान्य व्यक्ति स्वभाव कहा रह सका।

सदृश परिणामलक्षण धर्मसे सामान्य तत्त्वकी व्यवस्था—अब और देखिये जो यह कहा गया है कि सामान्यके बिना अनुगताकार बुद्धियोकी उत्पत्ति

नहीं होती है इस कारणसे सामान्य विशेषमें अन्तर है। सामान्य नित्य है, अचल है। सामान्यके बिना अनुगताकार बुद्धि की उत्पत्ति कैसे हो सकेगी ? अगर सामान्यके बिना अनुगताकार बुद्धिकी उत्पत्ति हो जाय तो वह मिथ्या हो जायगा। यह सब कथन निरकृत हो जाता है क्योंकि नित्य सर्वगत सामान्यका जो आश्रय है, व्यक्ति है उससे बतलाओ सामान्य सर्वथा भिन्न है या अभिन्न ? सामान्य जिस व्यक्तिमें रह रहा है, उससे सामान्य क्या भिन्न है ? यदि भिन्न है तो फिर सामान्य हो क्या रहा ? सामान्य सवत्र जुदा है तो फिर यह कहना गलत होगा कि सामान्य अपने आश्रयमे रहा करता है। यदि कहो कि व्यक्तिसे वह नित्य सर्वगत सामान्य अभिन्न है तो भी उसमे अनेक दोष आते हैं। तब तो व्यक्ति और सामान्य एक बन गए। इस कारण सामान्य नामक कोई पदार्थ है अलग। और विशेषस व्यक्तिसे भिन्न किसी प्रकार रह रहा है यह बात असिद्ध हो जाती है। अरे अनुगत ज्ञान जो बना रहता है, पदार्थोंको निरखकर ज्ञाताके जो अनुगताकार बोध होता रहता है यह ज्ञान सदृश परिणामके कारण हैं। अथवा जो सदृश परिणाम हो रहे है उनको निरखकर जाना जाता है कि यह इसके समान है तो इस प्रकार जो अनुगत ज्ञान है उसका कारण सदृश परिणाम है, यह निरखकर हम समानताका बोध किया करते हैं। और वह सामान्य, अनुगत प्रत्यय, सदृश परिणाम अनित्य है अव्यापी है अनेक व्यक्तात्मक है अनेक रूप है सो ऐसा यह प्रत्यक्षसे ही नजर आरहा है। जैसे आखोसे जब हम देखते हैं पदार्थोंको तो सारे रूप स्पष्ट नजर आते हैं ये पीले नीले आदिक। इसी प्रकार प्रत्यक्षसे ही यह नजर आरहा है कि इस व्यक्तिमे देखो ! यह है सदृश परिणमन जिससे कि उस जातिके सब व्यक्तियोंमे प्रति यह वही है, वही है इस प्रकारका बोध फलता रहता है। इससे यह बात कहना गलत है कि अनेक पिन्ड भेदमें जो गौ गौ एकाकार रूपसे बुद्धि होती है वह एक गोत्व सामान्यके कारण होती है। तो सामान्य है एक ? जैसे गायमे गाय गाय यह बताया है तो गाय सामान्य है उसके कारण नाना गायोमें गौ है गौ है, इस प्रकारकी बुद्धि होती है, यह बात अयुक्त हो जाती है।

सामान्यके सर्वगतत्वकी असिद्धि—सामान्य व्यक्तिगत है न कि व्यक्तिसे अलग और न सर्व व्यापक कोई एक नित्य है व्यक्तिमे ही सदृश परिणमन पाये जाते हैं, व्यक्तिमे ही विसदृश परिणमन पाये जाते हैं। अथवा व्यक्ति तो जो है सो है, वह भावान्तर सत् है, उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक है। अब उसमे सदृश धर्म है विसदृश धर्म है यह तो हम आप जान करके बुद्धिसे स्थापित करते हैं। पदार्थकी ओरसे तो जो कुछ है, जैसा है सत्व वैसा ही है। हा जो कभी शकाकारके अनुयायियोके द्वारा यह कहा जाता है कि जैसे सामान्यका बोध किसी व्यक्तिसे हुआ करता है। जैसे— "गाय" ऐसा कहना केवल चितकबरी गायमे ही नही, खण्डी मुण्डी, लाल, पीली आदिक अनेक गायोको आलम्बन करके गो बुद्धि होनेसे और खण्डी मुण्डी आदिकमे गो बुद्धि होनेसे और खण्डी मुण्डी आदिक गाय न हो तो भी शावलेयमे गो बुद्धि

होनेसे यह सिद्ध होता है कि सामान्य सर्वव्यापक है। जैसे कि घड़े में पार्थिव बुद्धि होती है। पार्थिव कहते हैं पृथ्वीसे उत्पन्न होनेको। सफेद पीली आदिक विशेषके बिना जैसे घडेमें यह मिट्टी है ऐसा सामान्यरूपसे मिट्टीपनेकी बुद्धि होती है इसी तरह शावलेय खण्डी मुण्डी आदिक गायोंमे यह शावलेय हैं, यह खण्डी मुण्डी है, ऐसा भेद किए बिना ही उनमे गौ ऐसी एक बुद्धि होती है। उत्तर यह है कि ठीक कह रहे हो यह जितने व्यक्ति हैं उन व्यक्तियोमे जब साधारणधर्म देखा जा रहा है तो उस दृष्टिमे व्यक्तिका विशेष धर्म कैसे नजर आ गया? ठीक ही है - दृष्टिमें व्यक्तित्वको छोड़ करके एक सामान्यतया जातिकी बुद्धि होती है सो यह तो सदृश प्रत्यय ज्ञानका कमाल है न कि कोई सामान्य नामका पदार्थ अलगसे सिद्ध होता है। क्योंकि व्यक्तित्वको छोडकर सदृश परिणामका आलम्बन होता है उस बुद्धिमे, अर्थात् विशेषको छोडकर विसदृश धर्मको न लेकर सदृश परिणामको लेकर ही एक यह बुद्धि जगी है सो ठीक ही है कि सामान्य प्रतिव्यक्तिगत है और उसमें, जो सदृश परिणाम पाया जाता है उसके आलम्बनसे उसकी सिद्धि होती है।

सर्वगत सामान्यकी सिद्धिमे कथित एकाकारबुद्धिग्राह्यत्व हेतुकी असिद्धता—देखिये सामान्यका जो सर्वगतपना सिद्ध किया है वह भी एक कथन मात्र है। शकाकारने सामान्यका किस तरह सर्वगतपना सिद्ध किया है? वहां कथन है कि जो यह गौ बुद्धि हो रही है। अनेक गाय व्यक्तियोंमे गौ गौ प्रत्याकार जो एक प्रत्यय हो रहा है यह बुद्धि प्रत्येक समवेत अर्थमे रहने वाला है। अर्थात् प्रत्येक पदार्थ में जो गोत्व लक्षण सामान्य रह रहा है उसे बुद्धि विषय करती है—गाय गाय, इस प्रकार जातिरूपसे जो बोध हो रहा है वह बोध प्रत्येक गायमें गोत्व सामान्यमे हो रहा है। फिर वह बोध हो रहा है फिर वह बुद्धि उसको विषय करती हुई प्रत्येक पिण्डमे समस्त रूप पदार्थके आकार होनेसे अर्थात् वह गोत्व सामान्य पूर्ण समस्त व्यक्ति रूप है, सो जिस प्रत्येक व्यक्तिके विषयमे जो बुद्धि चलती है विशेषकी, इसी तरह प्रत्येक व्यक्तियोंमें सामान्यकी भी बुद्धि चलती है, इस सामान्यमे एकता है। सामान्य सर्वत्र एक ही प्रसिद्ध है। वह किस न्याय? यद्यपि सामान्य प्रत्येक में सर्वात्मक रूपसे व्याप्त हो जाता है तो भी वह एक है, क्योंकि एकाकार बुद्धि द्वारा ग्राह्य है। शङ्काकारका यह कथन है यहाँ। सामान्य यद्यपि प्रत्येक व्यक्तिमे समाप्त होकर व्याप रहा है तो भी यह शङ्का न करना चाहिए कि फिर तो जितने व्यक्ति हैं उतने सामान्य हो जायेंगे, क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिमे सामान्य पूरे रूपसे भर गया है वह बाहर नहीं है सामान्य, क्योंकि सामान्यका आश्रय व्यक्तिसे दूर नही होता, फिर भी सामान्य एक ही है, क्योंकि उस सामान्यके विषयमे जो ज्ञान होता है वह ज्ञान एकाकार बुद्धिके द्वारा ग्राह्य है। जैसे कि नञमे निषेधमें कहे गए वाक्यमे ब्राह्मण आदिककी जो निवृत्ति होती है वह एकाकार बुद्धिसे ग्राह्य हैं। निषेध एक ही कहलाया। जैसे कहना—अब्राह्मण ब्राह्मण नहीं तो ब्राह्मण नहीं यह बात अन्य सब व्यक्तियोंमे एक

आकाररूपसे पाया जा रहा है। यह भी ब्राह्मण नही, यह भी ब्राह्मण नही। तो जैसे उनमे एकता पायी जाती है इसी प्रकार सामान्यमे भी एकपना पाया जाता है। यह एकपनेकी बुद्धि मिथ्या नही है, क्योंकि उसके कारणमें दोष नही है, न कोई बाधक ज्ञान है कि इसके बाद इसे जाना। यदि इन्द्रियमे दोष नही है तो वह ज्ञान सच्चा ही होगा। ऐसा कहना भी एक कथनमात्र है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिमें समस्तरूपसे पदार्थाकार रहे उसका सदृश परिणामके साथ अविनाभाव नही है, क्योकि यह साधन साध्यसे विपरीत पदार्थमे भी पहुँचता है अतएव विरोध है। हेतु दे करके सिद्ध तो यह करना चाहते हो कि सामान्य सर्वगत है, पर जो हेतु देना चाहिए कि प्रत्येकमे सर्वास्वरूपसे व्याप्त है। यदि वह एक है तो कैसे वह सर्वगत हो सकता है ? जो प्रत्येक व्यक्तिमे परिसमाप्त हो रहा है वह तो जितने व्यक्ति हैं उतने रूप होगा, एक कैसे हो सकता है ? और, फिर नित्य एकरूप प्रत्येक व्यक्तिमे समाप्त होने वाले सामान्यको सिद्ध करनेमे जो दृष्टान्त दिया है उसमे साध्य न पाया जानेका दृष्टान्त दिया है— ब्राह्मण आदिक निवर्तनका 'न अयं ब्राह्मणः'। ब्राह्मणका निषेध किया तो उसमे सर्वगतता कहाँ है। यों यह हेतु अपने अभीष्ट साध्यको सिद्ध करनेमे असमर्थ है।

सामान्यको सर्वरूपसे प्रतिव्यक्तिगत माननेपर अनेक दोषप्रसक्त होनेसे सामान्यके वस्तुधर्मत्वकी सिद्धि— इन सब प्रत्येक व्यक्तिमे परिसमाप्त होने वाले उस सामान्यके एकत्वका अनुमान बनाओगे तो सर्वादिक रूपसे सामान्य बहुत व्यक्तियोमे परिसमाप्त हुआ तो सारे व्यक्ति भी परस्परमे एकरूप हो जायेंगे, क्योकि एक व्यक्तिमे रहनेके स्वभाव वाले सामान्य पदार्थके द्वारा सभी पदार्थ छुवे गए हैं, अभिन्न हो रहे हैं, तादात्म्य बन गए हैं तब सारे व्यक्ति भिन्न-भिन्न नही रहे। सब कुछ एक हो गया। प्रयोजन यह है कि या तो सारे व्यक्ति एक बन जायेंगे या सामान्य अनेक हो जायेंगे। व्यक्ति रहे अनेक और उन सबमे रहने वाले सामान्य रहे एक, यह बात सम्भव नही हो सकती इस तरह सामान्य कोई सत्तात्मक अलग पदार्थ नही है। जो भी पदार्थ है वे सामान्य विशेषात्मक होता है। उसमे जो सदृश धर्म है वह तो सामान्यको सूचित करता है और जो विसदृश धर्म है वह विशेषको सूचित करता है। तो सामान्य विशेषात्मकता पदार्थका ही धर्म है, न कि सामान्य कुछ अलग पदार्थ है—और विशेष कुछ अलग पदार्थ है। ऐसा सामान्य विशेषात्मक पदार्थ प्रमाणका विषय हुआ करता है। न केवल सामान्य प्रमाणका विषय है न केवल विशेष प्रमाणका विषय है। इस तरह इस प्रसगमे जो यह जिज्ञासा की कि प्रमाणका विषय क्या है, सो सिद्ध किया गया कि सामान्य विशेषात्मक पदार्थ प्रमाणका विषय है।

सर्वसर्वगत अथवा स्वव्यक्ति सर्वगत नित्य एक सामान्यकी सिद्धिकी अशक्यता— नित्य एक सर्वव्यापी सामान्य तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है और स्वव्यक्ति सर्व-

गत नित्य एक सामान्य युक्तिसे प्रसिद्ध है तो अपने व्यक्तिमे सर्वरूपसे रहकर सामान्य एक और नित्य कहलाये तो उसकी उपलब्धि व्यक्तिसे बाहर नही होगी और जब कि व्यक्तिमें ही वह सामान्य परिसमाप्त हो गया और सामान्य है एक वही सामान्य, अन्य व्यक्तियोमे एक तादात्म्य रूपसे रह रहा है तो इसका अर्थ यह होगा कि या तो सामान्य अनेक माने जाने चाहिएँ या फिर व्यक्ति ही सब एक मात्र रह जायगा। जैसे कि दूर-रखे हुए अनेक पात्र हैं उनमे आमबेल आदिक फल लगे हुए हैं तो जैसे वे फल अनेक हैं इसी तरहसे अनेक वस्तुओमे सामान्य परिसमाप्त रूपसे रह रहा है तो सामान्य अनेक हो गए। जैसे कि अनेक वर्तनोमे प्रत्येकमे एक एक फल पूरा पडा हुआ है तो फल अनेक हो गए इसी तरह प्रत्येक व्यक्तिमे पूरा पूरा सामान्य पडा हुआ है तो सामान्य अनेक हो आयेंगे इस तरह न तो सर्वगत सामान्यकी सिद्धि हो सकती है और न स्वव्यक्ति सर्वगत सामान्यकी सिद्धि होती है। शंकाकार का यह कहना भी अयुक्त है कि नित्य एक सर्वगत सामान्यके माननेमे कोई बाधक ज्ञान नहीं है। अब तक इतने बाधकज्ञान तो बताये गए। किसी भी प्रकार नित्य एक सर्वव्यापी स्वतत्र सद्भूत सामान्य पदार्थकी सिद्धि नहीं होती क्योंकि ऐसी जाति जो कि प्रत्येक व्यक्तिमे पूर्णतया समवेत हो, परिसमाप्त हो जाय और एक कहलाये, असिद्ध है। प्रत्येक व्यक्तियोमे पूर्ण पूर्ण रूपसे रहे और उसे फिर एक कहा जाय, यह कैसे सिद्ध हो सकता है ? जैसे कि वे नाना फलका एक वर्तनमे पडे हुए हैं और फिर भी उन फलोको एक कह दिया जाय इसे कोई मान सकता है क्या ? यह कभी नही माना जा सकता। सामान्य न सर्वगत सामान्य रहा न प्रत्येक व्यक्ति सर्वगत सामान्य रहा। सामान्य नामक पदार्थ स्वतन्त्र सद्भूत कुछ नही है। पदार्थ ही सब हैं और उनमे परखा जाता है कि इनमे यह सदृश धर्म है और यह विसदृश धर्मके कारण तो सामान्य तत्त्वकी सिद्धि होती है और विसदृश धर्मके कारण विशेष तत्त्वकी सिद्धि होती है।

नित्य एक व्यापक सामान्यकी सिद्धिमे एकबुद्धि ग्राह्यत्व हेतुकी असिद्धता—शकाकारका यह हेतु भी असिद्ध है। एक बुद्धि ग्राह्यत्वात् अर्थात् सामान्य सबमें एक है क्योंकि एक सामान्यकी अनेक व्यक्तियोमे वही वही है यों एक बुद्धि के द्वारा ग्राह्य है। जैसे अनेक गायोंमे गो गो गाय है, गाय है, इस तरहकी एक बुद्धि बनती है इससे सिद्ध है कि प्रतिगायमे गोत्व सामान्य एक है इसका हेतु दिया वह असिद्ध है। असिद्ध दोष दो प्रकारके होते हैं एक आश्रयासिद्ध और दूसरा स्वरूप सिद्ध। जिस हेतुका कोई आधार हो नही, आश्रय ही नहीं उसको कहते हैं आश्रयासिद्ध, और, जिस हेतुका स्वरूप सिद्ध नहीं हो रहा है उसे कहते हैं स्वरूपासिद्ध। तो एकबुद्धि ग्राह्य नामका हेतु आश्रयासिद्ध तो यो है कि जिस जातिमे आप एक बुद्धि ग्राह्यता सिद्ध कर रहे हैं उस जातिका ही अभाव है। पहिले आश्रयभूत जाति को तो सिद्ध कर लें, वह सिद्ध है नहीं इस कारण एक बुद्धि ग्राह्यत्व हेतु आश्रया-

सिद्ध है स्वरूपासिद्ध यो है कि यह इसके समान है। इस प्रकारका जो निर्बाध बोध हो रहा है उस बोधसे ही सामान्य जाना जा रहा है, जो कि अनेक रूप है अर्थात् जितने व्यक्ति हैं उन सब व्यक्तियोमे समानताका बोध हो रहा है इस कारणसे एक बुद्धि द्वारा ग्राह्य है अत सामान्य नित्यव्यापी एक है, यह बात असिद्ध है। वह तो सदृश धर्मके बोधके द्वारा अधिगम्य है। सामान्य नामक पदार्थ अलग नही है जिसको किसी साधनसे सिद्ध किया जाय और इस अनुमानमे जो दृष्टान्त दिया गया है उस दृष्टान्तमे साध्य ही मौजूद नही है। दृष्टान्त यह दिया था कि जैसे ब्राह्मणत्वकी निवृत्ति, ब्राह्मणत्वकी निवृत्ति एकरूप है क्योकि एक बुद्धि द्वारा ग्राह्य है। जो भी ब्राह्मण नही है उसे एक बुद्धिमे कहते है ना कि यह ब्राह्मण नही, यह ब्राह्मण नहीं तो देखो अनेक अब्राह्मणोंमे एकाकारकी बुद्धिया चल रही हैं। यह ब्राह्मण नही है ऐसा जो दृष्टान्त दिया था इस दृष्टान्तमे साध्य एकत्व नही है क्योकि ब्राह्मण आदिक निवृत्ति परमार्थसे एकरूप नहीं है। यह क्षत्रिय ब्राह्मण नही है। यह वैश्य ब्राह्मण नही है आदिक ढगसे अभाव दीखा तो अब्राह्मणत्व अनेक रूप हो गए वे अब्राह्मणत्व अभाव इस तरहके ज्ञानसे सयुक्त प्रागभाव आदिककी तरह अनेके दीखो सो इन अभावोकी तरह ब्राह्मणनिवर्तन भी अभेदरूप हुए। तात्पर्य यह है कि जो यह बुद्धि बन रही थी यह ब्राह्मण नही है, यह ब्राह्मण नही है, यह कहनेमे विभिन्न-विभिन्न ज्ञान हो रहे हैं। यह क्षत्रिय ब्राह्मण नही है, यह वैश्य ब्राह्मण नही है तो उस अभावमे तो नाना ज्ञान चल रहे हैं। एकत्वका ज्ञान ही कहा रहा ? जैसे कि प्रागभाव प्रध्वसाभाव अन्योन्याभाव, अत्यताभाव, ये कितने हो गए। तो अभावो मे एकत्व बुद्धि नही हुआ करती। इस कारण इस अनुमान प्रयोगमे जो हेतु दिया है वह यो सही न रहा कि उसका दृष्टान्त कोई मिला नही और जो दिया गया है दृष्टान्त ब्राह्मण निवृत्तिका वह साध्य विकल है। वहाँ भी अनेकत्वकी बुद्धि हो रही है। तो सामान्य नित्य सर्वगत एक कोई न रहा।

पिण्डादिव्यतिरिक्तनिमित्तमात्रसे अनुवृत्ति प्रत्ययकी सिद्धिपर विचार— एकव्यापी सामान्यके निराकरणके साथ इसका भी निराकरण हो जाता। जैसे कि अन्य कुछ दार्शनिक कहते हैं कि अनेक गायोमे यह गाय है, यह गाय है, ऐसा जो अनुवृत्तिका ज्ञान चल रहा है वह गाय पिण्डसे भिन्न किसी निमित्तका ज्ञान बन रहा है क्योकि वह ज्ञान भेदक है, भेद करने वाला है। जैसे नीलादिकका ज्ञान यह भेद करने वाला है। यह नील है, यह पीत है तो वह पिंडादिकसे व्यतिरिक्त अन्य निमित्तसे हुआ करता है। इस प्रकार अनेक गायोमे जो अनुवृत्तिका प्रत्यय हो रहा है—यह भी गाय, यह भी गाय आदिक रूपसे, वह व्यक्तियोसे भिन्न कोई अन्य निमित्तसे हो रहा है। इस प्रकार माननेपर स्पष्ट निष्कर्ष यह निकला कि गायोसे भिन्न है गोत्व। गौ खण्ड मुण्ड आदिक गायें खडी हैं उन गायोसे गोत्व न्यारा है। वे गाये तो द्रव्य हैं, किन्तु गोत्व सामान्य पदार्थ है क्योकि भिन्न ज्ञानका विषय होनेसे। उन व्यक्तिरूप

गायको गोत्व नही कहा जाता। सब गायोमे रहने वाले एकको गोत्व कहा जाता है। तो जब भिन्न ज्ञानके ये विषय होगए, गायव्यक्ति और गोसामान्य तो यह गो व्यक्तिसे भिन्न ही कहलाया गोत्वसामान्य। और, फिर यह भी तो व्यपदेश होता है कि गायो का गोत्व है। इससे भी सिद्ध है कि ये दो पदार्थ हैं। जैसे पदार्थका रूप है तो पदार्थ अन्य हुआ, रूप अन्य हुआ, भिन्न-भिन्न बुद्धिमे आरहा है। तो यह जो व्यपदेश हुआ है वह वस्तुभूत पदार्थसे ही तो हुआ है। वह कथन भी असङ्गत है। उत्तरमे कह रहे हैं कि उन समस्त गायोमे जो अनुवृत्तिका ज्ञान हो रहा है यह भी गाय है, यह भी गाय है, इस तरह जो अनुवृत्तिप्रत्यय बन रहा है उसका यदि पिण्डादिकसे व्यतिरिक्त निमित्तमात्रको साधन बनाते हो तब तो नही बात बनती है क्योंकि वह भी समस्त व्यक्तियोमे अनुवृत्तिका प्रत्यय चल रहा है वह सदृश परिणामके कारणसे माना ही गया है और वह सदृश परिणाम कथंचित् गोव्यक्तियोका निमित्त है क्योंकि सज्ञा नाम और तद्गत प्रत्यय ये सब न्यारे-न्यारे हैं हाँ, नित्य एक अनुगामी सामान्यके कारण यह अनुगत प्रत्यय हो रहा है ऐसा माना जाय तो असिद्ध है और इसकी सिद्धि मे कोई दृष्टान्त भी न मिलेगा। जो भी दृष्टान्त देंगे वह साध्य विकल होगा, क्योंकि साध्य तुम कहा बना रहे हो पिण्डसे व्यतिरिक्त कोई नित्य एक अनुगत सामान्य है उसके निमित्तसे यह अनुवृत्तिका प्रत्यय हो रहा है। अनुवृत्ति उसे कहते हैं जो अनेक व्यक्तियोमें रहे अर्थात् एकत्वका प्रत्यय उस सामान्य पदार्थके कारण नही होता किन्तु सदृश परिणामके ज्ञानके कारण होता है तथा इस अनुमानमे अन्वय भी सिद्ध नही है। ऐसे जो जो भेदक प्रत्यय होते हैं वे वे नित्य एक अनुगामी सामान्यसे होते हैं यह तो अत्यन्त असिद्ध बात है। विशेष भी भेदक प्रत्यय है, और वस्तुत भेदक प्रत्यय तो विशेष ही है। यह गाय इससे निराली है, यह घोडा भैंससे जुदा है, इस तरह जो भेद करने वाला ज्ञान होता है वह ज्ञान किसी नित्य एक अनुगामी सामान्यसे हुआ करता है क्या, तो इस कारण यह कहना अयुक्त है कि अनेक व्यक्तियोंमें जो अनुगताकार ज्ञान बन रहा है वह नित्य एक सर्वव्यापी सामान्य ज्ञानके कारण बन रहा है। अरे वह तो व्यक्तियोमे रहने वाला जो सदृश परिणाम लक्षण धर्म है उससे बन रहा है यह ज्ञान।

अनुगतज्ञानोपलम्भसे नित्य सर्वगत सामान्यकी सिद्धिके वर्णनकी मीमासा—अब दूसरी बात भी देखिये—अनुगत ज्ञानके उपलब्ध होनेसे ही नित्य एक सर्वगत सामान्यकी सिद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि बतलाइये—क्या जहापर अनुगत ज्ञान है वहा सामान्यका होना है यह आप समझा रहे है या जहा सामान्य रहता है वहा अनुगत ज्ञान होता है यह समझा रहे हैं ? अनुगत ज्ञानकी उपलब्धिसे नित्य एक सर्वगत सामान्यकी सिद्धि जो बना रहे हो, उस प्रसगमे तुम हृदयसे सिद्ध क्या करना चाहते। क्या यह कि जहा अनुगत ज्ञान मिलेगा वहा सामान्य मिलेगा ? या जहाँ सामान्य मिलेगा वहा अनुगत ज्ञान मिलेगा ? इन दो बातोंमे कौन सी बात

तुम समझाना चाहते हो ? यदि प्रथम पक्षकी बात कहोगे कि हम यह समझाना चाहते हैं कि जहां अनुगत ज्ञान होगा वहा सामान्यका सद्भाव है तो यह बात यो अयुक्त है कि अनुगत ज्ञान जहा जहा मिलता वहा वहा तुम सद्भाव मानते हो तो गोत्व, मनुष्यादिक सामान्यमे अनुगत ज्ञान है ना, तो उसमे भी और सामान्य बताओ गोत्वादिक सामान्यमे सामान्य है सामान्य है इस प्रकारका जो अनुगताकार प्रत्यय हो रहा है उससे फिर गोत्व, अश्वत्व, घटत्व, पटत्व आदिक सामान्योसे व्यतिरिक्त फिर अन्य कोई जरूर सामान्य मानो। तो यो सामान्यकी अव्यवस्था होगी, अनवस्था होगी। इस कारणसे यह बात नही बनती कि जहा अनुगत ज्ञान होता है वहा सामान्यका सद्भाव होता हैं।

सामान्य और अभावोमे होने वाले अनुवृत्त प्रत्ययकी सामान्य पदार्थवादमे व्यवस्थाकी अशक्यता—जहा अनुगत ज्ञान होता है वहा सामान्य होता है ऐसा कहनेमे तो सामान्यमे भी अनुगताकार ज्ञान पाया जा रहा है अर्थात् सामान्य गोत्व अश्वत्व, मनुष्यत्व, घटत्व आदिक जहा अनेक सामान्य समझमे आये उन सब सामान्योमे सामान्यपना है यह भी बात समझमे आती है तब तो अन्य सामान्यकी कल्पना करनी पडेगी। सामान्योमें जो सामान्य सामान्यका बोध होता है वह ज्ञान गौण नही है, काल्पनिक नही है, क्योकि वह ज्ञान बराबर दृढतासे हो रहा है। काल्पनिकता सिद्ध नही होती प्रागभाव, प्रध्वसाभाव, अन्योन्याभाव अत्यन्ताभाव इन चार प्रकारके अभावोमे अभाव है, अभाव है, इस प्रकार जो अनुगत प्रत्यय होता है तो उन अभावोमे अभाव अभाव रूपसे अभावत्व सामान्य मानना पडेगा। जब चार प्रकारके अभाव हैं। और सर्व प्रकारके अभावोंमे यह अभाव, यह भी अभाव इस इस तरहका अभाव सामान्यका बोध होता है तो उनमे फिर अभावत्व सामान्य भी मानना होगा। पर शकाकारने तो अभाव सामान्य माना नही। तो ऐसे पदार्थोंमे अथवा अभावोमे भी अनुगामी एक निमित्त और कुछ नही है सिवाय सदृश परिणामके। सदृश धर्म देखकर उनमे सामान्यका बोध होता है।

अभावोमे अभावत्वसामान्यकी व्यवस्थाका अभाव—शङ्काकार कहता है कि प्रागभाव आदिक अभावमे और सामान्यका अभाव होनेपर भी सत्ता नामका सामान्य मौजूद है और इस सत्ता नामक सामान्यके बलसे अभावका जो ज्ञान है वह अनुगत रूपसे होता रहेगा। अभावमे सत्ता कैसे है ? ऐसी यदि कोई शंका करे तो शकाकार उत्तर दे रहा है कि प्रागभावमे सामान्य नामक पदार्थ नही माना गया है। किन्तु यहा तो अनुत्पत्तिरूप है। नित्य सर्वगत भी। ऐसी सत्ता तो प्रागभाव आदिकमे भी है। इसके बलसे उन अभावोमे अभाव प्रत्यय अनुगतरूपसे होता रहेगा। उत्तर देते हैं कि शकाकारका यह कहना अयुक्त है क्योकि फिर तो अभिप्रेत जो द्रव्य, गुण, कर्म पदार्थ है जिनका कि सब लोग सुगमतया बुद्धिमे शीघ्र आभास

कर लेते हैं, उन पदार्थोंसे अतिरिक्त जो मतके अन्तर्गत पदार्थ हैं, जैसे प्रधान अद्वैत प्रकृति आदिक तथा जो लौकिक विचित्र कथाओंके पदार्थ उनमें अभावके प्रवृत्तिकी अविशेषता है अर्थात् इसके सम्बन्धमे भी अभाव प्रतीति हुआ करती है। तब उस अभावमे भी सत्वका प्रसग हो जायगा। इस कारणसे अभावमे अनुवृत्तिका ज्ञान होनेमे अनुगामी एक सामान्य कारण है। यह न मानना चाहिए क्योंकि वह निमित्त अभावमें नही पाया गया और इसी तरह सर्व प्रकारके पदार्थोंमे भी अनुगामी एक सामान्यका कारणपना नही रह सकता। अनुमान प्रयोग भी है इस सम्बन्धमे कि जो अमित्व, अनुगामित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, सत्व आदिक धर्मसे सहित है वह कल्पित एक व्यापक सामान्य पूर्वक नही होता है। अर्थात् उनमे सामान्य पदार्थ निमित्त नही है। जैसे कि अभावमे अभाव है, अभाव है, ऐसा ज्ञान होता है। अथवा सामान्यमे सामान्य है, सामान्य है, ऐसा जो ज्ञान होता वह सामान्य निबधक तो नही माना गया, इसी तरह समस्त पदार्थोंमे जो सदृश धर्मपनेका ज्ञान होता है वह कही सामान्य पदार्थ निमित्तक नही है, किन्तु उनमें सदृश परिणाम लक्षण धर्म पाया जाता तन्निबन्धनक अनुगत प्रत्यय है। इस कारण यह कहना युक्त नहीं है कि जहा अनुगत ज्ञान होता है वहा सामान्यका सद्भाव समझा जाता है।

जहाँ सामान्य होता है वहीं अनुगत ज्ञानकी कल्पना माननेके पक्षका निराकरण अब शङ्काकार कहता है कि यह बात तो युक्त हो जायगी कि जहाँ सामान्य होता है वहाँ ही अनुगत ज्ञानकी कल्पनायें होती हैं अर्थात् द्वितीय पक्षकी बात शङ्काकार कह रहा है। उत्तर देते हैं कि यह भी बात सङ्गत नही है क्योंकि पाचक आदिक पुरुषोंमें सामान्यका अभाव होनेपर भी अनुगत प्रत्ययका बोध होता है, पाचक कहते हैं भोजन बनाने वाले को। जितने पाचक पुरुष हैं उन सबमें अनुगत ज्ञान तो होता है—पाचक है, पाचक है, यह पाचक है, वह पाचक है, इस तरहका अनुगत ज्ञान हो रहा है, पर उनमे सामान्य पदार्थ तो है नही। ऐसा नही कह सकते कि उन पाचकोमे भी अनुगामी एक सामान्य मौजूद है इस कारणसे पाचक है, पाचक है, इस प्रकारके अनुगत ज्ञानमें प्रवृत्ति होती है। क्यो नही कह सकते कि पाचक कोई पदार्थ नही है। कोई पुरुष रसोई बनाने लगा तो उसका पाचक नाम पड गया, नही बनाता तो पाचक नाम नही है, इस कारण यहा कोई अनुगामी एक सामान्य नही माना।

क्रिया अनुगत प्रत्ययका अकारण—यदि कहो कि उसमे निमित्तान्तर है, सामान्य निमित्त न सही, किन्तु पाचक हैं, पाचक है, इस प्रकारके अनुगत बोधमे कोई अन्य निमत्त कारण है तो वह निमित्तान्तर क्या है। क्या कर्म है या कर्म सामान्य है। या व्यक्ति है या शक्ति है। कौन सा वह निमित्तान्तर है जिसकी वजहसे पाचकोंमें यह पाचक है यह पाचक है इस प्रकारका अनुगताकार बोध होता है उनमे कर्म तो कारण नही हैं। क्योंकि वह कर्म क्रिया-प्रत्येक व्यक्तिमे भिन्न है। जो भिन्न है वह

अभिन्नका कारण नही बन सकता है। जो जुदे जुदे है वे अनुगताकारके कारण नही हो सकते है यदि भिन्न होनेपर भी अनुगताकारके कारण बन जाये तब फिर सदृश परिणामके मान लेनेमे क्यो द्वेष किया जा रहा है। मान लीजिए कि प्रतिव्यक्तिमे भिन्न-भिन्न हम परिणाम हैं। हैं भिन्न-भिन्न परिणमन, मगर है वे सदृश। और उस सदृशताके कारण उन सब व्यक्तियोमे सामान्यका बोध होता है। अथवा मानलो कि इन रसोइयोमे पाचक है पाचक है इस प्रकारके अनुगत प्रत्ययके बोधका कारण कर्म है तो यह बतलावो कि वह कर्म नित्य है अथवा अनित्य है? नित्य तो कह नही सकते क्योकि कर्म नित्य सदा मौजूद देखा नही जाता और कर्मको नित्य माना भी नही गया है। यदि वह कर्म अनित्य है तो कर्म सर्वदा ठहरेगा नही। कर्म हुआ और नष्ट हो गया। अब नष्ट हो जानेपर फिर पाचक है, पाचक है इस प्रकारका ज्ञान नही हो सकता है, क्योकि जब वह रसोई नही पका रहा है तब उस समय पाचन क्रिया कहाँ मौजूद है? कर्म तो नही रहा। जब कर्म नही रहा तो पाचक सामान्य बतानेका हेतु भी न रहा। और, तब फिर रसोई करते हुएमे उसे पाचक यह नाम देना चाहिए। अन्य समय न बताना चाहिए लेकिन देखा तो यह जाता कि जो रसोई बनानेका काम करता है उसे सदैव पाचक कहा करते हैं। इस कारण कर्म तो अनुगतज्ञानका कारण न बना।

कर्मसामान्य अनुगतप्रत्ययका अकारण—यदि कहो कि कर्म सामान्य अनुगत ज्ञानका कारण बन जायगा तो यह बतलावो कि वह कर्म सामान्य कर्मके आश्रित है या कर्मके आश्रयके आश्रित है? अर्थात् कर्म करने वाले जो पुरुष आदिक है उनके आश्रित रहते हैं कर्म। यदि कहो कि कर्म सामान्य कर्मके आश्रित रहते हैं तो बडे आश्चर्यकी बात है कि कर्म सामान्य रहता है कर्मके आश्रित और कर्म सामान्य पाचकका ज्ञान उत्पन्न कर रहा हो। ऐसा तो नहीं होता कि अन्य जगह पाया जाने वाला तत्त्व अन्य जगहमे ज्ञानका कारण बन जाय। अन्यथा घरमे तो दीपक जल रहा हो और गुफामे ज्ञानका कारण बन बैठे तो अन्य जगह रहने वाली बात अन्य जगहके ज्ञानका कारण नही बनती। तो कर्म सामान्य, जो रह रहा है सामान्यमे तो कर्ममे कर्म सामान्य बोध करे पर पाचकमे उससे बोध नही हो सकता। हा, फिर तो कर्म सामान्यमे पाक पाक, बस यह बोध हुआ करे, पर यह पाचक है, पाचक है ऐसा पुरुष-गत बोध तो नही हो सकता। क्योकि कर्म सामान्यको तुमने कर्मके आश्रित मान लिया। यदि कहो कि वह कर्म सामान्य कर्मके आश्रयके आश्रित है अर्थात् कर्मका आश्रय हुआ पुरुष, जो कोई भी कर्म कर रहा है उसके आश्रित मानते हो कर्म सामान्यको तो यह बात ठीक नही है। कर्म सामान्य कर्म सामान्य कर्मके ही आश्रित हो सकता है। जैसे गोत्व सामान्य गायके ही आश्रित हो सकता है गाय वालेके आश्रय तो नही होता, इसी तरह कर्म सामान्य कर्मके ही आश्रित हो सकता है। यदि कहो कि परम्परासे कर्म सामान्य कर्मके आश्रयके आश्रित बन जायगा तो कर्म सामान्य है

कर्मके आश्रित और कर्म है पुरुषके आश्रित तो यो परम्परासे कर्म सामान्य कर्मके आश्रयके आश्रित बन जायेंगे। उत्तर देते है कि यह भी सारहीन बात है। क्योकि जब वह रसोई पकानेका काम नहीं कर रहा है उस पुरुषमें कर्म फिर नही रहा। वह पुरुष फिर कर्मका आश्रयभूत न रहा। तब वहा पाचक है, पाचक है ऐसा बोध होना चाहिये, क्योकि जब कम न रहा तो कर्मत्व कर्म सामान्य फिर न कमके आश्रय रहा और न कर्मके आश्रयके आ श्र न रहा और अनाश्रित कर्म कैसे पुरुषमें पाचक है इस प्रकारके ज्ञानका कारण बन सकता है। तो इस तरह कर्म सामान्य परम्परासे भी कर्मके आश्रय' आश्रित सिद्ध नही किया जा सकता है।

अतीत व अनागत कर्म अनुगत प्रत्ययका उदाहरण शकाकार कहता है कि जब वह रसोई भी नही बना रहा है ना पहिले बनाया था आगे बनायेगा तो यो अतीत और अनागत कर्म "पाचक है, पाचक है" इस प्रकार के व्यपदेशमे ज्ञानका कारण बन जायगा। वहा कर्मत्व कारण नहीं वे। तो उत्तरमें पूछते हैं कि वह अतीत और अनागत कर्म क्या सत् होकर 'पाचक है" इस प्रकार का व्यपदेश ज्ञान का कारण बनता है या असत् होकर "पाचक है" इस ज्ञ नका कारण बनता है या असत् होकर वह अतीत अनागत कर्म पाचक है, पाचक है" इस प्रकार व्यपदेश और ज्ञानके कारण तो बन नहीं सकते क्योंकि जो अतीत हो गया है वह तो अतीत ही हो चुका। अब जो अनागत है जो भविष्य में होगा पर इस समय तो उसने अपना स्वरूप पाया ही नही है। जो कर्म भविष्यमें होगा उस कमने अपने स्वरूपको अभी कहाँ पाया है अन्यथा वह वर्तमान कर्म कहलायेगा। तो अतीत तो च्युत हो गया और अनागत अभी आया नहीं है तो इस तरह असत कर्ममे भी कुछ कारण नहीं बन सकता। यो कर्मत्व भी अनुगत प्रत्ययका कारण नही बन सकता।

व्यक्ति और शक्ति अनुगत प्रत्ययका अकारण—यदि कहो कि अनुगत प्रत्ययमे व्यक्ति निमित्त है सो व्यक्ति भी कारण नही बन सकता क्योंकि ऐसा तो शकाकारने भी नहीं माना और फिर व्यक्ति तो अनेक हैं। तब सामान्य भी अनेक बन बैठेंगे, इससे व्यक्ति भी अनुगत प्रत्ययका कारण नही बन सकता। यदि कहो कि शक्ति अनुगत प्रत्ययका कारण है तो यह भी अयुक्त है, क्योंकि शक्ति पाचकसे भिन्न है अथवा अभिन्न ? इसका ही समाधान दो ? यदि कहो कि शक्ति पाचकसे अभिन्न है तो वे दोनो एक ही कुछ हो गए। या पाचक रहा या शक्ति रही। यदि कहो कि पाचकसे शक्ति भिन्न है तो शक्तिने ही अनुगत प्रत्यय कर दिया तो शक्ति ही अनुगत प्रत्ययरूप कार्यका उपयोगी बने, फिर तो कर्तामे अकर्तृत्व आ जायगा अर्थात् पाचक पुरुषकी जो शक्ति है वह शक्ति ही अनुगत प्रत्ययका कारण बने तो शक्ति ही कार्यमे उपयोगी हो गयी। अब और क्या चाहिए ? उससे पाचक हैं, यह सिद्ध तो हो गया। अब पुरुषको कुछ करनेकी क्या जरूरत है ? यदि कहो कि परम्परासे उप-

योगी तो होता है कर्ता शक्तिमे लगता है, शक्ति कार्यमे लगती है तो यह बतलाओ कि यह उस शक्तिमे स्वरूपसे लगा या अन्य शक्तिसे स्वरूपसे लगा ? अन्य शक्तिसे लगा कहोगे तो अनवस्था दोष होगा। फिर उस शक्तिके उपयोगमे अन्य शक्ति मानो। यदि स्वरूपसे ही उपयोगमे आया। शक्तिमे लगा तो सीधा उस पुरुषको ही स्वरूपके कार्यमे उपयोगी क्यो नही मान लिया जाता। फिर परम्पराकी बात कहनेका परिश्रय क्यों करते हो ? इस तरह यह सिद्ध नही हो सकता कि जहाँ सामान्य है वहा अनुगत ज्ञानकी कल्पना होती है।

द्रव्योत्पत्तिकालमे ही व्यक्त हुए पाचकत्वसे अनुगतप्रत्यय माननेमे दोष— शकाकार इस पक्षका ग्रहण कर रहा था कि जहा सामान्य होता है वहा ही अनुगत ज्ञानकी कल्पना होती है। तो इस सम्बन्धमे यह पूछा गया था कि जैसे पाचक आदिकमे सामान्य न होनेपर भी अनुगत ज्ञानकी प्रवृत्ति होती है तो सामान्य तो वहा निमित्त रहा नही। तो अन्य कौनसा निमित्त है जिसके कारण पाचक आदिक के अनुगत प्रत्ययकी प्रवृत्ति होती है ? क्या वह निमित्तान्तर कर्म है या कर्म सामान्य है या शक्ति है ? चार विकल्पोके सम्बन्धमे अभी बता चुके है कि ये चार ही निमित्त उस अनुगत प्रत्ययके कारण नही बन सकते और इन चारोके अतिरिक्त अन्य कोई कल्पनामे भी नही आते। यदि कहो कि पाचकत्व तो निमित्त है अर्थात् जितने पाचक हैं, रसोइया हैं उन सब व्यक्तियोमे 'यह पाचक है, यह पाचक है" इस प्रकारका जो अनुगत ज्ञान होता है उसमें कारण पाचकत्व है। तो उत्तरमे पूछते है कि पाचक तो कोई मनुष्य ही होते हैं ना ? जैसे देवदत्त नामक व्यक्ति पाचक है तो यह बतलावो कि उसमे जो पाचकत्व आया है वह देवदत्तकी उत्पत्तिके समयमे ही व्यक्त हो गया अथवा उस समय अव्यक्त था। यहाँ सामान्यकी चर्चा चल रही है कि वस्तुमे सामान्य नामका धर्म होता है। कही कोई अलगसे सामान्य पदार्थ नहीं कोई अलगसे सामान्य पदार्थ नही होता क्योकि अन्य कोई पदार्थ अनुगत प्रत्ययका निमित्त नही है। उसके सिलसिलेमे यहा यह प्रसग चल रहा है कि पाचकमे पाचकत्व कहासे आया ? क्या जब देवदत्त व्यक्ति उत्पन्न हुआ उस ही समय पाचकपना आ गया या नही ? यदि उस समय आ गया तो उसका अर्थ यह हुआ कि देवदत्त जन्मसे ही तो रसोई बनाता न था। बडी उम्रमे कुछ सीखनेके बाद वह पाचक बना। अब पाचकत्व मान लिया तुमने देवदत्तके जन्मसमयसे ही तो आय यह हुआ कि जबसे उसने रसोई बनाना शुरू किया उससे भी पहिले उसमे पाचकत्व था तो क्यो नही जन्मसे उसमे 'पाचक है" यह ज्ञान बना और क्यो न पाचक यह उसका नाम पडा ? कोई भी व्यक्ति है, उसका कुछ पता तो नही कि जन्मसे ही समझ जाय कोई कि यह पाचक बनेगा, मुनीम बनेगा, यह पुजारी बनेगा ? जब बडी उम्र हुई तब तो वह कुछ बना और तुम मान रहे हो पाचकत्व आदिक, जन्मसे ही है तो जब वह पाचन क्रिया करने लगा रसोई बनाने लगा उससे पहिले क्यो नही उसे पाचक कहा जा रहा था। और

द्वारा पाचकत्व व्यक्त हुआ तो देवदत्त पहिले भी था क्यों नहीं पहिले हो गया ? यदि कहो कि क्रियाके द्वारा पाचकत्व व्यक्त हुआ और कहा गया याने जो वह रसोई बनानेकी क्रिया कर रहा है उस पाचन क्रियाके द्वारा पाचकत्व कहा गया तो यह बात यो ठीक नहीं है कि क्रिया पाचकत्व सामान्यमे कुछ नही कर सकती, याने क्रिया का प्रयोग अमर सत्ता सामान्यमे हुआ करता है ? क्रियाके द्वारा पाचकत्वका व्यक्त होना तो तब माना जाय जब क्रियाको कुछ दखल सामान्यमे कुछ कर सकती नहीं है, तो क्रियाके द्वारा भी पाचकत्वकी व्यक्ति सिद्ध नहीं होती । और जब इन दोनो विकल्पोमे पाचकत्वकी व्यक्ति सिद्ध न हो सकी तो दोनोसे मिलकर भी व्यक्ति हो जाय यह भी ठीक नही बैठता, क्योंकि जब द्रव्यमे और क्रियामे जुदे-जुदेमें शक्ति नही है तो ये दोनों मिलकर भी सामर्थ्य नही पा सकते है जिससे कि देवदत्तमे पाचकत्वकी व्यक्ति हो जाय इस कारणसे जो अनुगत प्रत्यय हुआ करता है, जैसे बहुत सी गाये है, उन गायोमे गाय है, गाय है ऐसा जो एक सामान्य बोध हुआ करता है, सबपे पाया जाने वाला तत्त्व जो जाना जाता है वह एक सामान्य के आलम्बनसे नही जाना जाता कि सामान्य नामका कोई एक पदार्थ है उसके सहारेसे अनुगत प्रत्यय होता है ।

सामान्यविशेषात्मक वस्तुमें सदृश परिणाम लक्षण धर्मके अवगमसे अनुगतप्रत्ययकी सिद्धि—वस्तु स्वयं सामान्यविशेषात्मक होता है वस्तु है तो है वे ही कारण उसमे सामान्य विशेषात्मक है, क्योंकि केवल सामान्य हो तो वस्तु नही रह सकता केवल विशेष हो तो नहीं रह सकता । जैसे कि पदार्थोंमे दो प्रकारके धर्म पाये जाते है— साधारण धर्म और असाधारण धर्म । साधारण धर्म तो हुए अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व और प्रमेयत्व । तो इन छह साधारण धर्मोंसे वस्तुका सामान्यरूप समझमे आयगा कि पदार्थ हो तो उसमे ये बातें हुआ करती हैं । वे हैं अपने स्वरूपमे नही है । निरन्तर परिणमते रहते है । अपने ही स्वरूपमे परिणमते हैं, पररूप स्वरूपमें नही परिणमते वे अपने ही क्षेत्रमे रहते है और वे किसी न किसी ज्ञानमे आये लेकिन वस्तुमे केवल साधारण ही धर्म माना जाय । असाधारण धर्म न स्वीकार किया जाय तो साधारण धर्मका टिकाव क्या ? जब वस्तुमे कोई बात ही न बनी । किसी तरहकी व्यक्ति भी न बन सकी तो साधारण धर्मका अर्थ ही क्या रहा ? और यदि उसका असाधारण धर्म और भी मान लेते हैं, जैसे कि चेतन नामक पदार्थमे चेतन असाधारण धर्म है, पुद्गल नामक पदार्थमे रूप, रस, गंध, स्पर्श रूप मूर्तिकताका धर्म है आदिक रूपसे जब असाधारण धर्म भी उसमे है तब वस्तुका सत्त्व और परिणमन सही बन गया । तो असाधारण धर्मके बिना साधारण धर्मका अर्थ नहीं, इसी प्रकार साधारण धर्मके बिना असाधारण धर्मका भी अर्थ नही । जैसे जीवमे चेतन तो मान लिया पर अस्तित्व वस्तुत्व आदिक साधारण धर्म न माने तो फिर चेतनकी प्रतिष्ठा ही क्या । जब उसमे है पना नही । अपने स्वरूपसे होनेका बात नही, परके स्वरूपसे न होनेका धर्म नहीं, परिणमनका स्वभाव नही ।

तब फिर उसका अर्थ ही क्या रहा ? तो जैसे पदार्थमें साधारण धर्म और असाधारण धर्म दोनोंकी ही व्यवस्था बनती है इसी तरह समझ लेना चाहिए कि प्रत्येक पदार्थमें साधारण और असाधारण धर्म रूपता है, तब ही वह पदार्थ है । साधारण धर्मका नाम है सामान्य असाधारण धर्मका नाम है विशेष । अब प्रयोजनवश प्रसंगवश असाधारण धर्मकी व्याख्यायें चलती जायेंगी । तो प्रयोजन यह है कि वस्तु स्वतः स्वभावतः सामान्य विशेषात्मक है और जो सामान्यरूपता है अर्थात् सदृश परिणाम सदृशरूपता है उससे तो जातिकी व्यवस्था बनायी गई है । पर सामान्य नामक पदार्थ कोई अलग हो, नित्य एक सर्वव्यापी हो उससे फिर जाति और अनुगत प्रत्यय की व्यवस्था बने यह सम्भव नहीं है ।

गायोंमे ही गोत्व है इस पक्षकी असिद्धि—अब और भी बतावो । जो यह कहा जा रहा कि गायोंमे गोत्व है । मनुष्योंमे मनुष्यत्व है । यों जो सामान्यकी रचना बतायी जाती है तो उसका अर्थ क्या है ? क्या यह अर्थ है कि गायोंमे ही गोत्व रहता है ? अथवा क्या यह अर्थ है कि गायोंमे गोत्व ही रहता है ? अथवा यह अर्थ है कि गायोंमें गोत्व रहता ही है ? किस जगह एवकार लगा ? किसे जोर दिया गया सो तो बतावो ? यदि कहो कि गायोंमें ही गोत्व है यह अभिप्राय है गोत्व बतानेका तो गायोंमें ही गोत्व है ऐसा कहनेपर तुमने कहा ही तो है । अब गोत्व नामक पदार्थ तो जुदा है और गाय नामका द्रव्य जुदा है । सो जब ये दोनों जुदे-जुदे पदार्थ है तो यह गोत्व गायमे ही रहे अन्यमें न रहे, यह व्यवस्था कैसे बन सकती है ? जब गोत्वका अन्वय गायमे नहीं है तो अर्थात् गाय व्यक्तिका धर्म नहीं है गोत्व तो जैसे गोत्व गायमे रह रहा है वैसे गोत्व घोड़ा आदिकमे भी रह जायें, क्योंकि गोत्व नामका पदार्थ गायसे जुदा मान लिया है शंकाकारने । तो जब ये पदार्थ दो अलग-अलग है । गाय व्यक्तियाँ और गोत्व सामान्य है । अब गोत्व सामान्यका गायमे अन्वय तो माना नहीं । एक सम्बन्ध माना है । अन्वयके मायने यह है कि गायका ही धर्म है । गायका ही स्वरूप है । गोत्व, ऐसा तो नहीं माना । तो जब ये दो पदार्थ जुदे माने हैं और सम्बन्धसे गायमे गोत्वकी व्यवस्था की है तब तो जैसे गोत्वका सम्बन्ध घोड़ा भैंसा आदिकमें भी हो जाना चाहिए । क्यों नहीं होता ? इस से सिद्ध है कि गोत्व है इसका अर्थ यह युक्त नहीं कि गायोंमें ही गोत्व है ।

गायोंमें गोत्व ही है, इस द्वितीय पक्षकी असिद्धि—अब द्वितीय पक्ष लोगे कि गोत्व है, इसका अर्थ यह मान लोगे कि गोत्व ही है, तो इसका भाव क्या हुआ कि गायमें सिर्फ गोत्व है, सत्त्व नहीं, द्रव्य नहीं, तो इन सारे धर्मोंका निषेध बन गया, तो भला बतलावो जिसमें सत्त्व न हो, द्रव्यत्व न हो, वह कुछ व्यक्ति भी हो सकता क्या ? उसकी सत्ता ही नहीं है । जब व्यक्तिका ही अभाव हो गया तब फिर और सिद्ध ही क्या कर सकते हो ? व्यक्ति तो सत्स्वरूप भी है, द्रव्यत्वरूप भी है । अब

गायोमे गोत्व ही है ऐसा कहकर यह जताना चाह रहे कि गोत्वके सिवाय अन्य कुछ नही है। तो जब सत्त्व न रहा द्रव्य न रहा तो गाय भी न रही, फिर गोत्व कहाँ जाकर टिकेगा ? इस कारण यह भी पक्ष नही कह सकते कि गायोमे गोत्व ही है। इसका अर्थ होगा कि गायमे गोत्व ही है अन्य कुछ नही। सो व्यक्तिका ही अभाव हो जायगा फिर सामान्य किसके आश्रय। सामान्यके तो आश्रयमात्र वृत्तित्व माना ही गया है। यो यह द्वितीय पक्ष भी सिद्ध नही होता कि गायोमे गोत्व ही है।

गायोमे गोत्व रहता ही है, सामान्य पदार्थवादीके इस तृतीय पक्षका निराकरण —सामान्य पदार्थ है, ऐसा मानने वाले यो माना करते हैं कि जैसे गायमे गोत्व है, मनुष्यमें मनुष्यत्व है तो यह सामान्य पदार्थ है। तो उनसे यह पूछा गया कि गायमे गोत्व है, इसका अभिप्राय क्या आप ले रहे ? क्या यह कि गायमें ही गोत्व है या यह कि गायमे गोत्व ही है या यह कि गायमे गोत्व रहता ही है। एवकारका प्रयोग कहाँ कर रहे हो ? इन तीन बातोमेसे दो बातोका तो निराकरण कर दिया। अब तीसरी बात पूछ रहे हैं कि क्या यह मतलब है कि गायोमे गोत्व है ही ? यदि यह मतलब है तो इसका अर्थ है कि गायमे तो गोत्व है ही और अन्य किसीमे भी गोत्व रहता है। जिस क्रियामे एकाकार लगता है उसका ऐसा अर्थ होता है कि उसके तो है ही, पर औरमें भी रह सकता है। तो इसका भाव यह निकला कि गोत्व जैसे गौ व्यक्तियोमे है वैसे ही अश्व महिष आदिकमे भी होना चाहिये। तब फिर घोडे, भैसो को निरखकर गौ गौ इस प्रकारका ज्ञान होना चाहिए क्योकि अब गोत्वकी वृत्ति गायमे भी है और औरोमे भी हो गया। इससे सिद्ध है कि सामान्य व्यक्ति पदार्थसे कुछ अलग नही है। जो चीज है उस ही चीजमे सदृश परिणाम को देखकर हम सामान्य समझते हैं और विलक्षण परिणामको देखकर हम विशेष समझते हैं।

अनुगत व्यावृत्त प्रत्ययका आधार सदृश व विसदृश परिणामका अवगम व्यक्तात्मकरूप भिन्न और प्रतिव्यक्तिमें रहने वाले सदृश परिणामसे भिन्न कुछ और जो कि व्यक्तियोंसे अलग हो, अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखता हो ऐसा सामान्य नामका पदार्थ कोई नही है। तब तथ्य क्या है कि पदार्थ हैं जो कि कुछ साधारण धर्मोंसे युक्त और अपने-अपने स्वभावरूप असाधारण धर्म से युक्त अनन्त पदार्थ हैं। सो वे भिन्न-भिन्न प्रतिव्यक्तिमे सदृश परिणाम वाले सामान्य रहते ही हैं। जैसे बहुतसी गौ व्यक्तियाँ है तो उन गायोमे जैसे गलेमे सास्ना लटकती है, यदि सबमें लटकती है तो वह साधारण धर्म हो गया सदृश परिणमन देखकर हम उसमे गोत्व सामान्य कहते हैं ऐसा नही है, जैसे जैन सिद्धान्तमे धर्म अधर्म एक माने गए हैं नित्य सर्व व्यापक हैं, इस तरहसे सामान्य पदार्थ कोई सर्वव्यापक हो ऐसा नही है। धर्मादिक द्रव्य सदा रहते हैं पर वे भी परिणामी हैं क्योकि पदार्थका स्वरूप ही है उत्पादव्ययध्रौव्यसे युक्त होना। तो जिस तरह कोई व्यक्ति जो दिख रहा है, प्रयुक्त किया जा रहा है वह अन्य व्यक्तियो

से जुदा हूँ यह कैसे हम जानते है ? विसदृश परिणामके देखनेसे जानते हैं । इसी तरह जब हम सदृश परिणाम देखते हैं दो व्यक्तियोमे तो वहां हम यह कह सकते है कि यह इसके समान है । तो जो बात विसदृशताके जाननेमें कही जाती है, वही बात सदृशता समझनेमे भी कही जा सकती है । अर्थात् दो पदार्थोमे विसदृश रूप देखकर हम यह कह सकते हैं कि यह इससे विलक्षण है । इसी प्रकार सदृश परिणाम देखकर हम यह कह सकते है कि यह इसके समान है । तो ऐसा समानपना जाननेके लिए कोई सामान्यपना अलगसे नही मानना पडता । तो भाव क्या हुआ कि जो सामान्य है वह उसी व्यक्तिमे है । उसी व्यक्तिमें सामान्य है, उसीमें विशेष है ।

सामान्यकी वस्तुगततताके सम्बन्धमे प्रश्नोत्तर अब शंकाकार कहता है कि जब सामान्यको व्यक्तिस्वरूप मान लिया । सामान्य कोई अलग है और व्यापक है ऐसा नही मानते । और उस ही व्यक्तिमे उस ही चीजमे सामान्य धर्म मान रहे तो इसके मायने है कि सामान्य हो गया व्यक्तिस्वरूप । तो व्यक्तिस्वरूप होनेसे व्यक्तिसे सामान्य जब अभिन्न हो गया तो फिर सामान्य क्या रहा ? वह तो विशेष बन गया । व्यक्ति ही बन गया । मनुष्य तो अलग तब कहलाता जब उस व्यक्तिसे अलग कोई चीज होती । जो व्यक्तिरूप ही है सो व्यक्ति कहलाया । सामान्य तो अब नही रहा । उत्तरमे कहते हैं कि इस तरहसे तो रूप शब्दका भी व्याघात किया जा सकता है । क्योकि जैसे यह घडी है इस घडीमे सफेद रूप है । और यह काली बन जाय तो कालीरूप हो गयी मगर रूपस्वभाव तो इसमे सदा है तो बतलावो वह रूपस्वभाव वह रूप सामान्य इस घडीसे कही बाहर रह रहा है क्या ? घडीमे ही रह रहा है । तो व्यक्तिमे रहनेके कारण यदि सामान्यको असामान्य कह दोगे, विशेष कह दोगे तो रूप स्वभाव भी तुम सिद्ध न कर सकोगे । यदि कहो कि रूपके बारेमें तो यह प्रत्यक्ष विरुद्ध बात है दिख रहा है—घडीका रूप सामान्य घडीमे है, घडीका रूप विशेष घडीमें हैं, तब उत्तरमें कहते हैं कि यही बात सब पदार्थोंकी है । सभी पदार्थोंमें जो कि सामान्य विशेषात्मक रूपसे जाने गए हैं ऐसा ही प्रत्यक्षमें जच रहा है । सामान्य उस पदार्थसे बाहर नही विशेष उस पदार्थसे बाहर नही । पदार्थका ही जो सदृश धर्म है उससे हम विशेष कहा करते हैं ।

एक व्यक्तिको जानते समय भी अवधारणके अनुसार सामान्य विशेष का अवगम—अब शंकाकार यह कह रहा कि सामान्य यदि व्यक्तिमे होता तो जिस किसी एक चीजको देखा तो एक ही व्यक्तिको देखनेके समयमे सामान्य ज्ञात तो नही होता । और, तुम मान रहे हो कि प्रत्येक व्यक्तिमे सदृश परिणाम रूप सामान्य सदा रहता है सो कहा रहा सामान्य सदा, शंकाकार यह कह रहा कि एक चीज देखी, उस मे जो रूप है, आकार है, जो कुछ है वह ज्ञानमे आया पर एक ही चीजको ज्ञानमे लेनेसे सदृशताका बोध तो नही हो सकता । सदृशताका बोध तो जब अनेकको जानें

तब हो सकता है। यह उसके समान है। तो देख लो ना, एक व्यक्तिको देखनेके समयमे सामान्य ज्ञान तो बना न ी। यह समान है यह उसके समान है। इस तरहका ज्ञान तो बना नही अब तुम्हारे सामान्यका अभाव हो गया ना ? कहाँ रहा पदार्थमे सामान्य। अगर पदार्थमे सामान्य होता तो एक पदार्थको देखनेपर भी सामान्यका ज्ञान होना चाहिए पर कोई एकको ही देखकर क्या सामान्यका ज्ञान करता है। जब अनेक गायोको देखें या दृष्टिमे ले तब तो कह सकेंगे कि ये सब गायें समान हैं। तो जब एक व्यक्तिको देखनेपर सामान्यका प्रत्यय नही हो रहा तो इसके मायने यह है कि सामान्यका यह लक्षण नही कि जो सदृश परिणाम हो सो सामान्य है, किन्तु सामान्य नामका एक पदार्थ ही है। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात तुम्हारी ठीक नही हैं। किसी एक व्यक्तिको देखने से सत्त्व द्रव्यत्व इनका तो प्रत्यय हो रहा क्योकि सत्त्वकी दृष्टिसे सब पदार्थ समान हैं। सबमे सत्त्व है जिस एकको देखा उसमे ऐसे सत्त्वका ज्ञान हुआ। प्रथम ही प्रथम एक गायको देखते हुए भी सामान्य सत्त्व द्रव्यत्व आदिकके द्वारा तो सादृश्यको कहा ही है। यह पदार्थ अन्य पदार्थके समान है क्योकि सत्त्व होनेसे। अर्थात् गायें बहुत नही देखी, एक ही गाय देखी तो यह बोध तो न कर पायेगे कि गाय सामान्य हैं, क्योकि एक गायपर दृष्टि दे रहे हैं। लेकिन सत्त्व सामान्य तो जाना जायगा क्योकि सत्त्व जैसा गायमे पाया जा रहा है वैसा ही सभी पदार्थोंमे पाया जा रहा है। वहा सामने सभी पदार्थ हे। नही हैं गाये बहुत मगर अन्य वस्तु तो हैं घोडा भी है, भीट भी है, घर भी है और कुछ होगे तो वे सब सत्त्वकी दृष्टिसे तो समान हैं। तो सत्त्व द्रव्यत्व आदिकका प्रत्यय पाये जानेसे सामान्यका अभाव नही कह सकते।

सामान्य तत्त्वके सम्बन्धमे कुछ प्रश्नोत्तर—शकाकार कहता है कि जब दूसरे व्यक्तिका अनुभव भी नही किया जा रहा। जिस पुरुषने किसी व्यक्तान्तरका अनुभव नही किया वह एक ही पदार्थके देखनेपर उसके समान ज्ञानकी क्यो उत्पत्ति नही होती ? तुमने यह कहा है कि प्रत्येक पदार्थमे सामान्य धर्म है तो एक पदार्थको देखनेपर समानका बोध क्यो नही होता ? क्यो अनेकको देखनेके बाद ही समानका बोध होता है कि यह उसके समान है। इससे सिद्ध है कि सामान्य पदार्थमे नही भरा है। वह अलग ही पदार्थ है। सो शकाकार पूछ रहा है कि जिस पुरुषने अन्य व्यक्तिका अनुभव नही किया है, उस पुरुषके एक व्यक्तिके देखनेपर समान प्रत्ययका बोध क्यो नही होता ? क्योकि सदृश परिणाम तो तुम उसमे सदा ही मानते हो ? तो उत्तरमे कहते हैं कि तुम्हारे यहा भी तो एक व्यक्तिके देखनेपर यह उससे भिन्न है यह भी तो ज्ञात नही होता। भिन्नताका भी तो ज्ञान अनेक व्यक्तियोके देखनेपर होगा। तो तुम्हारे यहा भी विशेष प्रत्ययकी उत्पत्ति क्यो नहीं होती, क्योकि तुम तो विशेषवादी वैसादृश्यको सदा मानते हो। शकाकार कहता है कि भाई विलक्षणताका ज्ञान परापेक्ष है। दूसरा कोई पदार्थ विलक्षण भी ज्ञानमे आ रहा हो तब वह यह

कह सकता है कि यह उससे भिन्न है। तो एक ही पदार्थमे विशेषका ज्ञान क्यो नही होता ? यह आपत्ति नही आती। उत्तरमे कहते हैं कि यही बात सामान्यमे भी घटा लो। समानताका भी ज्ञान परापेक्ष है क्योंकि जब अनेक व्यक्ति जाननेमें आ रहे हों तो ही यह कहा जा सकता कि यह उसके समान है। परकी अपेक्षाके बिना कभी भी किसी भी जगह समान प्रत्ययका बोध नही होता जैसे कोई कहे कि ये दो चीजें हैं—तो दो का कहना परापेक्षसे होगा एक यह है या कोई कहे कि यह मन्दिर उस मन्दिरसे ज्यादह दूर है तो यहा दूसरेको दृष्टिमे किए बिना नहीं कहा सकता। इसी तरह समानताका भी प्रत्यय एकको देखकर न होगा। अनेकको देखकर होगा कि यह इसके समान है। इसी तरह विसदृशताका भी बोध एकको देखकर न होगा। अनेकको समझकर होगा। यह उससे विलक्षण है।

परापेक्ष और परानपेक्ष धर्मकी सिद्धिसे सामान्य विशेषकी समस्याओंका समाधान - देखिए वस्तुके धर्म दो प्रकारके होते हैं—पदार्थमे धर्म कोई तो परापेक्ष है अर्थात् कोई परकी अपेक्षा रखता है और कोई परसे निरपेक्ष रहता है। जैसे मोटाई दुर्बलता ये परापेक्ष हैं। दूसरा आदमी अगर पतला खडा है तो कह सकेंगे कि यह आदमी मोटा है। पर जैसे काले, पीले, नीले हरे लाल, सफेद ये वर्ण कहना परापेक्ष है। मायने परकी अपेक्षा नही रखते। हाँ उनमे यदि यह कहा जाय कि वह इससे ज्यादा हरा है तो परापेक्ष हो जायगा। याने पदार्थमे जो धर्म हैं वे दो हैं—एक परकी अपेक्षा न रखने वाला और एक परकी अपेक्षा न रखने वाला। जैसे पदार्थमें रूप है तो यह परकी अपेक्षा नहीं रखता। पदार्थ है उसमे रूप है, पर यह कहना कि यह पदार्थ लम्बा है तो यह परापेक्ष हो गया। कोई छोटी चीज दृष्टि में रखकर ही यों बोला जायगी। यह लम्बा है, यह उससे छोटा है। तो कुछ धर्म होते हैं परापेक्ष और कुछ धर्म होते है पर निरपेक्ष। इसमे जैसे विसदृशता निरपेक्ष है यह इससे भिन्न है ऐसा जो ज्ञान है वह दूसरेकी अपेक्षा रखकर हुआ। निरपेक्ष नही रहा। तो जैसे विशेष ज्ञान परापेक्ष होकर अपनी व्यावृत्तिज्ञानकी अर्थक्रियाको करता है विसदृशताके ज्ञानके लिए ही यहा क्रिया कही हैं कि वह भिन्नता जान ले। तो जैसे विशेष भिन्नताका ज्ञानरूप अर्थक्रियाको करने वाला है परापेक्ष होकर इसी प्रकार सामान्य ज्ञान भी परापेक्ष होकर यह समान है इस प्रकारके ज्ञानरूप अर्थ क्रियाको करता है। दोनोमे बात समान आ गयी। सामान्य और विशेष दोनोका ज्ञान परापेक्ष है, ज्ञान होते ही उसके ज्ञानरूप अर्थक्रिया होने लगती है।

ज्ञप्तिक्रियासे व्यतिरिक्त अन्य अर्थक्रियाकी सामान्यविशेषात्मक वस्तुसे सभवता—ज्ञानरूप अर्थक्रियासे जुदा और कोई वस्तुमे अर्थक्रिया होगी, जैसे बोझा ढोना दूध दुहना आदिक जो काम निकलेगे तो उनको न केवल सामान्य करनेमें समर्थ है और न केवल विशेष करनेमे समर्थ है किन्तु सामान्यविशेषात्मक

जो वस्तु है, गाय है उसका ही उन क्रियावोमे उपयोग है। क्या कहा जा रहा है कि जैसे गायमे सामान्य धर्म है, सब गाय गाय है तो सामान्य धर्म परापेक्ष होकर ज्ञात होता है। जब अन्य गायोका ज्ञान हुआ इसी तरह यह गाय भैमसे भिन्न है ऐसी विशेषताका भी बोध पर.पेक्ष है। तो परापेक्ष सामान्य ज्ञानने अनुगत ज्ञान करा दिया। यह काम कर दिया। विशेष ज्ञानसे व्यावृत्त ज्ञान कर दिया पर बोझा ढोना, दूध दुहना ये काम तो न सामान्यसे निकलते हैं न विशेषमे निकलते हैं। किन्तु सामान्यविशेषात्मक जो वे गाय बैलादिक है उनसे काम निकलेगा बोझा ढोनेका काम वे ı कर देते हैं। दूधकी प्राप्ति गायसे होती है। तो इस तरह अर्थक्रियाकारी होनेसे वस्तुमे सामान्य आकार और विशेष आकार दोनो ही सिद्ध हो जाते है। तब इससे यह सिद्ध हुआ कि सामान्य तत्त्व और विशेष तत्त्व दोनो ही वास्तविक हैं, वस्तुमे रहने वाले हैं, न कि सामान्य पदार्थ कोई पदार्थसे अलग हो। पदार्थ ही सामान्य विशेषात्मक हुआ करता है।

मुख्य और उपचरित एकत्व प्रत्ययका विवरण- शकाकार कहता है कि सादृश्य सामान्य माननेपर यह वह ही गौ है ऐसा ज्ञान चितकबरी गायको देखकर सफेद गाय देखते समय कैसे घटित हो सकता है। शकाकारका भाव है कि चितकबरी गाय और सफेद गायमे तो भेद है फिर चितकबरी गायको देखकर फिर सफेद गायको जब देख रहा है कोई तो उस समय यह उसके समान है अथवा यह वही गौ है। गाय ही तो है ऐसा ज्ञान कैसे हो जाता ? उत्तर देते है कि एकत्वके उपचारसे यह ज्ञान हो जायगा। एकत्व दो प्रकारका होता है – एक मुख्य और दूसरा उपचरित। मुख्य एकत्व तो आत्मा आदिक द्रव्योमे है। उस ही एक पदार्थमे एकत्वका ज्ञान करना तो मुख्य एकत्वका प्रत्यय है और धर्म वाले व्यक्तियोमे एकत्वका ज्ञान करना यह उपचरित एकत्व प्रत्यय है। सदृश दो चीजोमे यो कहना कि यह वही है तो ऐसा कहनेमे प्रयोजन अर्थक्रिया आदिक सब एक हैं इस कारण एक कहा जाता है तो सादृश्यमे एकत्वका व्यवहार करना तो उपचरित एकत्वका व्यवहार है और एक ही वस्तुमे पहिले देखकर बादमे कहना कि यह वही है यह मुख्य एकत्व है। तो यो सादृश्य सामान्यमे एकत्वका प्रत्यय उपचारसे होता है। और एकत्वका भी भाव यहा पर समानता है। सो सदृश परिणामरूप धर्मसे ही समानता से अनुवृत्ताकारका प्रत्यय होता है। उसके लिए नित्य सर्वव्यापी स्वभाव वाला सामान्य नही माना जा सकता। ऐसे सामान्यके सम्बन्धमे अभी अनेक प्रकारके दोष बताये गये थे और फिर शकाकारके बताये हुए सामान्य पदार्थके माननेपर भी जो सदृश पदार्थोमे यह ज्ञान होता है कि यह उसके समान है सो यह ज्ञान किस प्रकारसे होगा ?

सामान्य पदार्थके सम्बन्धमे शबल और धवल गायमे समानताकी

कारण मानो और इस तरह समान परिणामकी समानता जाननेके लिए दूसरा समान परिणाम कारण माना तो दूसरे समान परिणाममें भी समान ज्ञानका ज्ञान करनेके लिए तीसरा समान परिणाम मानो। तीसरेके लिए चौथा। इस तरह तो अनवस्था दोष हो जायगा। और यदि समान परिणाममें समानता जाननेके लिए दूसरे समान परिणाम माने बिना ही समान प्रत्ययकी उत्पत्ति मान लोगे तब तो बस ठीक बन गया। इन शबल धवल खण्ड मुण्ड गायोंमें भी एकदम समानता मान ली जाय, समान परिणामके कारण क्यों समानता मानते? उत्तरमें कहते हैं कि यह बात तो विसदृशताके ज्ञानमें भी समान बैठ जायगी। विसदृश परिणाममें भी जो विसदृश ज्ञान हो रहा है वह यदि अन्य विसदृश परिणामोंके कारण हो रहा है तो अनवस्था दोष हो जायगा। याने जैसे गाय भैंस घोड़ा आदिक अनेक व्यक्तियोंमें यह उससे विलक्षण है ऐसी विसदृशताका ज्ञान करनेमें कारण माना गया है विसदृश परिणामों में जो विसदृशता जानी गई उन अनेक व्यक्तियोंमें जो विसदृश धर्म देखे जा रहे हैं— जैसे गायके खुर घोड़ाके खुर ये भिन्न-भिन्न हैं। उनके बहुतसे आकार रूप रंग भिन्न भिन्न है तो उन विसदृश धर्मोंमें विसदृशताका जो ज्ञान हो रहा है वह ज्ञान भी यदि अन्य विसदृश परिणामोंके कारण होता है तो उस दूसरे विसदृश परिणाममें विसदृशताके बोधके लिये तीसरा विसदृश परिणाम मानो। उस तीसरे विसदृश परिणाम में विसदृश ज्ञान करनेके लिए चौथा विसदृश परिणाम मानो तो यों यह भी अनवस्था दोष हो जायगा। यदि कहो कि विसदृश पदार्थोंमें स्वभाव से ही विसदृश परिणामोंमें विसदृशताका ज्ञान हो जाता है—उत्तर देते हैं—तब भी व्यक्तिमें भी विसदृशताका ज्ञान करनेके लिये विसदृश परिणाम मानना अनर्थक हो जायगा। जैसे कि विसदृश परिणामोंकी विसदृशता जाननेके लिये स्वभाव ही कारण बन गया। उन विसदृश परिणामोंका स्वभाव ही ऐसा है कि अपने आप उनमें विसदृशताका ज्ञान बन जाता है तो इसी प्रकार व्यक्तियोंका ही स्वभाव ऐसा मान लीजिए कि व्यक्तियोंमें स्वतः विसदृशताका ज्ञान हो जाता है। फिर विसदृश ज्ञान करनेके लिए विसदृश परिणामोंकी कल्पना करना अनर्थक है।

सदृशपरिणामोंके स्वभावमें ही समानत्व प्रत्ययका विवरण—तथ्यभूत बात यह है कि सदृश परिणामोंमें [illegible] ही आपमें ही अपने ही आपके स्वभावके कारण समान प्रत्ययका बोध हो जाता है, पर ऐसा मान लेनेपर पदार्थोंमें यह दोष नहीं दे सकते कि सब ही पदार्थोंमें भी अपने ही आप समान प्रत्ययका बोध हो जायगा, सदृश परिणाममें [illegible] प्रत्यय स्वयमेव है ऐसा मान लेनेपर पदार्थोंमें यह दोष नहीं दे सकते कि तब तो पदार्थोंमें अपने ही आप समान प्रत्ययका बोध हो जायगा। यहाँ सदृश [illegible] सिद्ध करनेके लिए अन्य सदृश परिणाम माननेकी जरूरत नहीं है। ये बातें तो हैं, [illegible] हैं। पदार्थोंमें समान प्रत्यय करनेके लिए तो सदृश परिणामका आलम्बन लेना पड़ता है, अर्थात् सदृश परिणाम देखकर पदार्थोंमें यह उनके समान है, यह ज्ञान

हो पाता है, लेकिन वे जो सदृश परिणाम हैं, धर्म हैं उनमे तो समान प्रत्यय होनेके लिए वह स्वय ही कारण पडता है। वहाँ अन्य समान परिणामोके कारणकी जरूरत नही होती। क्योकि पदार्थोकी ऐसी विभिन्न शक्तियाँ हैं, प्रतिनियत शक्तियाँ होती हैं। भावोमे जिसमें जिस प्रकारकी शक्ति है उसमे उस ही प्रकारकी है, अन्य प्रकारकी नही हो सकती। यदि पदार्थोंकी प्रतिनियत शक्ति नेही मानते तो हम यहाँ भी ऐसा दोष दे सकते हैं कि देखो घट पट आदिक पदार्थोंका जो स्वरूप और प्रकाश प्राप्त होता है वह दीपकसे हो रहा है। दीपक जल गया तो घट पट आदिक पदार्थ दिखने लगे। तो जैसे दीपकसे घट आदिकका स्वरूप और प्रकाश प्राप्त हो जाता है तो दीपक मे भी दीपकका प्रकाश अन्य दीपकोसे होना चाहिये। जैसे कि शकाकारने दोष दिया था कि व्यक्तियोमे समानता का प्रत्यय सदृश परिणामोसे हुआ करता है तो सदृश परिणामोमे भी जो समानताका प्रत्यय होता है वह दूसरे समान परिणामन होना चाहिए तो यह बात हम यहाँ भी लगा सकेंगे दोष दे सकेंगे कि यदि घट पट आदिक का स्वरूप और प्रकाश दीपकसे हुआ करता है तो दीपकमे भी जो प्रकाश होता है वह अन्य दीपकसे ही होना चाहिये।

समान और असमान प्रत्ययके होनेमे सदृश और विसदृश परिणामकी हेतुरूपता—शकाकार कहता है कि भाई विसदृश व्यक्तियोमे अथवा सभी पदार्थोमे विसदृशताका स्वभाव पडा है इस कारण अपने कारण कलापसे उत्पन्न हुए सारे पदार्थ विसदृश प्रत्ययके विषयभूत होते हैं अर्थात् उन समस्त पदार्थोमें विसदृशताका ज्ञान हो जाया करता है स्वभावसे ही, अब उत्तरमे कहते हैं कि ऐसा माननेपर तो हम समान पदार्थोंके सम्बन्धमे भी कह सकते हैं कि अपने कारण कलापसे उत्पन्न हुए सारे पदार्थ स्वभावसे ही समान प्रत्ययके विषय हुआ करते हैं, और यह बात तो बिल्कुल स्पष्ट है कि जैसे घट पट आदिकके प्रकाशके लिए दीपकका आलम्बन लेना पडा पर दीपकके प्रकाश जाननेके लिए अन्य दीपओंका आलम्बन तो नही लेना पडता। इसी तरह पदार्थमे समानताका ज्ञान करनेके लिए समान परिणामरूप धर्मका आलम्बन लेना पडता है। जैसे गाय गाय बहुत सी खडी हैं तो उनमें समानताका ज्ञान करनेके लिए सासना आकार स्तन आदिक एकसे जो हैं उनके ज्ञानका आलम्बन लेना पडता है किन्तु इन सदृश धर्मोमें सदृशता समझनेके लिए हमे अन्य समान परिणामोका आलम्बन नही लेना पडता। वह स्वय समान धर्म लिए हुए है तो पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होते हैं उनमे अनेक धर्म ऐसे हैं जो एक दूसरेसे विलक्षण हैं, यह बात हम परिक्षासे, प्रमाणसे जान जाते हैं तब उन पदार्थोमे यह उसके समान है, ऐसा जो ज्ञान होता है उस ज्ञानका कारण उन पदार्थोमें रहने वाला सदृश धर्म है, अर्थात् सदृश धर्मके ज्ञानके द्वारा हम उन पदार्थोंकी समानताका प्रत्यय करते हैं, न कि सामान्य नामका कोई अलग पदार्थ हो, और उसके सम्बन्धसे फिर पदार्थमे यह उसके समान है ऐसा ज्ञान किया जाता हो। अतः सामान्य पदार्थकी कल्पना करना युक्त नही है।

सामान्य पदार्थके निराकरणसे नित्य ब्राह्मण्य आदि जातिका भी निरसन — प्रमाणका विषय क्या है अथवा ज्ञानका विषय क्या है। प्रकरण मूलमे यह चल रहा था। प्रमाणका विषय बताया गया है सामान्य विशेषात्मक पदार्थ अर्थात् प्रमाणके द्वारा सामान्य विशेषात्मक पदार्थ प्रमेय होता है। इसपर एक शकाकारने यह कहा था कि पदार्थ स्वय सामान्य विशेषात्मक नही। सामान्य नामका एक स्वतत्र पदार्थ है। उस पदार्थका जब किसी पदार्थमे सम्बन्ध होता है तो उसमे सामान्य परखा जाता है। इसका बडे विस्तार सहित विवेचन किया गया और अन्तमे उस सामान्य पदार्थका खडन हो हुआ जिसे कि लोग स्वतत्र सत्तावान नित्य व्यापक मानते हैं। जैसे अनेक गायोमे जो गोत्व है, अनेक मनुष्योमे जो मनुष्यत्व है यह मनुष्यके सदृश परिणाम धर्मको देखकर कहा गया है। कही मनुष्यत्व नामका सामान्य पदार्थ अलग हो और उसका मनुष्यमे सम्बन्ध हो तब कहलाये मनुष्य या मनुष्यत्व कहलाये सो बात नही है। तो इसी तरहसे ब्राह्मणोमे ब्राह्मण्य सामान्य हुआ नित्य हुआ, समस्त ब्राह्मणोमे व्यापक होनेसे ब्राह्मण्य से ब्राह्मण कहलाए ऐसा कोई ब्राह्मण्य नामका सामान्य अलग नहीं है। और यह बात कुछ नई नही कही जा रही है। जैसे अनेक गायोमे गोत्व सामान्य कुछ अलग नही है इसी प्रकार ब्राह्मणोमे ब्राह्मण्य कोई अलग नही है कि जिसका सम्बन्ध जोडनेसे क्षत्रिय कहलाये। यह सभी पदार्थोंमे घटित कर सकते है। यहाँ ब्राह्मणका नाम लेनेसे कही इस तर्क वितकमे न पडना कि ब्राह्मण का खण्डन किया या ब्राह्मण्यका खण्डन किया। सभी व्यक्तियोमे सामान्य धर्म स्वय रहता है कोई सामान्य पदार्थ अलग नही रहता है। यहाँ ब्राह्मणमे ब्राह्मण्य जातिको बात कही जा रही है इसी प्रकार वैश्योमे घटा लो। वैश्योमे वैश्यत्व सामान्य हुआ। समस्त वैश्योमे जो सदृश धर्म पाया जाया है उसका कारण वैश्यत्व सामान्य कहा जाता है। तो यहाँ ब्राह्मणको दृष्टान्तमे लिया है अन्य किसीको भी दृष्टान्तमे ले सकते थे। तो समस्त ब्राह्मणोमे व्यापक नित्य ब्राह्मण्य सामान्य पदार्थ कुछ नही है क्योंकि ब्राह्मण्य जो कि समस्त ब्राह्मण व्यक्तियोमे व्यापक हुआ, प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोसे नही जाना जाता। कही ब्राह्मण आँखोसे देखा है किसीने ? इसी प्रकार अन्य प्रमाणोसे भी ब्राह्मण्य सामान्य पदार्थकी सिद्धि नही होती है।

ब्राह्मण्य स्वभावका प्रत्यक्षसे सिद्ध करनेकी आशका यहा शकाकार कहता है कि वाह ब्राह्मण्य की तो प्रत्यक्षसे ही प्रतिपत्ति हो जाती है। यह ब्राह्मण है, यह ब्राह्मण है ऐसा लोग प्रत्यक्षसे जान रहे हैं कही यह ज्ञान विपर्यय ज्ञान न हो जायगा क्योंकि उसमे कोई बाधक नही है। हर एक कोई अपने गावमे समझते हैं कि यह ब्राह्मण है यह ब्राह्मण है। इस ज्ञानमे कही बाधा नही नजर आती। और यह सशय ज्ञान भी नही है। सशय ज्ञान हुआ करता है अनेक कोटिका आलम्बन करनेसे कोई यह सोचे कि यह ब्राह्मण है यह वैश्य है तब सशय कहलाये। यह ब्राह्मण है, यह ब्राह्मण है एसा जो ज्ञान हो रहा है वह सशय ज्ञान नही है। फिर यह कैसे कह

रहे हो कि समस्त ब्राह्मण व्यक्तियोमे व्यापक ब्राह्मण्य कुछ नही है । देखो उन अनेक व्यक्तियोको देखकर झट कोई यह ज्ञान कर लेता है कि यह ब्राह्मण है इससे ब्राह्मण्य नामक सामान्य पदार्थ कुछ स्वतत्र है जिसके सम्बन्धसे ब्राह्मण सज्ञा होती है ।

ब्राह्मण्य जातिकी निर्विकल्प प्रत्यक्षसे सिद्धिका अभाव शकाका समाधान करते हुये शकाकारसे पूछा जा रहा है कि जो तुम ब्राह्मण्यका बोध प्रत्यक्षसे होना बता रहे हो तो क्या निर्विकल्प प्रत्यक्षमे ब्राह्मणका बोध होता है या विकल्प प्रत्यक्षसे ब्राह्मण्यका बोध होता है ? प्रत्यक्ष दो प्रकारके माने गए हैं ना—एक निर्विकल्प प्रत्यक्ष दूसरा सविकल्प प्रत्यक्ष । जैसे किसी पदार्थको निरखकर उसका स्वलक्षण ज्ञात हो गया पर उसके सम्बन्धमे कोई बुद्धि या विकल्प नही जग रहा और जब जग जाता है विकल्प कि यह अमुक चीज है तब विकल्पात्मक ज्ञान हुआ और इस प्रकार उस ज्ञानसे पदार्थ जाना गया समझा गया । तो यहा पूछ रहे हैं कि समस्त ब्राह्मण व्यक्तियोमे व्यापक ब्राह्मण्य नामक सामान्य पदार्थ क्या प्रत्यक्षसे जाना गया है तो निर्विकल्प प्रत्यक्षसे या सविकल्प प्रत्यक्षसे । निर्विकल्प प्रत्यक्षमे तो ब्राह्मण जाति जानी नही जाती क्योकि निर्विकल्प प्रत्यक्ष जाति आदिकको छूता ही नही है, निर्विकल्प प्रत्यक्ष तो पदार्थको जैसा है तैसा एक क्षणमे तुरन्त ज्ञान करता है । पश्चात् उस सम्बन्धमे कोई विकल्प उठता है तब वह निर्विकल्पज्ञान नही रहता । तो ऐसे निर्विकल्प ज्ञानमे जाति आदिक का ज्ञान होता ही नहीं है । और मान लो कि निर्विकल्प प्रत्यक्षसे ब्राह्मण जातिका बोध हो गया तो फिर वह ज्ञान निर्विकल्प न रहा । सविकल्प हो गया । उसमे विकल्प तो बना लिया निर्विकल्प ज्ञान तो प्रथम इन्द्रियसे जो कुछ भी नजर आता है । जो बच्चे या गूगेकी तरह जो ज्ञान होता है । शुद्ध वस्तुके विषयमे जो कुछ प्रतिभास होता है उसे बताते हैं कि निर्विकल्प प्रत्यक्ष है । ऐसे निर्विकल्प प्रत्यक्षसे जाति आदिकका ज्ञान कैसे हो सकता है ? वस्तुके धर्मोंके द्वारा जाति आदिकके द्वारा जिस बुद्धिसे फिर वह जाना जाता है वह सविकल्प प्रत्यक्ष कहलाया करता है । तो निर्विकल्प प्रत्यक्षसे ब्राह्मण्य जातिका बोध हो ही नही सकता ।

ब्राह्मण्य जातिकी सविकल्प प्रत्यक्षसे सिद्धिका अभाव—यदि कहो कि सविकल्प प्रत्यक्षसे ब्राह्मण्य जातिका बोध हो जायगा सो भी गलत है, क्योकि किसी भी पुरुषको देखकर जैसे यह सामान्य है यह झट समझ जाते हैं ऐसे ही कोई यह भी झट समझ जायगा कि यह ब्राह्मण है । जिस ब्राह्मणको किसीने अभी तक न देखा, न जाना, न पहिचाना । न जिसके विषयमे किसीने कुछ कहा वह पुरुष जब सामने दृष्टिमे आता है तो दिखने वाला मनुष्य है यह तो झट जाना जाता है पर ब्राह्मण हैं यह नही समझ होती । तो उसमें मनुष्यत्व तो है पर ब्राह्मणत्व नही है । किसी भी

पुरुष-मनुष्यत्व है , ब्राह्मणत्व वैश्यत्व, क्षत्रियत्व ये तो क्रियाके आधारपर लोगोकी समझमे है वस्तुमे तो नही है तो किन्ही भी ब्राह्मण व्यक्तियोका निरखकर कोई पुरुष इस तरह तो झट समझ जाता है कि यह मनुष्य है, यह मनुष्यत्वसे सहित है पर यह ब्राह्मण्यसे सहित है ऐसा कोई नही समझ पाता है, इससे सिद्ध है कि सविकल्पक प्रत्यक्षसे भी ब्राह्मण जातिका बोध नहीं होता।

पुरुषोंके ब्राह्मण्य ज्ञानपूर्वक ब्राह्मण्यकी सिद्धिकी शका व उसका समाधान— अब शकाकार कहता है कि जब लोगोको उसके पिता आदिकके ब्राह्मणत्वका ज्ञान होता है—इसके पिता भी ब्राह्मण हैं। तो पिता आदिकमे ब्राह्मण्यके ज्ञान पूर्वक जो उपदेश चला आया है या लोगोका ज्ञान प्रवाह चला आ रहा है, जैसे किसी गावमे रहने वाले ब्राह्मणके विषयमे सब लोग समझते हैं कि इसके पिता ब्राह्मण थे, इसके दादा ब्राह्मण थे तो पिता आदिकके ब्राह्मण्यके ज्ञान पूर्वक जो उपदेश चला आया, जो बात चली आ रही है उसकी सहायता लेकर जो वे व्यक्तिया हैं। वे कठ आदिक व्यक्तिया ब्राह्मण्यकी व्यञ्जक हैं। अर्थात् जिसके सम्बन्धमे पितृ-परम्परासे यह ब्राह्मण है यह ब्राह्मण है ऐसा उपदेश चला आया है तो वह व्यक्ति स्वय ब्राह्मण्य जाति को व्यक्त कर देता है और उनसे पहिले जो उनके पिता थे उनमें ब्राह्मण्य था यह उनके पिताके ब्राह्मण्यकी सहायता लेकर व्यक्त होता है और उनके दादा आदिक ब्राह्मण थे ऐसा जानकर उनसे व्यक्त होता है इसमे अनवस्था दोष भी नही आता कि फिर तो पिताको ब्राह्मण जान पाये तो लडकेको ब्राह्मण समझेंगे। पिताका ब्राह्मण्य दूसरेसे जानें उनका ब्राह्मण्य तीसरेसे जानें, यो पिताकी परम्परामे ब्राह्मण्यका ही निश्चय न हो सके और अनवस्था दोष हो जाय सो भी बात नही है, क्योकि यह तो अनादि परम्परा है बीज और अकुरकी तरह। जैसे अकुर बीजसे होता है। यह बीज और अकुरकी परम्परा अनादिसे चली आ रही है। इसी तरह ब्राम्हण की परम्परा भी अनादिसे है। यह ब्राह्मण अपने पितासे हुआ, वह ब्राह्मण अपने पितासे हुआ। तो उस रूप ब्राह्मण्यके उपदेशकी परम्परा अनादिकालसे चली आ रही है। इस कारण अनवस्था दोष भी नही है। इस प्रकार शकाकार कुल परम्परासे चले आए हुए उपदेशके अनुसार उन ब्राह्मण व्यक्तियोको ब्राह्मण्य जातिका व्यञ्जक बता रहे हैं। इसके समाधानमे कहते हैं कि पिता आदिकके ब्राह्मण्यके ज्ञानपूर्वक उपदेशका सहाय लेकर यह ब्राह्मण व्यक्ति ब्राह्मण्यमे व्यञ्जक नही हो सकता, क्योकि पहिले यह बताओ कि पिता आदिकके ब्राह्मण्यका जो ज्ञान होता है वह प्रमाण है या अप्रमाण है ? जैसे उपदेश परम्परामे वर्तमान ब्राह्मणमे ब्राह्मण्य जातिका बोध कर रहे हो और कह रहे हो कि यह ब्राह्मण्य जाति एक स्वतत्र पदार्थ है और इसका सम्बन्ध होनेसे ब्राह्मण कहलाया है। यह पिता आदिकके ब्राह्मण्यका ज्ञान भी प्रमाणभूत है अथवा अप्रमाण है ? यदि कहो कि अप्रमाण है तब फिर उससे, अप्रमाण ज्ञानसे वर्तमान ब्राह्मण्य व्यक्तिमे ब्राह्मण्यकी सिद्धि कैसे कर सकते हो ? नही

तो किन्ही भी मिथ्याज्ञानोसे किसी भी अर्थका ज्ञान कर लिया जायगा । यदि कहो कि पिता आदिकके ब्राह्मण्यका ज्ञान प्रमाणरूप है तो किस प्रमाणसे जाना पिता आदिकके ब्राह्मण्यको ? क्या प्रत्यक्ष प्रमाणसे जाना या अनुमान प्रमाणसे जाना ? यदि कहो कि प्रत्यक्ष प्रमाणसे जाना तो बात गलत है। उसीका तो अभी निषेध किया गया है कि प्रत्यक्षज्ञान दो प्रकारके होते है - निर्विकल्प और सविकल्प निर्विकल्प तो जाति आदिकको छूता ही नही है और सविकल्प ज्ञान भी पदार्थमे जो धर्म पाया जा रहा उसे ही तो समझेगा जैसे मनुष्यको देखकर मनुष्यत्व आदिक जाना जायगा पर ब्राह्मण्य न समझा जायगा । तो न निर्विकल्प ज्ञानसे पिता आदिक ब्राह्मण्य का ज्ञान हो सकता है और न सविकल्प प्रत्यक्षसे पिता आदिकके ब्राह्मण्यका ज्ञान हो सकता है । प्रत्यक्ष प्रमाण ब्राह्मण्यका ग्राहक है ही नही ।

ब्राह्मण्य सामान्यकी प्रत्यक्षसे सिद्धि करनेमे बाधायें—अब और भी सुनो—ब्राह्मण्य जातिको यदि प्रत्यक्षसे सिद्ध करोगे तो अन्योन्याश्रय दोष होगा । जब ब्राह्मण्य जाति प्रत्यक्षपनेसे सिद्ध हो जाय, ब्राह्मण्य जातिकी प्रत्यक्षता सिद्ध हो जाय तब तो उसके सम्बन्धमें कहे गए उपदेशमें प्रत्यक्ष हेतुताकी सिद्धि होगी । याने वह उपदेश प्रत्यक्ष ज्ञानकी सहायता करने वाला बनेगा । और जब यथार्थ उपदेशकी प्रत्यक्ष हेतुता सिद्ध हो जाय तब ब्राह्मण्य जातिकी प्रत्यक्षता सिद्ध होगी । यो अन्योन्याश्रय दोष होगा । ब्राह्मण्य जातिका प्रत्यक्षपना बुद्धिसे व्यवस्थित बनाते हो कि चू कि लोग उसके बारेमे उपदेश सुनते आये हैं कि इसके पिता ब्राह्मण थे, इसके दादा ब्राह्मण थे, तो जैसे एक उपदेशके बलसे ब्राह्मण्य जातिका प्रत्यक्षपना व्यवस्थित करते हो तो ब्रह्म आदिक अद्वैतका प्रत्यक्षपना भी क्यो नही सिद्ध कर लेते ? यदि आप अभीष्ट सिद्ध करोगे तो कुछ अपना अनिष्ट भी सिद्ध हो जायगा । यदि कहो कि अद्वैत आदिकके उपदेश तो प्रत्यक्ष प्रमाणमें बाधित है कहा है अद्वैत पदार्थ भिन्न भिन्न तो है इसलिये अद्वैत आदिकका उपदेश प्रत्यक्षका अग नही बन सकता है । तो उत्तर देते हैं कि यही बात तो ब्राह्मण और ब्राह्मण्यमे घटा लेना चाहिए । ब्राह्मण्य जातिसे भिन्न यह शरीर है जिसका ग्रहण करने वाला प्रत्यक्ष है उस प्रत्यक्षसे ही उपदेश मे बाधा आती है । किसी ब्राह्मणको निरखकर देखने वाला पुरुष जैसे शरीर पिण्डको जान जाता है ऐसे ही ब्राह्मण्यको कहा जान पाता ? अतः वह उपदेश प्रत्यक्ष बाधित है । यदि कहो कि ब्राह्मण्य जाति तो अदृश्य है इसलिये प्रत्यक्षसे बाधा नहीं आ सकती तो उत्तरमे कहते कि वाह उसे अदृश्य भी बता रहे और फिर कह रहे कि ब्राह्मण्य जातिका प्रत्यक्ष भी होता है तो किसी भी असत्यको सिद्ध करनेके लिए जिस असत्यका आश्रय करना होता, आश्रय ले लिया जाता यह बात शोभा नही देती । तो यो सामान्य पदार्थकी तरह ब्राह्मण्य नामक सामान्य पदार्थ अलग नित्य व्यापक हो सो बात नहीं ।

ब्राह्मण शब्द प्रवृत्तिनिवृत्तिको अभ्रान्त माता पिताको कारण मानने का निराकरण —ब्राह्मण्य जातिके सम्बन्धमे और भी सुनो। ब्राह्मण शब्द है औपाधिक। अर्थात् एक विशेषणरूप वचन है। तब उसका कोई निमित्त अवश्य कहना चाहिए। और वह निमित्त क्या माता पिताकी अभ्रान्तता है या ब्रह्मसे उत्पत्तिका होना है। अर्थात् यह ब्राह्मण है ऐसा सिद्ध करनेमे क्या हेतु है क्या यह हेतु है कि इसके माता पिता अभ्रान्त थे, इस ब्राह्मणकी सिद्धि कुल परम्परासे है अथवा ब्राह्मण की ब्रह्मसे उत्पत्ति हुई है। इन दोनों पक्षोंमेसे माता पिताकी अभ्रान्तता तो कह नही सकते क्योंकि समय अनादि कालसे चला आ रहा है। उस अनादिकालमें माता पिता की पुरुषोंकी अभ्रान्तता प्रत्यक्षसे ग्रहण नही की जा सकती, क्योंकि प्रायः स्त्रियाँ कामसे आतुर होनेके कारण उनके जीवनमे भी व्यभिचार देखा जाता है फिर जन्म के कारण ब्राह्मण्यका निश्चय कैसे हो सकता है ? इस ही जीवनमे देखा जाता है कि कोई ब्राह्मणी किसी अन्य वैश्य शूद्र आदिकसे भी सम्बन्ध कर लेती है तब उसकी सन्तानको हम कैसे समझें कि यह ब्राह्मण है ? अभ्रान्त और भ्रान्त माता पिता की सन्तानोंमे कोई भिन्नता तो देखी नही जाती। जैसे गधी और अश्वसे उत्पन्न होने वाले खच्चरमे विलक्षणता देखी जाती है। उसका आकार न गधा जैसा पूर्णतया रहता है और न घोडे जैसा पूर्णतया रहता है। इसी तरह ब्राह्मणीमे ब्राम्हण और शूद्र दोनोसे उत्पन्न हुए सतानमे कुछ विलक्षणता तो नजर आती नही तब कैसे निश्चय हो सकता है कि यह ब्राम्हण है तथा इसके माता पिता शुद्ध ब्राम्हण चले आये हैं। साथ ही यह बात है कि शंकाकारके सिद्धान्तमे स्वय माना गया है कि क्रियाका लोप हो जानेसे अथवा शूद्रका अन्न आदिक खा लेनेसे ब्राम्हण जातिका विनाश हो जाता है। कहा भी है उनके ग्रन्थोंमें कि शूद्रका अन्न भक्षण करनेसे, शूद्रका सम्बन्ध कर लेनेसे शुद्रके साथ भाषण करनेसे इस जन्ममे भी वह ब्राम्हण शूद्रपनेको प्राप्त होता है। तो अब नित्य ब्राम्हण्य तो न रहा। क्योंकि क्रियाके लोपमे ब्राम्हण्य जातिका लोप स्वय मान लिया गया है फिर नित्य ब्राम्हण जाति कहकर उसके सम्बन्धसे ब्राम्हण सिद्ध करना भी नित्य व्यापक ब्राम्हण जाति मानना कैसे युक्त है।

जातिपदार्थवादका सामान्यपदार्थवत् निराकरण—भैया ! यहा जितना भी कथन चल रहा है वह कुछ ब्राम्हणसे विरुद्ध होने की बात नहीं कही जा रही। इसी प्रकार क्षत्रियमे क्षत्रियत्व, वैश्यमे वैश्यत्व, शूद्रमें शूद्रत्वकी भी बात घटित करना चाहिये। यहां कहनेका मूल प्रयोजन यह है कि व्यक्तियोमे व्यापक नित्य एक सामान्य जाति नही रहती किन्तु व्यक्तियोके ही समान परिणाम देखकर उनकी योग्य क्रिया आचरण देखकर ब्राम्हणत्व, वैश्यत्व आदिककी प्रतिष्ठा होती है और फिर जो ऐसा कहा है कि ब्राम्हण शब्द की प्रवृत्ति और निवृत्तिका कारण माता पिताकी अभ्रांतता है, माता पिताके विषयमें भ्रम रहता और यह ज्ञान रहता कि यह शुद्ध ब्राम्हण है तो

उससे उनकी सतानमें भी यह ब्राम्हण है, ऐसी प्रवृत्ति हो जाती है और जो उन सतान नही है, अन्यकी सतान हैं उनमें यह ब्राम्हण नही है ऐसी निवृत्ति हो जाती। ऐसा कहने वाले लोग ब्रम्ह व्यास आदिक व्यक्तियोमे ब्राम्हण्यकी सिद्धि कैसे कर सकें क्योकि उनकी अज्ञात माता पितासे उत्पत्ति नही मानी गई है। अनेक कथानक ऐसे हैं जिनकी उत्पत्ति अन्य तरहसे मानी है और उन्हें ब्राम्हण सज्ञा दी गई है, तो इस ब्राम्हण शब्दकी प्रवृत्ति और निवृत्तिका कारण माता पिताकी अज्ञानता सिद्ध नहीं हो सकती है। एक तो माता पिताकी अज्ञातता नियमित नही बन सकती है, उनमें व्यभिचार भी देखा जाता है और फिर स्वय भी क्रियालोपसे शूद्र सम्पर्कमे ब्राम्हण जातिका विनाश माना है, और जो ब्राम्हण ब्राम्हणीसे उत्पन्न नही हुए ऐसे लोगोको भी ब्राम्हण सज्ञा उनके शास्त्रोमें दी गई है। तब कैसे यह सिद्ध हो सकता है कि ब्राम्हण शब्दकी प्रवृत्ति और निवृत्तिका निमित्त माता पिताकी अज्ञातता है।

ब्रह्मप्रभवत्वको ब्राह्मणशब्दप्रवृत्तिनिवृत्तिनिमित्त माननेका निराकरण

यदि कहो कि ब्राम्हण शब्दकी प्रवृत्ति इस कारण होती है कि चूंकि वह ब्रम्हसे उत्पन्न हुआ है तो यह बात युक्त नही है क्योकि जितने भी प्राणी है सभीकी ब्रम्हसे उत्पत्ति मानी गई है शङ्काकारके सिद्धान्त मे, तो सभी जीवोको ब्रम्हसे उत्पत्ति होनेके कारण ब्राम्हण शब्दसे कह दिया जाना चाहिए। ऐसा भी नही कह सकते कि जो ब्रम्हके मुखसे उत्पन्न हुआ है वह तो ब्राम्हण है, अन्य लोग ब्राम्हण नही हैं यह भाव प्रजाजनोंमें यों नही बन सकता कि सभी ब्रम्हसे उत्पन्न हुए हैं। जैसे कि एक वृक्षसे उत्पन्न हुए फल मूलमें, मध्यमें शाखामे भेदको प्राप्त नही होते, एक वृक्षसे जो फल उत्पन्न होते हैं वे फल समान हैं, उनमे भेद नही डाला जा सकता है। इसी प्रकार एक ब्रम्हसे उत्पन्न हुए इन प्राणियोमे भेद नही डाला जा सकता है। शकाकार कहता है कि एक ही वृक्षसे उत्पन्न हुए पदार्थोंमें तो भेद देखा गया है। जैसे नाग-वल्लीके पत्ते होते हैं, वे पत्ते यदि नाग वल्लीके वृक्षोके मूलमें लगे हुए होते हैं तो वे पत्र कठमे श्रम उत्पन्न कर देते हैं। कठका स्वर खराब कर देते हैं और यदि उस ही नागवल्ली पेडके मध्यके ऊपरके पत्ते खाये जायें तो वे कठको सुस्वर बना देते हैं। इस प्रकारका भेद तो देखा जाता है। इसी तरह यहाँ प्रजाका भी भेद बताना सम्भव है कि जो ब्रम्हके मुखसे उत्पन्न हुए है वे तो ब्राम्हण हैं और अन्य अगसे उत्पन्न हुए हैं वे ब्राम्हण नही हैं। उत्तर देते हैं कि यह भी बात ठीक नही है क्योकि नागवल्लीके पत्र तो जघन्य और उत्कृष्ट प्रदेशोमे उत्पन्न हुए हैं इसलिए पत्तोंमें भी भेद किया जा सकता है, अथवा जैसे गन्ना बिल्कुल जडमे नीरस होता है मध्यमे सरस होता है तो उस गन्नेके भेद के भी हिस्से हैं, न्यारे न्यारे कोई जघन्य हिस्सा है कोई उत्कृष्ट। तो जघन्य और उत्कृष्ट प्रदेशोमें उत्पन्न होनेसे पत्रोमें, रसोंमें भेद सम्भव है पर ब्रम्हसे उत्पन्न होने वालेमें यह भेद यों सम्भव नही कि क्या ब्रम्हके भी जघन्य और उत्कृष्ट प्रदेश होते हैं। किसी हिस्सेमे ब्रम्ह जघन्य है किसीमे उत्कृष्ट क्या ऐसा अन्तर पडा हुआ है। यदि ऐसा

अन्तर पड़ा हुआ है तो कहीं ब्रम्ह जघन्य हो गया कहीं उत्कृष्ट हो गया। तो यह तो एक बड़े दोषकी बात है कि एक व्यापक एक स्वरूप ब्रम्ह किसी हिस्सेमे जघन्य है किसी हिस्सेमे उत्कृष्ट है।

ब्रह्ममे ब्राह्मण्य होने व न होनेके विकल्पोंका विचार— अच्छा फिर यह बताओ कि जैसे ब्रम्हसे उत्पन्न होनेसे ब्राम्हण संज्ञा दी जा रही है , ब्रम्हमें भी खुद ब्राम्हण्य है या नहीं ? यदि कहो कि ब्रम्हमे ब्राम्हण्य नहीं है तो जो ब्राम्हण्यसे रहित है ऐसे ब्रम्हसे ब्राम्हणकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है ? जैसे कि जो मनुष्य नहीं है ऐसे किसी भी प्राणीसे मनुष्यको उत्पत्ति तो नहीं घटित होती। इसी तरह ब्राम्हण्य रहित ब्रम्हसे ब्राम्हणकी उत्पत्ति घटित नही हो सकती। यदि कहो कि ब्रम्हमे भी ब्राम्हण्य है तो यह बतलावो कि ब्रम्हके सर्व हिस्सोमे ब्राम्हण्य है या ब्रम्ह के केवल मुख प्रदेशोमें ही ब्राम्हण्य है ? यदि ब्रम्हके सर्व प्रदेशोमे ब्राम्हण्य है तो फिर ब्रम्हसे उत्पन्न हुए प्राणियोके भी भेद भाव न होना चाहिये कि यह अमुक वर्णका है क्योकि ब्रम्हके सर्व प्रदेशोमे ही ब्राम्हण्य बसा हुआ है। तब फिर किसी भी प्रदेश से कैसे भी जीव उत्पन्न हुए हो उनमे भेद नही हो सकता। यदि कहो कि ब्रम्हके मुख प्रदेशोमे ही ब्राम्हण्य रहता है अन्य जगह नही रहता तो इसका भाव यह हुआ कि ब्रम्हके मुखमें तो ब्राम्हण्य है और अन्य प्रदेशोमे उसकी शूद्रता है। जब एक ही ब्रम्ह कही शूद्र है कही ब्राम्हण है तो फिर इसके पैर आदिक बदनीय न होने चाहिएँ क्योकि ब्रम्हके पद तो अब शूद्र हो गए। ब्रम्हका मुख हो मात्र ब्राम्हण रहा। तो जैसे किसी पुरुषके हीन अग वदनीय नही होते हैं इसी प्रकारसे इस ब्रम्हके बाद चरणादिक भी वदनीय न रह सकेंगे, क्योकि अन्य सब हिस्सोमे तो यह शूद्र हो गया केवल एक मुख ही ब्राम्हण्यसे युक्त मान लिया तो वह ही वंदनीय रहे याने ब्रम्हके मुखको ही नमस्कार करना चाहिये चरणोको नही। इससे यह बात सिद्ध नही हो सकती कि ब्रम्हसे उत्पन्न होनेके कारण यह ब्राम्हण है इस प्रकारका बोध होता है अथवा यह ब्राम्हण है ऐसी प्रवृत्ति और निवृत्तिमे कारण ब्रम्हसे उत्पन्न होना है।

ब्रम्हमुखसे ब्राम्हणोत्पत्ति माननेके दोनो विकल्पोमे अन्योन्याश्रय दोष— अब यह बतलावो कि ब्रम्हके मुखसे ब्राम्हण उत्पन्न हुआ। इसका तात्पर्य क्या है ? क्या ब्राम्हण ही ब्रम्हके मुखसे उत्पन्न हुआ यह अर्थ है या ब्रम्हके मुखसे ही वह ब्राम्हण उत्पन्न हुआ यह अर्थ है ? कोई भी पक्ष लो दोनो पक्षोमे अन्योन्याश्रय दोष होता है। अर्थात् जब ब्राम्हणत्व सिद्ध हो ले तब ब्राम्हणकी ही व ब्रम्हके मुख से ही जन्मको सिद्धि कहलाये और जब ब्रम्हके मुखसे ही जन्मकी सिद्धि हो ले तब ब्राम्हणत्वकी सिद्धि हो। इस प्रकार अन्योन्याश्रय दोष होता है। यदि कहो कि जन्म से तो ब्राम्हण्यकी सिद्धि हो जायगी और ब्रम्हके मुखसे ही ब्राम्हणके जन्मकी सिद्धि

हो जायगी तब दोष न रहेगा। उत्तर देते हैं कि यह बात सही नही है, क्योंकि ब्राम्हण्यकी सिद्धि ही तो प्रत्यक्षसे प्रतीत नही हो रही है। जैसे कि खण्ड मुण्ड आदि अनेक गाय हैं, उन गायोमे यह गाय है, यह गाय है ऐसे सदृश परिणामरूप गोत्वकी प्रतीति प्रत्यक्षसे हो जाती है, ये सब गायें हैं इस प्रतीतिकी तरह देवदत्त आदिक अनेक व्यक्ति खडे हैं उनमे ब्राम्हण जातिकी प्रत्यक्षसे प्रतीति तो नही होती है। हाँ, मनुष्यकी प्रतीति जरूर हो जाती है कि ये सब मनुष्य हैं। तो मनुष्यत्व सामान्यकी तो प्रत्यक्षसे प्रतीति हो जायगी पर ब्राम्हण्यकी प्रतीति प्रत्यक्षसे नही होती।

ब्राह्मण्यकी प्रत्यक्षसे प्रतीति माननेपर सशयज्ञान व गोत्रोपदेश होने की असभवता—यदि प्रत्यक्षसे ब्राम्हण्यकी प्रतीति हो जाती तब फिर यह सशय कभी न होता कि यह ब्राम्हण है अथवा अन्य है। ऐसा सशय भी तो देखा जाता है तो मालूम होता है कि किसी भी पुरुष मे ब्राम्हणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व, शूद्रत्व य सामान्य जातिके पदार्थ नही पडे हुए हैं। लेकिन लोकमे ही क्रियाके योगसे उस प्रकार का व्यवहार होने लगता है। कोई उस प्रकारको जाति सर्वव्यापक नित्य हो और उसके सम्बन्धसे वे ब्राम्हण क्षत्रिय आदिक कहलाने लगे ऐसी बात यहाँ नही सम्भव है। यदि प्रत्यक्षसे मनुष्यत्वकी तरह ब्राम्हण्यकी प्रतीति होती तो यह ब्राम्हण है अथवा नही, इस प्रकारका सशय न हो सकता था, और तब यह ब्राम्हण ही है ऐसा सिद्ध करनेके लिए गोत्र आदिकका उपदेश देना भी व्यर्थ हो जायगा। जैसे मनुष्योको देखकर जाना जाता है कि इसमे मनुष्यत्व है, ये मनुष्य हैं, तो मनुष्यकी सिद्धि करने के लिए फिर यहाँ वहाँ कही कोई उपदेश तो नही ढूढा जाता। यह मनुष्य है अथवा गाय है? ऐसा सशय तो नही होता। ऐसा निश्चय करनेके लिए उसके गोत्र आदिकके उपदेशोकी अपेक्षा तो नही होती। तो मनुष्यको देखकर जैसे मनुष्यत्वका ज्ञान सुगम हो जाता है इस तरहसे तो यदि ब्राम्हणका भी ज्ञान सुगम हो जाय तब फिर उसके लिए उसका गोत्र बताना, माता पिताका कुल बताना यह सब व्यर्थ हो जायगा। जब प्रत्यक्षसे ही ब्राम्हण्य दिख गया तो अन्यकी फिर आवश्यकता क्या रहेगी? किन्तु चलते हैं गोत्रादिकके उपदेश। इससे सिद्ध होता है कि ब्राम्हण्य जाति अलग सत्त्व नही रखती। क्षत्रियत्व वैश्यत्व आदिक सभी कुछ अलग नही है किन्तु व्यक्तियोमे ही किसी साधर्म्यसे उनको ब्राम्हण आदिक कहा जाता है।

परोपदेशसहाय प्रत्यक्षसे ब्राम्हण्य प्रतीति माननेकी असिद्धि और विकल्पपृच्छना—यदि ब्राम्हणमे ब्राम्हण्य जाति मोजूद है और उसकी प्रत्यक्षसे प्रतीति होती है तब तो उस ब्राम्हणका ब्राम्हण्य समझनेके लिए उसके विषयमें गोत्रादिकका उपदेश करना व्यर्थ रहा क्योंकि ब्राम्हण्य तो प्रत्यक्षसे ज्ञात हो जाता है जैसे कि मनुष्यको देखकर यह मनुष्य है इस प्रकारका निश्चय कहीं किसीके उपदेशकी अपेक्षा नही रखता इसी तरह ब्राम्हणको देखकर यह ब्राम्हण है, ऐसा समझनेके लिए किसी

के उपदेशकी आकांक्षा न होना चाहिये। इसपर शकाकार रहता है कि जैसे स्वर्णादिक दूसरेके उपदेशकी सहायता लेने वाले प्रत्यक्षसे जाने जाते है इसी प्रकार ब्राम्हण्य जाति भी दूसरेके उपदेशका सहाय रखने वाले प्रत्यक्षसे जानी जाती है। शकाकारका यह कहना है कि यह जो दोष दिया कि ब्राम्हणमे ब्राम्हण्य जाति हो तो ब्राम्हणको देखते ही ब्राम्हण्य जातिका बोध हो जाना चाहिए, इसके उत्तरमे शकाकारने यह कहा है कि जैसे स्वर्ण ही है ऐसी परके उपदेशकी सहायता लेकर प्रत्यक्षसे जा ा जाता है। अथवा कसौटीपर कस करके उसका रग वर्ण देखकर प्रत्यक्षसे जाना जाता है। तो जैसे स्वर्ण प्रत्यक्षसे तो जाना गया पर कुछ सहायता लेकर, ऐसी ही ब्राम्हण्य प्रत्यक्षसे जाना गया पर कुछ सहायतासे। उत्तर देते हैं कि यह बात अयुक्त है क्योकि प्रत्यक्षसे जो कुछ इसमे दिख रहा है याने पीलापन मात्र दिखता है तो पीलेपन मात्रका नाम स्वर्ण नही है। यदि प्रत्यक्षसे जो पीलापन दिख रहा है वही स्वर्ण हो जाय तो पीतल आदिक भी स्वर्ण हो जायेंगे पर स्वर्णमे कुछ विशेषता है। जो स्वर्णत्व है वह प्रत्यक्षसे नही जाना गया अन्यथा प्रत्यक्षसे हो स्वर्णत्व जान लिया तो फिर उसका पिघलाना, जलाना, छेदना, कसौटीपर कसना ये सब बातें व्यर्थ हो जायेगी। तो जैसे स्वर्ण करके उपदेशकी सहायता लेकर या कसौटीपर कसना, दाह करना, छेद करना आदिककी सहायता लेकर प्रत्यक्षसे जाना जा रहा है इस तरहसे ब्राम्हण जातिमे भी कोई इस प्रकारका सहाय हो तो बताओ। यहा प्रसग चल रहा है कि पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होता है। तो सामान्य तत्त्व और विशेषतत्त्व ये पदार्थके ही धर्म हैं। इसपर शकाकारने यह कहा था कि सामान्य नामका एक स्वतन्त्र पदार्थ ही है नित्य एक सर्वव्यापक। उसके सबन्धसे पदार्थोंके सामान्यका ज्ञान होता है। उसका निराकरण करनेके बाद अब एक उपसहार रूपमे यह प्रसग चला दिया गया है। इसी तरह क्षत्रियमे क्षत्रियत्व जाति ब्राम्हणमे ब्राम्हणत्व जाति आदिक बसी हुई है। यदि इनमे जाति बसी हुई है तो किसी ब्राम्हणको देखते ही झट सबको समझ जाना जाना चाहिए कि यह ब्राम्हण है क्योकि इसमे जाति पडी भई है, लेकिन जानने वाला मनुष्य समझ नही पाता है। जानकारी हो उसके सबन्धमे या कोई बताये तब ही ब्राम्हण समझ पाता है। तो इसपर शकाकार यह कह रहा कि ब्राम्हणको हम प्रत्यक्षसे तो समझ जाते हैं लेकिन उसके सबन्धमे दूसरे उपदेशकी, बतानेकी सहायता लेनी पडती है अथवा कसौटीसे कसने आदिकको सहायता लेनी पडती है। प्रत्यक्षसे जानकर ऐसे स्वर्ण को जैसे हम दूसरेकी सहायता लेकर जान पाते हैं इसी तरह ब्राम्हणको प्रत्यक्षसे जानकर भी हमे कुछ थोडीसी दूसरेके पूछताछ की सहायता लेनी पडती है। तो यहा शकाकारसे यह पूछा जा रहा है कि ब्राम्हण्य जातिके परिज्ञानमे जो कुछ सहायता तुम्हे लेनी पड रही है वह सहायता तो बताओ कि किसका सहाय लेते हो? आकारविशेषका सहाय लेते हो या अध्ययन आदिकका।

ब्राम्हण्यप्रत्यक्षसे विकल्पित साहाय्यकी अकिञ्चित्करता—जैसे स्वर्ण

मे स्वर्णत्व समझनेके लिए कसौटीकी सहायता ली, जलानेकी सहायता ली । काटने की सहायता ली इसी तरह ब्राम्हणको ब्राम्हण समझनेके लिए किसकी सहाय लेनी पड़ती है ? क्या आकार विशेषका सहाय लेना पड़ता है ? यह बात तो गलत है क्योंकि आकार विशेष तो अब्राम्हणमे भी सम्भव है । जो आकार ढाचा आंख कान आदिक जिस प्रकारका ढग एक ब्राम्हणमें पाया जा सकता वहा दूसरेमे भी पाया जा सकता । इसलिये आकार विशेषकी सहायता लेकर प्रत्यक्षसे ब्राम्हण जाना जाता है यह बात तो युक्त न रही । यदि कहो कि अध्ययन और क्रिया विशेषकी सहायता लेकर प्रत्यक्षसे ब्राम्हणका ब्राम्हण्य जाना जाता है तो यह बात भी ठीक नही है । क्योंकि अपनी जातिको छिपाकर कोई शूद्र भी अन्य देशमे ब्राम्हण बनकर वेदका अध्ययन और वेदमें बतायी हुई क्रियाओको करता है तो वहा यदि फिर हर एक किसी को ब्राम्हण समझें तो ब्राम्हण जाति तो उसमे पडी नहीं है तुम्हारे कथनानुसार । और ब्राम्हण कहलाने लगा इससे ब्राम्हण जातिका प्रत्यक्षसे परिज्ञान नही होता । और जब ब्राम्हण्य जातिका प्रत्यक्षसे ज्ञान नही होता तो जैसे कि शकाकारके सिद्धान्तमें माना गया है कि ब्राम्हण को ही व्रतबन्धन, दीक्षा देना चाहिए, वेदका अध्ययन कराना चाहिए यह बात कैसे सिद्ध होगी ? जब प्रत्यक्षसे ब्राम्हण भी न समझा गया तो फिर नियम कैसे लागू हो सकेगा ? पता नही, न हो वह ब्राम्हण । ब्राम्हण महिलायें भी तो किसी शूद्रादिकसे सम्बन्ध बना सकती हैं । तो उस शूद्रके सम्बन्धसे उत्पन्न हुई सतान ब्राम्हण कहाँ रही ? और उसमे व्रत वगैरहका नियम कैसे बनेगा ? तो ब्राम्हण जाति कोई स्वतन्त्र पदार्थ है नित्य व्यापक और उसका ब्राम्हण मे सम्बन्ध है तब वह ब्राम्हण है यह बात युक्त नही है । यह भेद तो क्रियाके आधार पर है । उस क्रियासे उस प्रकारके सस्कारको जो लिए हुए है, थोड़ोसी परम्परा भी देख ली जाती है उससे ये सतानें होती हैं जीव पुद्गल आदिककी तरह कोई जाति नामका पदार्थ सत्तावान नित्य व्यापक हो और उससे फिर व्यवस्था बनायी जाती हो ऐसी बात नही है ।

पदत्व हेतुसे ब्राम्हण्य जाति सिद्ध करनेका शकाकारका प्रयत्न— अब शकाकार कहता है कि ब्राम्हमे ब्राम्हण्य जातिका अनुमानसे भी साधन बनता है । जैसे अनुमान प्रयोग है उसका ब्राम्हण पद व्यक्तिसे व्यतिरिक्त एक निमित्तके द्वारा अथवा निमित्तरूप जो अभिधेय है उससे सम्बद्ध है क्योंकि पद होनेसे पट आदिक पद की तरह । ब्राम्हण यह एक पद है, शब्द है विशेषणरूप है तो व्यक्तिसे अतिरिक्त एक कोई निमित्त है उसका । जैसे कि ब्राम्हणका निमित्त है ब्राम्हण्य, वही हुआ एक अभिधेय प्रकृतमे कहा गया । उससे सम्बद्ध है याने ब्राम्हण्यसे सम्बद्ध हैं पद होनेसे । जैसे पट पटत्वसे सम्बद्ध है क्योंकि पद होनेसे । इसी तरह ब्राम्हण ब्राम्हण्यसे सम्बद्ध है पद होनेसे । यह हेतु असिद्ध नही है क्योंकि पक्षमे यह हेतु विद्यमान है । जैसे पटमे पटत्व है, ब्राम्हणमें ब्राम्हणत्व है इस कारण यह हेतु असिद्ध नही और विरुद्ध भी

नही क्योकि विपक्षमे पाया नही जाता । अनेकातिक दोष भी इसमे नहीं क्योकि विपक्ष मे और पक्षमें दोनोमें पाया जाय ऐसा नही है । पक्षमे पाया जाता, विपक्षमे नही पाया जाता और दृष्टान्त जो दिया है पटका वहिन, उसमे साध्य पाया जा रहा है इस कारण यह भी नही कह सकते कि दृष्टात साध्यसे रहित है, पटमे पटत्व है, अन्य घटादिक हैं, उनमे उनका सामान्य है । यदि सामान्य जाति न मानोगे तो व्यक्ति तो हैं अनन्त । तब तो अनन्त काल भी व्यतीत हो जाय तो भी सबन्ध ग्रहण न हो सकेगा । और, केवल सामान्य जाति माननेसे सबन्ध ग्रहण हो सकता है । जैसे जितनी गाये है वे सब गायें कहलाती हैं । तो गोत्व सामान्य पदार्थ है इससे उन अनगिनते गायो का भी तुमने एक गाय शब्दसे सबन्ध जोड दिया । इसलिये गोत्व नामका सामान्य पदार्थ न मानोगे तो अनगिनती गाये हैं उन सबको आप गाय गाय कह नही सकते क्योकि कब तक जानोगे ? जब सब गायें जान चुके तब उनसे गोत्वका सबन्ध जोडा जा सके । इस प्रकार शकाकारका यह कथन है कि सामान्य होनेसे पदार्थोंकी जाति समझनेकी व्यवस्था बनती है ।

पदत्व हेतुसे ब्राम्हण्यजातिकी असिद्धि - अब उक्त शकाका समाधान करते हैं कि अनुमान प्रयोग करके ब्राम्हणको ब्राम्हण्य निमित्तसे सबद्ध सिद्ध करना युक्त नही है क्योकि वहा पर व्यक्तिसे जुदा कोई एक निमित्त अभिधेय सबन्धित है यह बात प्रत्यक्ष बाधित है । अर्थात् ब्राम्हण पद । अभी तो व्यक्तिकी बात चल रही थी कि ब्राम्हण व्यक्तिमे ब्राम्हण्यका सबन्ध है अब शकाकार ब्राम्हण पदसे बात चला रहा है । तो प्रथम तो जो ब्राम्हण शब्द है, पद है वह ब्राम्हण्यसे सम्बन्धित है, यह तो प्रत्यक्षबाधित बात है । और, फिर ब्राम्हण व्यक्तिया भी ब्राम्हण व्यक्तिसे व्यतिरिक्त एक ब्राह्मण निमित्तसे सम्बद्ध हैं यह भी बात प्रत्यक्ष बाधित है जिन भी व्यक्तियोको हम निरखते हैं उनको मनुष्यत्वके रूपमे निरखते हैं । ब्राह्मण्यसे रहित केवल सामान्य रूपसे हम उनको प्रत्यक्षसे जानते हैं । फिर दूसरा दोष है इस अनुमानमे कि जो पक्ष दिया गया है वह ब्राह्मणवाद ब्राह्मण्यसे अभिसबद्ध है यह अप्रसिद्ध विशेषणवाला पद है क्योकि शकाकारके यहां भी और जैन आदिकके वहा भी दृष्टान्तमे व्यक्तिसे व्यतिरिक्त एक निमित्त अभिधेयसे सम्बद्धता नही मानी गयी है । क्योकि व्यक्तियोसे व्यतिरिक्त सामान्य माना गया है, अर्थात् जैसे गायमे गोत्व है तो वह गोत्व बतलावो गायसे जुदा है या गायसे अभिन्न है ? यदि कहो कि गायसे जुदा है गोत्व तो जैसे गोत्व गायसे जुदा कहा, घोडा आदिकसे तो जुदा था ही, तो गोत्व घोडासे जैसे जुदा है वैसे ही गोत्व गायसे भी जुदा मान लिया गया है । फिर गोत्वका सम्बन्ध गायमे क्यो लगाते अन्यसे क्यो नही लगाते ? यदि गोत्व गायमे अभिन्न है तो एक ही चीज कहलाये । चाहे गाय कहो चाहे गोत्व, व्यक्ति ही कहलाया । इस कारण सामान्य व्यक्तिसे कथंचित् भिन्न है कथचित् अभिन्न है । उन शब्दोके द्वारा भिन्न भिन्न स्वरूप जाने जाते हैं इस कारण तो भिन्न है ।

मनुष्यत्व शब्द कहकर जो कुछ जाना गया मनुष्यत्व शब्द कहकर उससे विलक्षण तत्त्व जाना गया। चाहे वह किसी भी रूपमें मिलता हो। ऐसे भिन्न ज्ञानको उत्पन्न करनेकी भिन्न व्यक्तियोंसे सामान्य भिन्न रहा और सामान्य व्यक्तिसे जुदा निकाल कर रख दें, ऐसा प्रथक किया नहीं जा सकता इस कारण सामान्य व्यक्तियोंमें अभिन्न रहा ऐसा सभी जगह माना गया है। इससे यह सिद्ध है कि कोई भी व्यक्ति कोई भी पद उस व्यक्तिसे भिन्न किसी निमित्तसे सम्बन्धित हो ऐसी बात नहीं। व्यक्ति ही स्वयमें सामान्य विशेष धर्मात्मक है। जो धर्म अनेक व्यक्तियोंके साथ पाये जाते हैं उन सदृश परिणामोंमें तो सामान्य अनुवृत्त प्रत्ययकी व्यवस्था बनती है और व्यक्तियोंमें जो असाधारण धर्म हैं वे एकमें पाये जाते हैं अन्यमें नहीं। उन असाधारण धर्मोंसे विशेष प्रत्ययकी व्यावृत्ति प्रत्ययकी प्रतिपत्ति होती है। यह इससे अलग है। यह ज्ञान कैसे विसदृश धर्मको देखकर किया जाता है इसी प्रकार यह उस के समान है यह ज्ञान भी सदृशधर्मको देखकर किया जाता है। इससे पदार्थोंमें ही स्वयं सदृश विसदृश धर्म है जिसके कारण अनुवृत्त व्यावृत्तका बोध होता है। सामान्य नामका पदार्थ भिन्न हो और इस प्रकार ब्राह्मणमें ब्राह्मण्य जाति कोई भिन्न पदार्थ हो, क्षत्रियमें क्षत्रियत्व कोई भिन्न पदार्थ हो और उसके सम्बन्धसे ये ब्राह्मण आदिक कहलायें यह बात युक्त नहीं होती है किन्तु वे सब विशेषण सामान्यविशेषात्मक पदार्थके ही हैं जिससे कि अनुवृत्त और व्यावृत्तका बोध हुआ करता है।

जातिको व्यक्तिव्यतिरिक्तनिमित्तनिबंधनक सिद्ध करनेके लिये दिये गये पदत्व हेतुको अनेकान्तिता एवं विडम्बना—शंकाकारने जो अनुमान बनाया था कि ब्राह्मण पद व्यक्तिसे भिन्न किसी एक निमित्तसे सम्बद्ध है पदत्व पद होनेसे तो इस अनुमानमें जो पदत्व हेतु है वह अनैकान्तिक दोषसे सहित है, क्योंकि आकाशकाल आदि पदमें अथवा अद्वैत अश्वविषाण आदिक पदमें व्यक्तिसे भिन्न किसी निमित्तका पद है नहीं फिर भी यह पद कहलाता है। अनैकान्तिक दोष उसे कहते हैं कि जहाँ हेतु सपक्ष विपक्ष पक्षमें रहा करे। हेतु तो रहे और साध्य न रहे उसे अनैकान्तिक दोष कहते हैं। तो देखो! आकाश काल अश्वविषाण आदिक पदोंमें सामान्यका सम्बन्ध नहीं है लेकिन पद बराबर कहला रहे हैं। यदि इनमें भी सामान्यका निमित्तका सबंध मान लिया जाय तो ये हो गए सामान्य वाले अर्थात् जैसे अद्वैत हुआ सामान्य वाला तो अद्वैत वस्तुभूत बन जायगा, वास्तविक चीज कहलाने लगेगी। अश्वविषाणमें हो गया सामान्य सम्बन्ध क्योंकि पद है ना! क्योंकि जो जो पद होते हैं उनमें सामान्य का सम्बन्ध करना माना है तो घोडेके सीगमें सामान्यका सम्बन्ध हो गया तो इसके मायने है कि घोडेके सीग भी वास्तविक चीज हो गए। तो इस हेतुसे विरोध ही सिद्ध हो रहा है। और भी देखो! सत्तामें यदि सत्ता व्यतिरिक्त निमित्तका सन्निधान माना जाय, सामान्यका सम्बन्ध माना जाय तो सत्ता सामान्य वाली कहलाने लगी। किन्तु सत्ता सामान्यको होती ही नहीं। सत्ता खुद एक धर्म है पदार्थ नहीं। अगर सामान्य

वाला सत् बन जायगा तो सत्ता भी द्रव्य कहलाने लगेगा। और भी देखो ! आकाश तो एक ही है। अब उसमे सामान्यका क्या सम्बन्ध ? सामान्य तो उसमे सोचना पड़ता है जहाँ अनेक हो ! अनेकमे एकत्वका बोध करानेके लिए सामान्यका प्रयोग होता है ? अब आकाश तो खुद एक ही है, उसमे सामान्य क्या सम्भव है ? इससे पदत्व हेतु अनेकान्तिक दोषसे युक्त है। साथ ही इस अनुमानमे जो दृष्टान्त दिया गया है वह साध्यस रहित है। दृष्टान्त दिया गया है पट आदिक पदोका। किन्तु पटादिक पदोमे व्यक्तिमे भिन्न कोई एक सामान्य निमित्त होता हो सो नही है। नित्य व्यापक पदार्थकी जब सिद्धि नही है तो उस निमित्तका सम्बन्ध कहना तो अयुक्त बात है।

व्यक्तिव्यतिरिक्तनिमित्तनिबन्धनक जाति सिद्ध करनेके लिये दिये हुए हेतुका नगरसे व्यभिचार - शकाकार कहता है कि देखो ! वर्णविशेषसे ब्राह्मणकी पहिचान ठीक न हो सकी तो मत होने दो अर्थात् जो मानते हो कि जो गौर वर्णके हो वे ब्राह्मण हैं तो ऐसा कहनेपर व्यभिचार दोष आता है। जो ब्राह्मण नही है ऐसे भी लोग गौर वर्णके देखे जाते हैं। अध्ययन भी ब्राह्मणका निर्देशक नही है क्योकि बुद्धि सबके है, जो चाहे कही भी पुस्तक उठाकर अध्ययन करने लगे। आचरण क्रिया काण्ड भी ब्राह्मणत्वके सूचक नही हैं, इनको भी जो चाहे कर सकता है। यज्ञोपवीत किसीको भी पहना दिया गया, उससे ब्राह्मण कहलाये सो भी नही है क्योकि कोई भी पहिन सकता। तो यो ये अगर ब्राह्मण्य जातिके सूचक नही हैं तो रहे लेकिन वर्ण विशेष अध्ययन आचार यज्ञोपवीत आदिसे व्यतिरिक्त निमित्तके कारण ब्राह्मण यह ज्ञान होता है, क्योकि ब्राह्मण्यके ज्ञानमे वर्ण विशेष अध्ययन आचार आदिक निमित्तसे होने वाली जो बुद्धि है उससे कुछ विलक्षण ही है यह ब्राम्हणका बोध। तो जैसे जो बात गायमे पायी जाय और घोडेमे भी पायी जाय तो उस निमित्तसे गाय सामान्य न कहा जा सकेगा, किन्तु जो उनसे व्यतिरिक्त हो, अश्वादिकमे जो चिन्ह पाये जाते हो उनसे भिन्न किसी एक निमित्तसे गो जाति कहलाती है। इस शकाका उत्तर देते हुए कहते हैं कि फिर तो नगर यह भी एक पद है। उस नगरमे व्यक्तिसे भिन्न कोई एक निमित्त बतलावो क्या है ? नगर आदिकमे कोई एक निमित्त नही है, सामान्य नही है, कोई नगरत्व नही होता और फिर भी यह नगर है इस प्रकारका पद वैलक्षण्य पाया ही जा रहा है इस कारण वर्ण विशेष आदिकसे व्यतिरिक्त किसी निमित्तके कारणसे ब्राह्मण यह संज्ञा हुई, यह भी अनेकान्तिक दोषसे दूषित हो गया क्योकि नगर आदिकके ज्ञान करनेमे उस व्यक्तिसे भिन्न अनुवृत्त प्रत्ययका कारणभूत अर्थात् यह भी नगर, यह भी नगर इस तरह अनुवृत्त ज्ञानका कारणभूत कुछ भी बात नही है। नगरमें हुई क्या बात कि काठ, पत्थर, ईंट आदिक कुछ ऐसे विशिष्ट समीपताके ढङ्गमे लगे हुए हैं कि ये महल आदिक कहलाते है। और, महल आदिक व्यवहारके कारणसे ज्ञान आदिकका व्यवहार बनता है। तो जैसे ब्राह्मणमे नित्य व्यापक ब्राह्मणत्व सिद्ध करते हो, सिद्ध होता तो नही है, पर जिस हेतुसे सिद्ध करते हो उस

हेतुमें नगरमें व्यभिचार बताया गया है। मनुष्यमें मनुष्यत्व तो कुछ बता सकते, धर्मरूपसे ही सही, पर नगरमें नगरत्व क्या कहलाता है ? इससे तो कोई सामान्य जाति सिद्ध नहीं होती।

प्रत्यक्षबाधित अर्थक अभिधायक आगमकी अप्रमाणता – शंकाकार कहता है कि ब्राह्मण और ब्राह्मण्यका तो आगममें भी बहुत वर्णन है। ब्राह्मणको यज्ञ करना चाहिए ब्राह्मणको भोजन करना चाहिए आदिक बातें आगममें कही हैं और वह भी ऐसे वैसे आगमके नहीं, अपौरुषेय आगममें। (शंकाकार तो वेदको अपौरुषेय) आगममें ब्राह्मणका आदर बताया है। यज्ञ करना, भोजन कराना आदिक तो उससे ब्राह्मण जाति क्यों न सिद्ध होगी। उत्तरमें कहते हैं कि ये आगम इस ब्राह्मण्य जातिके सिद्ध करनेमें प्रमाणभूत नहीं हैं। ब्राह्मणको यज्ञ करना चाहिए, ब्राम्हणको भोजन करना चाहिए आदिक आगम प्रमाणभूत नहीं हैं ब्राह्मण्य जाति को सिद्ध करनेके लिये क्योंकि ये प्रत्यक्ष बाधित अर्थको बतला रहे हैं। और सिद्ध कर रहे हैं कि प्रत्यक्ष बाधित अर्थ है ब्राह्मण। ब्राह्मणमें नित्य एक ब्राम्हण्य जाति प्रत्यक्ष बाधित है अब तुम्हीं कहो कि और प्रत्यक्ष बाधित अर्थ को जो कहे वह प्रमाण होगा या अप्रमाण ? जैसे कोई कहे कि आग ठंडी है और इसकी सिद्धिके लिये बड़ी बड़ी युक्तियां भी दे फिर भी यह बात सिद्ध हो ही नहीं सकती क्योंकि प्रत्यक्षबाधित है। और प्रत्यक्षबाधित अर्थसे क्रिया वाले जो वचन हैं वे प्रमाणभूत नहीं हैं। देखा—सूई की नोकपर १०८ हाथी बैठे हैं। अब यहां कोई कहे कि यह तो प्रत्यक्ष बाधित अर्थ है कैसे सूईकी नोकपर १०० हाथी बैठे हैं ? तो प्रत्यक्ष बाधित अर्थको बताने वाले वचन प्रमाणभूत तो नहीं होते। तो इसी तरह जब ब्राम्हण्य जाति कोई प्रत्यक्षसे नहीं मालूम देती, फिर उसको सिद्ध करनेके लिये, प्रत्यक्षबाधित ब्राम्हण्यको सिद्ध करनेके लिये यदि आगम वचन भी बनाये जायें तो वे प्रमाण नहीं हो सकते।

क्रिया आचरणसे वर्णाश्रमकी व्यवस्था अब शंकाकार कहता है कि ब्राम्हण्य आदिक जाति मिटा देनेपर वर्णाश्रमकी व्यवस्था कैसे होगी ? जो न भी मानते हो चार तरहके वर्ण तो इतना तो हर एक कोई मानेंगे कि ब्रह्मचारी है, गृहस्थ है, साधु है यों ही वर्ण सही, और वैसे भी वर्ण सही। वर्णाश्रमोंकी व्यवस्था कैसे बनेगी, क्योंकि वर्णाश्रमोंकी व्यवस्था तो ब्राह्मण्य आदिक जातियोंके आधीन है। और फिर वर्णाश्रमके कारणसे वर्णव्यवस्थाके कारण जो तपश्चरण दान आदिकका व्यवहार होता है वह कैसे घटित होता है। ब्राह्मणको दान देना चाहिए तपस्या करना चाहिये, यह बात फिर कैसे घटित होगी ? उत्तर देते हैं कि यह कहना भी तुम्हारा मिथ्या है क्योंकि वर्णाश्रमोंकी व्यवस्था तो उस व्यक्ति विशेषमें बन जायगी जो क्रिया विशेष कर रहा, यज्ञोपवीत आदिक चिन्होंसे युक्त हो रहा, उनमें व्यवस्था

बन जायगी और उनसे व्यवहार बन जायगा ब्राह्मण्य जाति कुछ एक रहती है और, वह जिस व्यक्तिमे चिपकी हो वह ब्राह्मण है यह तो सिद्ध नही होता। व्युत्पत्तिसे यह अर्थ निकला कि जो ब्रह्मको जाने सो ब्राह्मण। जो आत्मस्वरूपको जाने ऐसे ज्ञानी को ब्राह्मण कहते हैं। तो अब देखिये—यह क्रिया विशेष आचार ज्ञान इनके आधार से व्यवस्था बनी न कि ब्राह्मण कोई नित्य एक जाति है और उसका कोई सम्बन्ध जुट जाय सो ब्राह्मण कहलाये यह बात न बनी, अन्यथा देखो—परशुरामने इस सारी पृथ्वीको क्षत्रियरहित कर दिया था, फिर किसी ब्राह्मणको वह पृथ्वी दी। अब उस पृथ्वीमे फिर क्षत्रियोकी उत्पत्ति कैसे हो गयी? जब क्षत्रिय ही न रहे तो जो भी उत्पत्ति होगी वह सब अक्षत्रिय है। लेकिन बादमे क्षत्रिय माने गए और क्षत्रियका व्यवहार चलने लगा। इससे सिद्ध है कि क्षत्रिय माना जाना कोई क्षत्रियत्व जातिके आधारपर नही है। जिन्होने शास्त्राभ्यास, क्रिया, प्रजाकी रक्षाका व्रत लिया उन्हे क्षत्रिय बोलने लगे। अथवा जैसे कि परशुरामने इस पृथ्वीको किसी समय क्षत्रिय रहित कर दिया था वैसे ही किसीने इस पृथ्वीको ब्राह्मण रहित कर दिया था उस पृथ्वीको किसी क्षत्रियको ही दी होगी। जब पृथ्वी ब्राह्मणरहित हो गई तो फिर ब्राह्मणोकी उत्पत्ति कहासे हुई? इससे सिद्ध है कि यह किसी नित्य जातिकृत व्यवहार नही है। किन्तु क्रियाविशेष आदिकके कारणसे यह ब्राह्मण्य आदिकका व्यवहार होता है। तो यह आगम वचन प्रमाणभूत नही है जो कि प्रत्यक्षबाधित अर्थको बताये।

प्रत्यक्षबाधित अर्थको करने वाले आगमोपदेशमे प्रमाणताका अभाव— प्रत्यक्षबाधित अर्थको बताने वाले आगमकी प्रमाणताको उक्त निराकरणसे यह कहना कि ब्राह्मण्य जातिको सिद्ध करनेमे त्रैवर्णिक उपदेश प्रमाणभूत है। याने आगममें जो वर्णन किया गया है कि त्रैवर्णिककी यह व्यवस्था है तो यदि ब्राम्हण न माना जाय तो यह त्रैवर्ण्य कहासे आया? उससे भी सिद्ध है कि ब्राम्हण कोई जुदा है यह कहना भी निराकृत हो जाता है, क्योकि यह भी बात असगत है, इन वचनोमे भी निर्दोषता का भाव नही है। बहुतसे आदमी ऐसे देखे जाते हैं कि ब्राम्हण तो थे नही, कुलसे तो शूद्रादिक थे, पर कुछ क्रिया कलासे, सगतिसे, दूसरे देशमे पहुँचनेसे वे ब्राम्हण रूपसे व्यवहारमे आने लगे। और, तीनो वर्णोंके लोग बिना विवादके उन्हे ब्राम्हण बोलने लगे। इससे सिद्ध है कि त्रैवर्णिक उपदेश निर्दोष तो नही हो सकता। यह नही बताया जा सकता कि यह वस्तुतः ब्राम्हण है। जो भी करने लगे क्रियायें, ब्राम्हण नामसे व्यवहार उसका होने लगता है। इस कारण जो जातिकी कल्पना की है कि नित्य है, एक है, सर्वव्यापक है, उस जातिका जिसमे सम्बन्ध होता है उसको उससे बोलने लगते हैं। ऐसी कोई जाति नित्य व्यापक नही है। तो सामान्य पदार्थोंकी सिद्धि नही होती और न जातिकी सिद्धि होती है।

जातिसे व्यवहारकी अव्यवस्था— और भी देखिये। यदि कोई जाति

उनमें तो कोई ब्राम्हणी यदि वेश्यावृत्ति करने लगे तो भी उसकी ब्राम्हण्य जाति न खतम होनी चाहिये और उसकी फिर तो निन्दा भी न की जानी चाहिए। क्योंकि वह ब्राह्मणी तो जन्म पर्यन्त ब्राह्मण्य जातिमे ही रहेगी। तो ब्राह्मण्य जाति माननेपर यह दोष आता है शकाकारके मत मे। जाति तो ज्योकी त्यो मौजूद है उस ब्राम्हणी मे। जैसी जन्मसे थी वैसी अब भी है, शरीर तो वही है। शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाली तुम जाति बताते हो और यदि जाति होनेपर भी वेश्याके घरमें रहकर वेश्यावृत्ति करने वाली ब्राम्हणीकी निन्दा होती है तब तो गोत्वसामान्यसे भी वह ब्राम्हण्य जाति निकृष्ट हो गयी, क्योकि गाय तो अगर किसी चाण्डालके घर चली जाय तो भी वह गाय दान देने योग्य है, दूध देती है, उसका दूध सभी लोग ले जा सकते हैं। तो उस ब्राम्हणीसे यह गाय श्रेष्ठ है जो कि चाण्डालके घर रहकर भी पवित्र रह सकी। इससे सिद्ध है कि यह सब क्रियाविशेषपर आधारित है। जब कोई क्रियासे भ्रष्ट होता है तो उसे ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य आदिक नामोसे नही बोल सकते। जाति नामक कोई पदार्थ नही है जिसके सम्बन्धसे ब्राम्हण क्षत्रिय आदिक जातियाँ कहलायें। ये जाति ये वर्ण क्रियाविशेषके आधारपर अवलम्बित हैं।

जाति विशिष्टताके कारण क्रिया भ्रष्टताकी भी अशक्यता—यह आपत्ति देनेपर कि ब्राह्मण्य कोई नित्य एक जाति होती तो वेश्याके घरमे रहने वाली ब्राह्मणीसे फिर ब्राह्मण्यका अभाव न होना चाहिए और निन्दा न होनी चाहिये। इस पर शकाकार कहता है कि क्रिया आचरणके भ्रष्ट हो जानेसे ब्राह्मणी आदिककी वहाँ निन्दा होती है और वह ब्राह्मणी निद्य है। उत्तरमे कहते हैं कि यह बात कैसे बन सकती है क्योकि तुमने नित्य एक जाति मान ली। तो जब वह जाति वहाँ बराबर मौजूद है तो उस जातिसे विशिष्ट वस्तुका तो निश्चय है ही। अर्थात् ब्राह्मण्य जातिसे विशिष्ट वह ब्राह्मनी तो है ही, फिर जैसे वैश्याघरमे प्रवेश करनेसे पहिले वह ब्राह्मणी निन्द्य नही है, इसी तरह अब भी निन्द्य न होना चाहिए और क्रिया भ्रष्टता भी नही हो सकती हैं क्योंकि जाति तो सदा है और जाति विशिष्ट वस्तु है तो क्रियाका भ्रंश कैसे हो सकता है, क्योकि ब्राह्मणत्व जातिसे विशिष्ट व्यक्तिका निर्णय तो क्रिया की परिणतिका निमित्त माना गया है। चाहे वह क्रिया भ्रष्ट भी हो रहो न भी हो रही। जब व्यक्तित्व ब्राह्मण जातिसे सहित है तो वहव्यक्तित्व तो अब भी है अर्थात् ब्राह्मण जातिसे विशिष्ट ब्राह्मण जातिका निश्चय तो अब भी है ऐसा तुम मान भी रहे हो फिर क्यो नहि उक्त दोष होगा। इस कारण जाति नामक पदार्थकी सिद्धि नही होती। अब दूसरी बात यह है कि क्रियाके भ्रष्ट होनेपर यदि जातिकी निवृत्ति मानते हो तो जो नमस्कारहीन पुरुष हैं उनमे फिर जातिकी निवृत्ति मान लेना चाहिये, क्योकि क्रिया भ्रष्टताकी उसमें अविशेषता है अर्थात् जो शूद्रादिकके घरमे नही है, अपने ही घरमे है फिर भी क्रियासे भ्रष्ट है तो जैसे वेश्याके घरमे रहने पर ब्राह्मणी की क्रिया भ्रष्टताकी बात कहकर जातिकी बात कही थी तब फिर घरमे भी रहकर

जो क्रियासे भ्रष्ट हो ऐसे उन व्यक्तिकोकी भी जातिकी निवृत्ति हो जायगी । चौ० है । न रहेगी । तब नमस्कार हीन पुरुषमे भी जाति न कहलाये, क्योकि क्रिया भ्रष्टता इसमें भी उस ही की तरह है । अब दूसरी बात सुनिये कि तुमने जातिका कारण क्रिया नही माना है, क्रियाको जातिका कारण और व्यापक भी नही माना है तब फिर क्रियाकी निवृत्ति होनेपर जातिकी निवृत्ति कैसे हो जायगी ? क्रियाकी निवृत्ति होनेपर उस जातिकी निवृत्ति तब ही सम्भव है जब कि क्रियामे जातिका कारण हो अथवा जातिका व्यापक हो । यदि कारण अथवा व्यापक हुए बिना एककी निवृत्तिसे दूसरेकी निवृत्ति होने लगे तो घटकी निवृत्ति होनेपर पटकी भी निवृत्ति हो जावे अर्थात् कोई पुरुष कमरेसे घडा उठा लावे तो साथमे कपडा भी उठ जाना चाहिए । सो जातिका कारण अथवा व्यापक यह कुछ भी न बन सका । और फिर क्रियाका भ्रंश होनेपर जातिमे विकार कैसे आ जायगा ? जबकि तुमने जातिको नित्य निरवयव निर्विकार भिन्नोमे अभिन्न रूपसे रहने वाली मानी है तो भला जो विकृत नही हुआ है उसकी निवृत्ति कैसे सम्भव है ? अविकृत जातिकी निवृत्ति मान लोगे, अविकृत पदार्थका अभाव मान लोगे तो आत्मा आकाश आदिक जो कि नित्य अविकृत माने गए हैं उनका भी कभी अभावसे हो जायगा ।

जीव, शरीर व उभयमे ब्राह्मण्यका अभाव—अच्छा कब यह बतलावो कि यह जो ब्राह्मणत्व है वह तुम किसका मानते हो ? क्या जीवका मानते हो या शरीर का या जीव और शरीर दोनोका ? अथवा सस्कारका या वेदके अध्ययनका । अन्य उपाय तो इसमे सम्भव नही हैं । यदि जीवका ब्राह्मणत्व मानते हो तो क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादिक जोवोका भी ब्राह्मण्य मानना चाहिये । क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोमे भी जीव हैं यदि ब्राह्मणत्व जीवका मानते हो तो सभी जीवोमे ब्राम्हणपना आ जाना चाहिए । उन ५ विकल्पोंमे से जीवका ब्राम्हणत्व माननेपर क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदिक सभीमे ब्राम्हण का प्रसग आ जायगा क्योकि जीव ये भी हैं । तो जीवका ब्राम्हणत्व सिद्ध नही हो सकता । यदि शरीरका ब्राम्हणत्व मानते सो तो यह बात तो असम्भव है क्योकि शरीर है पचभूतात्मक । पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इनका जो समूह है तन्मात्र शरीर है । ये पच भूत प्रत्येक पुद्गलमे पाये जाते हैं । जैसे घट है तो उसमे मिट्टी है ही, जल, अग्नि, वायु और आकाश आदिक भी किसी न किसी अशमे मौजूद हैं तो उनमे भी ब्राम्हणपन जानना चाहिए । तो जैसे घट पट आदिकमें ब्राम्हण्य असम्भव है इसी तरह पचभूतात्मक शरीरमे भी ब्राम्हणत्व असम्भव है । और फिर यह बताओ कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन भूतोमे अलग अलग, एक एकमे ब्राम्हण्य है या ये सब मिल जायें तब होते हैं ? यदि कहो कि एक एकमे वह ब्राम्हण्य है तब जो पृथ्वी, जल अग्नि, वायु आकाश आदिकमे भी अलग अलगमे ब्राम्हण्य आ जाना चाहिये । और, यदि कहो कि अलग-अलग भूतोमे तो ब्राम्हण्य नही है किन्तु वे सब भूत जब मिल जाते हैं तब उनमें ब्राम्हण्य आता है । तो घट पट आदिकमे ये सब भूत मिले हुए हैं,

उनमें ... तो कोई ... सतम हो - जब इन भूतोका समूह मिल गया है तो इसमे ब्राम्हण्य आ जाना चाहिए इसमे शरीरमे ब्राम्हण्य माना गया है यह भी सिद्ध नही होता। और जब शरीरमे और जीवमे ब्राम्हण्य सिद्ध न हुआ तो जीव और शरीर दोनोमें भी ब्राम्हण्य सिद्ध नही हो सकता क्योकि जो दोष जीवमे दिये गये थे वे ही इस उभयमें आयेंगे। उभय इन दो को छोडकर कोई अलग तो नही है। जीव और शरीर दोनोंका मिलकर ही उभय कहा गया है। इससे उभयका ब्राम्हणत्व होता है यह भी बात तुम्हारी सगत नही है।

सस्कार व वेदाध्ययनके ब्राह्मण्यका अभाव—यदि कहो कि सस्कारमे ब्राह्मणत्व है याने ब्राम्हणबालकमें उस सस्कारको किया जाय तब उसमे ब्राम्हणत्व आता है यह बात भी युक्त नहीं बैठती। इसका कारण यह है कि सस्कार तो शूद्रके बालकमे भी किये जा सकते हैं यह बात दूसरी है कि ब्राम्हणोका जोर हो और वे शूद्र बालकमे सस्कार न करें मगर किया जा सकता है कि नही ब्राम्हण बालकको यज्ञादिकमे बैठाल कर यज्ञोपवीत देकर ब्राम्हणत्व सस्कार बनाते हैं। यदि शूद्र बालकमें सस्कार के लिये यत्न क्या किया जाय तो किया नही जासकता, और जब उसमे सस्कार बनाये जा सकते है तो शूद्र बालकमे भी ब्राम्हण्यका प्रसग आ जायगा। इसी सम्बन्धमें दूसरी बात यह बतलावो कि सस्कारसे पहिले उस ब्राम्हण बालकमे ब्राम्हण्य है या नहीं ? जिस क्षण ब्राम्हण बालकमे सस्कार किया जा रहा है उस क्षणसे पहिले भी तो वह बच्चा था तब उसमे ब्राम्हण्य है या नहीं ? यदि कहो कि सस्कार किये जानेसे पहिले भी उस बालकमे ब्राम्हण्य है, जन्मसे ब्राम्हण्य है तब सस्कार करनेका कोई मूल्य नहीं यदि कहो कि सस्कारसे पहिले ब्राम्हणके बालकमे ब्राम्हण्य न था तो सस्कार करना व्यर्थ है। जिसमे ब्राम्हण्य नही है उसमे कितने ही सस्कार करें, ब्राम्हण्य न होनेपर भी अर्थात् अब्राम्हणके सस्कार करनेपर ब्राम्हणत्व मानते हो तो शूद्र भी अब्राम्हण हैं। सस्कार करनेसे उसमें भी ब्राम्हणत्व मान लेना चाहिए सस्कार कराया जानेपर शूद्रमे ब्राम्हणका निवारण कौन कर सकेगा ? इस तरहसे सस्कारके ब्राम्हणत्व होता है यह भी बात युक्त नहीं है। यदि कहो कि वेदाध्ययनके ब्राम्हणत्व है तो यह भी बात युक्त नही है क्योकि वेदका अध्ययन शूद्रोमे भी सम्भव है। कोई शूद्र अन्य देशमें जाकर वेदाध्ययन करता है तो उसे भी ब्राम्हण मान लेना चाहिए, पर शकाकारने वेदाध्ययन मात्रसे ब्राम्हणत्व स्वीकार नही किया। किन्तु जातिसे, जन्मसे ही ब्राम्हण्य जातिके सम्बन्धसे ब्राम्हणत्व स्वीकार किया। तो वेदाध्ययनके ब्राम्हणत्व है यह पक्ष भी युक्त नहीं होता।

जाति और तिर्यक सामान्यके सम्बन्धमे निष्कर्षात्मक उपसहार—उक्त विकल्पोसे जातिका विचार करनेपर निष्कर्ष क्या निकला कि ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदिककी व्यवस्था सदृश क्रिया परिणमन आदिकके कारण है। तो

ब्राम्हणके योग्य जो क्रियायें बताई गयी हैं उन्हे तो करें उनमे ब्राम्हणत्वकी व्यवस्था है। क्षत्रियोको प्रजाके रक्षणका आचरण करे सो क्षत्रिय है यह व्यवस्था बनती है। वैश्य वे जो व्यापार करें और शूद्र वे जो दूसरोकी सेवा करें, ऐसी वर्ण व्यवस्था है। तो इसी तरहसे सभी जगह समझ लेना चाहिए कि सदृश परिणाम समानताके ज्ञान का कारण होता है और वही तिर्यक् सामान्य कहलाता है। इस प्रकरणमे मूल बात यह चल रही थी कि प्रमाणका विषय क्या होता है ? तो बताया गया कि सामान्य विशेषात्मक पदार्थ प्रमाणका विषय होता है। तो उस सामान्यके भेद किये गए तिर्यक सामान्य और ऊर्द्धता सामान्य। तिर्यक् सामान्य कहते हैं एक काल मे अवस्थित हुए अनेक व्यक्तियोके सदृश परिणमनको। जैसे अनेक गायें बैठी हैं, उन गायोमे गाय सामान्य कहा। तो यह समस्त गायोमे जो धर्म एक समान नजर आ रहा है उस ही धर्मको सामान्य कहते है। तियक् सामान्य सदृश परिणामोसे समझा जाता है, लेकिन ऐसा न मानकर मीमासक लोग द्रव्य गुण कर्मकी तरह सामान्य नामका भी पदार्थ मानते हैं और सामान्य नामक पदार्थसे ही जातिका बोध कहते है अर्थात् जैसे नित्य एक व्यापक जाति भी मानी जाती है जाति भी सामान्यका एक प्रकार है। तो जैसे सामान्य पदार्थोंकी अलग सत्ता सिद्ध नहीं होती इसी प्रकार जातिकी भी सत्ता अलग सिद्ध नही होती। जैसे क्षत्रियत्व कोई नित्य एक व्यापक हो और उसके सम्बन्धसे क्षत्रिय कहलाये यह बात सम्भव नही है इसी तरह ब्राम्हणत्व एक नित्य व्यापक हो और फिर ब्राम्हणत्वके सम्बन्धसे ब्राम्हण कहलाये यह भी बात युक्त नही हो सकती, ये पदार्थ स्वय सत् हैं। स्वतः सिद्ध हैं, अपने धर्मस्वरूप हैं। अब कुछ विवेचन करने वाले लोग उस पदार्थमेंसे जब यह विवेक करते हैं कि देखो--कुछ धर्म तो यहा ऐसे नजर आ रहे हैं कि अनेक व्यक्तियोमें पाये जाते हैं। कुछ धर्म ऐसे सिद्ध हुंते हैं जो केवल उस हीमे हैं अन्य व्यक्तियोमें नही पाये जाते हैं। बस इन्ही साधारण और असाधारण धर्मोंके परिचयपर सामान्य विशेषकी व्यवस्था होती है। इस प्रकार तिर्यक सामान्यके स्वरूपकी सिद्धि की कि यह सामान्य सदृश परिणामका नाम है। सदृश परिणामको एक दृष्टिमें रखकर जो एकत्वके ज्ञानके निकट लाने वाला भाव है उसका नाम सामान्य है। अब ऊर्ध्वता सामान्यका स्वरूप कहते हैं—

परापरविवर्तव्यापि द्रव्यमूर्ध्वत्ता मृदिव स्थासादिषु ॥ ४–६ ॥

ऊर्ध्वता सामान्यका वर्णन—पूर्व और उत्तर पर्यायोमे व्यापकर रहने वाला जो द्रव्य है वह ऊर्ध्वता सामान्य है। जैसे कि—घट आदिक पर्यायोमे रहने वाली जो मिट्टी है उसही प्रकार पूर्वापर पर्यायोमे रहने वाला जो द्रव्य है उसे उर्ध्वता सामान्य कहते हैं, शकाकार कहता है ऊर्ध्वता सामान्यका विरोधी शकाकार कौन हो सकता है, क्षणिकवादी जो पूर्वापर पर्यायोमे एक द्रव्य न माने ऐसा तो कोई अनित्यवादी ही हो सकता है। तो यहाँ शकाकार कहता है कि पूर्व और उत्तर पर्यायको छोडकर दूसरा कोई उन पर्यायोमें व्यापी द्रव्य हो ऐसी प्रतीति ही नही होती है। इस कारण द्रव्य

असत् है, फिर सामान्यका यह लक्षण कहना कि पूर्व अपर आ जाना चाहिए इ द्रव्य रहता है वह ऊर्ध्वता सामान्य है, सही लक्षण नही है, और कोई द्रव्य है ही नही। उत्तर देते हैं कि यह बात सही नही है, क्योंकि पदा अन्वयी रूपसे प्रतीति प्रत्यक्षसे ही हो रही है। पर्यायें बराबर व्यतीत होती जा और उनमे व्यापकर रहने वाला पदार्थ है कोई ऐसा प्रत्यक्षसे ही विदित होता है इन पदार्थोंकी इस तरहसे स्वप्नमें भी प्रतीति नही होती कि ये प्रतिक्षण मूलसे हो रहे हैं। बल्कि साधारण जनोंको भी इनके विषयमे ऐसी प्रतीति रहती है जैसे कि तुम्हे पूर्व और उत्तर पर्यायोंमें व्यावृत्त प्रत्ययका ज्ञान होता है और पर्यायसे दूसरी पर्यायका अभाव प्रतीत हो रहा है इसी तरहसे उन सब पर्यायोमे वाला जो एक सामान्य द्रव्य है, जैसे मोटे दृष्टान्तमे मिट्टीके अनुवृत्त ज्ञान भी है। जैसे हमे यह ज्ञान होता है कि बचपन है सो जवानी नही, जवानी है सो बु नही। एक दशामें दूसरी दशाका अभाव है। जैसे हमें इन पर्यायोमे परस्पर अ विदित होता है इसी प्रकार कोई एक जैसे मनुष्यत्व सदा अनुवृत्तिरूपसे प्रतीत है है इससे द्रव्यकी सिद्धि है और उस ही द्रव्यको ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं।

क्षणिकबुद्धि द्वारा त्रिकालव्यापी द्रव्यकी अप्रतीतिकी शका— शकाकार कहता है कि देखो – एक पदार्थके स्थित होनेका, ध्रुव होनेका अर्थ क्या एक पदार्थ व्यापक सदा रहता है इसका अर्थ यही तो हुआ ना कि वे पदार्थ त कालमें अनुयायी हैं। याने सब कालोमे बराबर चल रहे हैं। तो यह बतलावो तीन कालमे जो चल रहा है ऐसा जो वह एक है उस एककी इस स्थितिका इस द का क्या तुम्हे एक साथ ज्ञान हो गया है या क्रमसे ज्ञान हुआ है ? अर्थात् ती दशाओमें रहने वाला यह एक है उस एकका ज्ञान अर्थात् तीनो कालमें रहने वा इसका ज्ञान तुम्हे एक ही बारमे हो गया या क्रमसे होता है ? यदि कहो कि ए बारमे ही हो गया तो इस मायने यह हुआ कि फिर तुमको एक साथ ही जन्म लेकर मरण तककी सब घटनाओका ज्ञान हो गया क्या ? जैसे मनुष्यत्व क्या है शिशु अवस्थासे लेकर मरण पर्यन्त तककी जितनी दशायें हैं उनमे जो भी रहता उसका नाम मनुष्यत्व है। और उस मनुष्यत्वका एक ही बारमें ज्ञा कर लिया इसका अर्थ यह है कि उन १०० वर्षोकी सारी घटनाओं तुमने एक साथ जान लिया। तब तो मरण पर्यन्त तककी सारी बातोका ज्ञान हो जाना चाहिए, पर होता कहा है ? इससे सिद्ध है कि उस एकका ज्ञान नही हो रह है तीनो कालमे, तीनो कालकी सब घटनाओका ज्ञान हो तब तो कहा जायगा कि तुमने एकका ज्ञान किया। जैसे मालाके १०० दानोमे एक सूत पिरोया हुआ है तो कहते कि इन १०० दानोमे पिरोया हुआ जो सूत है हम उसका ज्ञान कर रहे हैं तो इसका अर्थ यह हुआ ना कि १०० दानोंका एक नजरमे ज्ञान हो गया। १००

इसमें अनुयायी कोई आत्मा प्रतिभासमें नही आता, एकत्व ज्ञानमे नही होता
भा बात नही कह सकते, क्योकि यदि यह हठ बनाओगे कि एकत्व प्रतिभासमे
ही नही है तब फिर क्षणिक सिद्ध करनेका अनुमान देना व्यर्थ हो जायगा। ज
अनुमान दिया जाता है कि सर्व क्षणिक सत्वात्। विश्वमे जो कुछ है वह सब क्ष
है क्योकि सत्त्व होनेसे, यह क्यों व्यर्थ हो जायगा कि अनुमान तुमने किस प्रय
दिया ? क्या एकत्वकी प्रतीतिका निराकरण करनेके लिए क्षणिकत्वका अ
दिया है या क्षणिकत्व सिद्ध करनेके लिये यह अनुमान बनाया गया है ? एक
प्रतीतिके निराकरणके लिए ही अनुमान बनाया गया है। देखो क्षणिकत्व सिद्ध
के लिए अनुमान नही बताया गया तुम्हारे सिद्धान्तमे क्योंकि पदार्थकी क्षणि
प्रत्यक्षसे ही जान ली गई माना है तो जो बात प्रत्यक्षसे जान ली गई उ का
कोई अनुमान भी बनता है क्या ? जैसे रसोई घरमे भोजन करने वाला पुरुष
और अग्नि आदिक प्रत्यक्षसे देख रहा है क्या वहा वह यह अनुमान बनाता है
इस रसोईघरमे आग है क्योकि धुवा होनेसे ? प्रत्यक्ष सिद्ध बातका अनुमान
बनाया जाता। जो पदार्थ तुम्हारे सिद्धान्तमे प्रत्यक्षसे ज्ञात है तो क्षणिकताक
लिए तो अनुमान बनाया नही गया है। एकत्वकी प्रतीतिके निराकरणके लिए ब
गया है। अर्थात् कोई पुरुष इसको ध्रुव न समझलें, एकत्व न समझले, त्रि
व्यापता न समझले इसके लिये अनुमान बनाया है। लेकिन तुम कह रहे, है
अतरगमे और बहिरग पदार्थोंमे केवल भेद ही भेद प्रतिभासमे नही आता, यह
फिर तुम्हारा झूठ हो जायगा ना, देखो—एकत्व प्रतिभासमे आया तब तो तुम
का निराकरण करो जो बात प्रतिभासमे आया तब तो तुम एकत्वका निरा
करो, जो बात प्रतिभासमे आती ही नही उसका निराकरण क्या किया जायग
इससे यह मानना चाहिए कि पदार्थमे केवल भेद ही भेद प्रतिभासमे नही
केवल पर्याय ही पर्याय प्रतिभासमे नही आती। त्रिकाल व्यापी पदार्थ भी प्रतिभ
आता है।

अतिव्यवहित पर्यायोमे अनुमानादिकी सफलता—अब शकाकार
है कि देखो—जब प्रत्यक्षसे ही तुमने झट जान लिया अनन्तर अतीत और अ
अनुगत समयमें रहने वाले क्षणोको, तब स्मरण प्रत्यभिज्ञान, अनुमान ये प्र
बनाना निरर्थक है। उत्तर देते हैं कि नही यद्यपि प्रत्यक्षसिद्धमे स्मरण प्रत्यभि
अनुमान निरर्थक हैं और जो तत्कालकी पूर्व उत्तर पर्यायें हैं उनके जाननेमे
प्रत्यक्षकी प्रवृत्ति है उनमे स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, अनुमान बनानेकी आवश्यकता
लेकिन जो अति व्यवहित पर्यायें हैं कलकी और बहुत दिनकी, घटा भर पहिले
जो पर्यायें हैं अथवा जो भविष्यकी पर्यायें हैं उनमे तो स्मृतिज्ञान और अनुमान

स्थायें और पहिला जन्म, भविष्यका जन्म और सारी पर्यायें इनका एक साथ ज्ञान जाना चाहिए, यह बात तुम्हारी ठीक नहीं है। कारण यह है कि आत्मा जानता तो है अर्थका ग्रहण करने वाला आत्मा ही है मगर ज्ञानकी सहायतासे यह आत्मा जानता है और ज्ञान हमारा नियमित है, क्योंकि ज्ञानपर आवरण करने वाले कर्मका जैसा क्षयोपशम होता है वैसा ही ज्ञानका विकास होता है। प्रतिबंधक कर्म प्रकृतिसे क्षयोपशमका उल्लंघन न करके ज्ञानकी प्रवृत्ति होती। अत: आत्मा जानता है और जैसा ज्ञान पाया उस ज्ञानके माफिक उन पर्यायोको अतीत अनागत जाना करता है, इससे यह दोष देना कि नित्य आत्मा यदि त्रिकालवर्तीको जाना करता है तो एक ही साथ समस्त पर्यायें जान ली जानी चाहिएँ, यह बात युक्त नहीं बैठती है।

युक्ति अनुमान अनुभवसे भी पूर्वोत्तरपर्यायव्यापी द्रव्यकी प्रतीति— अनेक युक्तियोंसे अनुमानोसे और प्रमाणोसे भी यह बात सिद्ध होगी कि पूर्वोत्तर पर्यायव्यापी द्रव्य है। अनुमान भी पुष्ट प्रमाण है। जैसे लोकमें कहते कि यह तो अनुमानकी बात है सच नहीं है तो लोक व्यवहारमे अनुमानको लोक कल्पनाके रूपमे लेते हैं। लेकिन प्रमाणके क्षेत्रमे अनुमानको भी उसी प्रकार प्रमाण माना गया है जिस प्रकार प्रत्यक्ष प्रमाण है। प्रत्यक्ष प्रमाणमें जैसे संशय विपर्यय आदिक दोष नहीं होते इसी प्रकार अनुमान प्रमाणमे भी ये दोष नहीं होते। सो अनुमान ज्ञान भी एक विशुद्ध और पुष्ट प्रमाण है। प्रत्यक्षसे भी उस व्यापी द्रव्यको जान लिया जाता है। अनुमानसे भी उस व्यापीद्रव्यको जान लिया जाता है। और लोगोका विश्वास भी है अपने आ.के बारेमें, सत्त्वका सबको श्रद्धान है। तो सब बातोसे यह सिद्ध होता है कि पूर्व और उत्तर पर्यायमे व्यापका रहने वाला स्थायी कौन है। और वैसे भी सोच लो जो जिसका उपादान है आधार है, सत्त्व है उसका समूल विनाश कैसे हो सकता है? इससे ध्रुव द्रव्य सिद्ध है। समस्त पदार्थ अनादि अनन्त हैं, प्रतिक्षण उनकी दिशा ह रही है। तो उन सब पदार्थोंमे व्यापकर रहने वाला जो एक द्रव्य है उसको ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं।

स्मृतिप्रत्यभिज्ञानादि सहाय आत्मा द्वारा त्रैकालिक द्रव्यकी प्रतीतीमे प्रश्नोत्तर- शंकाकर कहता है कि द्रव्यके ग्रहण करनेपर अतीत भविष्यत समस्त पर्यायोका ग्रहण हो जाना चाहिए क्योंकि अतीत आदिक अवस्थाये पदार्थकी पदार्थसे अभिन्न है। उत्तर देते हैं कि यह बात यो सही नहीं है कि अभिन्नपना ग्रहणके प्रति कारण नहीं है, अर्थात् कोई धर्म किसी वस्तुसे अभिन्न हो तो यह अर्थ नहीं है कि जितने भी धर्म है वे सब ग्रहणमे आ जाने चाहिएँ उसमे एकके जाननेमे। यदि अभिन्नपना ज्ञानमे कारण मानलोगे तो फिर ज्ञानादिक क्षणका अनुभव होनेपर क्षणिक वादियोके द्वारा माने गए जो ज्ञानक्षण अर्थक्षण हैं—जैसे ज्ञानाद्वैतवादी मानता है कि केवल एक क्षणिक ज्ञान पदार्थका ज्ञान होता है तो अन्य प्रकारके क्षणिकवादी मानते

हैं कि क्षणक्षणवर्ती जो पदार्थ हैं उन पदार्थोंका ज्ञान होता है। कैसा भी मानो ज्ञानादिक क्षणका अनुभव होनेपर जैसे सत्का ज्ञान हो जाता है, चेतनका ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार उसमे क्षणिकताका ज्ञान हो जाना चाहिए और इसमे स्वर्ग भेजने की शक्ति है आदिक शक्तियोका भी अनुभव हो जाना चाहिए, क्योंकि अब तो तुम यह मान रहे हो कि अभिन्नपना ज्ञानके प्रति कारण है। जो चीज जिससे अभिन्न हो उस एकके जाननेपर वे सब चीजे ज्ञात हो जाना चाहिए तो यह दोष तो सभीके अभिमतमे आ जायेंगे, अतः तथ्यभूत कथन यह है कि जिस पदार्थमें जितने अशके ज्ञान-परिणमन के आवरणका अभाव है उस ही पदार्थमे जाननेका नियम है अन्य जगह नही है। जिस पुरुषके जिस पदार्थमे जिस धर्म सम्बन्धी ज्ञानके आवरणका विनाश है उस हीका ज्ञान हो सकता है अन्यका नही हो सकता, और इसी कारण यह कहना बिल्कुल सही है कि प्रत्यक्षका सहाय लेकर आत्मा ही अनन्तर अतीत और भविष्यकी पर्यायोंमे एकत्व को जानता है, प्रत्यक्षकी सहाय लेकर आत्मा अनन्तरकी अतीत और भविष्य पर्यायोको जानता है अथवा उन पर्यायोमे रहने वाले एकत्वको जानता है और स्मरण प्रत्यभिज्ञानकी सहायता लेकर यह आत्मा अत्यन्त व्यवहित पर्यायोमे भी एकत्वको जानता है इसका तात्पर्य यह है कि पूर्व और उत्तर पर्यायोंमे रहनेवाले एकत्वको जानने वाला यह आत्मा है। यह आत्मा प्रत्यक्षसे ही जान लेता है पूर्व और उत्तरमे पर्यायोमे रहने वाले एकत्वको। सो यहाँ एकत्वसे लगी हुई पूर्व और उत्तर पर्यायोंमे रहने वाले एकत्वको प्रत्यक्षकी सहायतासे जानता है और बहुत व्यतीत हुई अतीत पर्यायोंमे और बहुत आगेकी भविष्य पर्यायोमे रहने वाले एकत्वको यह आत्मा स्मृति और प्रत्यभिज्ञानकी सहायतासे जानता है। और जैसे कि प्रत्यक्षज्ञानमे प्रामाण्य है इसी प्रकार स्मृतिज्ञान और प्रत्यभिज्ञानमे भी प्रामाण्य है। पहिले ही सिद्ध कर चुके हैं।

स्मृति प्रत्यभिज्ञानको अविषय सिद्ध करनेका शङ्काकार द्वारा प्रयत्न—शकाकार कहता है कि स्मरण और प्रत्यभिज्ञानका विषय क्या है ? पहिले जाने गये पदार्थ ! अर्थात् स्मरण और प्रत्यभिज्ञान पहिले जाने गए पदार्थसे आया करता है। तब तो स्मरण और प्रत्यभिज्ञान उस ही समय उन पदार्थोंको जाने जिस समय कि उन पदार्थोंका दर्शन अर्थात् प्रत्यक्ष होता था, क्योकि जैसे कि उस समय पूर्वकालमे पदार्थ का प्रत्यक्ष हुआ था तो प्रत्यक्ष उस पदार्थका बराबर विषय कर रहा था और पूरा कारण था। तो इसी तरह जब स्मरण और प्रत्यभिज्ञानका विषयभूत वह पदार्थ पहिले था और उस समय प्रत्यक्ष भी हुआ था तो उस ही समय क्यो नहीं प्रत्यभिज्ञान होता ? होना चाहिए ! स्मरणने समझा क्या ? पहिले जाने हुए पदार्थको और प्रत्यभिज्ञानने भी पहिले जाने हुए पदार्थको ही विषय किया। तब तो ये दोनों ज्ञान उस ही समय हो जाने चाहिएँ जबकि वह पदार्थ था, पर ऐसा होता तो नही है। इससे सिद्ध है कि स्मरण ज्ञान और प्रत्यभिज्ञान उपलब्ध ज्ञान को विषय नहीं करते। निष्कर्ष यह निकला कि स्मरण और प्रत्यभिज्ञानका विषय कुछ है ही नहीं। तब यह

कहना कि स्मरण और प्रत्यक्षका सहाय रखते हुए यह आत्मा अत्यन्त व्यवहित पूर्व और उत्तर पर्यायोंमें रहने वाले एकत्वको जान जाता है, कैसे युक्त है इस सम्बन्धमे यह प्रयोग भी बनता है कि जिसकी सम्पूर्णता होनेपर भी जो बात न हो वह उसको विषय करने वाला नही कहा जाता। जैसे कि सम्पूर्ण रूप मौजूद हैं किन्तु रूपके विषयमें श्रोत्रविज्ञान नही होता अर्थात् कर्णेन्द्रियसे रूप नही जाना जाता, इससे सिद्ध है कि कर्ण इन्द्रियके ज्ञानका विषय रूप नही है। और स्याद्वादियोके यहाँ भी पूर्व उपलब्ध पदार्थ अविकल है, सम्पूर्णरूपसे है पर पूर्व उपलब्ध पदार्थमे स्मृति प्रत्यभिज्ञान नही हो रहे हैं क्योंकि अब वे पदार्थ हैं ही नही। जब वे पदार्थ थे तब स्मृति प्रत्यभिज्ञान मान नही रहे हो। स्मृति और प्रत्यभिज्ञानका विषय कुछ है ही नही।

स्मृति और प्रत्यभिज्ञानके विषयका विवरण—उक्तशंकाका उत्तर देते हैं कि यह बात युक्त नही है। शकाकार कह रहा है कि स्मृति होती है पूर्वकालमे जाने हुए पदार्थके सम्बन्धमे। तो जब वह पदार्थ पहिले था तब ही स्मृति हो जाना चाहिए, क्योंकि स्मृतिका विषयभूत पदार्थ तब तो पूर्णरूपसे था। अब तो वह पदार्थ रहा भी नही। स्मृति किसकी करते हो? यह बात कहना, यो युक्त नही है कि पूर्वकालमे जब पदार्थका दर्शन हुआ था उस कालमे स्मृति और प्रत्यभिज्ञान कारणके अभाव होनेसे उत्पन्न नही हुए क्योंकि स्मृतिका कारण पदार्थ नही है, किन्तु सस्कार जगना कारण है। शकाकार इस दृष्टिकोणसे शका कर रहा है कि जितने भी ज्ञान हुआ करते हैं वे सब ज्ञान पदार्थमे उत्पन्न होते हैं। क्षणिकवादमे यह माना ही गया है ज्ञानकी उत्पत्ति पदार्थसे हुआ करती है। तो स्मृतिने जिस पदार्थको जाना है वह पदार्थ तो पहिले था, अब तो नही है, क्योंकि पदार्थ क्षणिक ही हुआ करता है। तो स्मृतिका कारण तो पहिले था, इस कारण स्मृति पहिले हो जाना चाहिए। उत्तर यह दे रहे हैं कि स्मृतिका कारण पदार्थ नही है किन्तु सस्कारका जगना स्मृतिका कारण है। और, सस्कार कहते हैं कालान्तरमे न भूलना इस प्रकारकी धारणा। सो कालान्तरमे न भूलना इस प्रकारकी धारणारूप सस्कार उस पदार्थके प्रत्यक्षके कालमे न था। जिस पदार्थका प्रत्यक्ष किया गया था उस प्रत्यक्ष किये जानेके समयमें कालान्तरमे न भूलना यह धारणा रूप ज्ञान कब था? न था, क्योंकि वस्तुको जानकर फिर उसके बाद भविष्य कालमें उसे न भूलना यह तो धारणा कहलाती है। तो स्मरण ज्ञानका कारण अब हो रहा है जब कि स्मरण कर रहा। न कि जिस पदार्थका स्मरण कर रहा उस पदार्थका जब प्रत्यक्ष हुआ था तब कारण स्मृतिका था। सो नही है, जैसे किसी पुरुष ने एक वर्ष पहिले अपने मित्रको देखा था अथवा एक वर्ष पहिले किसीने बहुत बड़ी मित्रता कर लिया था। अब आज उस मित्रका स्मरण किया जा रहा है तो शकाकार का शका तो यह है कि आज जो स्मरण ज्ञान हो रहा है वह किस पदार्थके सम्बन्धमे हो रहा है? जिस पदार्थको एक वर्ष पहिले जाना था तो स्मरण ज्ञान एक वर्ष पहिले जाना था तो स्मरण ज्ञान एक वर्ष पहिले ही होना चाहिये, क्योंकि स्मरण ज्ञानका

कारणभूत पदार्थ तो एक साल पहिले था, आज तो नही है लेकिन ये शकामें ठीक नही जगती क्योकि स्मरण ज्ञानका कारण पदार्थ नही है, किन्तु कालान्तरमे न भूलने रूप धारणारूप ज्ञान अर्थात् सस्कारका जग जाना स्मृतिका कारण है सो यह कारण एक वर्ष पहिले था ही नही अत एक वर्ष पहिले उस पदार्थके सम्बन्धमे स्मरण अथवा प्रत्यभिज्ञान हो जाय यह दोष नही आ सकता। इसी तरह प्रत्यभिज्ञान भी पूर्वकालमें ही हो जाना चाहिए, इस प्रकारका दोष दिया नही जा सकता क्योकि प्रत्यभिज्ञानकी उत्पत्ति होती कैसे है ? पहिले देखे हुए पदार्थका संस्कार बन गया था और उस सस्कारके जगनेसे हुई स्मृति, उसकी सहायता लेकर जो अब दुबारा कुछ दर्शन हो रहा है, यह कारण पड रहा है अर्थात् स्मरण और वर्तमान दर्शनके कारणसे जो सकलनात्मक ज्ञान होता है उसे प्रत्यभिज्ञान कहते है तो यह द्वितीय दर्शन और सस्कार जगना यह पूर्वकालमें हो जानी चाहिए, यह दोष नही आ सकता। निर्विवाद स्मरण और प्रत्यभिज्ञानको विषय करके आत्मामे ज्ञान होता है और स्मरण प्रत्यभिज्ञानका सहाय लेकर यह आत्मा पूर्वोत्तर पर्यायोमें रहने वाले एकत्वको जानता है और वही एकत्व ऊर्ध्वतासामान्य कहलाता है।

आत्मामे अर्थग्रहणसामर्थ्यका सद्भाव व अभावके विकल्पोमे स्मृति आदि ज्ञानोंको निरर्थक सिद्ध करनेकी शका— अब शकाकार कहता है कि आत्मा तो केवल ही है अर्थात् प्रत्यक्ष आदिक ज्ञानोकी सहायता न लेकर अतीत भविष्यत अर्थके ग्रहण करनेका सामर्थ्य रख रहा है तब तो स्मरण आदिक ज्ञानोकी अपेक्षा करना व्यर्थ हो जायगा। और यदि आत्मा केवल अतीत और भविष्य अर्थ को जाननेकी सामर्थ्य नहीं रखता तब तो स्मरण आदिककी अपेक्षा रखना बिल्कुल ही व्यर्थ है अर्थात् यहा दो विकल्प किए जा रहे हैं कि आत्मा अकेला ही अतीत और भविष्यके पदार्थोंको जाननेकी सामर्थ्य रखता है या नही ? यदि अकेला आत्मा अतीत भविष्यत कालके पदार्थोंको जाननेकी सामर्थ्य रख रहा है तब तो उसे स्मरण आदिक ज्ञानोंकी सहायता अपेक्षा लेना आवश्यक नही रहा बिल्कुल व्यर्थ हो गया। जब अकेला आत्मा ही अतीत और भविष्यके पदार्थोको जाननेका सामर्थ्य रख रहा है तब स्मरण आदिक ज्ञानोकी क्यो जरूरत ? और यदि अकेला यह आत्मा भूत भविष्यके पदार्थोंके जाननेकी सामर्थ्य नहीं रख रहा तो जब इस आत्मामे भूतभविष्य के जाननेमे सामर्थ्य ही नही है, तब स्मरण आदिक ज्ञानोंकी सहायता लेकर भी नहीं जान सकते। जैसे कि चक्षु इन्द्रियजन्य ज्ञान गधके ग्रहणमें असमर्थ है तो चाहे कितनी भी स्मृतिया हो, उनकी सहायता मिले तो भी चक्षुरिन्द्रिय जन्य ज्ञान गधको ग्रहण करनेमे समर्थ नही हो सकता है। इसी तरह आत्मा यदि नही जाननेकी सामर्थ्य रखता तो स्मरण आदिक ज्ञानोकी भी सहाय लेकर कोई भी भूत भविष्य पर्यायको जान नही सकता ? यह शका है। अब उसका समाधान करते हैं।

आत्माके ज्ञानसामर्थ्य और छद्मावस्थामे प्रतिनियत ज्ञानकी सिद्धि—

शंकाकारका यह कहना अयुक्त है कि आत्मा केवल यदि भूतभविष्य पदार्थोंको जानने है मे सामर्थ्य रख रहा है तो उसे स्मरण आदिककी अपेक्षा व्यर्थ है, क्योकि भूतभविष्य को जाननेकी स्वय सामर्थ्य पडी हुई है और यदि कहो कि आत्मामे भूत भविष्यको जाननेकी स्वय सामर्थ्य नही पडी हुई है तो स्मरण आदिक और भी बिल्कुल व्यर्थ सिद्ध हो जाते हैं। ऐसी शंका करना क्यो युक्त नही है कि पहिले तुम आत्माके वर्तमान सामर्थ्यका स्वरूप तो समझलो। स्मरण आदिकके रूपसे, आत्माकी परिणति होना इसका ही नाम भूत भविष्यत्के पदार्थोंके ग्रहण करनेका सामर्थ्य कहा गया है। इस कारणसे स्मरण आदिक ज्ञानोकी उपेक्षा करना कैसे व्यर्थ हो सकता है ? और जो दृष्टान्त दिया था कि चक्षुरिन्द्रियजन्य ज्ञान तो गधके ग्रहण करनेकी सामर्थ्य नही रखते तो चाहे स्मरण करें पर चक्षु गंधको नही जान सकते। और भी चाहे किसी भी तरह का जोड मिलाये पर चक्षुरिन्द्रिय गधका ज्ञान नही कर सकती। सो दृष्टान्तकी बात देकर प्रकृत बातको बिगाडना युक्त नही है क्योकि चक्षुरिन्द्रियमे गधको ग्रहण करनेका परिणाम ही नही है। तब स्मरण आदिकका सहाय लेकर भी चक्षुरिन्द्रिय में गध ग्रहण करने की सामर्थ्य नहीं हो सकती पर आत्मामें तो जाननेका परिणाम है, स्वभाव है, स्वरूप है, परिणति है तब वह क्षायोपशमिक स्मरण प्रत्यभिज्ञान आदिक ज्ञानोकी सहायता लेकर अतीत पदार्थोंको जान लेता है।

पूर्वोत्तरक्षणमध्यस्वरूप तत्त्वकी सिद्धिमे प्रश्नोत्तर—शंकाकार कहता है कि पूर्व और उत्तर क्षणोके न जाननेपर, उनका विशद बोध न होनेपर फिर कैसे ध्रुवताकी प्रतीति हो सकती है ? उत्तरमें कहते हैं कि यह बात उक्त निराकरणसे स्वयमेव निराकृत हो जाती है। अरे, आत्माके द्वारा पूर्वउत्तर क्षणका ग्रहण सम्भव है अर्थात् पूर्वोत्तर पर्यायोको आत्मा जानता है। प्रत्यक्षसे जाने, अनुमानसे जाने, युक्तिसे जाने। पूर्व और उत्तर पर्यायोंको आत्मा जान लेता है। जरा आप अपनी ही बात बताओ—पूर्व और उत्तर क्षणोको न जाननेपर उसके बीच रहने वाला जो क्षण है पदार्थ है उसमे क्षणिकताकी प्रगति कैसे हो जायगी ? जैसे शकाकार नित्यवादियोसे कह रहा है कि पूर्व और उत्तर पर्यायोके जाने बिना उनके मध्यमे रहनेवाला एक द्रव्य है, ऐसे नित्य द्रव्यका ज्ञान कैसे किया जा सकता है ? तो यही बात शकाकारसे भी पूछी जा सकती है कि क्षणिकवादियो ! पूर्वक्षण और उत्तरक्षण अर्थात् पूर्वपर्याय और उत्तरपर्यायका ज्ञान न होनेपर उसके बीचमे रहने वाला जो मध्यक्षण है, पदार्थ है, वह क्षणिक है, यह प्रतीति कैसे हो जायगी ? यदि कहो कि क्षणिकताकी प्रतीति इस तरह हो जायगी कि पहिले जो देखा था पूर्वक्षणको, उससे जो सस्कार प्राप्त किया था उसके कारण मध्यक्षणको देखनेसे पूर्वक्षणकी स्मृति हो जाती है और पूर्वक्षणकी स्मृति होनेसे फिर वर्तमान क्षणमें याने मध्यम क्षणमें "वह यहाँ नही है" ऐसी अस्थिरताकी प्रतीति हो जाती है। तो उत्तरमे कहते हैं कि इस तरहसे नित्यताका भी ज्ञान हो जायगा। पूर्वपर्यायको देखनेसे जो सस्कार प्राप्त हुआ है उसके बलसे जब वर्तमान

पर्यायकी स्मृति हो जाती है और फिर उस स्मृतिसे यह ज्ञान होता कि वही बीज यहाँ द्रव्यरूपसे बराबर है, तो यो नित्यताकी भी प्रतीति प्रमाणसिद्ध है। यहाँ क्षण शब्द का प्रयोग शकाकारके मतके अनुसार है। जिसको पूर्वपर्याय कहते हैं उसे वे पूर्व क्षण कहते हैं क्योंकि पर्याय शब्दसे उन्हें चिढ़ है। पर्याय कह देनेपर फिर द्रव्य मानना पड़ेगा। क्षणिकवादी स्थिर द्रव्य मानते नहीं, तो उनका क्षण क्षण पूरा ही पदार्थ है। तो उस क्षणकी बात कही जा रही है कि पूर्वक्षण ज्ञात न होनेपर वर्तमान क्षणको कैसे कह सकते कि यह क्षणिक है? "वह न रहा" ऐसा जाननेपर ही तो कहा जायगा कि क्षणिक है। तो इसके उत्तरमे जो कुछ यह जवाब देगा कि पूर्व क्षणको जाना था। उससे सस्कार बना था। उसके बलसे अब इस उत्तरक्षणको या मध्य क्षण को जानते हुए की हालतमे यह ज्ञान हो रहा है कि वह यहाँ नही है। इस तरहसे नित्यता नही है यह जान लिया जाता है तो यही बात नित्यके बोधकी भी समझ लेना है। पूर्व पर्यायके बोधसे जिसने सस्कार बना लिया उसे वर्तमान पर्याय दिखती है तो वहाँ यह ज्ञान कर लेते हैं उस स्मरणके बलसे कि यह वही द्रव्य रूपसे है, जो पहिले था वह अब भी द्रव्यरूपसे है। यो स्थिरता, नित्यता, ध्रुवताकी प्रतीति हो जाती है।

स्थास्नुताकी सिद्धिमे प्रश्नोत्तर—अब शकाकार कहता है स्थास्नुता का अर्थ है पूर्व और उत्तर क्षणोमे मध्यक्षणका अभाव होना या पूर्व क्षणका उत्तर क्षणका मध्यक्षणमें अभाव होना, जैसे सामने तीन क्षण हैं तो पहिले क्षणका और तीसरे क्षणका द्वितीय क्षणमे अभाव होना इसका ही नाम क्षणिकपना है अथवा उस मध्य क्षणमे द्वितीय क्षणमे पूर्व और उत्तर क्षणका अभाव होना तो यह अभाव तदात्मक है। जो मध्यक्षणमे पदार्थ है उसके भावरूप है इस कारण मध्यक्षणके ग्रहण करनेसे ही पूर्वक्षण और उत्तर क्षण ग्रहणमे आ जाते हैं। अथवा उस मध्य क्षणके ग्रहण करनेसे क्षणिकताका ज्ञान हो जाता है। उत्तर देते हैं कि यह बात सारहीन है। जब पूर्व और उत्तर क्षणकी प्रतीति नही है तो पूर्व और उत्तर क्षणोमें मध्य क्षणका अभाव कहना या मध्य क्षणमे पूर्व और उत्तर क्षणका अभाव कहना यह तो असम्भव है। जैसे कि किसीने घटको नहीं जाना तो उस पुरुषको यह प्रतीति तो नही होती कि यहाँ घडा नही है। घडेके अभावकी प्रतीति उसको हो सकेगी जिसे घटका ज्ञान है। तो पूर्व और उत्तर क्षणोका मध्य क्षणमे अभाव है, ऐसा ज्ञान उसका ही तो होगा कि जिसको पूर्व उत्तर क्षणोका बोध हुआ है और जब बोध हुआ है तो इस तरह फिर स्थिरताकी प्रतीति कैसे न होगी? और, इस ही प्रकार हम नित्यताके सम्बन्धमें भी कह सकते हैं कि स्थास्नुता नाम है पूर्व और उत्तर क्षण के बीचमे कथञ्चित् द्रव्यरूपसे सद्भाव होना। और, उस मध्यका पूर्व और उत्तर पर्यायमें द्रव्यरूपसे सद्भाव होना और यह मध्य क्षणका सद्भाव तदात्मक ही है। द्रव्यरूपसे मध्यक्षणात्मक ही है इस कारणसे मध्यक्षणके ग्रहण करनेसे ही पूर्व और

उत्तर क्षणोका ग्रहण हो जाता है। तो यो नित्यताकी भी सिद्धि हो जाती है।

वस्तुमे स्वभावतः नित्यताका सिद्धान्त—अब शकाकार कहता है कि पदार्थोंका चिरकाल तक ठहरना इसका नाम है नित्यता । तो यह नित्यता तीनो कालकी अपेक्षा रखती है। तीनो कालका बोध हो यब ही कह सकते हो कि पदार्थ मे नित्यता है। यदि तीनो कालका बोध नही है तो तीनो कालकी अपेक्षा रखकर जो नित्यताका ज्ञान हो सकता है वह अब न हो सकेगा। उत्तर देते हैं कि यह बात युक्त नही है क्योकि नित्यता तो वस्तुका स्वभाव है वह अन्यकी अपेक्षा नही रखता । तो अन्यकी अपेक्षा न रखने वाले स्वभावभूत नित्यताकी प्रतीति प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणो से सिद्ध है। देखो इस जीवनमे ही हम वही महल देखते चले आ रहे जो बीस वर्ष पहिले देखा था। कुछ वे ही पुरुष नजर आ रहे जिनको अनेक वर्ष पहिले देखा था जिजसे हमारा परिचय रहा आया था। जिनके हृदयको, जिनके आशयको हम बराबर समझते आ रहे हैं, फिर क्यो न नित्यताकी प्रतीति प्रत्यक्षसे मान ली जायगी ? तो वस्तुमे नित्यता होना वस्तुका स्वभाव है। यदि स्वय वस्तु नित्यतासे रहित है तो तीनो कालके द्वारा भी इसकी नित्यता नही की जा सकती ,वस्तुमे जो नित्यपना है वह कालकी अपेक्षासे नही है कि तीनकालमे रहता है इस कारणसे नित्य है, नही। वस्तु स्वभावसे नित्य है तीन कालके सम्बन्धसे नित्य नही। तीन काल भी चीज है जैसे हम आकाशमे रहते हैं—मोटे रूपसे कहा जायगा कि हम आकाशमें रहते हैं, हमारा रहना आकाशकी अपेक्षा रखता है मगर वास्तविकता तो यह नही है। हमारा रहना आकाशकी अपेक्षा नही रखता। हमारे स्वरूपकी ही बात है कि हम रह रहे हैं, इसी तरह वस्तु नित्य है तो यह तीनो कालके प्रसादसे नित्य नही, किन्तु अपने स्वभावसे ही यह वस्तु नित्य है। यदि वस्तुमे नित्यताका स्वभाव न हो तो त्रिकालके द्वारा भी यह नित्यता नही की जा सकती है, जैसे कि अनित्यताका स्वभाव न हो वस्तुमे तो कालके द्वारा अनित्यता नही की जा सकती । जैसे कि कोई कह सकता है कि वस्तुमे अनित्यता वर्तमान कालके कारण हैं वर्तमान काल मे रहती हैं इस कारण वस्तु अनित्य है। तो वस्तुकी अनित्यता वर्तमान कालके द्वारा नही की जाती क्योकि अनित्यवादियोने भी स्वय वर्तमान कालका भेद नही किया यदि ये वर्तमान मान लें तो भूत भविष्य ये भी तो बोलने पडेंगे। और, क्षणिकवादियोने वर्तमान कालका सत्त्व यो नही माना कि सत्त्व मान लोगे तो उस कालकी अनित्यता भी तो सिद्ध करनी होगी। जैसे कि पदार्थ क्षण यह सत् है और यह क्षणिक है और इसमे क्षणिकताका कारण मान लो काल तो कालकी अनित्यता किसके द्वारा की गई । जैसे समस्त वस्तुवोकी अनित्यता तो कालके द्वारा बना दी गई और कालकी अनित्यता यदि कहोगे कि अन्य कालके द्वारा किया जायगा तो अनवस्था दोष हो जायगा फिर उस अन्य कालकी अनित्यता किसी अन्य कालके द्वारा की जायगी । इस कारणसे जैसे स्वभावसे पूर्व और उत्तर क्षणोसे विच्छिन्न अलग भेद किए गए क्षण उत्पन्न होते

हैं और क्षणिक माने गए हैं शकाकारके यहा, और कालसे निरपेक्ष बताया गया है उसी तरहसे नित्यपना भी स्वभावसे है काल निरपेक्ष है, पूर्व और उत्तर पर्यायोंमें अन्वयरूपसे रहने वाला है। यो पदार्थमें जैसे भेद सिद्ध हैं, परिणति सिद्ध है इसी प्रकार पदार्थोंमें एकत्व अभेद अन्वयरूपता भी सिद्ध होती है।

अन्य अतीतादि कालसम्बन्धसे कालका अतीतत्वादी सिद्ध न होनेसे कालसम्बन्धिनी नित्यताकी असिद्धिकी शका—अब शकाकार पूछता है कि अक्षणिकत्वका अर्थ क्या है ? नित्य होनेका अर्थ यही तो है ना कि पदार्थ अतीत-काल और अनागत कालका सम्बन्ध बनाये हुए है। तो पदार्थोमे जो अक्षणिकता है वह अतीत अनागत कालके सम्बन्धपना होनेसे है और अतीत अनागतपना भी सिद्ध होता ही नही है। नित्यता तो नाम इसका है कि भूत और भविष्य कालमें वह सम्बन्धित रहता है पर भूतकाल और भविष्य काल ही सिद्ध नही है, क्योंकि भूत भविष्यकी सिद्धि आप किस तरह करेंगे ? भूत भविष्य कालके सम्बन्धसे पदार्थोंमे नित्यता सिद्ध की और कालमें भूत भविष्यपना कैसे सिद्ध करोगे ? अगर अन्य भूत भविष्यकालके सम्बन्धसे सिद्ध करोगे तो इसमे अनवस्था दोष आयगा। फिर उस द्वितीय भूत भविष्यको सिद्ध करनेके लिये तृतीय भूत भविष्यकाल मानो और उन दानोमें अगर एक दूसरेसे परस्पर सिद्ध करनेकी बात कहोगे तो अन्योन्याश्रय दोष होगा अथवा पदार्थ क्षण अतीत अनागत है उसे तीनो कालसे अतीत अनागत मानोगे तो इसमे अन्योन्याश्रय दोष है। जब इस तरह अतीत अनागत सिद्ध हो ले तो काल अतीत अनागत बने और जब काल अतीत अनागत सिद्ध होले तब कालमें अतीत अनागतपन सिद्ध हो सके। इससे यह नहीं कह सकते कि अतीत अनागत कालके सम्बन्ध होनेसे पदार्थोंके अतीत अनागतपनेका ज्ञान हो जाता है।

पदार्थक्रियाकी अतीतानागततासे कालकी अतीतानागतताकी असिद्धि का शकाकारका द्वितीय विकल्प—शकाकार दूसरा विकल्प रख रहा है कि पदार्थों की नित्यताका अर्थ है कि पदार्थ अतीत और अनागत कालके सम्बन्धसे अतीत और अनागत रहें पर कालकी भूतभविष्यता कैसे सिद्ध करोगे ? क्या अतीत-अनागत पदार्थकी क्रियाका सम्बन्ध है उस कालसे इस तरहसे कालको अतीत अनागत सिद्ध करोगे ? पदार्थोंकी क्रियाके सम्बन्धसे कालको अतीत अनागत सिद्ध करना सगत नही है। शकाकार ने ये दो विकल्प किए थे कि काल अतीत और अनागत है यह तुम किस तरह सिद्ध करोगे ? क्या दूसर अतीत अनागत कालका सम्बन्ध है इससे काल अतीत अनागत बन जायगा या अतीत अनागत पदार्थोंकी क्रियाका सम्बन्ध कालमे जोडा गया है इसलिए काल अतीत अनागत सिद्ध हो जायगा ? विकल्पका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि भूत भविष्यत कालके सम्बन्धसे पदार्थमे भूत भविष्य पर्याय कहलाते हैं या पदार्थोंके भूत भविष्य परिणतिके सम्बन्धसे काल भूत भविष्य कहलाता है ?

इस आधारको लेकर विकल्प किया गया है अथवा अब यह दूसरा विकल्प नहीं कह सकते कि पदार्थकी क्रियाके सम्बन्धसे कालमे भूत भविष्यपना आया है क्योंकि इसमे यह तो पूछा जायगा कि पदार्थोंकी क्रियापे अतीत अनागतपना कहाँसे आ गया ? यदि कहो कि अन्य अतीत अनागत पदार्थोंकी क्रियाके सम्बन्धसे आया है तो यहाँ अनवस्था दोष हो जायगा कि अब उस अतीत अनागत पदार्थ क्रियाकी अतीतता अनागगतता सिद्ध करनेके लिए अन्य अतीत अनागत पदार्थ क्रिया माननी होगी। यदि कहो कि अतीत अनागत पदार्थ क्रियाका अवगम अतीत अनागत कालके सम्बन्धसे हुआ है तो इसमे अन्योन्याश्रय दोप हो जायगा। अर्थात् जब पहिले काल अतीत अनागत क्रिया सिद्ध होगी और जब पदार्थोंकी अतीत अनागत परिणति सिद्ध हो तब कालका अतीत अनागतपना सिद्ध होगा। इससे यह दूसरा विकल्प भी सगत नहीं है।

स्वत· कालकी अतीतानागततासे पदार्थक्रियाकी असिद्धिका शकाकारका तृतीय विकल्प शकाकार अब तीसरे विकल्प द्वारा शका कर रहा है कि पदार्थोंकी जो नित्यता आयी है वह आयी है कालके अतीत अनागतपनेके सम्बन्धसे तो यह बतलावो कि कालमे अतीतता और अनागतता कैसे आ गयी ? यदि कहो कि स्वतः आ गयी तब तो पदार्थमे भी स्वत. ही अतीत अनागतपना मान लो, फिर भूत भविष्यके सम्बन्धकी बात क्यो करते हो ? जैसे काल स्वय अतीत अनागत हो जाता है इसी तरह पदार्थकी परिणतियाँ भी स्वय अतीत अनागत मान लो। फिर त्रिकाल व्यापक है और त्रिकालमे व्यापक बतानेके ढगसे द्रव्यको नित्य सिद्ध करनेकी क्या आवश्यकता है ? इस तरह शकाकारने तीन विकल्पोंसे अतीत और अनागतताकी असिद्धि की।

कालकी अतीतानागतताके द्वारा पदार्थ परिणतिकी अतीतानागतता सिद्ध न होनेकी शकाका समाधान—अब इस उक्त शकाके समाधानमे कहते हैं कि यह कथन कहना सब बिना विचारे है हम तो अतीत समयकी अतीतता स्वरूपसे ही मानते हैं। अतीतका अर्थ क्या है ? जहाँ वर्तमानत्वका अनुभव कर लिया है उस समयको अतीत कहते हैं और जिसका वर्तमानपना अनुभव किया जायगा उसको अनागत अथवा भविष्यतकाल कहते है। और ऐसा अतीत अनागतकालका सम्बन्ध होनेसे पदार्थोंमे अतीत और अनागतपना सिद्ध होता है। कालकी तरह पदार्थोंमें भी स्वरूपसे अतीत और अनागतपना कहना युक्त नहीं है, क्योंकि एकका धर्म अन्य पदार्थों में सयोजित नहीं किया जा सकता है। यदि एकका धर्म दूसरे पदार्थमे सयुक्त कर दिया जाने लगे तो नीमका कडवापन गुडमे सयोजित कर दिया जाय। अथवा ज्ञानका धर्म है स्वपर प्रकाशकता, वह घटपट आदिक पदार्थोंमे भी घुस जायगी अथवा घटपट आदिक पदार्थोंका धर्म है जडता सो वह जडता ज्ञानमे भी प्रविष्ट हो जायगी। किसी

एकका धर्म किसी अन्तमे बाँटा नही जा सकता। काल अतीत है और अनागत है और उस अतीत अनागत कालके समयमे जो पदार्थकी परिणति हुई है उस पदार्थको भी हम अतीत अनागत कहते हैं। अथवा जाने दो। जिस कालमे स्वयं अतीत और अनागत होते हैं ऐसे पदार्थोंकी परिणतियाँ भी स्वय अतीत और अनागत रहती है, पर उनका अतीत और अनागतपनेकी सज्ञा कालके सम्बन्धसे की जा सकती है।

विशेषप्रतिभापकी अनुवृत्तप्रत्ययबाधकताका निराकरण–अब शकाकार कहता है कि पदार्थोंका नित्यत्व धर्म अनुवृत्ताकार ज्ञानके उपलम्भसे ही तो सिद्ध किया जा सकता है, अर्थात् पदार्थ ज्योका त्यों बराबर चल रहा है ऐसा ज्ञान बने तब तो पदार्थोंकी नित्यता सिद्ध हो लेकिन अनुवृत्ताकार ज्ञान तो असिद्ध है क्योकि बाधित होनेसे। क्षणिकवादी लोग समानताको भ्रम समझते हैं। कैसे चीजें सब एक एक हैं, वे मिली भई नही हैं, अब उन एक एक चीजोंमें भिन्न भिन्न चीजोमे जो एकत्वका बोध किया जाता है, वह वही है इस तरहका जो ज्ञान किया जा रहा है वह भ्रम है, वास्तविक नही है। ऐसा क्षणिकवादका सिद्धान्त है। और उसके अनुसार ये क्षणिकवादी कह रहे हैं कि अनुवृत्ताकार ज्ञान असिद्ध हैं क्योकि वे बाधित हो जाते हैं। अब उक्त शकाका समाधान करते हैं कि ऐसी शका मिथ्या है क्योंकि शकाकार लोग अनुवृत्ताकार ज्ञानका बाधक विशेष प्रतिभासको मानते हैं, अर्थात् पदार्थोंमें जो भिन्नताका प्रतिभास होता है उस प्रतिभाससे अनुवृत्ताकार, सामान्य ज्ञान, समानताका बोध बाधित होता है, ऐसा कहते हैं, लेकिन विशेषका प्रतिभास अनुवृत्ताकारके ज्ञानका बाधक नही है, विशेषका भी प्रतिभास हो रहा है और समानताका भी प्रतिभास हो रहा है। दोनो बातें अलग–अलग हैं। उसमें यह नही कहा जा सकता कि अनुवृत्ताकार ज्ञान होनेसे विशेष प्रतिभास असत्य है या भेद प्रतिभास होनेसे अनुवृत्त ज्ञान असत्य है। क्यो यह नही कहा जा सकता यो कि पदार्थका किसी भी रूपमे प्रतिभास हो रहा है। अन्यथा शकाकार यह बतलाये कि यह जो विशेष प्रतिभास है जिसे अनुवृत्ताकारका बाधक बताया जा रहा है सो अनुवृत्ताकारके जान लेनेपर अर्थात् जाने हुए अनुवृत्ताकारका विशेष प्रतिभास बाधक है या अज्ञात अनुवृत्ताकारका विशेष प्रतिभास बाधक है? विशेष प्रतिभासका अर्थ है ये इससे जुदा हैं, ये भिन्न हैं, ये न्यारे–न्यारे हैं इस तरहके प्रतिभासको कहते हैं विशेष प्रतिभास। और, यह वही है, यह उसके ही समान है, यह एकस्वरूप है, इस तरहके एकत्वके प्रतिभासका नाम है अनुवृत्त प्रतिभास। तो उसमें यह बतलावो कि जाने हुए अनुवृत्त प्रतिभासमे विशेष प्रतिभास बाधा देता है या न जाने हुए अनुवृत्त प्रतिभासमे विशेष प्रतिभास बाधा देता है। यदि कहो कि जाने हुए अनुवृत्ताकारमे विशेष प्रतिभास बाधा देता है तो यह बतलाओ कि अब यहाँ तक बात होगई सामने अनुवृत्त प्रतिभास और विशेष प्रतिभास आने गए दोनोंके दोनो। अब इन दो प्रतिभासोंमें हम विशेष प्रतिभापकी बात पूछ रहे हैं। क्या यह विशेष प्रतिभास अनुवृत्तप्रतिभासात्मक है या अनुवृत्त्य प्रतिभास

से जुदा है ? यदि कहो कि विशेष प्रतिभास अनुवृत्त प्रतिभासमय है तो जब तुम अनुवृत्त प्रतिभासको मिथ्या बता रहे हो तो विशेष प्रतिभास भी मिथ्या हो जायगा, क्योंकि अब विशेष प्रतिभासका तुमने अनुवृत्त प्रतिभासात्मक माना है। फिर यह मिथ्या प्रतिभास अनुवृत्त प्रतिभासको कैसे बाधक होगा ? यदि कहो कि अनुवृत्त ज्ञान से विशेष प्रतिभास वाला ज्ञान जुदा है अर्थात् यह वही है इस प्रकारका होने वाला अनुवृत्त ज्ञान और यह ये नही हैं, बिल्कुल न्यारे न्यारे हैं। ये सब इस तरहका ज्ञान करने वाले विशेष प्रतिभास हैं। ये दोनो परस्परमे भिन्न हैं। अनुवृत्तज्ञान और विशेष ज्ञान ये दोनो जुदे हैं तो अनुवृत्ताकार प्रतिभासके बिना विशेष प्रतिभासका संवेदन नही हो सकता तब विशेष प्रतिभास अनुवृत्त प्रत्ययका कैसे बाधक होगा ? अथवा जब ये दोनो भिन्न भिन्न हैं तो एक दूसरेके बाधक कैसे होगे, हिमालय पर्वत क्या विन्ध्याचल पर्वतका बाधक है ? अरे जो अत्यन्त न्यारी न्यारी चीजे हैं वे एक दूसरेकी बाधक कैसे हो सकती हैं ? और फिर अनुवृत्त प्रतिभासके बिना विशेष प्रतिभास नही बन सकता। क्योंकि सामान्यका कोई संकल्प हो, भीतरमे कुछ कल्पना हो तब तो उस का प्रतिपक्षी जो विशेष है वह समझमें आयगा। तो अनुवृत्ताकारको ज्ञान न होने पर विशेष प्रतिभास ही सम्भव नही है। फिर विशेष प्रतिभास अनुवृत्त प्रत्ययको बाधक कहना कैसे युक्त हो सकता है ? इससे यह बात निर्णयमे लेना चाहिए कि पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है।

पदार्थकी स्वयं सामान्यविशेषात्मकता—यहा स्वयकी स्वयमे सामान्य विशेषात्मकताकी बात कही जा रही है। अनेक पदार्थोंमे समानताकी बात नही कही जा रही है। पदार्थ द्रव्यरूपसे सदा अपने आपमे रहते हैं और परिणतिके रूपसे पदार्थ जिस कालमे जिस रूपसे परिणमता है उस परिणमनरूप उस ही कालमे रहता है। तो पर्यायदृष्टिसे तो पदार्थमे भेद और विशेष सिद्ध होता है और द्रव्यदृष्टिसे पदार्थमे अभेद और नित्यता सिद्ध होती है। तो नित्यानित्यात्मक पदार्थका कारण है द्रव्यत्व और पर्याय द्रव्यपर्यायात्मक है। न केवल पर्याय पर्याय ही पदार्थ है और न केवल पर्याय शून्य ही कुछ द्रव्य हो सकता है। पदार्थोंकी यह नित्यानित्यात्मकता प्रत्यक्षसे भी सिद्ध है, युक्तिमे भी सिद्ध है। जैसे यह एक जीव है इस जीवमे जीवत्व जीवका सत्त्व अनादि अनन्त है, उस अनन्त सत् जीवका प्रतिसमयमे व्यक्तरूप बनता जा रहा है उस व्यक्तरूपको पर्याय कहते है। जैसे कोई अगुली टेढी सीधी हो रही है तो टेढी सीधी दोनो दशाओंमे रहने वाली अगुली तो एक ही है। तो फिर कैसे कहा जायगा कि अब टेढी मिटकर सीधी हुई है। तो यो समस्त पदार्थोंमे नित्यता भी है और अनित्यता भी है। और नित्यताका साधन ऊर्ध्वता सामान्य है और अनित्यता का साधन ऊर्ध्वता विशेष है। तो ऊर्ध्वतासामान्यकी दृष्टिसे पदार्थमे अनुवृत्ताकारका ज्ञान होता है और उस अनुवृत्ताकार ज्ञानकी उपलब्धि होनेसे पदार्थ नित्य है इस बातकी प्रबल पुष्टि हो जाती है। हा उसमे विशेष धर्म भी है और साधारण धर्म भी

है। पर विशेष धर्म सामान्यका बाधक हो, सामान्य फिर विशेषका बाधक हो ऐसी बात नही है। पदार्थ स्वय सामान्य विशेषात्मक होता है।

प्रत्यक्षसे पदार्थ क्षणिकत्वकी व्यवस्थाका अभाव—शकाकारने यह कहा था कि पदार्थोंमे जो अनुवृत्तिका ज्ञान होता है वह विशेषज्ञानके द्वारा बाधित हो जाता है, अर्थात् किसी भी पदार्थमे यह वही है, यह वही है ऐसा जो एकत्वका ज्ञान होता है वह तो भ्रम है और प्रतिक्षणमें जो स्वलक्षण है उसका जो अनुभव है वह परमार्थ है। तो पदार्थमें एकत्वका ज्ञान विशेष प्रतिभाससे बाधित होता है। इस सम्बन्धमे शकाकारसे यह कहा जा रहा है कि बाधक प्रमाण तो उस हीको कहते हैं ना जो विपरीत अर्थकी व्यवस्था करे। जैसा कुछ समझा है हमने किसी वस्तुके बारेमें उनने विपरीत अर्थकी जो व्यवस्था बताये ऐसे ज्ञानको बाधक ज्ञान कहेंगे। जैसे कि पहिले जाना रस्सीको सांप। अब सांपके ज्ञानसे विपरीत ज्ञान है रस्सीका ज्ञान तो रस्सीके ज्ञानकी व्यवस्था करे प्रमाण। तो जिस प्रमाणसे यह दृढ़ बात बन जाय कि यह रस्सी ही है तो उस ज्ञानको बाधक ज्ञान कहेंगे। अर्थात् पहिले जो सर्प भ्रमका बाध था वह बाधित हो जाता है इसी प्रकार यहाँ हम लोग समझ रहे हैं कि पदार्थ नित्य है वही रह रहा है" तो इससे विपरीत अर्थ अर्थात् एक ही क्षण रहता है पदार्थ दूसरी क्षण नही रहता है इसकी कोई व्यवस्था बनाये ऐसा ज्ञान ही बाधक बन सकता है। तो ऐसा बाधक ज्ञान आपके यहाँ कौन हो सकता है ? क्षणिकवादमे केवल दो ही ज्ञान माने हैं—प्रत्यक्ष और अनुमान। प्रतिक्षण विनाशीक पदार्थकी व्यवस्था करनेके रूपसे माना गया प्रत्यक्ष ज्ञान क्या पदार्थोंके अनुवृत्ताकार प्रत्ययका बाधक है अथवा अनुमान ज्ञान अनुवृत्त प्रत्ययका बाधक है। पदार्थमे यह वही है इस प्रकारका जो अन्वयी ज्ञान है उसे अनुवृत्त प्रत्यय कहते हैं प्रत्यक्ष और अनुमान इन दो प्रमाणोंके अतिरिक्त अन्य तो आगम अथवा स्मृति आदिक कोई प्रमाण नही माने गए क्षणिक वादमें। तो इन दो विकल्पोमेसे प्रत्यक्ष ज्ञानसे विपरीत अर्थका व्यवस्थापक नही कह सकते क्योकि प्रत्यक्ष के द्वारा प्रतिक्षण नष्ट हो ऐसा पदार्थ प्रतिभासमें नही आता। किसीको भी प्रतिक्षण नष्ट हो रहे ऐसी मुद्राको धारण करने वाला पदार्थ प्रत्यक्षमे नही प्रतिभासित होते हैं किन्तु प्रायः सभीके इस ही रूपसे पदार्थ ज्ञानमें आ रहे हैं कि यह स्थिर है। स्थूल है और साधारण रूप है। अन्य प्रकारका प्रतिभास अन्य प्रकारके पदार्थोंकी व्यवस्था करने वाला नही बन सकता। पदार्थोंके सम्बन्धमे प्रतिभास तो हो रहा है ऐसा कि यह स्थिर है, स्थूल है और साधारण है, सामान्यरूप है, जो था सो अब है, इस तरह का तो हो रहा है प्रतिभास प्रत्यक्ष और उससे व्यवस्था बनायें प्रतिक्षण नष्ट होनेवाले वाले पदार्थकी, तो यह नही हो सकता। यदि कुछ प्रतिभास हो और कुछ अर्थका ज्ञान किया जाय ऐसी अटपट वृत्ति हो तो बडी आपत्तिया आयेंगी। हम कपडेका तो ज्ञान करे और घडेकी व्यवस्था उससे बन जाय यह कैसे हो सकता है ?

क्षणक्षयवादमे भेदवादके आधारपर द्रव्य क्षेत्र काल भाव चारोके भेद का सिद्धान्त—क्षणिकवाद भेदवादके सिद्धान्तपर आधारित है। याने सर्वप्रकारसे भेद करना चाहिए। पदार्थोंका द्रव्य भेद अर्थात् निरश द्रव्यको पदार्थ माना तभी तो एक एक अणु ही क्षणिकसिद्धान्तमे पदार्थ है। उन अणुवोका स्कध होना मेल होना, यह सब कोरा भ्रम है। स्वप्नवत् बताया गया है। क्षेत्र भेद प्रदेश छण प्रत्येक अर्थ एक प्रदेशी ही होता है। कोई भी अर्थ दो प्रदेशोको नही घेरता क्षणिकवाद सिद्धात मे और तभी जो कुछ ये पिण्डरूप नजर आ रहे हैं ये पदार्थ नही है किन्तु इनमे रूप क्षण, रसक्षण, गधक्षण स्पर्श क्षण ये हैं पदार्थ। कहीं रूप, रस, गध स्पर्श वाला पिण्डात्मक पदार्थ नही हुआ करता, पदार्थ निरश होता है। इसी प्रकार काल भेदमें एक समयमे जो भी हो, बस वह पदार्थ है अगले समयमे वह पदार्थ नही है, कोई नया ही सत् उत्पन्न हुआ है। इसी प्रकार भावभेदमे भी शक्ति समूह रूप पदार्थ नही है किन्तु निरश निरन्वय निरवयव जो कुछ भी भाव हैं तन्मात्र पदार्थ हैं। इस तरह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इन चारका भेद न करके इन चारो की दृष्टिसे निरश पदार्थ माने गये हैं लेकिन उनमे प्रसिद्धि है कालभेदकी। पदार्थ क्षणिक हैं। यहा ऊर्ध्वता सामान्यका विरोधी सिद्धान्त क्षणिकवाद है। इसलिये उन चार भेदोमेसे कालभेदकी दृष्टिसे पूर्वपक्षमें क्षणिकवादकी बात लायी गई है।

नित्यत्वैकान्तमे द्रव्य क्षेत्र काल भाव इन चारोमे अभेदका सिद्धान्त—जैसे भेदवादियोने द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव इन चारोमे अभेद किया है। ऐसे ही नित्यत्ववादियोने इन चारोमें अभेद किया है। द्रव्यका अभेद अर्थात् जितने समस्त विश्व हैं वे समस्त विश्व हैं वे समस्त एक ब्रह्म रूप हैं। यह हुआ द्रव्यका अभेद। अलग अलग कुछ द्रव्य ही नही। सारी उस ब्रह्मकी तरग है। है सब कुछ एक ब्रह्मरूप वो यह हुआ द्रव्यका अभेद। क्षेत्रका अभेद वे सब एक हैं, सर्वव्यापक हैं यो मानकर वहां न्यारा क्षेत्र निरखनेका अवकाश ही नहीं रहने दिया। कालका अभेद पदार्थ है, उसमे भूत भविष्यकी कोई योजना नही है। वह तो अपरिणामी तत्त्व है। उस ब्रह्म का कोई परिणमन हो नहीं है। जिससे कोई अतीत अवस्था अथवा भविष्यत अवस्था बतायी जा सके। इस तरह कालमे भी वह ब्रह्म अद्वैत अभेद है इसी प्रकार भावमे भी अभेद हैं। सर्व कुछ एक सत् वही मात्र एक शक्ति है। इस तरह सर्वथा नित्यवादियोने इन चारमे अभेद माना है। सभी प्रकारके दार्शनिकोके मतव्योकी यदि समीक्षा की जाय तो सबका आधार यह चतुष्टय पड़ता है—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। इस ही चतुष्टयके भेदमे जहा कहीं कोई भ्रम हो, भूल हो कि एकान्त हो जाता है। शकाकारके द्वारा बाधक प्रमाणकी चर्चा चलाई गई थी कि जो अनुवृत्त ज्ञान होता है उस ज्ञानका बाधक विशेष प्रतिभास है। तो विशेष प्रतिभास बाधक तब बने जब विपरीत अर्थकी व्यवस्था करने वाला हो। वह क्या प्रत्यक्ष है, अथवा अनुमान ? प्रत्यक्षसे तो स्थिर स्थूल, साधारण रूपसे विपरीत अर्थात् अस्थिर

निरश और भेद अभेद मात्र पदार्थकी सिद्धि नही होती । क्षणिकवादमें पदार्थको स्थिर नही माना क्योंकि वह फिर त्रिकालव्यापी बन बैठेगा, क्षणिकताके खिलाफ जायगा। इसी तरह क्षणिकवादमें स्थूल पदार्थ नहीं माना । भींट, चौकी, शरीर आदिक जो कुछ भी दिख रहे हैं ये सब भ्रमजाल हैं। अन्य पदार्थ हैं हो नहीं क्योंकि क्षेत्रसे, निरशको ही पदार्थ माना गया है और स्थूल बहुतसे प्रदेशोमे व्यापकर रहेगे, तभी तो स्थूल कहलायेंगे, पर बहुप्रदेशता पदार्थमें मानी गई है नही, इस कारण स्थूल कुछ नही है। इसी तरह साधारणरूप भी कुछ नही है। साधारणरूपका अर्थ यह है कि एक साथ वर्तमान अनेक व्यक्तियोंमें धर्मकी सदृशता देखकर उनमे सदृशता का बोध करना यह भी क्षणिकवादमें नही माना है। लेकिन प्रत्यक्षसे तो सब कुछ स्थिर स्थूल और साधारणरूप पदार्थ विदित हो रहा है इस कारण प्रत्यक्ष विपरीत अर्थकी व्यवस्था करने वाला नही हो सकता, जिससे कि अनुवृत्त ज्ञानमें बाधा आवे।

स्थिर स्थूल साधारणरूपके प्रतिभासको भ्रान्त कहनेकी शका - अब शकाकार कहता है कि पदार्थ स्थिर स्थूल साधारण रूपका प्रतिभास हो रहा है तो भी यह तो सदृश नवीन नवीन पदार्थोंकी उत्पत्ति जो हो रही है उसमे भ्रम हो गया है एकताका। हैं ये सब क्षणिक किन्तु सब समान-समान उत्पन्न हो रहे हैं तो उनमें एकत्वका भ्रम बन गया है और जैसे कि पदार्थका वास्तविक अनुभव हो जाता है पदार्थके वर्तमान कालमे उस तरहका निश्चय नही हो पा रहा। इसी कारणसे ये पदार्थ स्थिर हैं, स्थूल हैं साधारण हैं, इस प्रकारसे भ्रान्त निर्णय होता है लोगोको वास्तविकता तो यह है कि जब जो पदार्थ उत्पन्न हुआ उस ही समयमे ज्ञानक्षणका अनुभव हो जाता है। ज्ञानक्षणका ही नाम लोगोने आत्मा रखा है। जो एक समयका ज्ञानात्मक पदार्थ है उसे ज्ञान क्षणमे पदार्थका जो अनुभव होता है परमार्थ भूत तो वह है लेकिन वह वक्तव्य नही हो पाता। और वासनाकी वजहसे सविकल्प ज्ञानमे पदार्थ स्थिर जचने लगता है। तो स्थिर स्थूल देखना यह भ्रम है और प्रतिक्षण पदार्थ विनाशीक है। क्षणिक है यह बात परमार्थकी है।

प्रत्यक्षप्रतीत स्थिर स्थूल साधारणरूपको भ्रान्त माननेको शकाका निराकरण—उक्त शकाके समाधानमें कहते हैं कि यह कहना तुम्हारा ठीक नही है क्योंकि जिसकी इन्द्रिया निर्मल हैं, जिसकी इन्द्रिया अपहूर्न नहीं हुई हैं, इन्द्रियमे कोई दोष नही है, ऐसे निर्मल इन्द्रिय वाले पुरुषको यदि अन्य प्रकारसे पदार्थके निश्चयको कल्पना करा दी जाय, निर्दोष इन्द्रिय वाला पुरुष जिसे जो कुछ जान रहा है वह भ्रम है, यदि ऐसी बात ली जाय तो कभी भी प्रतिनियत अर्थकी व्यवस्था नही हो सकती। फिर तो जो कोई जो कुछ कहेगा उसीको ही भ्रम कह देंगे, फिर किसी पदार्थकी व्यवस्था ही न हो सकेगी। फिर तो नील क्षण अनुभव हो रहा है उस कालमें पीत कृष्ण, श्वेत आदिक किसीके निश्चयकी उत्पत्तिकी कल्पना कर डालो। क्योंकि निर्दोष

इन्द्रिय वाले पुरुषको जो कुछ भी ज्ञान हो रहा है उसे आप भ्रम बता देते हैं तो जब नील क्षणका अनुभव हो रहा है तब उससे पीत पदार्थका ज्ञान कर बैठो । यों तो फिर किसी भी प्रतिनियत अर्थकी व्यवस्था नही बन सकती है । और फिर यह कहना भी प्रतिनियत अर्थकी व्यवस्था नही बन सकती है । और फिर यह कहना भी तुम्हारा व्यर्थ हो जायगा कि जिस ही पदार्थमे बुद्धिको उत्पन्न करे उस ही पदार्थमे इसकी प्रमाणता होती है । क्षणिकवादमे ज्ञानकी व्यवस्था यह मानी गई है कि जिस पदार्थ से जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह ज्ञान उस पदार्थको जानता है और उस ज्ञानसे उस पदार्थके विषयमे प्रमाणता आती है । तो यों कल्पित भी प्रतिनियत अर्थकी व्यवस्था नही बन सकती । यद्यपि ऐसा नही है कि ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न हो और फिर उस पदार्थकी व्यवस्था मानी जाय, लेकिन थोडी देरको तुम्हारा ही सिद्धान्त मान लें तो इस प्रसगमे जो शकाकार यह कह गया कि जो कुछ ये स्थिर स्थूल सदृश दिख रहे हैं वे सब धोखा हैं । तो जब जो स्पष्ट नजर आ रहा है उस प्रतिभाससे निश्चय कर बैठें कि पदार्थ अस्थिर है, निरश है और पदार्थ अतीत भिन्न है तो प्रतिभासमे आये कुछ निश्चय करायें आप कुछ, तो इसका अर्थ यह होगा, उसमे आपत्ति यह आयगी कि प्रतिभास तो होवे नीलक्षणका और निश्चय बन जायगा पीत आदिकका । फिर यह भी बात न रह सकी जो सिद्धान्तमे बता रहे हो कि जिस पदार्थसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह ज्ञान उस पदार्थके सम्बन्धमे प्रमाणता स्वीकार कराता है, क्योंकि अब तो ज्ञानकी अटपट व्यवस्थायें बनी । इसी कारण प्रत्यक्षसे जो कुछ प्रतीत हो रहा है कि ये समस्त पदार्थ स्थिर हैं । फिर उसके विरुद्ध कल्पना करनेमें क्या विवेक है ? स्पष्ट प्रतिभास हो रहा है ये पदार्थ स्थूल हैं और उनका व्यवहार भी कर रहे हैं, उन का उपयोग भी करते हैं तिसपर भी एक निरशकी कल्पना और निश्चय कराये तो यह क्या विवेक है ? जिन जीवोको देखकर सदृशताका ज्ञान होता है तो क्या उन जीवोमे भी तुम अनिश्चितताका ज्ञान अथवा निश्चय कर लोगे ? प्रत्यक्षसे तो स्थिर स्थूल पदार्थ विदित होते हैं अत: प्रत्यक्षको आप अनुवृत्त ज्ञानका बाधक नही कह सकते । यह जो ज्ञान हो रहा है । यह वही मनुष्य है, यह मेरा पिता है, यह मेरा पुत्र है, जन्मसे जब तक जीवित हैं, जब तक जो एक निश्चय बन रहा है या वस्तुके स्वरूपमें क्या यह व्यवस्था अथवा निश्चय गलत है । तो अनुवृत्ताकार प्रत्यक्षसे ऊर्ध्वता सामान्यकी सिद्धि होती है जिस सामान्यसे तन्मय पदार्थ हुआ करता है । इस तरह पदार्थ ही प्रमाणका विषय हुआ करता है ।

प्रत्यक्ष ज्ञानमें क्षणिकत्वग्राहकताका अभाव—ऊर्ध्वता सामान्यके विरोधमे क्षणिकवादीका यह कहना था कि जो पदार्थ स्थिर स्थूल और सदृश नजर आ रहे हैं वे सब भ्रान्त ज्ञान हैं । इसपर यह उत्तर दिया गया था कि जिसकी इन्द्रियाँ निर्मल हैं ऐसा पुरुष जब इन पदार्थोंको स्थिर स्थूल सदृश देख रहा है और इस ज्ञानको तुम मिथ्या कहते हो तो तुम्हारे इस ज्ञानसे प्रतिनियत पदार्थकी व्यवस्था नही बन सकती । इससे

यह बात माननी चाहिए कि जिस प्रकारके पदार्थका निश्चय करने वाला ज्ञान है उसी प्रकारके अर्थको अनुभव ग्रहण करता है अर्थात् प्रत्यक्षसे उस ही प्रकारका ज्ञान मानना चाहिए। जैसे पदार्थका निश्चय किया जा रहा है, शकाकार कहता है कि पदार्थ तो प्रतिक्षण विनाशीक है और प्रतिक्षण विनाशीक पदार्थकी सामर्थ्यसे उत्पन्न हुआ जो प्रत्यक्ष है उस प्रत्यक्षको पदार्थका यह रूप ही अनुकरण करना चाहिये अर्थात् पदार्थ जैसा है वैसा जानना चाहिए। शकाकारका भाव यह है कि पदार्थ तो है प्रतिक्षण विनाशीक और ज्ञान उत्पन्न हुआ करता है पदार्थसे तो प्रतिक्षण विनाशीक पदार्थसे उत्पन्न प्रत्यक्ष ज्ञान विनाशीक पदार्थको ही जानेगा। इसका समाधान स्पष्ट है कि ऐसा कहनेमें इतरेतराश्रय दोष आता है। जब पदार्थोंको क्षणक्षयी सिद्ध कर लो तब तो यह कहना बनेगा कि उन क्षणक्षयी पदार्थोंकी सामर्थ्यका अविनाभावी प्रत्यक्ष प्रमाणमें क्षणक्षयीरूपका अनुकरण करले और जब पदार्थकी सामर्थ्यके बलसे उत्पन्न हुए प्रत्यक्षने पदार्थके क्षणक्षयी रूपका अनुकरण बन जाय तब पदार्थोंका क्षणिकपना सिद्ध होगा। यह तो परस्पर आश्रयकी बात हुई। स्पष्ट तो प्रतिभास होता है कि यह पदार्थ देखा अनेक वर्षोंसे है और इतने आकारमें है स्थूल है और अनेक पदार्थोंमें यह समानता पायी जा रही है ऐसा जो प्रत्यक्षसे स्पष्ट बोध हो रहा वह भ्रान्त नहीं कहा जा सकता। इस तरह प्रत्यक्षसे तो पदार्थकी अक्षणिकताका ग्रहण हुआ।

प्रत्यक्षाधिगत अविनाभावके आश्रय बिना अनुमानकी असिद्धि होनेसे क्षणिकत्वके अनुमानकी असिद्धि—यदि कहो कि अनुमान प्रमाण पदार्थोंकी क्षणिकता ग्रहण कर लेगा सो पदार्थोंकी क्षणिकताके लिए जो भी हेतु दोगे, कैसा भी अनुमान बनाओगे, उस अनुमानमें इतनी बात अवश्य होनी चाहिये कि साध्य और साधनका अविनाभाव प्रत्यक्षसे समझा गया हो, क्योंकि साधनके अविनाभावको प्रत्यक्षकी प्रवृत्ति न होनेपर अनुमानकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती। जैसे इस पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे। यह अनुमान तब ही बन पाता है जब धूम साधनकी प्रत्यक्षसे जानकारी है। प्रत्यक्षसे जाने गए अविनाभावका आश्रय करके ही हेतुका पक्षमें रहना समझा जाता है। जब तक हेतु प्रत्यक्ष पूर्ण सिद्ध न हो तब तक हेतुका पक्षमें बनाना कैसे युक्त हो सकता है? और प्रत्यक्षसे जो विषय नहीं होता उससे अनुमानकी प्रवृत्ति नहीं होती। हेतु प्रत्यक्षसिद्ध हो, अनुभवसिद्ध हो तब तो अनुमानकी प्रवृत्ति होती है। तो कुछ भी अनुमान न बनावेंगे आप पदार्थोंको क्षणिक सिद्ध करनेमें सो उसमें सर्वप्रथम यह आपत्ति आयगी कि पहिले साध्यसाधनका अविनाभाव तो सिद्ध कर लो। वह सिद्ध होता नहीं, इस कारण क्षणिकत्वको ग्रहण करने वाला कोई अनुमान नहीं हो सकता।

क्षणिकत्वसाधक हेतुमें स्वभावहेतुता व कार्यहेतुताकी असिद्धि—जैसे अनुमान बनाया क्षणिकसिद्धान्तमें कि सर्व पदार्थ क्षणिक हैं, [illegible]

यह बात माननी चाहिए कि जिस प्रकारके पदार्थका निश्चय करने वाला ज्ञान है, प्रकारके अर्थको अनुभव ग्रहण करता है अर्थात् प्रत्यक्षसे उस ही प्रकारका ज्ञान मा चाहिए। जैसे पदार्थका निश्चय किया जा रहा है, शकाकार कहता है कि पदार्थ प्रतिक्षण विनाशीक है और प्रतिक्षण विनाशीक पदार्थकी सामर्थ्यसे उत्पन्न हुआ प्रत्यक्ष है उस प्रत्यक्षको पदार्थका यह रूप ही अनुकरण करना चाहिये अर्थात् पद जैसा है वैसा जानना चाहिए। शकाकारका भाव यह है कि पदार्थ तो है प्रतिक्ष विनाशीक और ज्ञान उत्पन्न हुआ करता है पदार्थसे तो प्रतिक्षण विनाशीक पदा उत्पन्न प्रत्यक्ष ज्ञान विनाशीक पदार्थको ही जानेगा। इसका समाधान स्पष्ट है। ऐसा कहनेमे इतरेतराश्रय दोष आता है। जब पदार्थोंको क्षणक्षयी सिद्ध कर लो त तो यह कहना बनेगा कि उन क्षणक्षयी पदार्थोंकी सामर्थ्यका अविनाभावी प्रत्य प्रमाणमें क्षणक्षयीरूपका अनुकरण करले और जब पदार्थकी सामर्थ्यके बलसे उत्प हुए प्रत्यक्षने पदार्थके क्षणक्षयी रूपका अनुकरण बन जाय तब पदार्थोंका क्षणिकपन सिद्ध होगा। यह तो परस्पर आश्रयकी बात हुई। स्पष्ट तो प्रतिभास होता है कि य पदार्थ देखा अनेक वर्षोंसे है और इतने आकारमें है स्थूल है और अनेक पदार्थोंमें य समानता पायी जा रही है ऐसा जो प्रत्यक्षसे स्पष्ट बोध हो रहा वह भ्रान्त नहीं कह जा सकता। इस तरह प्रत्यक्षसे तो पदार्थकी अक्षणिकताका ग्रहण हुआ।

प्रत्यक्षाधिगत अविनाभावके आश्रय बिना अनुमानकी असिद्धि होनेसे क्षणिकत्वके अनुमानकी असिद्धि—यदि कहो कि अनुमान प्रमाण पदार्थोंकी क्षणिकता ग्रहण कर लेगा सो पदार्थोंकी क्षणिकताके लिए जो भी हेतु दोगे, जैसा भी अनुमान बनाओगे, उस अनुमानमें इतनी बात अवश्य होनी चाहिये कि साध्य और साधनका अविनाभाव प्रत्यक्षसे समझा गया हो, क्योंकि साधनके अविनाभावको प्रत्यक्ष की प्रवृत्ति न होनेपर अनुमानकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती। जैसे, इस पर्वतमे अग्नि है धूम होनेसे। यह अनुमान तब ही बन पाता है जब धूम साधनकी प्रत्यक्षसे जानकारी है। प्रत्यक्षसे जाने गए अविनाभावका आश्रय करके ही हेतुका पक्षमें रहना समझा जाता है। जब तक हेतु प्रत्यक्ष पूर्ण सिद्ध न हो तब तक हेतुका पक्षमें बनाना कैसे युक्त हो सकता है? और प्रत्यक्षसे जो विषय नहीं होता- उसमें अनुमानकी प्रवृत्ति नहीं होती। हेतु प्रत्यक्षसिद्ध हो, अनुभवसिद्ध हो तब तो अनुमानकी प्रवृत्ति होती है। तो कुछ भी अनुमान न बनावेंगे आप पदार्थोंको क्षणिक सिद्ध करनेमे सो उसमें सर्वप्रथम यह आपत्ति आयगी कि पहिले साध्यसाधनका अविनाभाव तो सिद्ध कर लो। वह सिद्ध होता नहीं, इस कारण क्षणिकत्वको ग्रहण करने वाला कोई अनुमान नहीं हो सकता।

क्षणिकत्वसाधक हेतुमे स्वभावहेतुता व कार्यहेतुताकी असिद्धि— जैसे अनुमान बनाया क्षणिकसिद्धिमें कि सब पदार्थ क्षणिक हैं [illegible]

बतलावो कि क्षणिकत्वको सिद्ध करनेमे जो यह हेतुका व्यापार बना रहे हो वह हेतु स्वभावहेतु है या कार्यहेतु है ? स्वभावहेतुका व्यापार है क्षणिकत्वकी सिद्धिमे तो यह भी कह नही सकती, क्योकि किसी भी पदार्थका क्षणिक स्वभावरूपसे निश्चय नही किया जा सका है क्योकि क्षणिकत्व प्रत्यक्षके अविषय भूत है। स्वभावहेतु तो उसीमे घटाया जायगा जो प्रत्यक्षसिद्ध हो। जैसे यह वृक्ष है क्योकि सीसमका पेड होनेसे। तो सीसमका व्यवहार वृक्षत्वका व्यवहार जो कुछ भी किया गया, जो भी स्वभाव बताया गया तो जब प्रत्यक्षसे दिख रहा है उस हीमे तो स्वभाव स्थापित किया जाता है किसी भी पदार्थमे आप स्वभाव बतायें। पदार्थ तो जाना हुआ हो तब तो स्वभाव सिद्ध करो। तो जब क्षणिकत्व जाना हुआ हो तब तो उसमे स्वभावकी बात बताओ पर क्षणिकत्व तो प्रत्यक्षके विषयभूत है ही नही तो उसमे स्वभाव हेतु की बात नही कह सकते। उसका व्यवहार ही नही बन सकता।

अनुमानसे क्षणिकत्वके ग्रहणकी एक आशंका—अब शङ्काकार कहता है कि इस अनुमानसे पदार्थ क्षणिक है यह सिद्ध होगा। जगतके समस्त पदार्थ विनाशीक स्वभावमे नियत हैं क्योकि विनाशके प्रति ये दूसरेकी अपेक्षा नही करते। जो जिस बातके लिये दूसरोकी अपेक्षा नही रखता वह उस स्वभावमें नियत हुआ करता है। जैसे किसी कार्यके उत्पन्न होनेमे अंतिम जो कारण सामग्री है सब कुछ योग जुट कर सारे निमित्त जुटकर जो अंतिम कारण सामग्री है वह अपने कार्यके उत्पन्न करनेमे किसीकी अपेक्षा नही रखती। तो ये पदार्थ भी विनाशके लिये किसी दूसरेकी अपेक्षा नही रखते इस कारण ये सभी पदार्थ विनाश स्वभावमे नियत हैं। उत्तरमे कहते हैं कि यह कहना भी कथनमात्र है क्योकि कही भी यह नही देखा जा रहा कि अन्यकी अपेक्षा बिना ये दृश्य पदार्थ विनष्ट होते हो ? जैसे डण्डा मुग्दर आदिककी अपेक्षा बिना ये घट पट आदिक कहा विनष्ट हो पाते हैं ? किसीने डण्डा मारा। घडेको फोड दिया। तो घडेका विनाश डण्डेकी अपेक्षा रखकर ही तो हुआ। किसी भी अन्य प्रकारके आघातकी अपेक्षा रखे बिना घटका विनाश तो नही हुआ अर्थात् यह कहना कि ये सब पदार्थ विनाशके प्रति दूसरेकी अपेक्षा नही रखते, यह हेतु असिद्ध है।

विनाशके प्रति अन्यानपेक्षत्व हेतुकी क्षणिकत्व साध्यमें असिद्धि—अब यह बतलावो कि जो यह हेतु दिया है कि विनाशके समयमे अन्यकी अपेक्षा नही रखते तो अन्यानपेक्षत्वहेतुका क्या यह भाव है कि अन्यानपेक्षत्व मात्र या यह भाव है कि विनाश स्वभाव होनेपर फिर अन्यकी अपेक्षा नही रखते ? अन्यानपेक्षत्व हेतु मे दो विकल्प किए गए। क्या सामान्य अन्यानपेक्षत्व इतना ही अर्थ है याने यह पदार्थ विनाशके प्रति अन्यकी अपेक्षा नही रखता इतना ही मात्र अर्थ है अथवा अन्यानपेक्षत्वका अर्थ क्या यह किया जा रहा है कि क्षणिक स्वभाव होनेपर फिर यह अन्यकी अपेक्षा नही रखता। इस कारण पदार्थमे विनाश स्वभाव नित्य सिद्ध किया

जाय। यदि प्रथम पक्ष हुं मानोगे कि विनाशके प्रति ये पदार्थ किसी अन्यकी अपेक्षा नहीं रखते उतना ही मात्र हेतु है तो यव आदिके बीजके साथ अनेकान्तिकता सिद्ध हो जायगी। कैसे ? धानका अकुर उत्पन्न करनेके लिए खेत, पानी, ऋतु समय आदिक सब साधन जुटा दिए गए पर बोये गए जो तो क्या उससे धान्यके अकुर उत्पन्न हो सकेंगे ? न उत्पन्न होंगे। तो धान्यके अकुरकी उत्पत्तिके सभी निमित्त जो जुट गए फिर भी धान्यके अकुर पैदा होनेका नियम नहीं बन रहा। तो यह कहना अन्यानपेक्षत्व मात्र हेतु है जिससे हम पदार्थोंको क्षणिक सिद्ध कर रहे हैं। यह बात सगत न बैठी। यदि कहो कि हम दूसरा अर्थ मानेंगे अर्थात् क्षणिक स्वभाव होनेपर फिर विनाशके प्रति अन्यकी अपेक्षा नहीं रखी जाती है इस कारण पदार्थ विनाश स्वभावमें नियत है। यो क्षणिक स्वभाव होनेपर अन्यानपेक्षत्व हमारा हेतु मानोगे तो अब इस हेतुमे दो अश आ गए। क्षणिकस्वभाव होनेपर एक तो यह और दूसरा अन्यकी अपेक्षा न रखना, इन दो अशोमे क्षणिक स्वभाव होनेपर यह तो हुआ विशेषण और अन्यकी अपेक्षा न रखना यह हुआ विशेष्य। तो इस हेतुमे विशेष्य असिद्ध है, क्योकि मान भी लें कि क्षणिक स्वभाव है फिर भी विनाशमे अन्यकी अपेक्षा न रखना, यह बात सिद्ध नहीं होती। जैसे कि अन्तिम कारण सामग्री अर्थात् कार्यको उत्पन्न करनेमे जितने कारण जुटाने चाहिएँ जुटाते जुटाते अंतिम जुटावो। अपने कार्यको उत्पन्न करनेका स्वभाव रख रहा है तो भी जब तक दूसरा क्षण न आयगा तब तक वह कार्यको उत्पन्न नहीं करती। क्षणिक सिद्धान्तमे भी एक ही क्षणमे कोई कार्यको उत्पन्न नहीं करता। तो देखो सब चीजें जुटी हो फिर भी दूसरा क्षण न आये तो कार्य नहीं कर पाता। कारणको देखो—उस कारणको दूसरे क्षण की अपेक्षा तो करनी पडी। अग्निका स्वभाव है दाह उत्पन्न करनेका सो ठीक है पर जब तक करतल या लकडी आदिकका सयोग नहीं मिलता तब तक दाह तो नहीं उत्पन्न करती। तो देखो—अग्निको लकडी आदिककी अपेक्षा करनी पडी तब दाह उत्पन्न कर सकी। तो यह कहना कि क्षणिक स्वभाव होनेपर फिर अन्यकी अपेक्षा नहीं रखी जाती, इस कारणसे पदार्थ विनाश स्वभावके नियत है यह असिद्ध है, क्योकि अन्यानपेक्षत्व सिद्ध नहीं होता है। विनाश किसी कारणको पाकर हुआ करता है। और, कुछ कारण न मानो तो इतना तो मानना ही पडेगा कि जब दूसरा समय आये तब वह नष्ट होता है। तो कालकी अपेक्षा रखी। अन्य कारणोंकी न सही तो अपेक्षा किए बिना विनाश नहीं होता है। तो इस हेतुमे विशेष्य असिद्ध है। साथ ही इस हेतुमे जो विशेषण है, क्षणिक स्वभाव होनेपर यह विशेषण भी एक देश असिद्ध है। कैसे ? कोई पदार्थ अन्यात्यपेक्ष भी हो और क्षणिक स्वभाव रखे तब तो विशेषण भी सिद्ध कहलायेगा तो जैसे हिरण आदिकके सींग हैं। उन सींगोमे जो सलवटें उत्पन्न हो जाती है वे क्षणिक स्वभाव तो नहीं रखती। जिन्दगी भर बनी रहती हैं और वे अन्यात्यपेक्ष्य हैं। किसी दूसरकी अपेक्षा न रखकर होती हैं।

यों अन्यान्यपेक्ष होकर भी क्षणिक स्वभाव नहीं पाया जा रहा इस कारण विशेषण को असिद्धि हुई तो यह बताना पदार्थोंको क्षणिक क्षण स्वभाव होनेपर अन्यकी अपेक्षा न रखना वह हेतु असिद्ध है।

उत्पत्तिके अनन्तर ही विनाशकी असिद्धि—और भी सुनो ! मान लो कि अहेतुक ही विनाश है, किसी अन्यके कारण विना सब पदार्थ नष्ट हो जाते हैं, तो भी इतना तो हर एक कोई देख रहा है कि मुदगर आदिकके व्यापारके बाद ही घड़े का विनाश होता है। आप हम अपनी अहेतुकताको हठार डटे रहें, मगर लोगोंको यह सब दिख रहा है कि डडा आदिक मारे गए ना, तब घड़ेका फूटना हुआ तो घडेका विनाश उसी समय मानो जब कि डडाकी चोट लगी हो। उससे पहिले घटका विनाश ही नहीं मानो। चाहे अहेतुक मानो पर अहेतुक भी विनाश तब मानो जब डडा मुदगर आदिकका व्यापार हो। उत्पत्तिके तुरन्त अनन्तर व्यापार माननेका सिद्धान्त ठीक नहीं बैठता। क्षणिकवादमें उत्पत्तिके तुरन्त ही अनन्तर विनाश माना गया है। यह जो स्पष्ट विदित हो रहा है कि डडा आदिकके व्यापारके अनन्तर ही घटका विनाश हुआ, उससे पहिले न हुआ तो उससे पहिले घड़ेका विनाश होता नहीं दिख रहा है। इससे कमसे कम समय तो लम्बा कर दा, उत्पत्तिके बाद तुरन्त ही नष्ट हो गया ऐसा किसी की दृष्टिमें आ ही नहीं रहा, तो इतनी स्थिरता तो तुम्हें माननी ही पड़ेगी इस कारण पदार्थ स्थिर स्थूल है इनका अपलाप नहीं किया जा सकता है।

उत्पत्त्यनन्तर पदार्थका ध्वंस माननेकी शंकायें व समाधान—शंकाकार कहता है कि घडे और डडे आदिकके व्यापारके बाद घड़ेका विनाश पाया जाता है तो इसी कारण डडे आदिकके व्यापारसे पहिले भी घड़ेका विनाश मान लेना चाहिए अर्थात् डडा मारनेपर घड़ेका अभाव देखा गया है तो यह भी मान लेना चाहिए कि डडा लगनेसे पहिले भी घटका अभाव हो जाया करता है। उत्तर देते हैं कि यह तो बेतुकी उत्तर है। इस तरह तो हम यह भी कह सकेंगे कि डडा आदिकके व्यापारसे पहिले पूर्व क्षणमें घटके अभावकी अनुपलब्धि थी, अर्थात् घटका विनाश न था तो डडे आदिक की चोटके बाद भी घटके विनाशका अभाव रह जाय मुद्गर आदिक व्यापारसे पहिले घड़ेका अभाव नहीं न था, तो व्यापारके बाद भी घड़ेका अभाव नत रहे। जिस प्रकार का शंकाकारने उत्तर दिया था उस ही ढंगमें यह समाधान किया जा रहा है। शंकाकार यह भी नहीं कह सकता कि अन्तमें तो आखिर पदार्थोंका क्षय ही देखा जाता है, विनाश हो देखा जाता है, तो आदिमें भी विनाश मान लेना चाहिए। यह बात यों नहीं कह सकते कि इस युक्तिका सद्भावके साथ अनेकान्त दोष माना है अर्थात् किसी भी पदार्थको सद्भाव अन्तमें नष्ट होती है तो यह नियम तो न बनेगा कि जो चीज अन्तमें नष्ट होती है उसको आदिमें भी नष्ट मान लिया जाय। जैसे दीपककी संतान आधा घंटा तक रहती है तो आखिर दिया बुझेगा अभाव तो होगा ही। तो क्या कहा जा

सकता कि इस संतानका जब अन्तमें अभाव होता है तो इसके प्रथम ही क्षणमें अभाव मान लो। तो यों संतानसे अनैकान्तिक दोष होनेके कारण यह भी नहीं कह सकते कि अन्तमें क्षय हुआ करता है इससे आदिमें ही क्षय मान लो।

उत्पत्त्यनन्तर क्षणमें पदार्थके ध्वंस सिद्ध करनेमें प्रमाणका अभाव— अच्छा, अब शङ्काकार यह बताये कि पदार्थकी उत्पत्तिके ही अनन्तर पदार्थको ध्वंसी मान लेना यह तुम किस बातसे निश्चित करते हो? इसको साबित करनेकी तुम्हारे पास क्या युक्ति है? क्या पदार्थकी उत्पत्तिके बाद पदार्थ तुरन्त ही नष्ट हो जाता है यह क्या इस बातसे निश्चित करते हो कि जैसे मुदगर आदिक साधनके द्वारा घटादि का विनाश होता है तो उसमें यह विकल्प किया जाय कि बताओ घडेका वह विनाश क्या डंडेसे भिन्न है या अभिन्न है? अथवा डंडेके द्वारा किए गए घडेका विनाश क्या घड़ेसे भिन्न है या अभिन्न? अगर घडेसे भिन्न है तो विनाश ही क्या किया गया? यदि घडेसे अभिन्न है तो विनाश क्या? मायने घडा ही क्या? क्योंकि घडेका विनाश अभिन्न माना तो यों भिन्न और अभिन्न रूप विकल्पोंके द्वारा मुदगर आदिकसे घडेका ध्वंस सिद्ध नहीं किया जा सकता इस कारण क्या उदयके ही बाद, पदार्थकी उत्पत्तिके ही बाद पदार्थका नष्ट होना निश्चित करते हो या किसी अन्य प्रमाणसे? अन्य प्रमाणसे निश्चय करनेकी बात तो असिद्ध हैं। प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाणों के द्वारा यह प्रतीत नहीं होता कि ये पदार्थ उत्पत्तिके बाद ही तुरन्त नष्ट हो गए। यदि कहो कि उन भिन्न अभिन्न विकल्पोंके द्वारा हम यह सिद्ध करेंगे कि मुदगर आदिकके द्वारा घडेका अभाव नहीं किया गया तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा कहनेपर तो यह सिद्ध हुआ कि घडेका विनाश मुदगर आदिककी अपेक्षा नहीं रख रहा। जिस ही भिन्न अभिन्नके विकल्प करके मुदगरसे घडेका ध्वंस नहीं हुआ यह सिद्ध कर रहे हो तो उससे मात्र इतना ही सिद्ध होगा कि मुदगर आदिककी अपेक्षा रखे बिना ही ध्वस हो गया। यह तो सिद्ध नहीं होता कि उत्पत्तिके बाद ही पदार्थ नष्ट हो गया। यह नियम नहीं बन सकता कि जो अहेतुक हो वह उत्पत्तिके बाद ही हो। अहेतुक मानते हो तुम विनाशको तो अहेतुक पदार्थकी उत्पत्तिके बाद तुरन्त अहेतुक विनाश हो ही जाता है यह नियमकी बात नहीं कही जाती है। देखो ना अहेतुक हैं घोडेके सींग। अच्छा बताओ घोडेके सींग क्या सहेतुक है? घोडेके सींग भी उत्पन्न होते हैं क्या किसी हेतु से? तो सहेतुक तो न रहा। सहेतुक न रहे इसका ही अर्थ है निर्हेतुक। तो क्या निर्हेतुक सींग घोडेकी उत्पत्तिके बाद देखा गया? नहीं तो यह नियम नहीं बन सकता कि पदार्थकी उत्पत्तिके बाद तुरन्त उसका अहेतुक विनाश हो ही जाता है।

पदार्थका उदयानन्तर ध्वस सिद्ध करनेमें दिये गये अहेतुकत्व हेतुकी असिद्धि—अब शंकाकार कहता है कि पदार्थका ध्वस होना अहेतुक है। उसके स्वभावमें ही स्वरूप पडा हुआ है कि पदार्थका ध्वस हो जाय। स्याद्वादी लोग भी हर

मानते हैं कि पदार्थमे उत्पाद व्ययका स्वभाव पडा हुआ है, तो इसी तरह सिद्ध हुआ ना कि पदार्थमे ध्वस्तादिक होनेको स्वभाव पडा हुआ है और वह स्वभाव अहेतुक है, तो ध्वस होना अहेतुक है इस कारण ध्वस हमेशा हो सकता है अत. ध्वसमे काल आदिककी अपेक्षा नही होती। मुद्गर डडा आदिककी भी ध्वसमे अपेक्षा नही होती क्योकि ध्वस है अहेतुक। जैसे पदार्थका व्यय अहेतुक है इस कारण पदार्थकी उत्पत्तिके अनन्तर ही ध्वस हो जाया करता है उत्तरमे कहते हैं कि इस तरह अहेतुक होनेके कारण ध्वसका यदि सद्भाव मानते हो अर्थात् ध्वस होना चूँकि अहेतुक है इसलिए वह सदा होता रहता है उसमे कालकी या मुद्गर आदिककी अपेक्षा नही होती। तो ऐसा माननेपर फिर तो प्रथम क्षणमे ही ध्वस मान लो ना। उत्पत्तिके अनन्तर समय मे क्यो ध्वस मानते। जो अनपेक्ष होता है वह अहेतुक होता है, सो वह कभी तो हो और किसी जगह हो यह बात नही बन सकती। जो बात अनुपेक्ष है और अहेतुक है वह तो सभी जगह होगी और सदा होगी। ध्वस होना अहेतुक माना है और अनपेक्ष माना है। ध्वस यदि काल मुद्गर आदिक साधनोकी अपेक्षा नही रखता तो वह प्रध्वंस सदाकाल होना चाहिए। यह क्यो हो कि पदार्थकी उत्पत्ति प्रथम क्षणमे होगी उसके बाद द्वितीय क्षणमे पदार्थका ध्वस होगा। प्रथम क्षणमे ही ध्वस हो बैठे। यदि कोई बात कभी हो किसी समय हो, ऐसी प्रकृति रखता है तो उसका अर्थ यह होगा, कि वह सापेक्ष है। जो पर्याय परिणति कभी हो, किसी समय हो तो उसमे यह निश्चय है ना कि यह किसी निमित्तकी अपेक्षा रखता है। जैसे आत्मामे क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक किसी प्रकारके विशिष्ट परिणमन कभी कुछ होते हैं, किसी समय कुछ होते हैं किसी सन्निधानमे होते हैं तो इसके मायने यह है कि वे क्रोधादिक कषायें परकी अपेक्षा करके होती हैं, आश्रय मिले, कर्मोदय हो तब वे विभावपरिणतियाँ होती हैं। तो यो ही यदि पदार्थका ध्वस पदार्थकी उत्पत्तिके क्षणमे ही नही हुआ, पदार्थकी उत्पत्तिके क्षणके बाद द्वितीय क्षणमे हुआ तो इसके मायने हैं कि वह सापेक्ष हो गया और जो सापेक्ष होता है वह सहेतुक हुआ करता है। सापेक्ष बात अहेतुक नही हुआ करती क्योकि सापेक्षता चीजकी व्याप्ति सहेतुकपनेसे है, अहेतुकपनेसे नही है।

भावहेतुसे अभाव माननेकी असगतता—अब शकाकार कहता है कि वाह यदि पदार्थकी उत्पत्तिके समयमे ही याने प्रथम क्षणमे ही पदार्थका ध्वस मान लिया जाय तो सत्त्व ही सम्भव न रहा। पहिले समयमे पदार्थ उत्पन्न होता है और उस ही पहिले समयमे यदि कह दिया जाय कि पदार्थ नष्ट होता है तो सत्व क्या रहा? फिर सत्त्वकी प्रच्युतिका नाम है ध्वस, तो जब सत्त्व ही न हो पाया तो फिर ध्वस क्या हुआ? इस कारणसे यह मानना चाहिए कि पदार्थ ध्वसस्वभावी अपने ही हेतुसे हुआ करता है अर्थात् पदार्थ उत्पन्न होते हैं, पदार्थका सत्त्व बनता है तो उसी पदार्थ की उत्पत्तिके कारणसे ही ध्वस भी हो जाया करता है। उत्तर देते हैं कि यह तो बिना विचारे ही सुन्दर जचता है, पर इसपर विचार किया जाय तो इसकी असंगतता

सिद्ध होती है, क्योंकि यदि उत्पत्तिके, कारणसे ही पदार्थका ध्वस मान लिया जाय, अर्थात् जिस कारणसे पदार्थकी उत्पत्ति होती है उसी कारणसे पदार्थका ध्वस मान लिया जाय तो यह बतलाओ कि क्या, एक क्षण रहने वाले भावहेतुसे, उत्पत्तिकारणसे सत्ताका विनाश हुआ या कालान्तरमे रहने वाले भावहेतुसे सत्ताका नाश हुआ ? शकाकारका इस समय यह कथन था कि जिन कारणोसे पदार्थ उत्पन्न होता है उन्ही कारणोसे पदार्थका ध्वस भी होता है तो उसी सम्बन्धमे पूछा जा रहा है कि क्या वे उत्पत्तिके कारण एक ही क्षण रहते हैं जिससे कि ध्वस माना है या कुछ काल तक टिकते हैं पदार्थकी उत्पत्तिके कारण जिससे कि ध्वस मानते हो ? यदि कहोगे कि एक क्षण ही रहने वाले भावहेतुसे पदार्थका ध्वम भी हो जाता है तो यह बात असिद्ध है। भावका हेतु उत्पत्तिका कारण या कुछ भी पदार्थ एक क्षण रहा करता है यही बात तो सिद्ध नही हो पा रही है। फिर उस उत्पन्न उत्पत्तिके कारणसे पदार्थकी सत्ताका ध्वस कर दिया गया यह कैसे सिद्ध हुआ ? यदि कहो कि वह उत्पत्तिके कारण जिससे पदार्थ उत्पन्न हुआ है, वही पदार्थका ध्वस कर देता है ऐसा वह भावहेतु कालान्तर स्थिर रहता है, क्षणस्थायी नही है, उस काल तक रहता है तो इससे सिद्ध हो गया कि कुछ काल तक भी रहने वाली बात है कुछ। पदार्थ है स्थायी ? फिर क्षणिकता तो न रही। इससे यह मानना चाहिए कि पदार्थ जैसे क्षण-क्षणमें नवीन-नवीन पर्यायोसे उत्पन्न होता है और नष्ट होता है इसी तरह पदार्थमें स्थायित्व भी है। जैसे द्रव्यकी पर्यायें उत्पन्न होती हैं वे द्रव्य कालन्तर स्थायी हुआ करते है।

अपेक्षा दृष्टिसे उत्तरक्षणमे क्षय माननेकी विशेषता—ये क्षणिकवादी ऐसा मान रहे हैं कि जिस कालमे पदार्थ उत्पन्न होता है उस ही के अनन्तर द्वितीय समयमें पदार्थका ध्वम हो जाता है। इस बातको यदि स्याद्वादकी रीतिसे देखें तो अयुक्त नही कहा जा सकता। जैन शासनमे भी माना गया है कि पदार्थमे प्रति समय पर्यायें उत्पन्न होती है और प्रतिसमय पूर्व पर्याय विलीन होती है और उसमे तो यहा तक भी माना गया है कि एक ही क्षणमे उत्पाद है और उस ही क्षणमे विनाश एक क्षणमें है। नवीन पर्यायकी उत्पत्ति और पूर्व पर्यायका व्यय यो है एक साथ न कि उस ही पर्यायकी उत्पत्ति और उस ही पर्यायका विनाश एक क्षणमे है। और, फिर यह भी बात जानी गई है कि नवीन पर्यायकी जो उत्पत्ति हुई है उसका दूसरे क्षणमें ही विनाश होना। क्योंकि दूसरे क्षणमे नवीन पर्यायकी उत्पत्ति होगी। तो क्षणिक वादियोका यह कहना असगत तो नही है लेकिन वे पर्यायको ही द्रव्य मान लेते। पूरा पदार्थ इतना ही है फिर उसकी उत्पत्ति और उसका ध्वस मानना यह असगत है। द्रव्य है स्थायी और उसमे पर्यायें प्रतिसमय नवीन बनती हैं। पुरानी विघटती हैं ऐसा माननेमे कोई दोष नही है।

भावहेतुसे विनाश माननेपर तीन विकल्पोमे शंकाका निराकरण—

अब क्षणिकवादियोसे पूछा जा रहा है कि पदार्थोकी उत्पत्तिमे कारण यदि पदार्थों के विनाशके कारण बनते हैं तो पदार्थोंकी उत्पत्तिका कारण क्या पदार्थकी उत्पत्ति से पहिले ही पदार्थोंके अभावको कर देता है या उत्पत्तिके उत्तर कालमें अभाव उत्पन्न करता है अथवा उस ही कालमे पदार्थकी उत्पत्तिका कारण पदार्थके विनाशको उत्पन्न करता है ? ऐसे ये तीन विकल्प किए। पहिला पक्ष माननेपर याने पदार्थकी उत्पत्तिका कारण पदार्थको उत्पत्तिका कारण पदार्थकी उत्पत्तिसे पहिले ही उसका अभाव कर देता है तो वह अभाव प्रागभाव रूप रहा, प्रध्वसाभाव रूप न रहा। यदि कहो कि भावहेतु ने पदार्थकी उत्पत्तिके समयमे अभाव न किया बादमे किया तो पदार्थ की उत्पत्तिके समय पदार्थका विनाश न करनेके कारण विनाशका कारण भाव हेतु न कहलायेगा क्योकि जब भावहेतु था जिससे कि भावकी उत्पत्ति हुई उस कालमे तो विनाश माना नही, उत्तरकालमे विनाश कह रहे हो तब फिर भाव हेतु अर्थात् पदार्थकी उत्पत्तिका कारण उत्तरकालमे होने वाले विनाशका कारण कैसे कहलायेगा और भावकी उत्पत्तिके समयमें जिसके कारणसे भावकी उत्पत्ति हुई उस ही समयमे उस ही कारणसे उस भावका प्रध्वस भी हो ऐसी बात बनती तब तो दोनोका कारण एक कहा जाता। किन्तु अब तो द्वितीय पक्षमें यह मान रहे हो कि पदार्थकी उत्पत्तिके बाद विनाश किया जाता है और कदाचित ऐसी कल्पना करो कि घटकी उत्पत्तिके दूसरे क्षणमें भी तो कुछ बनेगा ना, उस भावका जो हेतु है। वह घटका ध्वस करता है। तो इस तरह उत्तरोत्तर कालमे होने वाले भावोत्पत्तिकी अपेक्षा रखकर यह भी भावका विनाश, घटका विनाश कैसे उत्पत्तिके अनन्तर कहलाया ? यदि तीसरा पक्ष कहोगे अर्थात् पदार्थकी उत्पत्तिका कारण उत्पत्तिके ही समयमें पदार्थके विनाशको कर देता है तब तो भावकी उत्पत्तिके समान कालमे ही भावका विनाश हो, तो लो अब विनाश और भावकी सत्ता और पदार्थका विनाश जब दोनो एक साथ रह गए, दोनोके एक साथ रहनेमे कोई विरोध न रहा तो फिर पदार्थको कभी नष्ट न होना चाहिए, क्योकि पदार्थका सत्व और पदार्थका विनाश जब दोनो साथ बनकर एक ही समय रह सकते है तब फिर भावके नष्ट होनेका प्रसग ही क्या ? और, जो बात सीधी स्पष्ट देख रहे हैं कि दड आदिकके घातके अनन्तर ही घटका विनाश देखा जा रहा तो क्यो नही मान लिया जाता कि दड आदिकके चोटके कारण घटका विनाश हुआ है। दड आदिकसे व्यापारके बाद घटका प्रध्वस देखा गया इतनेपर भी यदि मुदगर आदिकके व्यापारके कारण घटका प्रध्वस नहीं माना तब फिर पदार्थकी उत्पत्तिके कारणके साथ भी पदार्थकी उत्पत्तिका अन्वयव्यतिरेक नही बन सकता है। जब दड चक्र, कुम्हार आदिकके व्यापार होनेपर घटकी उत्पत्ति देखी गयी और उन कारणोका व्यापार न होनेपर घटकी उपलब्धि न पायी गई तो उससे सिद्ध है ना कि उन कारणोसे घटकी उत्पत्तिका अन्वयव्यतिरेक है। इसी प्रकार मुद्गर आदिक व्यापारोसे घटका अभाव देखा गया और मुद्गर आदिक व्यापारके

प्रभावमें घटका प्रभाव न देखा गया तो कैसे न सिद्ध होगा कि दड आदिके व्यापार का घटके प्रभावके साथ अन्वयव्यतिरेक है।

एक कारण द्वारा उत्पादव्यय कहनेका मर्म —इस प्रकरणमे क्षणिकवाद मे उसके सिद्धान्तसे वस्तुके उत्पादव्ययका सूक्ष्म स्वरूप समझनेमे बडा सहयोग मिलता है। बात जो क्षणिकवादियोने कही वह तब पदार्थकी जो सूक्ष्म प्रति क्षण होने वाले उत्पाद व्ययको समझनेमे बहुत सहायक हैं। अन्तर यह हो गया कि क्षणिकवादी लोग यदि पर्यायका ही उत्पादव्यय स्वीकार करते तब तो उनकी बात कोई असगत न थी। उनका यह कहना कि जो उत्पत्तिका कारण है वही विनाशका कारण है। इस समय उनके सिद्धान्तकी मीमासा चल रही है। तो अब देख लीजिए कि उस ही सम्बन्धमें कही नवीन पर्यायका उत्पाद है पूर्व पर्यायका विनाश है तो देखो—उत्पत्ति और विनास का कारण एक ही पडा ना। जिस कारणसे नवीन पर्यायकी उत्पत्ति हुई उस ही कारणसे तो अनन्तर पूर्व पर्यायका नाश हुआ। तब भावहेतु ध्वसका ही कारण बन गया। अब इसमे दो बातोकी त्रुटि करनेपर यह सिद्धान्त गलत हो जाता है। एक तो यह माननेपर कि उस ही एक उत्पत्तिके कारण द्वारा उस ही पर्यायकी उत्पत्ति हुई और उस ही पर्यायका विनाश हुआ यह तो असगत बात होगी। और एक पर्याय न मानकर समूचा द्रव्य अर्थ मान लिया जाय कि उस अर्थकी उत्पत्ति हुई उस अर्थका विनाश हुआ तो यह भी असगत हो गया, किन्तु उत्पत्तिका कारणभूत पदार्थ नवीन पर्यायका उत्पाद कर रहा है और पूर्व पर्यायका व्यय कर रहा है इसमे कोई असगत बात नही है।

कारणोसे भावकी उत्पत्ति बताकर अभावको अहेतुक बतानेका असफल प्रयास – अब शकाकार कहता है कि मुद्गर डडा आदिकका जो व्यापार हुआ सो वह खपरियोकी सततिके उत्पन्न करनेमे ही हुआ अर्थात् डडा आदिककी चोटने घटका विनाश नही किया किन्तु खपरियोकी उत्पत्ति इसका समाधान देते हैं कि मुदगर आदिकके व्यापारने खपरियोकी उत्पत्तिकी तो क्या उस समय घट अपने स्वरूपसे अविकृत रहा ? अर्थात् घटके स्वरूपमें कोई बाधा नही पहुचती। क्योका त्यों ही घट का स्वरूप बना रहा तो पहिलेकी तरह मुदगर आदिककी चोट लगनेपर भी घटकी उपलब्धि होनी चाहिए। जब यह मान रहे हो कि मुदगर आदिकके लगनेसे घडा नही फूटा, किन्तु खपरियाँ उत्पन्न हुई तो खपरियाँ उत्पन्न हो जायें और घटका विनाश न हो तो घटका स्वरूप तो ज्योका त्यो रहना चाहिए, पर कहाँ रहता है ? शकाकार कहता है कि जिस समय मुदगर आदिकका सन्निधान हुआ मुदगर आदिक व्यापारके समयमे घडेका स्वय ही अभाव हुआ, मुदगर आदिक व्यापारके कारण नही हुआ। अभाव तो अहेतुक होता है किन्तु भाव सहेतुक होता है। जो खपरियां उत्पन्न हुई वह तो सहेतुक हैं। खपरियोको तो मुदगरोने उत्पन्न किया लेकिन उस कालमे घडेका

स्वय अभाव हो गया इस कारण उस समयमे घडेकी उपलब्धिका प्रसंग नहीं आता। उत्तरमे कहते हैं कि देखिये मुदगर आदिकके व्यापारके समय ही घडेका अभाव पाया गया और उस व्यापारसे पहिले घडेका अभाव नही पाया गया, इससे सिद्ध हुआ कि घडेका अभाव मुदगर आदिकके व्यापारका कार्य है। यहाँपर शकाकारकी दृष्टि यह है कि कारण कूट किसी बातको उत्पन्न किया करता है और किसी पदार्थकी उत्पत्ति होनेके समय फिर जो चीज नही रहा करती वह स्वयमेव नही रहती। तो पूर्वके अभावको उत्तर भाव स्वरूप माननेपर यह बात तो घटित हो जायगी लेकिन अभाव को भाव स्वरूप न माननेपर यह बात घटित नही होती। भाव स्वरूप माननेपर दोनो ही बातें बन गई पूर्व पर्यायका व्यय उत्तर पर्यायके सद्भावरूप है। तो उस समय यह कहना कि उत्तर क्षणका उत्पाद हुआ उसका ही अर्थ यह बन जाता है कि पूर्व क्षणका विनाश हुआ।

घटक्षणमे क्षणान्तरको उत्पन्न करते रहनेके सम्बन्धमे प्रश्न और उत्तर अब शकाकार कहता है कि घट ही विनाशके कारण रूपसे प्रसिद्ध मुदगर आदिककी अपेक्षा रखकर समान्त क्षणान्तरके उत्पन्न करनेमे असमर्थ क्षणान्तरको उत्पन्न करता है अर्थात् घट जिस क्षणमे है वह तो कहलाया घटक्षण और उसके बाद जो दूसरा समय आयगा वह कहलाया क्षणान्तर। तो घटक्षण ही क्षणान्तरको उत्पन्न करता है यह मूल बात कही जा रही है। लेकिन वह क्षणान्तर कैसा है जो घटक्षण के बाद हो अर्थात् दूसरे समयकी पर्याय, वह क्षणान्तर कैसा है कि घटक्षणके समान अपनी वृत्ति उत्पन्न करनेमे असमर्थ है अर्थात् दूसरी क्षणमे पहिले क्षणकी बात नही है। लेकिन उस दूसरे क्षणकी बातको इस पहिली क्षणने ही उत्पन्न किया है। तो घडा ही मुदगर आदिककी अपेक्षा करके क्षणान्तरको उत्पन्न करता, नई बातको उत्पन्न करता जो क्षणान्तर पहिली क्षणके समान नही है। अर्थात् समान क्षणान्तरकी उत्पत्ति करनेमे असमर्थ है याने घटक्षण घटक्षणको ही उत्पन्न नही करता। जो भी पदार्थ नया बनेगा, (जो पर्याय नई बनेगी) उस क्षणान्तरको उत्पन्न करता है और फिर वही घट उस क्षणान्तरकी अपेक्षा करके अन्य असमर्थ क्षणान्तरको उत्पन्न करता है फिर वह तृतीय क्षणान्तरकी अपेक्षा करके फिर असमर्थ चतुर्थ क्षणान्तरको उत्पन्न करता है। इस तरह घट ही उन क्षणान्तरोको उत्पन्न करता जा रहा है। कब तक? जब तक कि घटकी सतति टूट नही जाती। जिसमें हम घट है, घट है ऐसा भ्रम किया करते हैं वह सतति जब तक मिट नही जाती तब तक हो क्या रहा है कि यह घडा ही क्षणान्तरको उत्पन्न करता जा रहा है। तो इससे यह सिद्ध हुआ कि मुदगर आदिक के व्यापारने अभाव नही किया। अभाव तो स्वय हुआ पर उसकी अपेक्षा करके मुदगर आदिक कारणोकी अपेक्षा करके घट ही क्षणान्तरको उत्पन्न करता है। इस शका के समाधानमे कहते है कि जरा यह तो बतलावो कि आपके इस कथनमें जो यह कहा गया कि घटक्षण असमर्थ क्षणान्तरको उत्पन्न करता है। मुदगर आदिककी अपेक्षा

करके तो बताओ वहाँपर मुदगर आदिकके द्वारा घटक्षणकी सामर्थ्यका घात किया गया या नहीं ? यदि कहो कि घटकी सामर्थ्यका घात किया गया है तब फिर अभाव को अहेतुक क्यों कहते हो ? तब तो अभाव सहेतुक हो गया। मुदगर आदिकके कारण ने घटकी सामर्थ्यको फोड़ दिया, नष्ट कर दिया तो इसका अर्थ है कि मुदगर आदिक के द्वारा घटका अभाव कर दिया गया, और यदि यह कहो कि मुदगर आदिकके द्वारा घटकी सामर्थ्यका घात कर दिया गया तो मुदगर आदिकके पटक देनेपर घटक्षणको उत्पन्न करते रहनेके स्वभावका घात तो हुआ नहीं अब तो समान क्षणान्तरको ही उत्पन्न करना चाहिए अर्थात् घट घटको ही बनाये रहे क्योंकि अब तो समर्थ क्षणान्तर को उत्पन्न करनेका स्वभाव सिद्ध हो गया। अब मुदगर आदिकके द्वारा घटकी सामर्थ्य का घात नहीं किया गया तब तो घट क्षणिक न रहा, स्थायी हो गया।

विनाशव्यापार होनेपर हुए अभावसे सुख दुख होनेके कारण अभाव की सहेतुकताकी सिद्धि—घटादिकका अभाव मुदगर आदि किसी कारणसे होता है यह तो मानना ही पड़ेगा क्योंकि देखो किसी पदार्थकी उत्पत्तिसे पहिले उसके सद्भावके अभावका निश्चय है ना। जैसे घड़ा बनता है कुम्हार तो उसे मृतपिण्डमे घडेके अभावका निश्चय है ना, तभी तो वह घडा बनानेका उद्यम करता है। तो घटकी उत्पत्तिसे पहिले घटके सद्भावके अभावका निश्चय होनेपर घट के उत्पादक कारणोका जोडना करना आदिक किया जाता है और जब घट बन गया तो उसके उत्पन्न होनेपर व्यापार समाप्त कर दिया जाता है। घडा बननेके बाद फिर कौन हाथ चलाता है, चक्का चलाता है ? अब इसके बाद देखिये कि घडा बन गया, घडा यदि बुरा लग रहा है। अच्छा नही बना तो अनिष्ट हो गया घडा और अच्छा बन गया तो इष्ट हो गया। अब अच्छा न लगा तो अनिष्ट हुआ ना। तो उस बनाने वाले या देखने वालेकी इच्छा होती है कि इसको नष्ट कर दिया जाय तो उस घटके विनाशके लिए डण्डा आदिक मारे जाते हैं तो वह नष्ट हो जाता है। तो अनिष्ट घडा नष्ट हुआ तो सुख हुआ कि नहीं ? क्योंकि अनिष्ट लग रहा था उससे उसे कुछ वेदना हो रही थी। उसे नष्ट कर दिया तो हुआ उसे सुख। और, जो घडा अच्छा था, इष्ट लग रहा था और किसी कारणसे वह गिर पड़े या कोई दूसरा डण्डा मार दे। वह घडा फूट जाय तो उससे होता है दुःख। अब देखो—जो सुख और दु.ख होते हैं वे सद्भावसे हुए कि अभावसे ? अनिष्ट घड़ेका विनाश होने का दुख हुआ तो विनाश करने वाले कारणोके व्यापारके बाद अनिष्टके नष्ट होनेपर सुख हुआ और इष्टके नष्ट होनेपर दु.ख हुआ ऐसा अनुभव किया जाता है। सो यहा देखो कि उस इष्ट या अनिष्ट घडेका सद्भाव, सुख दु खका कारण नहीं होता इस तरह का किन्तु उनका विनाश हुआ, सुख दु खका कारण हुआ। इससे सिद्ध है कि घटसे व्यतिरिक्त अभाव मुद्गरके द्वारा किया गया है ऐसा जानना चाहिए।

घटके अभावको घटसे अर्थान्तर न माननेपर अभाव (प्रध्वस) के विषयमे

तीन विकल्प—इस सम्बन्धमें अब और भी बतलावो कि यदि अभावका उस घटसे अर्थान्तर नही मानते तो क्या घट ही प्रध्वस कहा जाता है या घट और कपालसे भिन्न कोई पदार्थान्तरको ध्वस कहते हैं। प्रध्वस नाम है किसका क्या घटका या खपरियो का अन्य किसी चीजका, यदि कहो कि घटका नाम प्रध्वस है तो नाम एक रहा। घट के स्वरूपका ही नाम आपने प्रध्वस रख दिया तो रखदें प्रध्वस नामपर घटका स्वरूप तो अब अचलित हो गया। केवल प्रध्वस नाम धर देनेसे तो न मिट जायगा। घटका प्रध्वश जब एक मान लिया तो घटका स्वरूप तो अविचलित रहा तो वह नित्य ही रहा। फिर क्षणिकता कहा आयी ? यदि कहो कि एक क्षण ही ठहरने वाला जो घटका स्वरूप है उस हीका नाम प्रध्वश है। अर्थात् प्रध्वसाभाव कोई अलग चीज नही किन्तु एक क्षणमें ही ठहरनेका नाम है प्रध्वसाभाव। उत्तर देते हैं कि यह बात ठीक नही है क्योकि एक क्षण भी कोई चीज ठहरती है ? सभी चीजें एक क्षणके बाद नही रहती, यह बात अब तक भी सिद्ध न हो सकी। उस हीका तो प्रसग चल रहा है। इस कारण घट हीका नाम प्रध्वस है वह कहना ठीक नही। यदि कहो कि खपरियोका नाम ही प्रध्वस है तो जब तक वे खपरिया उत्पन्न नही हुई। कपाल नही बना उससे पहिले पहिले तो घटकी स्थिति रहती है ना। तब सिद्ध हो गया ना कि पदार्थ कालान्तरमे भी अवस्थित रहता है। यद्यपि ऐसा कहना युक्त है कि कपालोका ही नाम घटका प्रध्वस है क्योकि अभाव भावस्वरूप ही होता है। घट फूट गया, कपाल हो गया तो कपालोका उत्पाद और घटका अभाव एक ही समयमे होता है। और कपालोके उत्पादका ही नाम घटका प्रध्वस है और घटके प्रध्वसका ही नाम कपालोंका उत्पाद है लेकिन ऐसा कहने वाला यह क्षणिकवाद-सिद्धान्त तो यह मान रहा है कि प्रत्येक पदार्थ एक ही क्षणमे स्थित होता है। कपालोका नाम घटका अभाव है ऐसा कहनेसे भी यही बात तो आयी ना कि जब तक खपरिया न बनी थी तब तक घट बराबर बना हुआ था। तो घडा अब एक क्षणस्थायी तो न रहा। वह १०-१ वर्ष भी टिक सकता है उसके बाद खपरिया बनी। तो फिर पदार्थका कालान्तरमे ठहरना यह बराबर बन गया। क्षणिकता अब न रही।

"वह नही" इन दो शब्दोंकी परस्पर भिन्नता व अभिन्नताका विकल्प अब यह बतलाओ कि खपरियाँ बननेपर कपालके समयमे जो यह कहा जाता कि जो घडा था वह न रहा, तो इसमे जो दो शब्द हैं—"वह, न" तो इन शब्दोका क्या एक ही अर्थ है या न्यारे-न्यारे अर्थ हैं ? इसमे वह और न इन दोनो शब्दोका अर्थ भिन्न-भिन्न है अथवा अभिन्न अर्थ है ? यदि कहो कि भिन्न अर्थ है तो फिर अभाव पदार्थान्तर बन गया और वह "न" शब्द के द्वारा कह दिया गया। "वह" और "न" इनका अर्थ जुदा है ना ! तो जो वहका अर्थ है वह न का नही। जो न का अर्थ है वह वहका अर्थ नही। तो "वह" तो हुआ भाव रूप और "न"

हुआ अभाव रूप । तब अभाव रूप पदार्थान्तर जो 'न' शब्दके द्वारा कहा गया है वह बराबर सत्य रहा कि नही ? यदि कहो कि "वह, नही" इन दोनो शब्दोका अर्थ अभिन्न है, एक ही अर्थ है तो जब एक ही अर्थ है तो पहिले क्यो ना 'न' का प्रयोग बन बैठे ? घडेके प्रध्वस होनेपर ही अब क्यो कहते हो कि वह नही'। जब प्रध्वस नही हुआ या उससे पहिले भी उसमे न का प्रयोग करते । क्योकि 'वह, न' इन दोनो का अब अर्थ अभिन्न कह रहे हो ! शङ्काकार कहता है कि पहिले कैसे 'न' का प्रयोग कर दिया जाय ? जब अनुपलम्भ हो, चीज न मिले तभी तो न' का प्रयोग किया जायगा ? उत्तर देते हैं कि यह बात तुम इस प्रसगपर नही कह सकते क्योकि देशकाल आदिकका व्यवधान जब नही हो रहा है तब अपने स्वरूपसे च्युत न होने वाला जो अर्थ है अर्थात् घडेका स्वरूप है—बीचमे मोटा रहना, नीचे ऊपर सकरा रहना आदि, उस स्वरूपसे न गिरा हुआ जो पदार्थ है—जैसे उदाहरणमे घट, उसके अभावकी अनुत्पत्ति है। अभाव तो तभी बनता जब देशका व्यवधान हो अथवा कालका व्यवधान हो ? कालमें कोई चीज नही आ रही थी, बीच कालमे न रही और अब हो गई तभी तो अनुपलम्भ कहा गया कि नही पाया गया । अथवा इस तरहका कोई देशकी अपेक्षा व्यवधान हो जाय, अभी इस देशमे था, अब न रहा, अब फिर आ गया तो अनुपलम्भ बन सकता है । यहाँ यह पूछा जा रहा है कि शकाकार जो यह कहता है कि वह नही याने वह घडा नही रहा तो वह घडा और नही, इन दोनोका अर्थ तो है अभिन्न लेकिन पहिले न का प्रयोग इसलिए नही होता कि जब घडा अनुपलम्भ न था, तो इस सबधमे पूछा जा रहा है कि तुम जिसका अनुपलम्भ कह रहे हो वह घडा स्वरूपसे च्युत होकर अनुपलम्भमे आ गया या स्वरूपसे च्युत न होकर आ गया ? यदि स्वरूपसे च्युत नही हो रहा है, अपने स्वरूपको ठीक बनाये हुए है तो उसमे अनुपलम्भ कह नही सकते । यदि स्वरूपसे च्युत हो रहा है तब ठीक हो गया कि कपालके कालम मुदगर आदिकके कारण कोई भावान्तर हुआ, अभाव हुआ । घटके अतिरिक्त कुछ चीज और हुई उसी का नाम अच्युति है । तो यो अभाव है कुछ और जिसका अभाव होता है वह पदार्थ अनेक कालोमे रहता है । इससे पदार्थको तुम क्षणिक सिद्ध नही कर सकते ।

प्रमाणका विषय सामान्यविशेषात्मक अर्थ बतानेका प्रकरण—यहाँ प्रकरण यह चल रहा है कि प्रमाणका विषय है सामान्यविशेषात्मक पदार्थ । न केवल सामान्य रूप कुछ प्रमाणका विषय होता, न केवल विशेषरूप कुछ प्रमाणका विषय होता, क्योकि सामान्यरहित विशेष कुछ नही, विशेष रहित सामान्य कुछ नही । यो सामान्यविशेषात्मक पदार्थमें मानते समय क्षणिकवादियोने यह कहा कि पदार्थ तो केवल विशेषात्मक हुआ करता है, भेदात्मक, इसके अतिरिक्त सामान्य कुछ नही । तो ऐसे भ्रमको मिटानेके लिए सामान्य तत्त्वकी सिद्धि चल रही है । सामान्य दो प्रकारका होता है—एक तिर्यक सामान्य और दूसरा ऊर्ध्वता सामान्य । तिर्यक सामान्य कहते हैं एक ही कालमे ठहरे हुए बहुतसे व्यक्तियोको सदृश परिणामसे निरखनेको और एक

व्यक्तिमे एक पदार्थकी अनेक पर्यायें होती हैं उन पर्यायोमे अवस्थित एक द्रव्यका देखना स्थायी वस्तुका निरखना यह है ऊर्ध्वता सामान्य । तो ऊर्ध्वता सामान्यके प्रकरणमे ऊर्ध्वता सामान्यका निराकरण करनेके लिए क्षणिकवादी यह कह रहे हैं कि कोई पदार्थ दो क्षण ठहर ही नही सकता । प्रत्येक पदार्थ एक क्षण रहता है, दूसरे क्षणमे उसका अभाव हो जाता है तो इस क्षणभगको निराकृत करनेके लिए ये सब प्रश्नोत्तर चल रहे हैं ।

घट और कपालसे व्यतिरिक्तप्रध्वस माननेकी मीमाँसा—यहाँ शकाकार कहता है कि घट और कपाल इनसे भिन्न कोई घट प्रध्वस हुआ करता है । जो प्रध्वस है वह न घटस्वरूप है, न कपाल स्वरूप है, किन्तु घट और कपाल इनसे भिन्न कोई भावान्तर है । समाधानमे कहते हैं कि ऐसा माननेपर तो यहा प्रध्वसके साथ घट रह गया । क्योकि व्यतिरिक्त अनेको पदार्थ सदैव रहते हैं सो प्रध्वसके साथ घट रह जाने के कारण एक साथ उभय अवस्थित हो गया, घट भी रहा आया, प्रध्वस भी हो गया । तो फिर प्रध्वस ही क्या कहलाया ? घटके रहते हुए भी घटका प्रध्वस माना जाय तो घटकी उत्पत्तिके समय भी घटका प्रध्वस मान लेना चाहिए और उत्पत्तिके कालमे घटका प्रध्वस मान लेनेपर घटकी उत्पत्ति ही न कहलायेगी । जब प्रध्वस हो गया तो घटकी उत्पत्ति कहाँसे हो ? तो यह कहना युक्त नही कि घटका प्रध्वस घट और कपालसे कोई जुदी चीज है । इस प्रसगमे थोडा यह समझ लेना चाहिए कि उत्तर पर्यायकी उत्पत्तिका नाम पूर्व पर्यायका व्यय है । अब उसको किसी भी शब्दसे कह लो जब उत्तर पर्यायकी उत्पत्ति कारणोसे होती है तो पूर्व पर्यायका व्यय भी कारणो से होगा । तो जैसे उत्पत्ति अहेतुक नही है ऐसे ही अभाव भी अहेतुक नही होता । और देखो जब वस्तुका प्रध्वस होता उससे पहिले वस्तु बहुत काल तक बनी रही ना, इस लिए सर्वथा क्षणिक मानना असगत है ।

अन्यानपेक्ष होनेसे स्थितिकी अहेतुकताकी सिद्धि—क्षणिकवादी लोग विनाशको अहेतुक सिद्ध करनेके लिए अन्यानपेक्षताका हेतु दे रहे हैं कि चूँकि विनाश किसी अन्यकी अपेक्षा नही रखता, इस कारण स्वतः ही होता है और अहेतुक है । और जो अहेतुक है वह किसी कारणकी अपेक्षा न रखनेसे कभी हो कभी न हो ऐसा नही है । अहेतुक तो सदा होता है और इसी कारण पदार्थकी उत्पत्तिके अनन्तर ही विनाश हो जाता है । यो अन्यानपेक्षता बता कर स्वभावसे ही अभावकी सिद्धि बताने पर उनसे यह कहा जा सकता है कि इस तरह यदि विनाशको अहेतुक मानते हो तो इस तरह स्थिति भी स्वभावसे अहेतुक क्यो न हो गयी ? पदार्थ मे तीन धर्म हैं—उत्पाद व्यय और स्थिति जिसमे व्ययको तो अहेतुक मानते हो, अन्यको नही, तो अन्यानपेक्ष होनेसे जैसे व्ययको अहेतुक मान लिया इसी तरह स्थिति भी अन्यानपेक्ष होनेसे स्वभावसे रहेगी और स्थिति सदा बनी रहेगी ।

क्योंकि यहां भी ऐसा कहा जा सकता है कि कालान्तरमे स्थायी रहने वाला भाव अर्थात् ध्रौव्य अपने हेतुसे ही उत्पन्न होता हुआ. स्थितिके सद्भावके लिये भावान्तरकी अपेक्षा नही करता। जैसे अग्नि उष्णताके लाभके लिए किसी अन्य पदार्थकी अपेक्षा तो नही करती क्योंकि अग्निका स्वभाव उष्णता है और कोई भी पदार्थ अपने स्वभावको रखनेके लिए किसी अन्यकी अपेक्षा नही किया करता है। तो इस तरह स्थितिको भी अहेतुक कहा जा सकता अन्यानपेक्ष कहा जा सकता। फिर तो सदा स्थितिका सद्भाव रह जाना चाहिए।

स्थिति स्थितिवानमे भिन्न अभिन्न किये जानेके विकल्पो द्वारा स्थिति की अहेतुकताके निराकरणका निष्फल प्रयास—यदि कहो कि स्थिति और स्थितिवानमे भिन्न और अभिन्नके विकल्प करके निराकरण किया जा सकता है जैसे कि विनाशको सहेतुक माननेपर वहा कहा जा रहा था कि हेतुवोके द्वारा पदार्थका जो विनाश किया गया वह विनाश पदार्थसे भिन्न है अथवा अभिन्न है ? यदि विनाश पदार्थसे भिन्न है तो पदार्थका क्या किया। वह तो ज्योका त्यो रहेगा क्योकि विनाश तो भिन्न हो गया। यदि कहो कि विनाश पदार्थसे अभिन्न है तो हेतुने विनाश किया इसका अर्थ क्या ? इसका अर्थ यह निकला कि हेतुने पदार्थ ही कर दिया तो ऐसी बात तो स्थितिमे भी कही जा सकती है। हेतुके द्वारा यदि स्थिति-वान पदार्थको स्थिति की गई हो तो यह बतलावो कि वह स्थिति स्थितिवानसे भिन्न है अथवा अभिन्न ? यदि भिन्न है तो हेतुने सत्तावानमे क्या किया ? कुछ भी नही किया। और यदि अभिन्न कहोगे तो हेतुवोने स्थिति क्या की ? स्थितिवान पदार्थ को ही किया। तो इस तरह स्थितिमे भी कह सकते तब हेतु सिद्ध न हो सकेगा स्थितिका। तब तो स्थिति भी अन्यकी अपेक्षा न रखनेसे अहेतुक मान लेना चाहिये क्योंकि हेतुके द्वारा जो स्थिति बनावोगे वह क्या वस्तुसे भिन्न स्थिति है ? वस्तुसे भिन्न स्थिति नहीं की जाती स्थितिके हेतुके द्वारा, क्योंकि स्थिति यदि वस्तुसे भिन्न है तो फिर वस्तुका किया ही क्या ?

स्थितिके सम्बन्धसे स्थास्नुता होनेकी शकाका समाधान—वस्तुमे जो स्थास्नुताकी स्थिति है वह स्थितिके सम्बन्धसे की जाती है। उत्तर यह कहना भी अयुक्त है, क्योंकि स्थिति और स्थितिवानका सम्बन्ध क्या बनेगा। जब स्थितिवान पदार्थमे और स्थितिको भिन्न मान लिया तो भिन्न-भिन्न रहने वाले स्थितिवान पदार्थोमे और स्थितिमे सम्बन्ध क्या जुटाया जायगा ? भिन्न पदार्थोंमें तादात्म्य सम्बन्ध तो असगत है। तादात्म्य सम्बन्ध माना ही नही जा सकता है। जैसे घडा और कपडा ये भिन्न भिन्न पदार्थ है, तो क्या इनमे तादात्म्य सम्बन्ध स्वीकार किया जा सकता। इसी तरह ये दोनो भिन्न ही भिन्न हैं तो उनमें तादात्म्य सम्बन्ध नही बन सकता। यदि कहोगे कि व्यतिरिक्त पदार्थोमे कार्य कारण सम्बन्ध बन जाया

करता है जैसे अग्नि और धूम ये भिन्न भिन्न पदार्थ हैं । तो इनमे कार्य कारण सम्बन्ध बना हुआ है । तो इसी प्रकार स्थिति और भावका सम्बन्ध बन जायगा, यह भी बात अयुक्त है क्योंकि स्थिति और स्थितिवान ये दोनो भिन्न भिन्न पदार्थ हैं तुम्हारे सिद्धान्तसे और भिन्न पदार्थ एक साथ हुआ करते हैं जैसे जगतमे अनेक भिन्न भिन्न पदार्थ पडे हैं कि एक साथ हैं तो ऐसे ही स्थिति और स्थितिवान ये दोनो भिन्न भिन्न पदार्थ हैं तो एक साथ रह सकते हैं । और जो एक साथ रह सकते हैं और स्थिति स्थितिवान एक साथ रहते ही हैं तो उनमे कार्य कारण भाव नही बन सकता । यदि कहो कि स्थिति और स्थितिवान पदार्थ ये एक साथ नहीं रहते तो एक साथ न रहे तो स्थितिसे पहिले भी स्थितिका कारणभूत स्थितिवान पदार्थ हो गया, यह अर्थ हुआ ना । याने स्थिति और स्थितिवान पदार्थ ये दोनो एक साथ नही रहते तो इसका भाव यह बनेगा कि स्थितिवान पदार्थ पहिले हैं । स्थिति बादमें होती है या स्थिति पहिले है । स्थितिवान पदार्थ बादमें होता है । इन दोनो बातोमे कुछ भी मानोगे तो उसीमे दोष है । जब यह मानोगे कि स्थितिसे पहिले स्थितिवान पदार्थ है तो स्थितिवान पदार्थमे स्थिति तो है नही । तो अर्थ यह हुआ कि वह अस्थिति उसमे क्या रही ? और, यदि ऐसा विकल्प लावोगे कि स्थितिवानसे पहिले स्थिति हो गई तो स्थितिका कोई आधार ही नही है तो अनाश्रय रहा ना । बिना आश्रयके स्थिति क्या ? और फिर वह उत्तरकालमे भी किसीका आश्रय न कर सकेगा । क्योंकि अपना कारण तो क्षणभगुर है । वह तो नष्ट हो गया । इससे असद्भाव भी कहीं कह सकते । तो यो वस्तुसे भिन्न स्थिति किसी हेतुके द्वारा किया जाता है यह कहना असगत हुआ । अब यदि यह कहोगे कि वस्तुसे अभिन्न है वह स्थिति जो कि हेतुके द्वारा किया जाता है तो जब स्थितिसे अभिन्न हुई अर्थात् स्थितिवान स्वय ही अपने स्वरूपसे स्थितिको लिए हुए है तब उस स्थितिको उत्पन्न करनेके लिये यह सिद्ध हो गया कि स्थिति स्वभावके प्रति अन्यानपेक्ष है अर्थात् पदार्थ अपना ध्रौव्य रखनेके लिये किसी अन्यकी अपेक्षा नही करता और जब पदार्थ अपना ध्रौव्य कायम किए रहनेके लिये किसी अन्यकी अपेक्षा नही करता है तो इसके मायने हुआ अहेतुक हुआ और यह फिर सदा रहेगा । इससे वस्तु स्थिति बन गया । उसे क्षणिक कहना व्यर्थ है । परतु पर्याय दृष्टिसे तो उत्पन्न होता है, विनष्ट होता है किन्तु द्रव्यदृष्टिसे वह स्थिर रहता है ।

विनाशके अहेतुक माननेपर उत्पादके भी अहेतुकपनेका प्रसङ्ग— अब और भी बात सुनो ! विनाशको अहेतुक मान लेनेपर उत्पादको भी अहेतुक कहा जा सकेगा क्योंकि जितने विनाशके हेतुके पक्षमे विकल्प उठाये गए थे वे सब विकल्प उत्पादके पक्षमे भी उठाये जा सकते हैं । जैसे कि ऐसा माननेपर कि वस्तुकी उत्पत्तिके कारण हुआ करते हैं और वे कारण वस्तुको उत्पन्न किया करते हैं । क्षणिकसिद्धान्त इन दो बातोका पोषण करता है कि वस्तुकी उत्पत्ति तो कारणसे

होती है किंतु विनाश स्वय होता है। विनाशमें कारणकी आवश्यकता है इसी कारण उत्पत्ति होनेके बाद भी वस्तुका विनाश होता है यो विनाशको अहेतुक मान लेनेपर जो बात विनाशको अहेतुक सिद्ध करनेके लिये कहते हो वह ही बात उत्पादको अहेतुक सिद्ध करनेके लिए कही जा सकती है। जैसे यह बतलावो कि उत्पत्तिका कारणभूत पदार्थ स्वभावसे उत्पन्न हो रहे पदार्थको उत्पन्न करता है या न उत्पन्न हो रहे पदार्थको उत्पन्न करता है? वस्तुकी उत्पत्तिका कारणभूत जो भी पदार्थ माना जाय जैसे घटकी उत्पत्तिके लिए कुम्हार दण्ड, चक्र आदिक कारण माने गए हैं तो ये कारण स्वभावसे ही उत्पन्न होने वाले घटको उत्पन्न करते हैं या उत्पन्न हो रहे घटको उत्पन्न करते हैं और या फिर न उत्पन्न हो रहे घटको उत्पन्न करते हैं? यदि कहोगे कि स्वभावत उत्पन्न हो रहे घटको उत्पन्न करते हैं वे दड, चक्र आदिक कारण, तो इनमे हेतु निष्फल हो गया, क्योंकि स्वभावसे ही जब उत्पत्ति मान ली गयी तो अब कारणकी क्या आवश्यकता रही? स्वभावसे उत्पन्न हो रहे कार्यका पदार्थको कारण किया करता है, ऐसा माननेमें यह तो पहिले ही स्वीकार कर लिया कि पदार्थ स्वभावमें ही तो हो रहा है तो ऐसे उत्पन्न हो रहे पदार्थ के लिए कारणकी कुछ जरूरत नही है। यदि कहो कि उत्पन्न न हो रहे पदार्थको उत्पत्तिके लिए कारणकी आवश्यकता है तो फिर यदि कारण उत्पन्न हो न हो रहे पदार्थको उत्पन्न करदे तो आकाशका फूल, गधेके सीग आदिकको भी उत्पन्न कर बैठें। क्योंकि वे उत्पन्न न हो रहे को ही कारण उत्पन्न किया करता है। तब तो आकाशपुष्प आदिक को भी उत्पन्न कर देनेका प्रसग आ जायगा। यदि कहोगे कि अपने कारणके सन्निधान होनेसे ही उत्पन्न हो रहे पदार्थका उत्पाद माना गया है अर्थात् पदार्थ तो वही उत्पन्न किया जा सकता है जो कि उत्पन्न हो रहा है लेकिन उत्पत्तिके कारणोकी सन्निधिसे ही वह उत्पाद हुआ करता है। यदि ऐसा कहोगे तो यह बात विनाशके सम्बन्धमें भी घटित होती है। अर्थात् विनाश होता है विनष्ट हो रहे पदार्थका, लेकिन विनाशके हेतुके सन्निधिसे ही विनाश माना जा सकता है तो यह बात जो कि उत्पत्तिके सम्बन्धमे कहा है, विनाशके सम्बन्धमे भी घटित हो जाती है।

कार्यकारणके उत्पादविनाशमे सहेतुकाहेतुकपनेकी असिद्धि—उक्त विचार-विमर्षके बाद यह निष्कर्ष निकाला कि कार्य और कारणका उत्पाद व विनाश सहेतुक अहेतुक सिद्ध नही हो सकता अर्थात् कार्यका उत्पाद तो होता है सहेतुक और कारणका विनाश होता है अहेतुक, यह बात नही कही जा सकती। क्योंकि बाह्य कारणके अनन्तर उत्पाद और विनाश एक साथ पाया गया है रूपादिककी तरह। धाकाकारके सिद्धातमे कहा भी है कि विनाश और उत्पाद दोनो एक साथ होते हैं। जैसे कि तराजूके पलडोमे, एक पलडेका ऊँचा होना, और दूसरे पलडेका नीचा होना। जैसे कि एक पलडा ऊँचा होता है तो तत्काल ही दूसरा पलड़ा नीचा होता है, तो जैसे

उनका ऊँचा नीचा होना एक साथ है उसी तरहसे कार्यकारणका होना एक साथ है। तब उनमें कोई सहेतुक कोई अहेतुक है यह बात सिद्ध नहीं होती। इससे यह मानना होगा कि वस्तु त्रिधर्मात्मक है—वस्तुमें उत्पाद व्यय और स्थिति ये तीनों धर्म पाये जाते हैं। उनमें स्थिति तो अहेतुक है, किन्तु उत्पाद और व्यय ये दोनों पर्यायें सवधित हैं और ये सहेतुक हैं। तो केवल व्ययकी बात कहकर पदार्थको क्षणिक कहना बिल्कुल अनगत बात है।

कारणान्तर सहभाव हेतुमें अनेकान्तिक दोषका अभाव—शंकाकार कहता है कि जो यह अनुमान बनाया है कि कार्यकारणका उत्पाद विनाश सहेतुक नहीं है क्योंकि कारणके अनन्तर एक साथ दोनों पाये जाते हैं रूपादिककी तरह। इस अनुमानमें द्रव्यस्वरूपके साथ अनेकान्त दोष आता है। देखो जैन सिद्धान्तमें पर्यायके साथ द्रव्यको भी माना गया है अर्थात् द्रव्य पर्याय एक साथ रहा करते हैं। पर द्रव्यको तो माना अहेतुक। तो सहेतुक पर्यायके साथ रहनेमें द्रव्य अहेतुक न रहा। किन्तु माना है यह कि द्रव्य अहेतुक है और पर्यायके साथ रहता है। इसके समाधानमें कहते हैं कि इस तरह अनेकान्त दोष नहीं लग सकता, कारण कि हेतुमें कारणान्तर, यह विशेषण दिया हुआ है अर्थात् कारणके बाद जो एक साथ हों उनमें यह बात नहीं कही जा सकती कि यह तो सहेतुक है और यह अहेतुक है। द्रव्य तो कारणके अनन्तर नहीं होता। वह तो अनादि अनन्त अहेतुक ही है। कारण जुटनेके बाद जो दो चीजें एक साथ हुईं उनमें यह छांट नहीं की जा सकती कि यह तो अहेतुक है और यह सहेतुक है। जैसे कि क्षणिकवादमें दंड मुद्गरकी चोटके कारण कपालकी उत्पत्ति हुई और घटका विनाश हुआ। अब उनमें यह कहना कि कपालकी उत्पत्ति तो मुद्गर आदिक कारणोंसे हुई है और घटका विनाश अकारण हुआ। यहां द्रव्य और पर्यायमें पर्याय तो सहेतुक है। कोई कारण पाकर हुआ है किन्तु द्रव्य सहेतुक नहीं, क्योंकि वह कारणके बाद हुआ हो सो नहीं। वह तो अनादि अनन्त है। इस कारण इस हेतुमें अनेकान्त दोष नहीं दे सकते।

कारणानन्तर होने वाले कार्योंमें अहेतुकताकी असिद्धि—और भी देखिए ! जो हेतु दिया गया है "कारणके अनन्तर एक साथ होनेसे" उसमें कोई अहेतुक हो कोई सहेतुक हो यह विभाग नहीं होता। यह हेतु असिद्ध नहीं है, क्योंकि दंड मुद्गर आदिक व्यापारके बाद जैसे कपाल आदिककी उत्पत्ति प्रतीत होती है इस ही प्रकार कपालका कारणभूत घटका विनाश भी देखा जाता है और दोनों प्रकारके व्यवहार लोग करते हैं कि घट नष्ट हुआ और खपरियां उत्पन्न हुईं। तो खपरियोंका उत्पन्न होना जैसे कारणपूर्वक है इसी प्रकार घटका नष्ट होना भी कारणपूर्वक होता है। इस अनुमानमें जो उदाहरण दिया गया है वह साध्यविकल नहीं है। उदाहरणमें भी साध्य बराबर है। उदाहरण दिया गया था रूप रस आदिकका। जैसे रूप, रस होते

हैं तो उनमें यह कहना कि एक सहेतुक है और एक अहेतुक है यह बात नहीं बनती। कारणभूत रूप आदिक केवल कार्यभूत रूपका ही कारण हो और रस आदिकका कारण न हो ऐसी प्रतीति नही होती। तो उदाहरण साध्य विकल नही है। और, इसी तरह उदाहरण साधनविकल भी नही है। देखो ना! रूप, रस आदिकका एक साथ सद्भाव पाया जाता है तो इसी प्रकार प्रध्वंस अहेतुक बने और उत्पाद सहेतुक बने यह व्यवस्था नही बनती और इसी कारण जो पहिले हेतु दिया गया था क्षणक्षय सिद्ध करनेके लिये कि सब पदार्थ क्षणध्वंसी हैं क्योंकि विनाश स्वभाव होनेपर अन्य की अपेक्षा नही रखते। यह हेतु-क्षणक्षयको सिद्ध करनेमें समर्थ नही है।

सत्त्वकी क्षणिकतासे व्याप्ति न होनेसे क्षणक्षयकी असिद्धि—अब शकाकार कहता है कि क्षणक्षयको सिद्ध करनेमे विनाश स्वभाव होनेपर 'अन्यकी अपेक्षा नही रखते हैं यह हेतु भले ही साध्यको सिद्ध नही कर सके, लेकिन सत्त्व नामक हेतु तो साध्यको सिद्ध कर देता है अर्थात् सारा विश्व क्षणिक है सत्त्व होनेसे तो यहा सत्त्व नामक हेतु देखो सर्व पदार्थोंमे पाया जाता है और सब क्षणिक हैं। तो सत्त्व हेतुसे पदार्थके क्षणिकपनेका निर्णय हो जायगा। उत्तर देते हैं कि सत्त्व हेतु से भी पदार्थका क्षणक्षयपना सिद्ध नही होता। इसका कारण यह है कि सत्त्वका और क्षणिक होनेका अविनाभाव सम्बन्ध नहीं है। जो जो सत् हो, वे वे क्षणिक ही हो ऐसा प्रतिबन्ध नहीं बनाया जा सकता। शंकाकार कहता है कि देखो—बिजली आदिक अनेक पदार्थोंमे सत्त्व है और क्षणिकपना है ये दोनो बातें प्रत्यक्षसे ही सिद्ध हो रही हैं तब तो इसका सम्बन्ध सिद्ध हो गया ना कि जो जो सत् हो वे वे क्षणिक हैं। जैसे बिजली। मेघोमे जो बिजली चमकती है वह चमक कर तुरन्त नष्ट हो जाती है। जो सत् है विद्युत् और देखो नष्ट भी हो गयी तुरन्त, तो जो सत् होता है वह क्षणिक होता है ऐसा प्रतिबध सिद्ध हो जाता है। और जब विद्युत आदिकमे सत् और क्षणिकपनेका प्रतिबन्ध सिद्ध हो गया, अविनाभाव नियम सिद्ध हो गया तो घट पट आदिक पदार्थोंमे भी जब सत्त्व पाया जा रहा तो वह सत्व क्षणिकपनेको सिद्ध कर ही देता है। समाधानमें कहते हैं कि यह समानता देना युक्त नही है कारण यह है कि विद्युत् आदिकमे भी सत्व और क्षणिकपनेका प्रतिबन्ध सिद्ध नही है। बिजली आदिकमे भी मध्यमे स्थिति जो दिखती है वह पूर्व परिणमनको और उत्तर परिणमनको सिद्ध करती है। ऐसा नही है कि बिजली आदिक ये पदार्थ बिना उपादानके उत्पन्न हो गए। बिजली जो दिखी वह यह सिद्ध कर देती है कि इससे पहिले भी उस का कोई स्वरूप है और इसके बाद भी उसका कोई स्वरूप रहेगा। बिजली भी बिना उपादानके उत्पन्न हुई नही है। यदि विद्युत आदिक पदार्थोंको बिना उपादानके उत्पन्न हुआ मान लिया जाय तब तो जो वर्तमान चेतन है वह भी बिना उपादानके उत्पन्न हो बैठेगा। अर्थात् मनुष्यमे या पशुमें जो जन्म होता है तो जन्म समयमें जो प्रथम चेतनका दर्शन है वह भी बिना उपादानके मान लिया जाय और उस चेतनको

यदि बिना उपादानका मान लिया जायगा तो परलोकका अभाव हो जायगा । जब उसके पहिले कुछ उपादान था ही नही, तो उसका परलोक क्या ? क्योकि जैसे बिजली आदिकका उपादान दृष्टिमे न आया उसी तरह प्रथम चेतनका भी उपादान दृष्टिमे तो न आया । यदि कहो कि जन्म समयमे जो प्रथम चेतनका दर्शन हुआ है वह तो अनुमानसे जान लिया जाता है सो उस चेतनका उपादान अनुमानसे सिद्ध है, तो यही बात विद्युत आदिमे भी लगाना चाहिये । इसका भी उपादान अनुमानगम्य है उक्त कथनका तात्पर्य यह है कि बिजली जिन परमाणु स्कधोमें परिणमित हुई है वे परमाणुस्कध इस समय प्रकाश स्वरूप हो गए और तुरन्त ही फिर वे अप्रकाशस्वरूप हो गए अर्थात् सामान्य रूप रस आदिकमय रह गए । इस प्रकार जो परमाणुस्कध प्रकाशस्वरूप नजर आया उससे पहिले भी वह परमाणु स्कध था, हाँ, वह प्रकाशरूप परिणमनमे न था तो उपादान पहिले भी था और आगे भी रहेगा । बिना उपादानके बिजली आदिककी उत्पत्ति नही हुई तब यह दृष्टान्त देना क्षणक्षयकी सिद्धिके लिए ठीक नही बैठता कि देखो बिजलीमे सत्व है और क्षणिकपना है । क्योकि विद्युत् आदि स्कधोमे भी सत्त्व तो है, मगर क्षणिकपना नही है । और जिसको तुम क्षणिक कह रहे हो वह तो अवस्था है, पदार्थ क्षणिक नही है ।

निरन्वय सन्तानव्युच्छेद माननेपर क्षणोकी अवस्तुताका प्रसग— शकाकार कहता है कि बिजली चमकी और मिट गई । अब यह बिजली उत्तर पर्याय मे अविनाभाव नही रखती । अर्थात् यह आगे कुछ न रही, उसकी कोई अवस्था न रहेगी । तो यो इसकी आगे सतान न चलेगी । उसका अन्वय मिट गया । उसका सिलसिला खतम हो गया । उत्तरमे कहते हैं कि यदि बिजलीकी सतान अब न रही, वह निरन्वय हो गई । उसका सिलसिला खतम हो गया तो इसका अर्थ यह हुआ कि चरमक्षण अकिञ्चित्कर बन गया अर्थात् जिस क्षण बिजलीके बाद वहा कुछ न रहा तो वह अन्तिमक्षण कहलाया । उसके बाद फिर उसकी कोई दुनिया नही । तो अब अन्तिमक्षण कुछ न कर सका । जैसे क्षणिकवादमे मानते हैं कि प्रत्येक क्षण क्षणान्तरको उत्पन्न करते हैं, प्रत्येक पर्याय नवीन पर्यायको उत्पन्न करती है इन शब्दोने उनमे आशय जल्दी समझ लेंगे । प्रत्येक क्षण क्षणान्तरको उत्पन्न करते हैं तो अब ये अन्तिमक्षण जिसे मान रखा है कि इसके बाद अब अन्वय न चलेगा । अब सतान न चलेगी तो वे अन्तिमक्षण तो अकिञ्चित्कर हो गए । और, जो अकिञ्चित्कर है वह अवस्तु कहलाता है, तो चरम क्षण अकिञ्चित्कर होनेसे अवस्तु बन गयी और जब चरमक्षण अवस्तु बन गई तो उसके पूर्व पूर्वक्षण भी अवस्तु बन जायेंगे, क्योकि अब तो क्षणोमे अवस्तु बननेका माद्दा ही बन गया । यदि अन्तिम क्षणमे अवस्तुपना आ जायगा तो उसके पूर्व क्षणोमे अवस्तुपना आ जायगा और फिर तो कही भी कुछ भी सतान हो ही न सकेगा समस्त सतानोका अभाव हो जायगा क्योकि अन्तिम क्षण तो अर्थक्रियासे रहित मान लिया, इसके बाद सतान और अन्वय न चलेगा वह अतिम

क्षण अर्थ क्रिया रहित हो गया ना। क्योंकि क्षणोंका काम तो यह है कि नवीन क्षण को उत्पन्न करदें। तो अन्तिम परिणति जब अर्थक्रियासे रहित है तो उसका असत्व हो गया और जब अन्तिमक्षणका असत्त्व हो गया तो उसका पूर्व क्षण भी अर्थक्रिया रहित होनेसे असत् हो जायगा और इस ही कारण उसका पूर्वक्षण भी असत् हो जायगा। तो यो फिर जगतमें कुछ भी नहीं रहा। सर्वशून्य हो गया। कोई भी पदार्थ अर्थक्रियाकारी न रहा, सब अकिञ्चितकर हो गए। तो इस तरह फिर दुनियामे संतान नामक कुछ बात ही न रही, क्योंकि संतान तो नाम है पूर्व और उत्तर क्षणो का समूह। उनके बीचमे जो कुछ एक एक क्षण है, जो कुछ अन्वय रूप है वह संतान ही होता है। अब सारे क्षण जब अवस्तु हो गए, अर्थक्रिया शून्य हो गए तो संतानकी कल्पना ही क्या हो सकती ?

निरन्वय संतानव्युच्छेदकी मान्यतापर विचार—अब यहां शंकाकार कहता है कि विद्युत आदिक पदार्थ सजातीय आदिक कार्यको नही करते इसलिए तो अकारण है बिजली प्रकाशरूपी अन्य बिजलीको नही उत्पन्न करती अर्थात् प्रकाश मिट गया इस तरहसे तो सजातीय कार्यका अकारणरूप है, बिजली, लेकिन योगियोके ज्ञानका कारण है, यह भी बिजलीसे उत्पन्न हुआ है योगियोका ज्ञान। क्षणिकवादमे जितने भी ज्ञान माने गए हैं वे सब पदार्थसे उत्पन्न हुए माने गए हैं तो योगियोको तो सारे विश्वका ज्ञान रहता है। तो उनके ज्ञानके कारण तो सभी पदार्थ हैं। लो बिजली भी उनके ज्ञानका कारण है। तो बिजली किसी ज्ञानका कारण न रही यह बात तो न रही। वह सजातीय क्षणको उत्पन्न नही कर सकती, इस कारण सजातीय क्षणोके कार्यके करनेमे विद्युत समर्थ नही है, इस कारण वह अकारण है लेकिन योगियोके ज्ञानका तो कारण है इसलिए अवस्तु नही कह सकते। जो किसी भी कार्यको न कर सके उसका ही नाम तो अवस्तु है। बिजली यद्यपि बिजलीकी संतानको न बना सकी लेकिन योगियोके ज्ञानको तो बना डालती है, इस कारण विद्युत आदिमे अवस्तुपना नही आता। उत्तरमें कहते हैं कि इस तरहसे तो हम यह भी कह सकेंगे कि जो रूप-क्षण है काला पीला आदिक कोई सामग्रीरूप कार्य है वह रूप उपादान तो पूर्वरूप आस्वाद्यमान रसके समयमे रहने वाला है, जिस कालमें जिस आमका रस स्वादमें लिया जा रहा है अधेरेमे सही, उस कालमे जो रूप पड़ा हुआ है वह रूप उपादान अन्य रूपको न करके रसका सहकारी कारण बन बैठे क्योकि अब तो बिजलीमें ऐसा मान लिया ना कि यह बिजली सजातीय कार्यको तो नही करती अर्थात् बिजली से बिजली प्रकाशमान बना रहे ऐसा कार्य तो नही होता, पर योगियोंके ज्ञानको उत्पन्न कर देता है। सजातीय कार्यको न करके विजातीय कार्यको कर देता है। तो ऐसे ही हम यह कहेंगे कि वह रूप उपादान सजातीय रूपको न करके अर्थात् अग्रिम क्षणके रूप कार्यमे न करके वह रसका सहकारी कारण बन जायगा। तो यो इसका रूपक्षण रूपक्षणान्तरको न कर सका और अब ऐसा सिद्ध होनेपर रस हेतु देकर रूप

का अनुमान भी नही किया जा सकता है। यदि कहो कि यहाँ तो ऐसा देखा जा रहा है कि उपादान कारण रूप रूपसे सजातीय रूप किया जा रहा है। इस कारण दोष नही है याने रूपसे रूप उत्पन्न हो ते जा रहे हैं। तो उत्तरमे कहते है कि वही बिजली शब्द आदिकमे भी समान है उस बिजलीसे अन्य विद्युत्, शब्दसे अन्य शब्द ये सब उत्पन्न होते रहते हैं। अब उनका रूप व्यक्त रहा सतान तो बराबर चल सकती है। इस कारण निरन्वयके सतानकी उच्छित्ति मानना युक्त नही है।

सत्त्वके साथ क्षणिकत्वमे प्रतिबन्धका अभाव—शङ्काकार कहता है कि एक जगह जब सत्त्व और क्षणिकपना एक साथ पाया जाता है तो उससे सभी जगह क्षणिकत्वका अनुमान हो जायगा। उत्तर देते हैं कि यह बात युक्त नही है। एक साथ पाये गए तो उससे जहाँ जहाँ सत्त्व हो वहाँ वहाँ क्षणिकत्व मान लीजिये। ऐसा मानने पर जब देखा कि शङ्खमे सफेदी है और शङ्ख सत् है, तो जो जो सत् होता है वह सफेद होता है, ऐसा अनुमान करके स्वर्णमे भी सफेदीका अनुमान कर लिया जायगा क्योकि शखमे तो सफेदी और सत्व एक साथ पाया गया तो एक जगह सफेदी और सत्त्व पाये जानेसे सर्वत्र ही हम जहाँ जहाँ सत्त्व है वहाँ वहाँ सफेदी मान लेंगे। जैसे कि शंकाकारने माना है कि एक जगह सत्व और क्षणिकपना मिल गया तो जहाँ जहाँ सत्व हो, सब जगह क्षणिकपना मान लिया जायगा। शकाकार कहता है कि स्वर्णके आकारको प्रत्यक्ष करने वाले ज्ञानसे स्वर्णमे पीतताका ज्ञान हो रहा है, दिख रहा है इससे सफेदीके अनुमानमे बाधा आती है अर्थात् प्रत्यक्षसे तो दिख रहा कि पीला है, सफेद नही है तो उसमे सफेदीके अनुमानमें बाधा आ गई। इस कारण स्वर्णमे सफेदीकी सिद्धि नही की जा सकती। तो उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो घट-आदिकमे, क्षणिकताके अनुमानमे भी बाधा आ रही है क्योकि घट आदिक पदार्थोंमे यह वही है इस प्रकार एकत्वका प्रतिभास देखा जा रहा है। तो घट आदिकमे क्षणिकत्वके अनुमानमे बाधा आती है, इस कारण प्रतिक्षण पदार्थ विनाशीक हैं। यह सिद्ध नही हो सकता शकाकार कहता है कि एकत्व प्रत्यभिज्ञान तो असत्य है। उसके एकत्वमें कोई प्रमाण नही है, क्योकि भिन्न-भिन्न हैं नखकेश आदिक जिन को कि एक बार काट दिया और फिरसे वह बढ़ जाता है तो वही नख केश तो नही बढे, वे नख केश तो कटकर कही चले गए। अब तो दूसरे नख, केश बढ़ रहे, लेकिन लोगोको एकत्वका ज्ञान होता है। हैं नही वही नख, केश पर उनमे एकत्वका भ्रम हो गया है। तो एकत्व प्रत्यभिज्ञान तो भ्रान्तज्ञान है। प्रमाणभूत नही है। उत्तरमें कहते हैं कि इस तरहसे तो जब कामला रोग जिसकी आखमे लगा हुआ है और वह जिस पदार्थको देखता है प्रत्यक्षसे उसे पीला पीला दिखता है। तो जो पदार्थ सफेद है उनमे पीताकारका भ्रम हो गया तो इससे फिर यह कहा जायगा कि जितने भी प्रत्यक्ष होते हैं वे सब भ्रान्त होते हैं। तब फिर हम सफेद वस्तुओंको प्रत्यक्षसे सफेद को देखें तो कह सकेंगे कि यह ज्ञान भी भ्रान्त है क्योकि जो सफेद नहीं है, एक

जगह सफेदका पीला दिख गया तो वह भ्रान्त हुआ था। सफेदको सफेद देखा तो भी भ्रान्त है क्योंकि प्रत्यक्ष भ्रान्त हुआ करता है। यदि कहो कि भ्रान्त ज्ञानसे भ्रान्त रहित ज्ञानमें विशेषता होती है। भ्रान्त अप्रमाण होता है अभ्रान्त प्रमाण है। तो इसी तरह यह भी मान लेना चाहिए कि कहीं सदृश पदार्थमें एकत्वका ज्ञान हो गया तो वहाँ वह भ्रान्त ज्ञान है, पर एक ही पदार्थमें एकत्वका ज्ञान किया जाय तो वह तो भ्रान्त न कहलावेगा। और, प्रत्यभिज्ञानके विषयमें तो बड़े विस्तारके साथ उस की प्रमाणताका वर्णन पहिले किया गया ही है।

नित्यत्वकी सिद्धिमें बाधक प्रमाणका अभाव—अब शंकाकार कहता है कि सत्त्व हेतुसे अथवा विनाश स्वभाव होनेपर अनन्यापेक्ष होनेसे इस हेतुसे यदि क्षणिकत्व सिद्ध नहीं होता तो कमसे कम इस बातसे तो सिद्ध हो ही जाता कि विपक्ष में बाधक प्रमाण है अर्थात् पदार्थोंको नित्यत्व सिद्ध करनेमें जो भी तुम प्रमाण दोगे, युक्ति दोगे वे सब युक्तियां बाधित हैं इस कारणसे सत्त्व और क्षणिकत्वमें ही अविना-भाव समझा जा रहा है। जब नित्यत्वका सत्त्वके साथ मेल नहीं दिखता उनसे बाधायें आती हैं, तो अपने आप सिद्ध हो गया कि सत्त्वका और क्षणिकत्वका अविनाभाव है। उत्तरमें कहते हैं कि नित्यत्वमें जो हेतुका बाधकपना बताया है जैसे मान लो सत्त्व ही हेतु है सो ये सब पदार्थ नित्य हैं सत्त्व होनेसे, तो इस हेतुका बाधक कौन सा प्रमाण हुआ? प्रत्यक्ष हुआ अथवा अनुमान हुआ? प्रत्यक्षको तो बाधक कह नहीं सकते। प्रत्यक्ष द्वारा क्षणिकत्वका तो प्रतिभास होता ही नहीं। जिससे कि प्रत्यक्ष नित्यत्वमें बाधा देने लगे। जब जिस प्रत्यक्षसे क्षणिकपनेका स्वरूप प्रतिभासमें नहीं आ रहा उस प्रत्यक्षको यह नहीं कह सकते कि वह प्रत्यक्ष क्षणिकत्वके साथ नियत है सो क्षणिकत्वके साथ व्याप्ति है और नित्यत्वके साथ व्याप्ति नहीं है। क्षण-क्षयका स्वरूप प्रत्यक्षमें ही नहीं आ रहा। यदि कहो कि अनुमान प्रमाण तो नित्यत्व से हटाकर सत्त्वको इस क्षणिकके साथ नियत कर सकेगा तो यह भी कहना ठीक नहीं है। क्योंकि अनुमानमें भी जो अविनाभाव तुम लगावोगे वह किस बलपर लगावोगे प्रत्यक्ष तो उस अविनाभावको ग्रहण नहीं करता जिसको अन्य अनुमानसे लगावोगे तो अनवस्था दोष हो जायगा। उसी अनुमानसे लगावोगे तो अन्योन्याश्रय दोष हो जायगा। इस कारण नित्यत्वमें बाधा देने वाला कोई अनुमान प्रमाण भी नहीं है।

कथंचित् नित्यत्वमें अर्थक्रियालक्षण सत्त्वका अविरोध—शंकाकार कहता है कि जहाँ क्रमसे अथवा एक साथ अर्थक्रियामें विरोध है। वहाँपर वह सत् नहीं हो सकता। जैसे आकाशका फूल। इसमें न क्रमसे अर्थक्रिया होती है न एक साथ अर्थक्रिया होती है। तो वह सत् भी नहीं है और क्रमसे अथवा एक साथ अर्थक्रियाका विरोध नित्यमें है। इस अनुमानसे तो सत्त्व उस नित्यत्वसे हट जायगा और अनित्यमें ही लगेगा। जो पदार्थ अनित्य होगा उसमें ही तो अर्थक्रिया हो सकती

है। पर नित्यमे अर्थक्रिया नही हो सकती। इस अनुमानसे सत्वकी व्याप्ति नित्यत्वसे न रही और सत्व की व्याप्ति अनित्यत्वसे होगी। इस तरह सब पदार्थ अनित्य सिद्ध होते हैं क्योकि सत्व होनेसे। समाधान करते हैं कि यह प्रयोग ठीक नहीं है, क्योकि सत्त्वका और नित्यत्वका विरोध असिद्ध है। सत्व और नित्यत्वमे विरोध नही आता, यदि विरोध आता है तो बतलावो वह किस जातिका विरोध है? विरोध दो प्रकार के होते हैं—एक तो एक साथ न रह सके। दूसरा—एक दूसरेके परिहार पूर्वक रहे। अर्थात् जहा एक आये वहा दूसरा हो जाय। जो इस दूसरेको हटाता रहे, इस तरह से विरोध दो प्रकारके होते हैं—उनमेसे आदि पक्ष तो कह नही सकते कि उसमे सहानवस्थारूप दोष है क्योकि सहानवस्थारूप दोष तब होता है जब पदार्थका पहिले तो सद्भाव हो और पीछे अन्य पदार्थ आ जाय, और वह वहासे हट जाय, न रहे। उसका अभाव भाव हो जाय तो जाना जा सकता है कि दोनो एक साथ नही रह सकते। जैसे ठण्ड और गर्मी। जिस कमरेमे ठण्ड है वहा यदि आग रख दी जाती है तो ठण्ड नही रहती इससे सिद्ध होता है कि ठण्ड और गर्मीका सहानवस्था रूप विरोध है। इस तरह नित्यत्वका और सत्वका यदि सहानवस्थारूप विरोध मानते हो तो उसका अर्थ यह मानना होगा कि पहिले नित्यता थी उस जगह सत्व आया नो नित्यत्व खतम हो गया। ऐसा यदि होता तब तो सहानवस्था कह सकते थे। अथवा सत्व पहिले था और उस जगह नित्यत्व आ गया तो सत्व हट गया। उसका अभाव हो गया। इस तरहकी बात यदि हुआ करती हो तब तो सहानवस्थारूप विरोध कह सकते थे, पर ऐसा तो है ही नही, नित्यत्वकी प्राप्ति हो और फिर सत्व आये ऐसा मान लिया तो एक यह तो मान ही चुके कि पहिले नित्यत्व था। और ऐसा कहनेपर कि सत्वकी प्राप्ति की अब नित्यत्व आया तो सत्व हट जायगा पहिले सत्व हुआ पीछे नित्यत्व आया, तो भी नित्यत्व मान लिया। बात यह है कि नित्यत्व व सत्वका सहानवस्थारूप विरोध ही नही। और, दूसरी जातिका विरोध भी इसमे सम्भव नही हो सकता। अर्थात् एक दूसरेको हटाकर रहे इस तरहका विरोध भी सिद्ध नही किया जा सकता, क्योकि ऐसा नही देखा गया कि नित्यत्वके परिहारसे सत्व रहे। अगर नित्यत्व नही है तो सत्व नही रह सकता, सत्व नही है तो नित्यत्व नही रह सकता। इससे परस्पर परिहार विरोध नही देखा गया। सब विरोध इस जगह है कि क्षणिकताको हटाकर नित्यत्व रहता है और नित्यत्वको हटाकर क्षणिकता रहती है यो परस्पर मुकाबलाकी बात हो उनमे तो विरोध परस्पर परिहार स्थितिरूप कोई हो सकता। नित्यपना और क्षणिकपना इन दोनोंके स्वरूपमें विरोध है इसलिए क्षणिकताको हटाकर नित्यत्व रहेगा नित्यत्वको हटाकर क्षणिकता रहेगी।

सत्त्वकी क्षणिकत्वके साथ व्याप्तिका अभाव— शकाकार कहता है कि भाई सत्वकी व्याप्ति तो क्षणिकपनेके ही साथ है, क्योकि सत्व नाम है किसका? जो अर्थक्रिया करे, जिससे कुछ प्रवृत्ति निवृत्ति सम्भव हो, उसे कहते हैं अर्थक्रिया। और,

अर्थक्रिया जिसमें हो उसे ही कहोगे सत्व । तो ऐसा सत्व क्षणिकपनेके साथ व्याप्त है । नित्यत्वके साथ विरोध है । उत्तर देते हैं कि इस तरह तो अन्योन्याश्रय दोष आता है । इस तरहकी अर्थक्रियारूप सत्व तो क्षणिकपनेसे व्याप्त है तो वह जब सिद्ध हो तो नित्यताका विरोध हो । तो अर्थक्रियारूप सत्व नित्यके साथ न रहा तब तो यह बात न बनी कि अर्थक्रियारूप सत्व क्षणिकके साथ रह गया है और नित्यताका विरोध तब बने जब अर्थक्रियारूप सत्वका क्षणिकताके साथ व्याप्ति सिद्ध हो । अर्थक्रिया न तो सर्वथा नित्यमे सम्भव है न सर्वथा अनित्यमें सम्भव है । प्रवृत्ति निवृत्ति जीवोंके तभी हो सकती है जब उनके चित्तमे यह भी बात समाई रहे कि यह पदार्थ स्थायी है । सर्वथा स्थायी जाने गए पदार्थमें किसकी प्रवृत्ति होती है ? अर्थात् जो ऐसा समझते हो कि पदार्थ कूटस्थ अपरिणामी है, पूर्णतया नित्य है सर्वथा नित्य है तो उसमें भी अर्थक्रिया सम्भव नहीं है । यों ही सर्वथा क्षणिककी भी प्रवृत्ति अर्थक्रिया नहीं । प्रवृत्ति होती है तो लोगोंका नित्यानित्यात्मक पदार्थमें होती है और नित्यधर्म जाना जाता है सामान्यस्वरूप निरखकर, अनित्य धर्म जाना जाता है विशेष प्रवृत्ति निरखकर । तो इस प्रकार सामान्यविशेषात्मक पदार्थ माना जाय तो अर्थक्रिया उसमे बन सकती है ।

सामान्यविशेषात्मक पदार्थमे अर्थक्रियाकी सम्भवता—जैसे तिर्यक् सामान्य और तिर्यक विशेषमें भी अर्थक्रिया सम्भव है । जब जान लिया कि ये गाय गाय सब एक किस्मकी होती हैं, ये दूध दिया करती हैं, इस तरहसे तो एक सामान्य धर्म जाना और फिर उनमें व्यक्तित्व विशेष जाना तभी तो किसी भी एक गायके पास पहुंचकर उससे ही दूध लेनेका यत्न होता है । तो तिर्यक्रूपमें सामान्य विशेषात्मक पदार्थ जब जाना जाता है तब उसमे अर्थक्रिया सम्भव है । यह वही मनुष्य है जिसका कल अमुक वस्तु उधार दी थी । तो जान लिया ना ऊर्ध्वता सामान्य । अब कलकी स्थिति इसको उधार देनेकी थी; आज स्थिति इससे वसूल करनेकी है । आज इसको देना चाहिए ऐसा हो वायदा है । कलका परिणमन इसका अन्य था, आजका परिणमन इसका अन्य होना चाहिए । ऐसी ऊर्ध्वताविशेषकी भी बात जब ध्यानमे है तब ना उसमे लेन-देनकी प्रवृत्ति सम्भव हो रही है । यह तो लोकव्यवहारकी बात कही है । अब मोक्षमार्गकी भी बात देखो । सामान्य है, ऐसे ही जीव जातिके पदार्थ मुक्त हुआ करते हैं । यह तो एक सामान्यपना जाना और अमुक अमुक व्यक्ति देखो आत्मसाधना करके मुक्त हुए, यह उनका विशेष जाना । इसी तरह ऊर्ध्वता सामान्य और ऊर्ध्वता विशेष भी परखा जाता । मैं वही जीव हूँ मैं एकरूप हूं, चैतन्यस्वरूप हूँ । वही स्वभाव प्रकट हो गया, उसका नाम मुक्ति है । और, मुझमे यह विशेषता है । आज परिणति संसार अवस्थामे है यह हटकर मुक्त अवस्थाकी परिणति हमारी हो सकती है । ऊर्ध्वता सामान्य और ऊर्ध्वता विशेषका बोध हो तो मोक्षमार्गमें उद्यम हो सकता है । तो यहाँ ऊर्ध्वता सामान्यका प्रकरण चल रहा है कि द्रव्य कालान्तर स्थायी है । यदि

सर्वथा क्षणिक माना जाय पदार्थको तो मोक्षमार्ग अथवा लोकव्यवहार कुछ भी सिद्ध न हो सकेगा।

नित्य पदार्थमे अर्थक्रियाकी असभवता होनेके कारण क्षणिकत्वकी सिद्धिका शकाकार द्वारा कथन—क्षणिकवादी शकाकार जो कि भेदको ही मानता है। सामान्य और नित्यत्व नही मानता, वह कहता है कि यदि नित्य पदार्थ होता हो उसमें न तो क्रमसे अर्थक्रिया हो सकती है न एक साथ अर्थक्रिया हो सकती है। अर्थक्रियाके मायने परिणमन। कुछ भी बदल, कुछ भी बात करे। तो ऐसी अर्थ क्रिया जो सर्वथा नित्य हो उसमे नही हो सकती। जो चीज सर्वथा नित्य है, कूटस्थ नित्य है, सदा रहने वाली है तो उसमें बदल क्या? अगर बदली तो फिर वही कैसे रही, फिर और कुछ हो गयी। तो जो चीज नित्य है उसमे काम नही हो सकता, परिणमन नही हो सकता। तो नित्य पदार्थमे अर्थक्रिया हो ही नही सकती। अर्थ क्रिया होती है परिणमनमे अर्थात् जैसे अगुली सीधी है, टेढी हो गयी तो यह उसकी अर्थक्रिया हो गयी। कुछ तो किया उसने। तो जो नित्य हो, सर्वथा हो, उसमे कुछ परिणमन ही नही हो सकता। न क्रमसे हो सका परिणमन और न एक साथ। तो जब अर्थक्रिया न बनी तो फिर वस्तु ही न रही। अगर अर्थक्रिया है तो बतावो नित्य पदार्थमे अर्थक्रिया क्रमसे हुई कि एक साथ उस पदार्थमें परिणाम क्रमसे हुआ या एक साथ हो जाता है। क्रमसे तो हो नही सकता क्योकि वह नित्य है। नित्य में क्रम क्या पडा है?

नित्यमे क्रमवती अर्थक्रिया सभव न होनेका शकाकार द्वारा कथन—यदि कहो कि सहकारी कारणमे क्रम पडा है, इसलिये नित्य पदार्थमे क्रमसे अर्थ क्रिया हो सकती है। शकाकारका यह मतलब है कि क्या तुम अर्थक्रिया इस तरहसे कह दोगे कि पदार्थ तो नित्य है? अब उसमे जो जो कारण आनेपर उसमे परिणमन होते हैं वे कारण क्रमसे होते है वे कारण क्रमसे होते हैं इसलिये उस नित्य पदार्थमे अर्थक्रिया परिणमन भी क्रमसे हो जाय। सो शकाकार कह रहा कि यह बात भी तुम ठीक नही कह सकते, क्योकि अगर सहकारी कारण नित्य पदार्थमे कोई उपकार करदे तो यह बतलावो कि वह उपकार उस नित्य-पदार्थसे भिन्न है, कि अभिन्न? प्रथम तो यह बात है कि जो नित्य पदार्थ है उसका न कुछ उपकार किया जा सकता और न बिगाड किया जा सकता, तो सहकारी कारण मिले तो भी उससे कुछ उप-कार नही बन सकता। दृष्टान्तके लिए मान लो कि आत्मा एक है, नित्य है सदा वहीका वही रहता है। तो उसमे यह प्रश्न किया जा सकता है कि जब आत्मा एक ही है नित्य अपरिणामी, तो उसमें परिणमन कहांसे आ गए, क्रिया कहासे बन गई? ज्ञान करना, इच्छा करना, कुछ विचार करना, ये बातें कहासे आ गई, क्योकि जब नित्य है तो नित्य तो एकरूप होता है, वह तो बदला नही करता। इसपर यदि कोई कहे कि आत्मा तो वह एक ही है नित्य एकस्वरूप, किन्तु

इन्द्रियाँ जैसे मिले, प्रकाश जैसा मिले, और कारण जैसा मिले उस तरह काम होता है तो यह हुआ सहकारी कारण, तो सहकारी कारणोंसे क्रमसे नित्य पदार्थमें भी क्रम से अर्थक्रिया हो जाती है। तो यह बात शकाकार कहता कि ठीक नही है, क्योंकि जो नित्य पदार्थ है उसमे सहकारीकी अपेक्षा ही नही हो सकती। नित्य तो नित्य ही है। उसका जो एक स्वभाव पड़ा है उसमे तो वही एक स्वभाव पडा है। यदि अर्थ क्रिया करनेका स्वभाव है तो अर्थक्रिया करेगा। कारणकी क्या अपेक्षा रही ? नही स्वभाव है तो न करेगा और यदि स्वभाव है कि वह कुछ काम करेगा तो सारे काम एक साथ क्यो नही हो जाते, क्योंकि उनमे तो स्वभाव पडा हुआ है। तो सहकारी कारण मिलकर नित्य पदार्थमें क्रमसे अर्थक्रिया करते हैं, यहाँ नित्य पदार्थका उपकार नही किया जा सकता। और, उपकार जब न हुआ तो नित्यमे फिर हुआ क्या ? अर्थक्रिया ही नही हो सकती। तो नित्य पदार्थमें क्रमसे अर्थक्रिया नहीं हो सकती।

नित्यमे युगपत् भी अर्थक्रिया न हो सकनेसे क्षणिकत्वका समर्थन— यदि कहो कि एक साथ हो जाय अर्थक्रिया नित्यमें तो यह भी सम्भव नही, क्योकि पूर्वक्रियामे और उत्तरक्रियामे जब भेद पडा है और तुम कह रहे हो कि नित्यमें सारे काम एक साथ हो जायेंगे तो जितनी पर्यायें भविष्यमे होती हैं वे सब एक साथ एक ही समयमें हो जायेंगी फिर दूसरे समयमे उस पदार्थको कुछ करनेको ही नही रहा। तो वह पदार्थ अवस्तु बन गया। तो इस तरह नित्य पदार्थमे न तो क्रमसे अर्थक्रिया हो सकती, न एक साथ अर्थक्रिया हो सकती। मानो कुछ भी परिणमन नही हो सकता तब नित्य पदार्थमे सत्व नही हो सकता। जो सत् है वह क्षणिक ही होगा, क्योकि क्षणिकमे ही नित्य काम बन सकता है। क्षणिक तो क्षणिक ही है, कुछ देर काममे आ गया कुछ देर बाद मिट गया। कुछ काममें आ गया तो क्षणिकमे अर्थ-क्रिया बनती चली गयी, पर नित्य हो वस्तु तो उसमें परिणमन नही बन सकता। इस तरह शङ्काकार शका करके ही यह सिद्ध करना चाहता कि पदार्थ नित्य नही है, पदार्थ सब क्षणविध्वसी हैं। अब उक्त शकाका उत्तर देते हैं कि यह बात सारहीन है, क्योकि जैसे एकान्त नित्यमे जो सर्वथा नित्य है उसमे क्रमसे अर्थक्रिया बन सकती न एक साथ अर्थक्रिया बन सकती। ऐसे ही सर्वथा अनित्यमे भी न क्रमसे न एक साथ अर्थक्रिया बन सकती है। शकाकारने सर्वथा नित्य समझकर खण्डन किया है कि नित्य पदार्थमे कुछ भी काम नही बन सकता। न क्रमसे अर्थक्रिया है न एक साथ अर्थ-क्रिया है। जब कोई क्रिया नही हो सकती परिणमन नही हो सकता तो नित्य कोई वस्तु ही नही है। इसपर उत्तर दे रहे हैं कि इस तरह सर्वथा अनित्यमे भी कोई काम नही बन सकता, न क्रमसे न एक साथ। जो कथञ्चित् नित्य हो उसमे ही अर्थक्रिया सम्भव है। पदार्थ कथञ्चित् नित्य है कथञ्चित् अनित्य। द्रव्य दृष्टिसे नित्य है पर्याय दृष्टिसे अनित्य है। तब ही उसमें काम बन सकता। परिणमन हो, काम हो, कोई काम होनेपर पहिला रूप बदल गया, दूसरा रूप आ गया यह तो है पर्याय धर्म। इस

तरह तो हो गया कथञ्चित् अनित्य, किन्तु वह सारा काम उस एक ही सत्मे हुआ है जो सत् अनादिसे था, उस हीमे पर्याय बदली है । तो द्रव्यदृष्टिसे वह पदार्थ वही है, नित्य है। यो नित्यानित्यात्मक पदार्थ माना जाय तो उसमें अर्थक्रियाकी सिद्धि हो सकती है । सर्वथा नित्यमे कोई परिणमन सम्भव नही । सर्वथा क्षणिकमे कोई परिणमन सम्भव नही । जब वस्तु एक ही समय मात्र रहता है तो नष्ट हो गई तो अब उसमे काम क्या ? परिणमन क्या ? तो एकान्त नित्यकी तरह एकान्त अनित्यमें भी न क्रमसे अर्थक्रिया सम्भव है न एक साथ सम्भव है, इस कारण अनित्य भी अवस्तु है । क्योकि जो सर्वथा क्षणिक हो, एक समयको पदार्थ उत्पन्न हो, दूसर समय पदार्थ न रहेगा तो सर्वथा क्षणिकमे अर्थक्रिया होनेका स्वभाव ही सिद्ध नही हो सकता, क्योकि जो सर्वथा क्षणिक है उसमें यह बात कहा बन सकती है कि पूर्व स्वभावका त्याग करें और नवीन पर्यायको ग्रहण करें । अर्थक्रिया, परिणमन तो उसे ही कहेंगे कि पहिला स्वभाव तो छूट गया और नया स्वभाव आ गया, सो दोनो स्वभाव जिसमे ठहरें ऐसा कोई द्रव्य तुमने माना ही नही तो पूव स्वभावके त्याग और नवीन स्वभावके त्याग और नवीन स्वभावके ग्रहण करने, इन दोनोमें जिनका अन्वय हो, पूर्वस्वभावमें भी वही एक पदार्थ हो तब तो उसमें अर्थक्रिया कही जा सकती है सो यह क्षणिकवादमें सम्भव नही । एक क्षणको पदार्थ हो, दूसरे क्षण रहे ही नही तो उसमे दो स्वभाव हैं ही कहा कि पूर्वस्वभावका त्याग करें और नवीन स्वभावको ग्रहण करें । जब तक पूर्वापर स्वभावका त्याग और ग्रहण न हो तब तक अर्थक्रिया कैसे भी नही की जा सकती ? किसी भी वस्तुमे काम हो तो उस कामका अर्थ तो यही है कि पहिली अवस्था रही नहा अब नवीन अवस्था जगी है । तो क्षणिक पदार्थमे न तो क्रमसे अर्थक्रिया हो सकती न अक्रमसे । इस कारण क्षणिक अवस्तु है । पदार्थ कथंचित् नित्य है कथंचित् अनित्य, ऐसा माने बिना उसमे परिणमन सिद्ध नही किया जा सकता । और भी देखिए— जब क्षणिकमे अर्थक्रियाका स्वभाव न बना तो क्षणिकमे अर्थक्रियाका स्वभाव न बना तो क्षणिकमे अनेक शक्तियाँ एक साथ तो नही आ सकती । द्रव्यमे तो अनेक शक्तियाँ पड़ी भई हैं । पर क्षणिक पदार्थ है, उसमे तो एक समय एक ही शक्ति है, इस कारण भी क्षणिकमे अर्थक्रिया करनेका स्वभाव नही सिद्ध हो सकता । जिस तरह कूटस्थ पदार्थमे ये दो बातें सम्भव नहीं हैं कि पूर्वस्वभावका त्याग करदे और उत्तर स्वभावका ग्रहण करदे इसी तरह क्षणिक पदार्थमें भी यह अन्वय नही है कि वह पूर्व स्वभावका त्याग करदे और उत्तर स्वभावका ग्रहण करे । जैसे स्वभावका त्याग करदे और उत्तर स्वभावका ग्रहण करे । जैसे जो सर्वथा नित्य है, परिणमनका बदलनेका स्वभाव नही है । कूटस्थ अपरिणामी है तो उसमे पहिला स्वभाव न रहा । अब दूसरा स्वभाव आ गया यह कैसे कह सकते हैं यदि यह कहा जायगा कि पहिला स्वभाव न रहा अब दूसरा स्वभाव आ गया तो इसीके मायने है कि अनित्य हो गया । तो सर्वथा नित्यमे पूर्वस्वभावका त्याग और उत्तर

स्वभावका ग्रहण होता नहीं है इसी तरह क्षणिक पदार्थमें भी पूर्व स्वभावका त्याग और उत्तरस्वभावका ग्रहण, यह होता नहीं है। क्योंकि पूर्वस्वभावका त्याग करने और नवीन स्वभावको ग्रहण करनेमें कोई क्रम बनता है ना, तो वह क्रम काल कृत है या देश कृत ? क्रममें दो दृष्टियां हुआ करती हैं—एक तो एक साथ किसी जगहमें, लैनमें अनेक पुस्तकें रख दी तो उन पुस्तकोंका जो क्रम है वह देश क्रम है। जैसे अल्मारीमें पुस्तकें लगाते हैं तो एकके बाद एक लगावो, इस तरह जो क्रम पाया जाता है वह देशक्रम कहलाता है। सो ऐसा देशक्रम क्षणिक पदार्थोंमें कहां सम्भव है। और एक होता है कालकृत क्रम। जैसे एक मनुष्य पहिले बच्चा था, फिर बालक हुआ, फिर जवान हुआ, फिर वृद्ध हुआ अब मर गया, ऐसी जो उसमें क्रमसे परिणतियाँ चलती हैं वे परिणतियाँ हैं। तो य क्रम जैसे कूटस्थ नित्यमें नहीं हो सकता इसी तरह सर्वथा क्षणिकमें भी नहीं हो सकता। और फिर एक साथ अनेक स्वभाव भी नहीं हैं जिससे एक साथ सारी परिणतियाँ हो जायें, क्योंकि एक साथ सारे परिणमनका हो जाना यह कूटस्थका विरोध करता है और फिर निरन्वय विनाशपनेका व्याघात हो जाता है। तो इस तरह क्षणिक पदार्थके साथ तो अर्थ क्रिया नहीं ठहर सकती, पर जो कथंचित नित्य हो, कथंचित अनित्य हो, उसमें ही अर्थ क्रिया सम्भव हो सकती है।

विनष्ट होते हुए कारणोंमें कार्यका उत्पादन करनेकी अशक्यता—अब शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि तुम्हारा यह कहना है कि क्षणिक पदार्थ नष्ट होता हुआ कार्य उत्पन्न करता है कोई पदार्थ हुआ, एक समयको ठहरा, दूसरे समय तो न रहा, तो यों इन क्षणिकवादियोंका यह कहना है कि एक साथ रहने वाला पदार्थ दूसरे क्षणमें किसी कार्यको उत्पन्न करता हुआ नष्ट हो जाता है तो, इसी सम्बन्धमें पूछ रहे हैं कि क्षणिक वस्तु विनष्ट होती हुई कार्यको उत्पन्न करती है या अविनष्ट होकर कार्यको उत्पन्न करती है ? या नाश अनाश दोनोंरूप होकर कार्यको उत्पन्न करती है या न नाश न अनाश ऐसे अनुभयरूप होकर कार्यको उत्पन्न करती है ? ऐसे ये चार विकल्प किए गए। क्षणिक वस्तुको कार्यका उत्पन्न करने वाला कहा जा रहा है तो यह बताओ कि क्षणिक वस्तु किस प्रकार कर्ता है ? यदि कहो कि नष्ट होते हुए कार्यको उत्पन्न करता है अर्थात् वस्तु तो नष्ट हो रही और वह कार्य करके नष्ट हुई—जैसे अंगुली टेढ़ी है और उस टेढ़ी पर्यायको नष्ट करते हुए सीधी पर्यायको उत्पन्न किया, अथवा अभी तक तो कोई मनुष्य था और अब मरकर वह देव बन गया, तो नष्ट होते हुये मनुष्यने ही तो अब देव पर्यायको उत्पन्न किया है ना। इससे प्रत्येक वस्तु क्षणिक है और वे क्षणिक नष्ट होते हुए कार्यको उत्पन्न कर देते हैं तो यह बात सही नहीं बैठती। कारण कि जैसे बहुत काल पहिले जो पर्याय नष्ट हो गयी, बहुत काल पहिले जो पदार्थ नष्ट हो गया वह तो अब किसी अन्य पर्यायको पैदा करता नहीं। इसी तरह इस समय नष्ट हुआ भी पदार्थ किसी अन्य कार्यको नहीं कर सकता। शंकाकार यह मानता था कि वस्तु एक

क्षणको आती है दूसरे क्षण नहीं रहती। तो पहिले क्षणमे उत्पन्न हुई तुरन्त नष्ट हो गयी और वह नवीन पर्यायको उत्पन्न करके नष्ट हुई ने तो यह कैसे सम्भव है कि स्वय नष्ट होता हुआ किसी अन्यको उत्पन्न करदे। यदि स्वय नष्ट करता हुआ कारण कार्यसे उत्पन्न कर दे तो आज मे १० वर्ष पहिले जो पदार्थ नष्ट हो गया वह पदार्थ आजके कार्यको क्यो नही कर देता ? क्योकि तुमने अब तो मान लिया कि नष्ट होता हुआ कारण पदार्थ कार्यको उत्पन्न कर देता है तो चूकि बहुत काल पहिले नष्ट कहलाता है और वह किसी नवीन कार्यको उत्पन्न नही कर सकता इसी प्रकार इस समय भी नष्ट हुआ पदार्थ किसी कार्यको नही कर सकता। तो इस प्रकार क्षणिकवादियोसे यह विकल्प किया गया है कि पदार्थ क्षणिक होकर जो नवीन कार्यको कर देना है तो क्या वह नष्ट हुएको कर देता है या नष्ट होकर करता है ? यदि नष्ट होकर कार्यको करता है तो फिर उन्हे यह बताना चाहिए कि बहुत पहिले नष्ट हुआ पदार्थ क्यो नही आजके कार्यको करता ? इससे सिद्ध है कि नष्ट हुए पदार्थमे किसी भी कार्यको करनेका सामर्थ्य नही है। तब यह मानना युक्त नही कि पदार्थ क्षणिक है और वह नष्ट होता हुआ उत्तर क्षणको उत्पन्न करके नष्ट होता है।

अविनष्ट रहकर कारणसे कार्यका उत्पाद माननेमे अनेक अनिष्टापत्तिया—यदि कहो कि क्षणिक वस्तु नष्ट न होती हुई कार्यको उत्पन्न करती है तो ऐसा कहनेमे तुम्हारा क्षणभग सिद्धान्तका विनाश सिद्ध हो गया, क्योकि तुमने अब कारणको अविनष्ट मान लिया तथा अविनष्ट होकर वस्तु कार्यको करे ऐसा माननेमे सर्वशून्य दोष हो जायगा। क्योकि अब तो सकल कार्योका एक समय ही उत्पाद होकर नाश हो जायगा, क्योकि कारणके अविनष्ट होनेपर फिर तो वह कार्यको उत्पन्न न कर सकेगा। कारण भी रहा आये और कार्य भी रहा आये। एक उपादान मे यह तो सम्भव नही हो सकता। जैसे कि मृतपिण्ड रहा आये अथवा घडा भी रहा आये अथवा घडा भी रहा आये और खपरियाँ भी रही आयें तो ऐसा नही होता है, जब अविनष्ट कारणसे कार्यका उत्पाद रहा तो एक बार कार्य हो गया तो सारे कार्य हो जायेंगे। फिर दूसरे क्षणमे कोई कार्य न रहेगा।

विनष्ठाविनष्टोभयरूप व अनुभयरूप कारणकी असिद्धि होनेसे कार्योत्पादकी असिद्धि—यह भी नहीं कह सकते कि क्षणिक वस्तु विनष्ट और अविनष्ट दोनो रूप रहकर कार्यको उत्पन्न करती है क्योकि पदार्थको क्षणिकवादमे माना है निरश और एकस्वभाव। तो कोई पदार्थ निरश हुआ करता है और एकस्वभावरूप हुआ करता है तो प्रथम तो निरश होनेके कारण और दूसरे स्वभाव एक होनेके कारण उसमे विनष्टरूपता और अविनष्टरूपता रहे ऐसे दो रूप सम्भव नही हो सकते। तो जब एक वस्तुमे विनष्टरूपता और अविनष्टरूपता सम्भव नही हो सकती तो यह कहना कि अविनष्टरूप उभयरूप रहकर विनष्ट एव अविनष्ट रूप रह,

कर कार्यको उत्पन्न करता है। यह असगत बात है। ऐसा भी नही कह सकते कि अनुभयरूप रहकर क्षणिक वस्तु कार्यको उत्पन्न करती है क्योकि अनुभयका अर्थ यह है कि वस्तु न विनष्ट है न अविनष्ट है ऐसा अनुभयरूप रहकर कार्यको उत्पन्न करती है। तो ऐसा कहनेमे अन्योन्यव्यवच्छेदरूप धर्म आ गए अर्थात् ऐसा कहनेपर कि क्षणिक वस्तु विनष्ट नही है तो तुरन्त ही यह बात सिद्ध होती है कि वह अविनष्ट है और जब यह कहोगे कि वह वस्तु अविनष्ट नही है तो तुरन्त ही यह बात आ जाती है कि वह विनष्ट है तो विनष्ट और अविनष्ट ये दोनो अन्योन्यव्यवच्छेद रहेंगे, विनष्ट रहेगे तो अविनष्ट न रहेगे, अविनष्ट रहेगे तो विनष्ट न रहेंगे। यो अन्योन्यव्यवच्छेद रूप हैं दोनों धर्म तो उनमे एक का निषेध किया जायगा तो दूसरेका विधान अनिवार्य हो गया तो ऐसी स्थितिमें अनुभयरूपता आ ही नही सकती। अर्थात् विनष्ट न हुआ यह कहनेपर अविनष्ट हो गया। स्थिर हो गया। यह सिद्ध अनिवार्यरूपसे हो जायगा और जब यह कहा कि अविनष्ट नही है तो विनष्ट है यह बात बन जायगी तो इस तरह एक वस्तुमें अनुभयरूपता बन नही सकती।

निरन्वय नाश माननेपर कारणमे उपादानकारणत्व व सहकारी कारणत्वकी व्यवस्थाका अभाव—अब और भी सुनो। यदि पदार्थको निरन्वय नाशी मान लिया जाता है अर्थात् उस पदार्थका कोई अन्वय नाम निशान कुछ भी नही रहता है, इस तरह निरन्वय विनाशी माननेपर तो कारणमे उपादानपना और सहकारीपना इन दो विभागोकी व्यवस्था नहीं बन सकती। क्योकि निरन्वयनाशी होनेसे उसके स्वरूपका परिज्ञान न रहेगा। इसका तात्पर्य यह है कि क्षणिकवाद सिद्धान्तमे एक वस्तुको किसी कार्यका तो माना है उपादान कारण और किसी कार्य का माना है सहकारी कारण जैसे कि मिट्टीसे घडा बना तो माना गया है कि घडेका तो है उपादान कारण मिट्टी और उस मिट्टीसे ज्ञान भी बना अर्थात् पदार्थसे ज्ञानकी उत्पत्ति मानी गई है। तो जो मिट्टीका ज्ञान करते है उनके ज्ञानका वह सहकारी कारण हो गया तो वह मिट्टी रूप पदार्थ जिसका कि निरन्वय विनाश मानते कि उस का लेश मात्र भी कुछ नही रहता, तो उस मिट्टीमे यह कैसे सिद्ध कर सकेंगे कि यह घडेका तो हुआ उपादान और मिट्टीका ज्ञानका हुआ सहकारीकारण। ऐसे ही और भी दृष्टान्त ले लीजिए। जैसे नील क्षण है। नीलाकार है तो वह रूप उत्तररूपको तो मानता है उपादान कारण और रसका मानना है सहकारी कारण। अब रूप तो क्षणिक हुआ और वह निरन्वय नष्ट हो गया तो निरन्वय नष्ट होनेपर अब जो दो कार्य सामने हैं रूप और रस। तो उनमे यह विभाग कैसे बनाया जायगा कि रूपका तो हुआ वह उपादान कारण और रसका हुआ वह सहकारी कारण। तो निरन्वय नाशी माननेपर उन कारणमे वस्तुमे यह इस कार्यका तो उपादान कारण है और इस कार्यका सहकारी कारण है यह व्यवस्था नही बन सकती, क्योकि निरन्वय नष्ट हो जानेपर अब उसके स्वरूपका कुछ ज्ञान ही नही किया जा सक रहा।

निरन्वयनाशवादके सिद्धान्तके उपादानस्वरूपकी सिद्धिमें चार विकल्पोंकी पृच्छना—अच्छा, उपादानका स्वरूप क्या है ? उपादानके स्वरूपका ज्ञान नही किया जा सकता, ऐसी बात सुनकर कुछ कहनेको उद्यत हुए शकाकारके प्रति स्वय ही पूछा जा रहा है कि अच्छा, फिर बताओ तो कि उपादान कारणका स्वरूप क्या है क्षणिकवाद सिद्धान्तमे ? क्या उपादान कारणका यह स्वरूप है कि अपनी सतति हटानेपर कार्यको उत्पन्न करदे । अर्थात् कारणभूत पदार्थ अपनी सतति को तो हटादे और एक नवीन बातको उत्पन्न करदे । जैसे कि मिट्टीका पिण्ड स्वय हटता हुआ घटको उत्पन्न है कर देना है याने मृत्पिण्डसे घडा बना तो घडा बननेपर फिर मृत्पिण्डकी बात तो न रही । तो मृत्पिण्ड स्वय हटकर घटको उत्पन्न करदे । इस प्रकार अपनी सतति हटाकर, अपना नाम निशान मिटाकर कार्यको उत्पन्न करदे इससे, इसका नाम क्या क्या उपादान कारणका ही है अथवा अनेक कारण का ही है अथवा अनेक कारण समूहसे उत्पन्न होने वाले कार्यमे अपनेमे रहने वाले विशेषको रखदे काय क्या यह उपादानका स्वरूप है ? इस द्वितीय पक्षका भाव यह हुआ कि जैसे ज्ञानक्षणरूप कार्य इन्द्रिय, पदार्थ प्रकाश आदिक कारणसे हुआ करता है तो कार्य तो हुआ वह ज्ञान क्षण । वह हुआ अनेक कारणो उन सब कारणोमे जो कारण अपनेमे रहने वाली विशेषताको रख देवे कार्यमे, तो जो कारण अपनेमे रहने वाली विशेषताको कार्यमे रख सके उसको कहेंगे उपादान कारण । क्या उपादान कारणके स्वरूपका यह भाव है अथवा समनन्तर प्रत्ययपना होना ही उपादान कारणका स्वरूप है । याने उसके अनन्तर जो कार्य होनेको है उस कार्यका कारणपना रहा कहा जा सके जिसको सो उपादान कारणका स्वरूप है । अथवा नियम सहित अन्वय व्यतिरेकका अनुविधान होना उपादानका स्वरूप है । अर्थात् जिस कार्यका कारणके साथ अन्वय व्यतिरेकका सम्बन्ध रहे कि जिसके होनेपर कार्य हो, जिसके न होनेपर कार्य न हो, इस तरहका अन्वय व्यतिरेक का सम्बन्ध रहे । क्या इसके मायने उपादान कारणका स्वरूप है ? इस प्रकार उपादान कारणके स्वरूपकी जानकारीके सम्बन्धमे ४ विकल्प उपस्थित किए गए ।

स्वसंततिनिवृत्ति होनेपर कार्यजनकत्व होनेरूप उपादान स्वरूपकी असिद्धि—उक्त चार विकल्पोमेसे यदि प्रथम विकल्प लोगे, अर्थात् उपादान कारणका स्वरूप यह है कि अपनी सततिके हटनेपर कार्यको उत्पन्न करे अर्थात् अपनी सततिको हटाता हुआ जो कार्यको उत्पन्न करे वह कारण उस कार्यका उपादान कारण कहलाता है, ऐसा पक्ष ग्रहण करनेपर यह पूछा जा रहा है कि वह कारण अपने सतानकी निवृत्ति करता है तो क्या कथचित् सतान निवृत्ति करती हैं या सर्वथा ? यदि कहो कि वह कारण कथचित् सतान निवृत्ति करता है तो इसमे स्याद्वादमतका प्रसग हो गया, स्याद्वाद सिद्धान्तमे यह बताया गया है कि पूर्व पर्याय सयुक्त पदार्थ उत्तर पर्यायका उपादान कारण है सो उत्तर पर्यायरूप कार्यके होनेपर पूर्व पर्याय हट जाती हैं, मगर

द्रव्य नहीं रहता है। इस कारणसे जो कुछ टूटा है वह कथंचित् टूटा है पर्यायरूपसे टूटा है द्रव्य रूपसे नहीं टूटा है। तो इस तरह कथंचित् संतान निवृत्ति माननेपर अनेकान्तमतका प्रसंग आ जायगा। यदि कहो कि सर्वथा संतान निवृत्ति करती है वह क्षणिक वस्तु तब, तो फिर परलोकका अभाव हो जायगा क्योंकि एक ज्ञानक्षण भी वस्तु है और वह ज्ञानक्षण उत्तरज्ञानको उत्पन्न करेगा तो क्षणिकवादके सिद्धान्तके अनुसार ज्ञानक्षणकी सत्ता सर्वथा टूट गई नाम निशान न रहा तो फिर परलोक क्या चीज रही? तो सर्वथा संतान निवृत्ति माननेपर परलोकका अभाव हो जायगा इस कारण प्रथम विकल्पको सिद्ध नहीं कर सकते कि उपादान कारणका स्वरूप यह है कि अपनी संततिको हटाता हुआ कार्यको उत्पन्न करदे।

स्वगत विशेषाधायकत्वरूप उपादानस्वरूपकी असिद्धि अब यदि द्वितीय पक्षकी बात लेते हो कि अनेक कारणोंसे उत्पन्न होने वाले कार्यमें जो कारण अपनेमें रहने वाले विशेष धर्मको कार्यमें रखदे। कार्यको सौंप दे, ऐसे कारणको उपादान कारण कहते हैं। तो इस विकल्पको मानने वालेके प्रति पूछा जा रहा है कि वह उपादान कारण जिसमें कि कल्पना की गई है उपादानताकी तो क्या अपनेमें रहने वाले कुछ ही विशेष धर्मोंको कार्यमें रख देता है या अपनेमें रहने वाले समस्त धर्मोंको रख देता है। कारण तो कार्यको उत्पन्न करके नष्ट हो जाता है तो वह नष्ट हो जाने वाला कारण कार्यमें जो अपना धर्म सौंप गया। रख गया तो क्या वह समस्त धर्मोंको रख गया या कुछ धर्मोंको रखा गया? यदि कहो कि वह अपनेमें रहने वाले कुछ विशेषोंको रखा गया है तब तो देखिए एक सर्वज्ञका ज्ञान कार्य है। सर्वज्ञदेव जो कुछ ज्ञान कर रहे हैं वह तो हुआ कार्य और उसमें कारण हैं जिनका ज्ञान किया जा रहा है वे वे सब पदार्थ तो उनके ज्ञानमें हम लोगोंका ज्ञान भी तो आ गया अर्थात् सर्वज्ञका ज्ञान हम अल्पज्ञोंके ज्ञानको भी तो जानता है। तो देखिए अल्पज्ञोंके ज्ञानका आकार सर्वज्ञके ज्ञानमें आया अर्थात् अल्पज्ञोंके ज्ञान अपना आकार सर्वज्ञके ज्ञानमें रख दिया तब तो हमारा ज्ञान, अल्पज्ञोंका ज्ञान सर्वज्ञके ज्ञानके प्रति उपादान कारण बन जायगा। जब उपादान कारणका स्वरूप यह माना है कि जो कारण अपनेमें रहने वाले कुछ विशेषताको जिस कार्यमें रखदे उस कार्यके प्रति वह उपादान कारण कहलाता है तो देखा ना हम अल्पज्ञोंके ज्ञान सर्वज्ञके ज्ञानमें अपना आकार रख दिया क्योंकि क्षणिकवादमें ज्ञेय पदार्थसे ज्ञानक्षणकी उत्पत्ति मानी गई है। तो जब हमारे अल्पज्ञोंके ज्ञानने अपना आकार समर्पित कर दिया सर्वज्ञ ज्ञान कार्य हुआ और हम अल्पज्ञोंका ज्ञान कारण हुआ। उपादान बन गया। तो अब देखिये कि सर्वज्ञके ज्ञानके अब दो उपादान हो गए। सर्वज्ञका स्वयं पूर्वज्ञानक्षण और हम अल्पज्ञोंका ज्ञानक्षण। ऐसा होनेपर अब सर्वज्ञमें दो संतानें चल उठी। संतानें होती हैं उपादानसे, तो अब सर्वज्ञके ज्ञानका वह सर्वज्ञज्ञान भी उपादान रहा और हम अल्पज्ञोंका ज्ञान भी उपादान रहा। तो अब उसमें दो संतानें हो गयी। तो

तो इसका अर्थ यह हुआ ना कि पदार्थके कुछ धर्म तो आ गए, कुछ नही आये तो ज्ञान क्षणमे कारणके कुछ धर्म तो अनुवृत्त हो गए समान हो गए और कुछ धर्म व्यावृत्त हो हो गए। उस ज्ञानक्षणसे उस कार्यसे कुछ धर्म अलग छूट गए तो अनेक विरुद्ध धर्म कार्यमे आ गए ना और अनेक परस्पर विरुद्ध धर्मोंका किसी एक जगह आ जाना इस ही का नाम तो अनेकान्त है। अनेक धर्मोंका एक जगह रहना सो अनेकान्त है। अब देखिये, तुम्हारे ज्ञानक्षणमे पदार्थके कुछ धर्म तो आये, कुछ धर्म न आये। तो अनुवृत्त व्यावृत्त विरुद्ध परस्पर अनेक धर्मोंका एक पदार्थमे, एक ज्ञानमें जमाव हो रहा है तो यह अनेकान्तात्मकताको ही तो सिद्ध करेगा फिर आपकी अभिमत एकान्त स्वरूपता कहाँ रही। इस कारण यह नही कह सकते कि उपादान कारण अपने कुछ विशेषोको कार्यमे रख देता है। इसी कारण जो कारण कार्यमे अपने कुछ विशेष धर्मोंको रख दे, उसको उपादान कारण कहते हैं। यो उपादानका स्वरूप बनाना सगत नही बैठ रहा।

स्वगतसमस्तविशेषाधायकत्वरूप उपादानस्वरूपकी असिद्धि—अब द्वितीय पक्षका द्वितीय विकल्प मानते हो तो उसका दोष सुनो! द्वितीय विकल्प है कि जो अपने समस्त विशेषोको कार्यमे धर जाय उसको उपादान कारण कहते हैं। तो समस्त विशेषोको ग्रहण करा देनेके कारण यदि उपादान कारण माना जाय तो फिर यह बतलावो कि निर्विकल्प ज्ञानसे विकल्पकी उत्पत्ति कैसे होगी? क्षणिकवादमे सर्वप्रथम प्रत्यक्ष ज्ञानसे जीवको निर्विकल्प ज्ञान होता है, उस निर्विकल्प ज्ञानक्षणसे उत्तर में होने वाले सविकल्प ज्ञानक्षणकी उत्पत्ति होती है। तो देखिये ना, कि सविकल्प ज्ञानक्षणकी उत्पत्तिका कारण यह निर्विकल्प ज्ञान पडा। अब कारण माना है आपने उसे जो अपने समस्त विशेषोंको कार्यमे सौंप जाय। तो निर्विकल्प ज्ञानने सविकल्प ज्ञानको अपने समस्त विशेष कहाँ सौंपे? यदि सौंप दिए होते तो इसका अर्थ है कि जैसी स्थिति निर्विकल्प ज्ञानकी थी वही स्थिति उसके बाद भी रहनी चाहिए। तो विकल्प कहाँ रहा? निर्विकल्प ज्ञानसे फिर विकल्पकी उत्पत्ति नही बनती। और भी दूसरा दूषण सुनो! यदि उपादान कारण अपने समस्त धर्मोंको कार्यमे सौंप बैठे तो देखिये! रूपाकारसे जो ज्ञान हुआ है रूपज्ञान, तो रूपाकार ज्ञानसे जो अनन्तरमें रूप ज्ञान हुआ है वह रसज्ञान रसाकारकी उत्पत्तिका कारण कैसे बन सकता है? क्योंकि उपादान कारण माना है तुमने उसे, जो अपने समस्त विशेषोको कार्यमे रख जाय। तो रूपज्ञान यदि रसज्ञानमे अपने समस्त विशेषोको रख जाता है तब तो रूपज्ञान ही बनना चाहिए, रसज्ञान कैसे बन जायगा? क्योंकि रूपज्ञानने रसज्ञानमे अपने समस्त विशेष रख दियेका प्रसङ्ग आ गया। किन्तु ऐसा है कहाँ? रूपज्ञानने रसज्ञानमे समस्त विशेष रखे नही।

एक पुरुषमे अनेक ज्ञान सन्तान मानकर उपादान प्रतिनियम सिद्ध

करनेमें विडम्बनाका विवरण—यदि कहो कि हम अनेक सतान मान लेंगे, किसी भी पुरुषमे अनेक सतान चल रही हैं, रूप ज्ञानकी सतान चल रही हैं, रस ज्ञानकी भी सतान चल रही है तो यो अनेक ज्ञानोकी सतोन मान लेनेसे फिर तो अपने-अपने सदृश सतानसे अपनी अपनी सभीकी उत्पत्ति होती जायगी। अर्थात् जब एक पुरुषमे नाना ज्ञान सतानें चल रही है तो जिस जातिका ज्ञान है उससे उस जातिके पदार्थोंका ज्ञान होता रहेगा। फिर उसमे यह अडचन न आयगी कि रूपज्ञानसे रसज्ञान कैसे बनेगा? अरे उस पुरुषमे रसज्ञानकी भी सतान चल रही है, रूपज्ञानकी भी सतान चल रही है, रूपज्ञानक्षणसे रूपज्ञानकी भी उत्पत्ति होने लगेगी। और रसज्ञान क्षणसे उत्तर रस-ज्ञान क्षणकी भी उत्पत्ति होने लगेगी। और अन्य ज्ञानक्षणसे उत्तर अन्य ज्ञानक्षणकी भी उत्पत्ति होने लगेगी। उत्तरमे कहते हैं कि इस तरहसे तो एक ही पुरुषमे अनेक प्रमाता सिद्ध हो जायेंगे अर्थात् आत्मा ही अनेक सिद्ध हो जायेंगे, क्योंकि ज्ञान सतान अनक मान ली है ना। तो जितने ज्ञान हैं उतने ही आत्मा हुए और जब एक पुरुषमे अनेक प्रमाता सिद्ध हो गए तो जैसे देवदत्तने जो बात देखी है उसका स्मरण यज्ञदत्त को हो जाय यह तो नहीं होता ना, क्योंकि देवदत्त भिन्न सतान है अर्थात् भिन्न ज्ञान की परम्परा है। तो जैसे देवदत्त द्वारा देखे गए पदार्थमे यज्ञदत्तका कुछ अनुसधान नही होता, स्मरण परिज्ञान अनुभव कुछ नही होता, इसी तरह एक भी पुरुष यदि गाय और घोडेको देखे तो उसको भी यह अनुसधान न रहना चाहिए यह स्मरण न करना चाहिए कि मैंने पहिले गायको देखा था तो जिस ही मैंने पहिले गायको देखा था तो जिस ही मैंने पहिले गायको देखा था उस ही मैंने अब इस अश्वको देखा है, अथवा एक साथ भी गाय और घोडे देखे जा रहे तो इन्हे भी मैं ही देख रहा हू, ऐसा ज्ञान न करना चाहिए, क्योंकि अब तो एक पुरुषमे अनेक प्रमाता मान लिए गए, अनेकज्ञान सतानें मान ली गई हैं, किन्तु अनुसधान न होता हो ऐसा तो नही है। हम १०-२० वर्षक पहिले जानी हुई बातका भी अनुसधान कर लेते है। तो इस प्रकार यदि उपादानका स्वरूप यह बनाते हैं कि जो अपने समस्त विशेष कार्यमें रख जाय उसको उपादान कारण कहते हैं तो ये सारे दोष उपस्थित होते हैं इस कारण उपादान उसका नाम नही कि जो अपनी सारी विशेषताओंको कार्यमे रख जाय। और खुद तुरन्त नष्ट हो जाय।

स्वगतसमस्तविशेषाधायकत्वरूप उपादानस्वरूप माननेपर सहकारी-कारणत्वकी व्यवस्थाका अनवकाश—अब इस ही विकल्पके सम्बन्धमे अर्थात् उपादान कारण उसे कहते हैं जो अपनी समस्त विशेषताओको कार्यमे रख जावे, इस सम्बन्धमे अन्य एक दोष बताते हैं। स्वगतसकलविशेषाधायकत्वका विकल्प माननेपर तो सर्वात्मकरूपसे उपादेय क्षणमे ही इस कारणका उपयोग हो गया, अर्थात् वे क्षणिक पदार्थ जो कार्यमे अपना समस्त विशेष रख गया तो सर्वरूपसे उस कार्यमे ही उस कारणका उपयोग लग जायगा। अब कुछ रहा तो नही। जब उपादान कारणने

अपने समस्त तत्त्व, स्वरूप सर्वस्व जब कार्यको दे डाला तो अब उस कारणमें कुछ रहा तो नहीं। तो जब अन्य स्वभावान्तर रहा ही नहीं, तो उसका अन्य कार्यके प्रति सहकारित्वरूपसे उपयोग न होगा तो एक सामग्रीके अन्तर्गत जो काम है-उत्तर रस आदि जिस जिसका कि सहकारी कारण माना जा रहा है अब उसका सहकारी कारण तो नहीं रह सकता। यहा यह तात्पर्य समझना कि कोई क्षणिक पदार्थ जब कार्यमे अपना स्वरूप सर्वस्व रख जाता है तो उस कारणने अपना स्वरूप तो उस उपादेयमे रख दिया ना अर्थात् जिसका यह उपादान कारण था उस कार्यमे रख दिया तो अब कोई और स्वभाव तो नहीं बचा। जब समस्त विशेष कारणने उपादेय कार्यमे रख दिया तब कोई बात बची तो नहीं। तब दूसरे कार्यके प्रति वह सहकारी कारण कैसे बन सकता है ? जब सहकारिताके लिए कोई स्वभावान्तर ही न रहा, सारा विशेष उपादेय क्षणमे ही सौंप दिया तो अब किसी भी कार्यका सहकारी कारण बनना सिद्ध नहीं हो सकता। फिर तो रसके ज्ञानसे रूप आदिक ज्ञानकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है ? यहा यह उपदेश दिखाया गया है कि उपादान कारणने उपादेय कार्यको अपना सब कुछ सौंप दिया। अब कुछ रहा तो नहीं बाहर। तो अब किसके आश्रयपर अन्य कार्यका वह सहकारी कारण माना जाय ?

उपादेयक्षणमे स्वगतसमस्तविशेषाधान होनेपर भी कारणमे स्वभावान्तर माननेपर अनेक धर्मात्मकताकी सिद्धि—यदि कहो कि उसमें स्वभावान्तर भी है, सब कुछ उपादेय कार्यमें सौंप चुकनेके बाद भी कारणमे कुछ स्वभावान्तर भी है, जिसके कारण अन्य कार्यका यह सहकारी कारण बन जाता है। तो इसका उत्तर सुनो तीन लोकके अन्तर्गत अन्य कारणोंके द्वारा उत्पन्न हुए नाना कार्यान्तर उसकी अपेक्षा है तो उस कारणमे अजनकत्व होनेपर भी स्वभावान्तर बनगया, ऐसा मान लेना चाहिए। अर्थात् जो कुछ भी स्वभावान्तर रह गया है, उपादेय क्षणमे अपना सब कुछ सौंपनेके बाद भी तो वह स्वभावान्तर सब कार्योंका सहकारी कारण बन जायगा, तब तो यह बात बन बैठेगी कि एक ही रूपादिक उपादान किसीका तो सहकारी बनता है, किसीका सहकारी नहीं बनता है। तो देखो ना अब उस एक कारणमें अनेक विरुद्ध धर्म भी आ गए। किसी कार्यका सहकारी कारण बन जाता। किसी कार्यका सहकारी कारण नहीं बनता, यो अनेक विकल्प धर्मसे युक्त हो गए वे सारे उपादान, तब अनेकातका ही तो आश्रय लिया गया। ये सब धर्म काल्पनिक नहीं मिथ्या नहीं। कारणोंमे किसी कार्यका सहकारित्व शक्ति है, किसी कार्यकी सहकारित्व शक्ति नहीं है, इस तरह जो उसमें नानापन है, यो परस्पर धम है उससे सयुक्त हुआ ना, और ये धर्म मिथ्या नहीं हैं। यदि कारणके ये सारे धर्म काल्पनिक हो जायें तो उनके जो कार्य हैं वे सब भी काल्पनिक बन बैठेंगे। इक कारणसे उपादान कारणका यह स्वरूप मानना कि जो कारण अपना सर्वस्व, विशेष, धर्म जिस उपादेय कार्यको सौंप जाय उसको उस कार्यका उपादान कारण कहते हैं। यह विकल्प युक्ति-

सगत नही होता ।

समनन्तरप्रत्ययस्वरूप उपादानरूप माननेमे सम्शब्दवाच्य समत्वके भावमे विडम्बना – शकाकार कहता है कि उपादानका लक्षण समनन्तर प्रत्ययपना बन जायगा अर्थात् समान कालके अनन्तर ही पहिले कारणका होना यह उपादानको लक्षण है । उत्तर देते हैं कि यह बात अयुक्त है । समनन्तर शब्दकी ही पहिले सिद्धि करो । समनन्तरमे दो शब्द है - सम् और अनन्तर । सम्का अर्थ है समता और अनन्तरका अर्थ है बिना अन्तरके होना । तो कार्यमे जो समानता है वह किसकी है ? कारणकी । समानता बतानेमे दो चीजें कही जाती हैं । तो कार्यमे जो कारणकी समानता है वह सर्वात्मकरूपसे है या एकदेशरूपसे ? यदि कहो कि कार्यकी समानता कारणके सर्वरूपसे है, तब तो जैसे कारण पहिले है, उसी प्रकार कार्य भी पहिले ही होना चाहिए । कारणके बाद एक अथक लगी हुई क्षणमे कार्यकी उत्पत्ति मानी है और अब मान रहे हो कि कार्यमे कारणकी पूरी समता है । तो जैसे कारण प्राग्भावी है उसी प्रकार कार्य भी प्राग्भावी होना चाहिए । और जब कार्य व कारणमें समता आ गई तो जैसे दाहना और बाया गायका सीग एक ही समयमे है तो उसमे जैसे कार्य कारणपना नही है इसी प्रकार प्रत्येक कार्यमे चूँकि वह कारणके समान कालमें है तो एक ही समयमे रहने वाले दो पदार्थोंमे कार्यकारणभाव कहा बन सकेगा ? एक तो यह दोष आया । दूसरा यह दोष है कि किसी भी कार्यके कारणको आपने मानी जब समानकालता अर्थात् कार्य कारणके कालमे रहता है तो एक तो वह कार्य अपने कारणके समान कालमे माना गया तो उसका कारण भी तो किसीका कार्य है तो वह कार्य अपने कारणके कालमे आया । फिर वह भी कारण किसीका कार्य है । वह भी अपने कारणके कालमें आया । इस तरहसे तो सारा ससार शून्य हो जायगा क्योकि कार्य और कारण बन ही नही सकता । इससे यह नहीं कह सकते कि कार्यमें कारणकी सर्वरूपसे समानता है । कथचित् समानता मानोगे तो ऐसे सर्वज्ञका ज्ञान, योगीका ज्ञान जिसमे कि हम अल्पज्ञोके ज्ञानका आलम्बन लिया है तो हमारे ज्ञानके आकार हुआ ना योगीका ज्ञान । तो समान बन गया तो उसमे भी एक सतानपनेका प्रसग आ जायगा ।

समनन्तरप्रत्ययत्वके अनन्तरशब्दके भावमें देशकृत अनन्तरताकी असिद्धि अब अनन्तरपनेकी बात सुनो । शकाकारका यह कहना है कि कार्यका उपादान कारण वह कहलाता है जो कि कार्यसे निकट ही पहिले कारण बना हो, वह उस कार्यका उपादान कारण है । जैसे घड़ा कार्य हुआ तो घडासे निकट ही पहिले जो मृत्पिण्ड था तैयार वह घड़ेका उपादान कारण हुआ । तो यहा अनन्तर शब्दका अर्थ पूछा जा रहा है कि अनन्तरका मतलब हो क्या है ? अनन्तर यह है कि जिसमें अन्तर न आये । जैसे तीसरे समयका कारण पहिले समयका पदार्थ नहीं हो सकता,

उसमे अन्तर आ गया तीसरे समयकी पर्यायका, किन्तु दूसरे समयकी पर्याय
कारण हो सकती है। तो अनन्तरका अर्थ है न लाकर जो निकटमे मिले
ो अनन्तर सामान्य अर्थ है तो यह है। पर अनन्तर शब्दमे विकल्प उठाकर
का अर्थ पूछ रहे हैं, यथा वह अनन्तर देशकृत है या कालकृत ? जैसे कोई
रह अगुल बड़ा है अब उसमे चौथे अगुलका अनन्तर कारण क्या कहलाया ?
तीसरे अगुलमे प्रदेश ही तो कहलाया इस प्रकार यह तो
शकृत अनन्तर और कालकृत अनन्तरका अर्थ यह है कि चौथे समयसे
है उसके अनन्तर पूर्व कौन हुआ ? तीसरे समयका कार्य। तो अनन्तरता
जानी जाती है—एक तो देशकी अपेक्षा और एक कालकी अपेक्षा। तो क्या
कृत अनन्तर मानते हो ? देशकृत अनन्तरतामे तो समनन्तरप्रत्ययत्व मान
ते। क्योकि इन कारण कार्यके प्रसगमें देशकृत अनन्तरताका कुछ उपयोग
कार्य कारण जहा बताया जा रहा है, वहा समनन्तरकी ही बात तो समझनी
क्षेत्रकी बात समझनी होगी ? जैसे यह कमरा १५ फिट लम्बा है तो दूसरे
हिले पहिला फिट है ऐसा अनन्तरताका काम कार्य कारणमे नहीं बनता।
म उत्पन्न हुआ तो धुआसे अग्नि कुछ पहिले तो थी। तो कालकृत प-
तो कारण कार्यकी व्यवस्था बनती है। पर जगहके अनन्तरसे पूर्व उत्तरपना
कार्यकारणकी व्यवस्था नही रहती। तो देशकृत अनन्तरता तो काय
बात बतानेमे उपयोगी नही है। देशकृत अनन्तरता न भी हो तो भी
णपना बन जाता है। जैसे एक चित्त अर्थात् चित् (चेतन) अयोध्यामे मरा
तनापुरमे चित्तक्षणका जन्म हुआ तो हस्तिनापुरमें जन्म होनेका अयोध्यामे
ना उपादान हो गया ना ? या सर्वसाधारण मतकी अपेक्षा यह कह लो कि
मरकर जीव हस्तिनापुरमें जन्म लेता है तो देखो इतने दूर रहने वाले
का उपादान कारण बना और बाहर उसका कार्य हुआ तो यह कहना कि
सके अत्यन्त निकट हो सो ही कारण बन सकता है सो यह अयुक्त हुआ,
हाँ तो उतनी दूर रहने वाला भी कारण बन गया। तो बहुत व्यवहितदेशमे
ा कोई चित् (चेतन) है वह भावी जन्मके चित्तका उपादान माना है। स्वय
दियोने तो देशकृत अनन्तरतामे कारण कार्यपना बने यह बात तो अयुक्त
। अब उतनी दूर देशमे रहने वाला भी उपादान कारण बन गया तो देश-
रता तो कारण न रही।
समनन्तरप्रत्ययत्वके अनन्तर शब्दके भावमे कालकृत अनन्तरताकी
—यदि कहो कि कालकृत अनन्तरता उपादान कारण बना देगा तो वह भी
है। क्षणिकवादमे बहुत कालके बादके कार्यको भी बहुत पहिले समयकी
रण मानते हैं। जैसे एक मनुष्य १० बजे सोया और ६ बजे जगता है तो ६
ह जगा, सावधान बना तो उस ६ बजेका जो जागृत चित्त है, सोयी हुई
चेतन न रहा। लोग भी सोए हुएको कहते कि बेहोश हो गया। तो ६ बजे

जो प्रबुद्ध हुआ उस समय जो उसका चित्त है उसका कारण १ बजेसे पहिलेका चित्त पड गया। तो इस बीच तो ५ घटेका अन्तर आया। तो विशाल कालके अतरसे पहिले मे चौथे अगुलका अनन्तर कारण क्या कहलाया ? देशकृत तीसरे अगुलके प्रदेश। -रहने वाला पदार्थ भी देखो उपादान कारण बन गया। तो यह कहना ठीक नही बैठा कि अनन्तर पूर्व कालमे रहने वाले पदार्थको उपादान कारण कहते हैं। यदि कहो कि हम अनन्तरका इतना ही अर्थ करेगे कि विना व्यवधानके पहिले हो जाता। पहिले-पन्का होना इसका कारण अनन्तरता है। जैसे घडा कार्य है तो घडा कार्यके पहिले उतना पहिले कि जिसके बीचमे कोई व्यवधान न हो। उस समय जो कुछ हो उसे ...नन्तर कहेगे। और, यह अनन्तरता सबमे घटालो— चेतन हो अथवा अचेतन हो। ...त्तरमे कहते हैं कि यह कहना भी अयुक्त है क्योकि क्षणिकएकान्तवादियोके यहाँ ...भी भी विवक्षित क्षणके अनन्तर ही सारे जगह सारे क्षण उत्पन्न हो जायेंगे। क्यो जायें ? यो कि आप कह रहे हो कि कार्यसे बिलकुल निकट पहिले जो वस्तु हो उसे ...रण कहते हैं। तो जितने भी चेतन अचेतन कार्य हैं दुनिया मे उन सबके लिये कोई पदार्थ कारण क्यो नही बन जाये। जैसे घडा कार्यसे पहिले वह मृत्पिण्ड है ऐसा ...कर मृत्पिण्डसे केवल घडा ही क्यो बने ? मृत्पिण्डसे सारी दुनियाकी चीजें क्यो न जायें ? जब कारण क्षणिक है और नष्ट हो गया तो नष्ट हुआ कारण तो ...ब लिये बराबर है। कारणका कार्यमे कुछ अन्वय तो मानते नही। तो जब एक नही है और कार्य-उसमे मानते हो तो वह कारण सब कार्योंका कारण बन जाना ...है। जैसे मिट्टी एक पदार्थ है जिनके मतमे तो उनके यहाँ तो उस मिट्टीसे जो उनका कारण मिट्टी है लेकिन क्षणिकवादियोके यहाँ तो मिट्टी पदार्थ मिट गया, ...डा बननेके लिये मिट्टीको कारण कहते हैं तो मिट गया हुआ मिट्टी कारण घटका ही कारण क्यो कहलाया, दुनियाके समस्त पदार्थोंका कारण क्यो न ...ता ? तो यो अनन्तरताका भी कुछ अर्थ न बन सका। तो समनन्तर प्रत्यय ...र्थात् कार्यके अनन्तर पूर्व जो कुछ हो उसे उपादान कारण कहना यह बात ...ही बैठती।

मूलप्रकरणकी परम्परासे सम्बद्ध प्रसगमें तीन विकल्पोकी आलोचना

...करण यह चल रहा है कि इस दार्शनिक ग्रन्थमे प्रमाणके स्वरूपकी सिद्धि ...रही है कि प्रमाण क्या हुआ करता है। किस ज्ञानको प्रमाण कहा करते हैं, ...स स्वरूपको सिद्ध करना इसलिये आवश्यक है कि किसीके भी विचारका, ...। यदि वह विपरीत है कुछ खण्डन करना चाहे तो उस खण्डनका हमारे पास ...या हो ? हम किस तरहसे खण्डन करें वे विधियाँ तो जाननी चाहिएँ। तो ...ा विदित हैं प्रमाण स्वरूपके ज्ञान होनेमे। क्योकि, प्रमाणसे ही हम ...गे कि आपका यह मतव्य ठीक नही, यह मतव्य ठीक है। तो प्रमाणका ...तार पूर्वक इस ग्रन्थमे वर्णन कर दिया गया है। प्रमाण, स्व और पर प्रकाश करने वाला जो ज्ञान है, वह कहलाता है। उस प्रमाणकेदो भेद हैं

प्रत्यक्ष और परोक्ष । प्रत्यक्षके दो भेद हैं साव्यवहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष साव्यवहारिक प्रत्यक्ष तो इन्द्रियसे जो कुछ साक्षात् जाना समझा वह कहलाता है, यह है वास्तवमे परोक्ष, लेकिन लोकव्यवहारमे चूँकि ऐसा कहा करते है लोग कि हमने प्रत्यक्ष देखा तथा इस तरहके प्रत्यक्ष देखनेमे एक देश स्पष्ट पदार्थका ज्ञान भी समझ मे आता है इस कारण विरोध होनेपर भी इस ज्ञानको साव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा है। सिद्धान्तमे तो प्रत्यक्ष और परोक्षका लक्षण यह कहा कि जो इन्द्रिय मनकी सहायता से ज्ञान बने सो तो परोक्ष और इन्द्रिय मनकी सहायताके विना केवल आत्मीय शक्ति से ज्ञान बने सो प्रत्यक्ष लेकिन दार्शनिकताक क्षेत्रमें प्रत्यक्षका लक्षण यह किया गया कि जो स्पष्ट ज्ञान हो सो तो प्रत्यक्ष और जो अस्पष्ट ज्ञान हो सो परोक्ष। तो चूँकि इन्द्रियजन्य ज्ञान एक देश स्पष्ट रहते हैं इस कारण उनको साव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं। पारमार्थिक प्रत्यक्ष हुए अवधिज्ञान, मन. पर्ययज्ञान केवलज्ञान। परोक्षज्ञान के ५ भेद हैं—स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क अनुमान और आगम। इन सबका बडे विस्तार से विवेचन करनेके बाद जब यह पूछा गया कि प्रमाणका विषय क्या है, तो उत्तर मिला कि सामान्य विशेषात्मक पदार्थ प्रमाणका विषय है। पदार्थ न केवल सामान्य रूप होता और न केवल विशेष रूप होता, किन्तु सामान्य विशेषात्मक होता है। इस पर विशेषवादी यह शका कर रहे हैं कि पदार्थ तो केवल विशेषरूप ही होता है। क्षणिक एक प्रदेशी भिन्न अत्यन्त भेद वाला पदार्थ हुआ करता है। पदार्थका सामान्य स्वरूप नही है। तो उस विशेषवादमे पहिले तो यह जिक्र किया था कि एक समयमे रहने वाले अनेक धर्मोंमे सदृशताका धर्म नही है, क्योकि सदृशता माननेसे सामान्य सिद्ध हो जाता है उसका निराकरण करनेपर अब यह विशेषवादी कह रहा है कि कालके भेदसे भी कोई एक चीज अनादि अनन्तर नही है किन्तु वस्तु उतनी ही है जितनी कि एक समयमे है दूसरे समयमे दूसरी वस्तु उत्पन्न होती है। तो यो प्रत्येक वस्तु निरन्वय नष्ट होती है अर्थात् उसका लवलेश भी नही रहता और पूरा नष्ट हो जाता है, तो इसपर यह पूछा जा रहा है कि अब वस्तु पूर्णतया तुरन्त नष्ट हो जाती है तो वह दूसरा कार्य भी पदार्थका कारण कैसे बन सकता है ? क्षणिक निरन्वय विनाशीक वस्तु उपादान कारण कैसे बनेगा ? उस उपादान कारणका स्वरूप पूछा जा रहा है। इस प्रसगमें चार विकल्प किए गए थे जिनमेसे तीन विकल्पोका निराकरण कर दिया कि न तो अपनी सतति हटाकर कार्य उत्पन्न करनेको उपादान कहते हैं और न अनेक कारणोंसे उत्पन्न हुए कार्यमें अपना कुछ विशेष धर्म धर देनेको उपादान कहते हैं और न कार्यसे निकट पूर्व रहने वाले कारणको उपादान कहते हैं।

शङ्काकारविकल्पित नियमवदन्वयव्यतिरेकानुविधानस्वरूप उपादानस्वरूपकी आलोचना, अब चौथे विकल्पका खण्डन किया जा रहा है उपादानके स्वरूपके विषयमे। चतुर्थ विकल्पकी आलोचना की जा रही है कि नियमसे अन्वयव्यतिरेकका अनुविधान जहाँ पाया जाय वह उपादानका स्वरूप है ऐसा चतुर्थ विकल्प भी

सही है क्योकि ऐसा लक्षण बनानेपर तो बुद्ध याने सर्वज्ञ और अल्पज्ञके चित्तोमें उपादान उपादेय भाव हो जायगा अर्थात् सर्वज्ञ और अल्पज्ञ ये दोनो सतानें न्यारी न्यारी हैं लेकिन उपादानका यह स्वरूप कहनेपर कि जहाँ नियमसे अन्वयव्यतिरेकका अनुविधान हो उसे उपादान कहते हैं। तो देखो ! अल्पज्ञ पुरुषोका ज्ञान सर्वज्ञके ज्ञानमे आया ना, तो सर्वज्ञका ज्ञान अल्पज्ञके ज्ञानके आकार बन गया और वहा अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध भी हो गया। यदि अल्पज्ञ न होते, अल्पज्ञका ज्ञान न होता तो सर्वज्ञ कैसे इसको जान लेता ? यह तो है व्यतिरेक और अल्पज्ञके होनेपर ही अल्पज्ञोके ज्ञानके होनेपर ही सर्वज्ञका यो ज्ञान बना कि यह है अन्वय तो जब अल्पज्ञोके ज्ञानका सर्वज्ञके ज्ञानके साथ अन्वयव्यतिरेक बन गया तब अल्पज्ञका ज्ञान उपादेय हो जायगा, क्योकि इन दोनो ज्ञानोमें स्पष्ट तौरसे शकाकारके सिद्धान्तके अनुसार अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध पाया जा रहा अर्थात् अल्पज्ञके ज्ञानके सद्भाव होनेपर सर्वज्ञके (सुगतके) ज्ञान उत्पन्न होता है। हम लोगोके ज्ञानविषयक ज्ञान सर्वज्ञके ज्ञानमे आते हैं और हम लोगोके ज्ञानके अभावमे सर्वज्ञमे हमारे ज्ञानविषयक ज्ञानकी उत्पत्ति नही होती, इससे कार्य कारणपना इन दोनोमे समानरूपमे पाया गया।

ज्ञानक्षणोके सम्बन्धमे ही अन्वयव्यतिरेकानुविधानकी आलोचना होनेसे शकाकारके अनिष्ट प्रसग परिहारका निराकरण—अब शकाकार कहता है कि सर्वज्ञका वह निराश्रव चित्त अर्थात् जिस चेतनमे आश्रव नही हो रहा, विकार नही आ रहा ऐसा निराश्रव चित्की उत्पत्तिसे पहिले तो अल्पज्ञके ज्ञानके प्रति अकारणता रही। अल्पज्ञका ज्ञान अब कारण न बन सका, क्योकि अल्पज्ञोका ज्ञान तो है आश्रवसहित और सर्वज्ञका ज्ञान है आश्रवरहित तो निराश्रव ज्ञानमे देखो इस अल्पज्ञ का आश्रव तो न आया इस कारणसे अल्पज्ञोका ज्ञान सर्वज्ञके ज्ञानका कारण न रहा। उत्तरमे कहते कि यदि ऐसा कहते हो तो यह यो ठीक नही बैठता कि जितने मात्र कारणको लेकर सर्वज्ञ और अल्पज्ञके ज्ञानमे कार्य कारण भेद बनाया जा रहा है उतने ही मात्र धर्मको लेकर तो कोई अन्वय व्यतिरेकमे कमी नही पायी जा रही। यह आश्रवकी बात तो नही कह रहे यहाँ तो केवलज्ञानकी बात कह रहे हैं कि सुगत सर्वज्ञके ज्ञानमे जो हम लोगोका ज्ञान भी आ गया तो देखो—हमारा ज्ञान है तब वह ज्ञान बना सर्वज्ञमे, हमारा ज्ञान न हो तो सर्वज्ञमे वह ज्ञान नही बनता। तो यो ज्ञान का ज्ञानके साथ अन्वयव्यतिरेककी बात कही जा रही है। यहा आश्रवकी बात नही कही जा रही, क्योकि यदि आश्रवकी ओरसे कार्य कारणका विचार रखा होता तो फिर सुगतमे सर्वज्ञता ही नही हो सकती थी, क्योकि सर्वज्ञके ज्ञानमे हम लोगोका ज्ञान कारण न रहा तो सर्वज्ञता ही न रही, क्योकि विषय अकारण नही होते, विषयोमे कारणता हुआ करती है। ऐसा क्षणिकवादियोने स्वय माना है। यदि अन्वय व्यतिरेकक अनुविधानकी बात कही जाती है तो वह अन्वयव्यतिरेक सर्वज्ञमे और अल्पज्ञमें पाया जा रहा इसलिए अल्पज्ञका ज्ञान तो उपादान कारण बन जायगा और सर्वज्ञका

ज्ञान उपादेय कार्य बनजायगा इस कारण नियमसे अन्वयव्यतिरेकका जिसमे अनुविधान हो वह उपादान कारण होता है यह बात गलत हो जाती है।

एकद्रव्यतादात्म्यरूप प्रत्यासत्तिविशेषसे ही उपादानोपादेयत्वका प्रतिनियमन—अब शंकाकार कहता है कि यद्यपि सुगत सर्वज्ञके ज्ञानमे और अल्पज्ञों के ज्ञानमे अव्यभिचार रूपसे कार्य कारणपना पाया जा रहा है फिर भी कोई प्रत्यासत्ति विशेष ऐसा है कोई धर्म ऐसा है, ऐसी निकटता है कि उसके कारण सर्वज्ञके चेतन को ही परस्परमे उपादान उपादेय भाव बनेगा अर्थात् सर्वज्ञके ज्ञानकी सततिमे ही उपादान उपादेयपना बनेगा, सब कारणोके प्रति उपादानपना न बनेगा। तो यहाँ उत्तरमे कहते हैं कि वह प्रत्यासत्ति विशेष अन्य है ही क्या, सिवाय इसके कि एक द्रव्यके साथ उसका तादात्म्य सम्बन्ध हो। यहाँ तात्पर्य यह है कि सर्वज्ञके ज्ञान चल रहे हैं। उन ज्ञानोकी परम्परामे और सर्वज्ञ जानता है सारे विश्वको सो उस विश्व ज्ञानके जो कारण हैं उनसे ही तो उस ज्ञानकी उत्पत्ति हुई, और ज्ञानके जो कारण है ये ज्ञेयभूत पदार्थ इनका अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध रहा सर्वज्ञके साथ। ये विश्वके पदार्थ न होते तो सर्वज्ञका ज्ञान कैसे बनता ? तो यो सो अब अन्य पदार्थोंकी चर्चा न करके केवल अल्पज्ञके ज्ञानको चर्चा करली कि अल्पज्ञोके ज्ञान भी तो सर्वज्ञके ज्ञानमे आये। देखो—अल्पज्ञका ज्ञान न होता तो अल्पज्ञ ज्ञान विषयक ज्ञान सर्वज्ञके कैसे हो जाता ? इसमें अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध पाया गया, उससे उपादान उपादेय भावको बातका प्रसग किया जा रहा है। अर्थात् अब ये उपादान दो हो गए सर्वज्ञके ज्ञानके लिए। एक तो सर्वज्ञका खुदका ज्ञान और एक अल्पज्ञोका ज्ञान। तो इस आपत्तिके निवारणके लिए शकाकार यह कह रहा है कि यद्यपि अल्पज्ञके ज्ञानका सर्वज्ञके ज्ञान के साथ अन्वयव्यतिरेक है,कार्य कारणपना है लेकिन फिरभी सर्वज्ञके ज्ञानमे कोई ऐसी प्रत्यासत्तिकी विशेषता है कि सर्वज्ञके ज्ञानक्षणोमें ही उपादान उपादेय भाव बनेगा। उसके ज्ञानका अल्पज्ञके ज्ञानके साथ उपादान उपादेय भाव न बनेगा। यो इस विषय में बताया जा रहा है कि वह प्रत्यासत्ति ही तो वह है कि तादात्म्य है। जो एक द्रव्य होगा उस एक द्रव्यमे जो पर्यायें चलेंगी उन पर्यायोका उपादान वही एक द्रव्य हुआ। अन्य और कोई प्रत्यासत्ति साबित नही हो सकती।

देशप्रत्यासत्तिसे सर्वज्ञज्ञानक्षणोमें ही उपादानोपादेयत्वनियमनकी असिद्धि—यदि कहो कि देश प्रत्यासत्तिसे सर्वज्ञके ज्ञानक्षणमे हम उपादान उपादेय भाव मान लेंगे सो इस तरह भी नही मान सकते, क्योकि ऐसा माननेपर अर्थात् जिन दो स्पष्ट चीजोका एक ही देशमे अनेकपना है उनमें कार्यकारणपना बन बन बैठेगा तथा ऐसा माननेपर तो रूप और रसमें भी कार्यकारणपना बन बैठेगा। जैसे कोई फल है उसमे रूप भी है, रस भी है, और एक ही जगह है तो एक जगह रहनेसे यदि कार्य कारणपना बन जाता होता तो रूप और रसका भी कारण कार्यपना

बन बैठेगा। शंकाकारने यह सुझाव दिया था कि सर्वज्ञके ज्ञानक्षणोमे निकटता तो सर्वज्ञके ज्ञानकी ही है। उस ही देशमे, उस ही स्थानमे औरका ज्ञान कहा पाया जाता ? सर्वज्ञके ही ज्ञान पाये जा रहे हैं। तो उस ही देश प्रत्यासत्तिके कारण सर्वज्ञ के ज्ञानक्षणोमे ही उपादान उपादेयभाव बन गया। अन्य ज्ञेयभूत पदार्थोके साथ उपादान उपादेय भाव न बनेगा। यह सोचकर शंकाकारने अपनी राय बतायी थी लेकिन वह राय यों ठीक नही बैठती कि देश प्रत्यासत्तिसे, एक ही देशमे निकटता होनेसे यदि कार्यकारणभाव बनता होता तो एक ही फलमे रूप, रस आदिक भी पाये जाते हैं तो उनमे भी परस्पर कार्यकारणभाव बन जाय। रूपका कारण रस हो जाय, रसका कारण रूप हो जाय, वह परस्परका उपादान हो जाय पर ऐसा तो नही है। और, भी दृष्टान्त ले लीजिए विरोधमे। एक ही जगहमे वायु और गर्मी दोनो पायी जाती हैं पर एक ही जगहमे वायु और गर्मी दोनो पाये जानेसे क्या उनमे कोई कार्य बन गया और दूसरा कोई कारण बन गया ऐसी व्यवस्था है ? नही है। यदि देश प्रत्यासत्तिके कारण सर्वज्ञके ज्ञानक्षणोमे उपादान उपादेयभावकी बात कहोगे तो रूप, रस आदिकके साथ क्या व्यभिचार हो जायगा।

कालप्रत्यासत्ति व भावप्रत्यासत्तिसे सर्वज्ञ ज्ञानक्षणोमें ही उपादानोपादेयत्वनियमनकी असिद्धि—शंकाकार अब अपनी दूसरी सम्मति देता है कि काल प्रत्यासत्तिकी वजहसे सर्वज्ञके ज्ञानक्षणोमे उपादान उपादेयभाव बना लीजिए। सो कहते हैं कि कालप्रत्यासत्तिसे भी यदि उपादान उपादेयभावकी कल्पना करोगे तो एक ही समयमे रहने वाले समस्त पदार्थोके साथ अनेकान्त दोष हो जायगा। देखो न, विश्वके सारे पदार्थोमे काल, प्रत्यासत्ति भी हुया, वर्तमान तो सब एक कालमे ही हैं। एक ही समयमे विश्वके सारे पदार्थ मौजूद है, पर काल प्रत्यासत्तिके कारण क्या उन अनेक पदार्थोमे उपादान उपादेय भाव बन जाता है ? नही। तो काल प्रत्यासत्तिसे उपादान उपादेय भाव माननेपर एक समयमे रहने वाले समस्त पदार्थोके साथ अनेकान्त दोष आता है। तो अब शंकाकार तीसरी सम्मति दे रहा है कि चलो देश प्रत्यासत्तिसे उपादान उपादेय भावकी व्यवस्था न बनी और काल प्रत्यासत्तिसे भी न बनी तो भाव प्रत्यासत्तिसे तो उपादान उपादेय भावकी व्यवस्था बन जायगी। उत्तरमे कहते हैं कि देखो—अनेक पुरुष किसी एक पदार्थका ज्ञान कर रहे हैं तो उन अनेक पुरुषोमे उस एक पदार्थका आकार आया ना। उस ही एक पदार्थसे उन अनेक पुरुषोके अनेक ज्ञानोकी उत्पत्ति हुई ना, तो सबके ज्ञानोमे उस समय भाव एक समान है। अर्थात् उन सबके ज्ञानोमें उस ही पदार्थका आकार है, उस ही पदार्थका ज्ञान है। तो भावकी प्रत्यासत्ति हो गयी ना उन अनेक प्राणियोके ज्ञानोमे। अगर क्या इस प्रत्यासत्तिके कारण अनेक पुरुषोके ज्ञान क्या परस्पर उपादान उपादेय बन जाते है ? नही बनते है। तो भाव प्रत्यासत्तिसे उपादान उपादेयकी व्यवस्था मानने पर एक पदार्थसे उत्पन्न हुए अनेक पुरुषोके ज्ञानोके साथ अनेकान्त दोष आयगा। इस

कारण अल्पज्ञके ज्ञानको जानने वाले सर्वज्ञके ज्ञानमें उपादान उपादेय भाव न बने परस्पर। इसका निवारण करनेके लिये जो प्रत्यासत्तिकी बात शंकाकारने कही थी वह संगत न बैठ सकी।

क्षणिक पदार्थके साथ अन्वयव्यतिरेकानुविधानका अभाव—और, फिर स्पष्ट बात यह भी है कि क्षणिक पदार्थमे अन्वयव्यतिरेकका अनुविधान भी घटित नही हो सकता, क्योंकि जहा पदार्थोंको निरन्वय विनष्ट माना है तो जिस कालमें वह कारण है, जिस कालसे अगले क्षणके कार्यकी उत्पत्ति मानते हो तो देखो ना, कारण का सम्बन्ध तो है पहिले और कार्यका सम्बन्ध है बादमे तो जिस समय समर्थ कारण था उस कालमें तो कार्य हो न रहा था। अब जब समर्थ कारण न रहा इसके बाद कार्य पीछे स्वयमेव हो रहा है, तो अब उस कारणका कुछ कार्यके साथ अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध रहा कहाँ? शंकाकार कहता है कि अपने स्थानकी तरह, अपने कालमें रहने पर, अपने कालमें समर्थ कारणके रहनेपर कार्य उत्पन्न होता है और अपने कालमे समर्थ कारणके न रहनेपर कार्य उत्पन्न नही होता। इतने मात्रसे क्षणिक पदार्थमें कारण कार्यका अन्वय व्यतिरेकका सम्बन्ध बन जाता है। शंकाकारका यह कहना है कि यद्यपि कारणका समय है पहिला और कार्यका समय है दूसरा कारणके समयमे कार्य न रहा फिर भी यह तो नियम है कि अपने कालमें समर्थ कारणके रहनेपर कार्य उत्पन्न होता अर्थात् पूर्वक्षणमे कारण रहा तभी उत्तरक्षणमे कार्य भी हुआ। पूर्वक्षणमे कारणके न होनेपर उत्तरक्षणमे कार्य भी नहीं होता। इतने मात्रसे क्षणिक पक्षमे अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध बन जायगा तो उत्तरमे कहते हैं कि फिर इस तरहका सम्बन्ध तो नित्यमे भी बन जायगा। अपने कालमे अर्थात् अनादि अनन्त कालमें उस समर्थ नित्य कारणके होनेपर कार्यकी अपने समयमे ही उत्पत्ति होनेसे और अनादि अनन्त समर्थ कारणके न होनेपर अपने समयमें भी कार्यकी उत्पत्ति नही होनेसे सिद्ध है कि नित्य पदार्थके साथ भी कार्यका अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध है। इस कारण अपने कालमे कारणका रहना बताकर भी अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध सिद्ध नही कर सकते। यदि कहो कि सर्वकाल नित्य समर्थ कारणके होनेपर अपने ही कालमें होने वाले कार्यके साथ कैसे नित्य कारणका कार्यके साथ अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध कहा जा सकता है। क्योंकि कारण तो है सदा और कार्य होता है कभी याने अपने समयमें सो कादाचित्क कार्यके साथ नित्य कारणका अन्वयव्यतिरेक नही बन सकता। इसका उत्तर यह है कि ऐसे ही क्षणिक कारणके साथ भी कार्यका अन्वयव्यतिरेक नहीं बन सकता, क्योकि कारण क्षणसे पहिले व पश्चात् अनाद्यनन्त काल याने सर्वदा कारण का अभाव है फिर उन अभाव कालोमेसे किसी ही अभाव काल मे कार्य हो तो कैसे उस कार्यका अविशिष्ट अभाव वाले कारणके साथ अन्वयव्यतिरेक कहा जा सकता है। यो क्षणिक कारणमे कार्यके साथ अन्वयव्यतिरेकका अनुविधान बताकर उपादानका स्वरूप सिद्ध करना असगत बात है।

नित्य पदार्थमें एकत्वके विरोधकी शङ्का और समाधान—क्षणिकवादी शंकाकार कहता है कि यदि पदार्थ नित्य है तो वह प्रतिसमय भिन्न-भिन्न कार्योंको करता हुआ चला जा रहा ना, तो क्रमसे अलग-अलग समयमे उस नित्य पदार्थमे अनेक स्वभाव सिद्ध हो गए। किसी भी कार्यको जिस स्वभावने किया उस स्वभावसे भिन्न-भिन्न कार्यको करनेके लिये दूसरा स्वभाव चाहिये। तो जब नित्य पदार्थमे अनन्त काल तक अनन्त कार्य होते हैं तो इसके मायने यह है कि नित्य पदार्थमे अनेक स्वभाव आ गए और भला जिनमे अनेक स्वभाव पडे हुए हैं वे एक कैसे हो सकते हैं, और जब एक न रहेगे तो नित्य कैसे रहेगे ? नित्य तो वही हो सकेगा जो सदा काल एक होगा। तो यो पदार्थ कोई सिद्ध नही होता। उत्तरमे कहते हैं कि इस तरह तो हम क्षणिक कारण माननेमे भी पूछ सकते हैं। जो एक क्षणका पदार्थ रहता है वह आपने माना है एक पदार्थ। मगर उसमे भी तो अनेक स्वभाव पडे हुए हैं। एक समयके पदार्थमे कारणमे भी तो अनेक प्रकारके स्वभाव पडे हैं क्योंकि उस ही एक कारणसे उस ही एक समयमे विचित्र नाना कार्य हो बैठते हैं। जैसे कि नाना जगह नाना प्रदेश पडे हुए हैं तो उनमे हम अनेक स्वभाव मानेगे कि नही ? हाँ, क्योंकि एकसे भिन्न दूसरेका स्वभाव है तो इसी प्रकार एक कारणसे भी जब अनेक कार्य हो रहे हैं तो उनमे अनेक स्वभाव मान लिये जायेंगे। और जब अनेक स्वभाव मान लिए गए तो वह कारण भी एक कैसे रह सकेगा ? क्षणिक कारण भी आपका कोई एक न रह सकेगा। कारण कि जितने कार्य उस कारणसे हो रहे हैं. जैसे कि दीपक जला तो दीपक क्षणिक कारणसे कई कार्य हो बैठे, बत्तीका जलना, तेलका जलना, चीजो का उजेलेमे आना, चोरोको बुरा लगना, साहूकारो को अच्छा लगना। उस एक दीपकसे कितने काम हो रहे हैं। इतने काम जब होरहे है तो कारणमे अनेक शक्तिया कैसे न हुई। यो आपके क्षणिक कारणमे भी अनेक स्वभाव सिद्ध हो जाते हैं। जैसे कि एक फलके बारेमे हमको नाना ज्ञान हो रहे हैं, इसमे ऐसा रूप है, ऐसा रस है, ऐसा स्पर्श है, ऐसा गध है। तो जब रूपज्ञान, रसज्ञान आदिक अनेक ज्ञान होरहे हैं एक पदार्थके बारेमे तो उससे सिद्ध है कि उस पदार्थमे उतने स्वभाव पडे हुए हैं। रूप ज्ञान हो रहा है उस ही एक फलमें तो इसके मायने है कि उसमे रूप स्वभाव है, रूप शक्ति है, रूपगुण है। तब तो रूपज्ञानकी उत्पत्ति हो रही है। रसज्ञान उत्पन्न हुआ उससे सिद्ध है कि इन पदार्थोंमे रसका भी स्वभाव पड़ा है। तो जैसे अनेक ज्ञान एक फलके बारेमे हो रहे हैं तो उससे सिद्ध है कि उस फलमे अनेक स्वभाव पडे हुए हैं। रूप, रस, गध, स्पर्श जितने भी ज्ञान होते हैं उनकी शक्तिया और स्वभाव उस फलमें हैं। इसी प्रकार एक क्षण ठहरने वाले एक पदार्थसे जैसा प्रदीपक्षण है उससे अनेक कार्य देखे जा रहे हैं तो वे सब कार्य शक्तियोके भेदके कारणसे हैं। वे सब कार्य यह सिद्ध करते हैं कि उस प्रदीपमें उतनी प्रकारके स्वभाव पड़े हुए हैं। यदि एक दीपकके बत्ती दाह, तेलशोष, स्वपरप्रकाश आदिक नाना कार्योंके होनेपर भी दीपकमें यदि

शक्ति एक ही मानोगे तो किसी फलके बारेमें रूपज्ञान, रसज्ञान आदि नाना कार्य होने पर भी उस फलमें भी एक शक्ति मान ला। फिर तो रूप, रस, गंध, स्पर्श, सबका अभाव हो जायगा। इससे नित्य पदार्थोंमें अनेक कार्य करनेके प्रसङ्गमें अनेक स्वभाव बताकर उसकी एकताका खण्डन करना उचित नहीं है। तथ्य तो यह है कि पदार्थ न तो सर्वथा नित्य है और न सर्वथा अनित्य है। कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य स्वरूप पदार्थमें कार्यकारिता बनती है।

शक्तिमानसे शक्तियोंको भिन्न या अभिन्न विकल्पित करके शक्तियोंका असत्त्व सिद्ध करनेका शंकाकारका प्रयास—अब शंकाकार कहता है कि आप जो अनेक कार्य बता-बताकर पदार्थमें अनेक शक्तियां सिद्ध कर रहे हो तो यह बतलावो कि शक्तिमान पदार्थसे वे शक्तियां भिन्न हैं या अभिन्न हैं। पहिले शक्तियोंको ही तो सिद्ध करलो फिर उसके बारेमें विशेष बात करना। तो पदार्थ जिसे शक्तिमान कहा गया है उस पदार्थसे वे शक्तियां भिन्न है या अभिन्न ? यदि कहोगे कि भिन्न है तो फिर ये शक्तियां इस पदार्थकी हैं, यह सम्बन्ध या कैसे बन सकता है ? जो चीज अत्यन्त जुदी है उससे अन्यका सम्बन्ध जोड़ना तो ठीक नहीं है। अगर भिन्न चीजोंसे भी सम्बन्ध जोड़ दिया जाय तो हम कहदेंगे कि हिमालयका विंध्याचल है या विंध्याचलका हिमालय है क्योंकि अब तो भिन्न भिन्न चीजोंसे भी तुम सम्बन्ध मान रहे। शक्तिमानसे शक्ति है भिन्न और फिर भी कहते हो कि ये शक्तियां इस शक्तिमान पदार्थकी है तो सम्बन्ध भिन्नमें नहीं बनता। यदि सम्बन्धकी सिद्धिके लिए यह बात कहोगे कि शक्तिके द्वारा शक्तिमानका उपकार हुआ है। या शक्तिमानके द्वारा शक्तिका उपकार हुआ है इस कारणसे उन दोनोंका सम्बन्ध बना तो उपकारमें भी बताओ कि वह जो उपकार बना है वह इन दोनोंसे भिन्न है या अभिन्न ? तो यों कहीं भी आप टिक न सकेंगे। यदि कहो कि शक्तिमानसे शक्तियां अभिन्न हैं, एक हैं। तो जब अभिन्न हैं। एक रूप हैं तो या तो शक्तिकी सत्ता रहे या शक्तिमानकी सत्ता रहे। जब वे दोनों एक हैं तो दो की सत्ता कैसे ? इस कारण शक्तियोंका वास्तवमें सत्त्व है ही नहीं। केवल कल्पना करके उनमें शक्तियोंका अंदाजा बनाया करते हो ?

शक्तिमानसे शक्तिकी सर्वथा भिन्नता व अभिन्नताका प्रश्न करके शक्तिको अयथार्थ बतानेपर प्रतीतिसिद्ध पदार्थसे अलग रूपरसादिकोंकी भी अयथार्थताकी सिद्धि—उक्त शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि इस तरह भिन्न-अभिन्न विकल्प उठाकर शक्तिमान पदार्थमें शक्तियोंका असत्त्व सिद्ध करोगे तो हम रूप रस आदिकका भी तुम्हारे क्षणिकवादमें असत्त्व बतादेंगे। वह किस तरह कि आप यह बतलावो कि प्रतीतिसिद्ध पदार्थसे तुम्हारे रूप, रस आदिक भिन्न हैं कि अभिन्न हैं ? जो पदार्थ लोगोंको प्रत्यक्ष हो रहे। जैसे एक आम लिया तो बतलावो

उस आम पदार्थसे रूप, रस आदिक भिन्न हैं या अभिन्न हैं ? यदि कहोगे कि रूप, रस आदिक भिन्न है तो फिर भिन्न रूप रस आदिक भिन्न रूप रसोका आमके साथ सम्बन्ध कैसे जोडा जायगा कि यह रूप आमका है। जब कि वह रूप आमसे अत्यन्त जुदा है तो जैसे वह रूपादिक अनेक पदार्थोंसे जुदा है ऐसे ही आमसे जुदा है वह रूप, फिर यह कहना कि यह रूप आमका है। यह सम्बन्ध कैसे बन सकता है ? यदि कहोगे कि आमने रूपका उपकार किया या रूपने आमका उपकार किया तो इस तरह सम्बन्ध बना देगे कि यह रूप आमका है तो यह बतलावो कि वह उपकार उस रूप अथवा आमसे भिन्न है या अभिन्न ? इस तरह तो आप कही भी न टिक सकेंगे। यदि कहा कि रूप प्रतीतिसिद्ध पदार्थसे अभिन्न है तो या तो रूप ही रहा या पदार्थ ही रहा फिर उसमे रूप क्या रहा ? इस तरह रूप, रस आदिकका वास्तवमे सत्त्व नही है। केवल कल्पना करके उसका अदाजा बनाया करते हो कि पदार्थमे रूप और रस है। इस तरह रूप, रसका भी अभाव बन बैठेगा। तो यो शक्तिमानसे शक्तियाँ भिन्न है, अभिन्न है। विकल्प उठाकर दोदापट्टी करके शक्तियोका अभाव सिद्ध करना युक्त नही है।

प्रत्यक्षबुद्धिमे प्रतिभात न होकर अनुमानबुद्धिमे प्रतिभात होनेके कारण शक्तियोकी अयथार्थता माननेपर क्षणिकत्व, स्वर्गप्रापण शक्ति आदिक की भी अयथार्थताका प्रसग—अब शकाकार कहता है कि दिखने वाले पदार्थोंमे, इन फलोमे प्रत्यक्ष बुद्धिसे ही यह प्रतिभास हो रहा है कि रूप है। रस है, तो यह वास्तविक सत् है। जब हमे इन्द्रियसे प्रत्यक्षसे रूप, रस आदिकका ज्ञान हो रहा है तो यह वास्तविक सत् है। लेकिन पदार्थोंकी शक्तियोका तो प्रत्यक्षसे ज्ञान नही हो रहा। रूप रस की भाँति शक्तियाँ भी किसीको नजर आ रही हैं क्या ? शक्तियोका तो अनुमान ज्ञानमें प्रतिभास किया जा रहा है अर्थात् अनुमान प्रमाणसे शक्तियोका अदाज किया जाता है। इससे शक्तियाँ तो वास्तवमे है नही और रूप, रस, आदिक पदार्थमे वास्तविक है। इसके उत्तरमे कहते हैं कि प्रत्यक्ष बुद्धिमे प्रतिभास न होनेके कारण और केवल अनुमानसे ही शक्तियाँ अवगत होनेके कारण यदि शक्तियोका अभाव मानते हो तो पदार्थमे क्षणिक धर्म अथवा स्वर्गको दिलानेकी ताकत आदिक चीजें भी तो इसका भी असत्त्व हो जायगा। इस कारण जैसे कि क्षणिक पदार्थमे एक साथ अनेक कार्य कारिता होनेपर भी अर्थात् एक पदार्थ एक ही समयमे जब अनेक कार्य कर डालता है तिसपर भी उसमे एकत्वका विरोध नही मानते, अर्थात् कोई एक क्षणिक कारण अनेक कार्योंको भी वह एक ही है तो इसी प्रकार नित्य पदार्थ भी क्रमसे अनेक कार्यों को करके भी एक ही हैं। इसमे किसी भी प्रकारका विघ्न नही आता। इससे नित्य पदार्थकी बराबर सिद्ध है। उसका खण्डन नही किया जा सकता। और, सर्वथा क्षणिकता किसी पदार्थमे विदित नही होती सो क्षणिक एकान्तका भी समर्थन नही किया जा सकता।

अर्थक्रियालक्षण सत्त्वकी व्याख्याके प्रश्नमें तीन विकल्प—अब शङ्काकारसे यह पूछा जा रहा है कि पदार्थको क्षणिक सिद्ध करनेके लिये जो तुमने अनुमान बनाया था कि सब पदार्थ क्षणिक है, सत्त्व होनेसे तो उस सत्त्वका अर्थ क्या है ? ऐसा पूछा जानेपर शंकाकारने कहा था कि सत्त्वका अर्थ है अर्थक्रिया, जिसमें अर्थ क्रिया हो। काम हो उसे सत्त्व कहते हैं। चूंकि जब पदार्थ है तो उसका कोई उपयोग भी होता है, कार्य भी होता है। तो अर्थक्रिया सत्त्वका लक्षण है तो इस सम्बध मे अब यह पूछा जाता है कि अर्थक्रियालक्षण सत्त्व है यहाँ उस लक्षणपनेका भाव क्या है ? अर्थक्रिया है जिसका लक्षण उसे सत्त्व कहते हैं। ऐसा कहनेमे लक्षण शब्द का अर्थ क्या है ? क्या यह मतलब है कि अर्थ क्रिया है कारण जिसका ऐसा सत्त्व है अर्थात् सत्त्वका कारण अर्थक्रिया है। अथवा कारणात्मक है वह सत्त्व, क्योंकि लक्षण शब्दका अर्थ कारण भी बनता है। किस तरह ? उसकी व्युत्पत्ति है लक्ष्यते, जन्यते कार्यं अनेन इति लक्षणं कारणं इति अर्थः। जिसके द्वारा कार्य उत्पन्न हो उसको लक्षण कहते हैं। तब लक्षण शब्दका अर्थ कारण हो गया ना। तो क्या सत्त्व अर्थ क्रिया लक्षण है इसका भाव यह है कि सत्त्वका अर्थ क्रिया कारण वाला है अथवा इस लक्षण शब्दसे यह अर्थ लिया कि सत्त्व अर्थ क्रियास्वरूप वाला है। याने सत्त्वका स्वरूप ही अर्थक्रिया है। अथवा यह अर्थ लगाते कि ज्ञापक अर्थ है अर्थात् अर्थक्रिया सत्त्वका ज्ञापक है। जहां अर्थक्रिया पायी जाय वहाँ सत्त्वका ज्ञान होता है। क्या ज्ञापक अर्थ वाला होना इतना ही मात्र अर्थक्रिया लक्षणका अर्थ है ? इस प्रकार अर्थक्रिया लक्षण इस शब्दके अर्थमें तीन विकल्प किए गए क्या कारणात्मक अर्थ है या स्वरूपात्मक अर्थ है या व्यापकरूप अर्थ है ?

अर्थक्रियाकारणक सत्त्वसे क्षणिकत्वकी असिद्धि—उक्त तीन विकल्पोंमें से यदि कहोगे कि कारणार्थक है अर्थात् अर्थक्रिया कारण वाला सत्त्व हुआ करता है। सत्त्व मायने मौजूदगी। तो यहाँ यह पूछा जा सकता है कि अब दो चीजें हो गयीं—हमारे सामने अर्थक्रिया और सत्त्व, तो यहाँ आपका मतलब क्या है, क्या अर्थ क्रियासे सत्त्वकी उत्पत्ति होती है या सत्त्वसे अर्थक्रियाकी उत्पत्ति होती है ? जब कारणरूप अर्थक्रिया माना तो कारण कार्यकी बात बतायी जायगी ना, तो इन दोनोंमे क्या बात है—क्या उस सत्त्वसे अर्थक्रिया उत्पन्न होती या अर्थक्रियासे सत्त्व उत्पन्न होता ? यदि अर्थक्रियासे सत्त्वकी उत्पत्ति मानते हो तो इसका भाव यह हुआ कि सत्त्वसे पहिले भी अर्थक्रिया थी। जैसे अग्निसे धूमकी उत्पत्ति होती है तो इसका अर्थ यह हुआ ना कि धूमसे पहिले भी अग्नि थी। तो अर्थक्रियासे सत्त्वकी उत्पत्ति माननेपर सत्त्वसे पहिले अर्थक्रिया माननी पड़ेगी। सो यह बतलावो कि पदार्थका तो सत्त्व था ही नहीं, और अर्थक्रिया तुम्हारी बन बैठी। पदार्थके सत्त्वके बिना अर्थक्रिया जब होली तो इसका अर्थ यह होगा कि अर्थक्रिया निराधार है और निर्हेतुक है। क्योंकि अर्थक्रियासे माना सत्त्वकी उत्पत्ति, जिसका भाव यह हुआ कि

सत्वसे पहिले अर्थक्रिया थी, तो सत्वके बिना अर्थक्रिया हो गयी तो वह अहेतुक ही तो कहलायी, उसका कारण कुछ नहो है। और निराधार कहलायी। पदार्थ तो कुछ है ही नही और अर्थक्रिया चलती रहे, तो भला ऐसा कोई मान भी सकता है क्या ? चीज कुछ नही है और काम चल रहा है ऐसा कोई नहीं मान सकता। यदि कहो कि सत्वको अर्थक्रिया उत्पन्न होती है याने सत्व तो है कारण और अर्थक्रिया है कार्य. तो सत्वसे अर्थक्रियाकी उत्पत्ति माननेपर यह अर्थ बन गया ना कि अर्थक्रियासे पहिले भी सत्व था। सत्वसे उत्पन्न हुआ अर्थकार्य, तो इसका भाव यह निकला कि अर्थक्रियाके बिना भी अर्थक्रियासे पहिले सत्व था। तो यह बात निश्चत हो गई कि पदार्थका सत्व अपने आप है। अर्थक्रियाके कारण नही है, क्योंकि क्रियाकारिताके बिना भी पदार्थका सत्व माना जा रहा है। तो इस तरह अर्थक्रियालक्षण सत्व है इसका अर्थ यह नही कह सकते कि अर्थक्रिया कारणक सत्व होता है। जब सत्वका अर्थक्रिया कारणक रूप न बना तो उस सत्वसे पदार्थोंकी क्षणिकताकी सिद्धि करना भी नही बन सकता है। यो पदार्थ सर्वतः क्षणिक सिद्ध नही होता।

स्वरूपार्थक अर्थक्रिया लक्षण सत्त्वकी असिद्धि—क्षणिकवादी पदार्थको क्षणिक सिद्ध करनेके लिए एक अनुमान देते हैं कि समस्त पदार्थ क्षणिक हैं सत्त्व होने से, अर्थात् सब पदाथ हैं तो है होनेके कारण वे सब क्षणिक हैं। तो यहाँ उनसे पूछा जा रहा है कि सत्त्वका अर्थ क्या है। तो उत्तर दिया था कि 'अर्थक्रियालक्षण सत्त्व होता है। तो अर्थक्रियालक्षणका अर्थ पूछा जा रहा है शंकाकारसे कि अर्थक्रियालक्षण का क्या यह अर्थ है कि सत्त्व अर्थक्रिया कारण है अथवा अर्थक्रिया स्वरूप सत्त्व है, या अर्थक्रियाका जताने वाला सत्त्व है ? इनमेसे पहिले विकल्पका निराकरण किया, अब द्वितीय विकल्पके सम्बन्धमे कह रहे है कि यदि सत्त्वका यह अर्थ मानोगे कि अर्थक्रिया है स्वरूप जिसका ऐसा सत्त्व होता है याने मौजूदगीका स्वरूप ही यह है कि अर्थक्रिया हो। अर्थक्रिया कहते हैं कुछ न कुछ परिणमन करनेको। कोई काम बने, कोई परिणति बनतो पदार्थमे उसको अर्थक्रिया कहते हैं। तो सत्त्व अर्थक्रिया स्वरूप है ऐसा कहनेपर रूप कार्यका कारण न रहा। क्षणिकवादियोने यह माना है कि पूर्ववर्ती पदार्थ तो कारण होता है और उत्तरवर्ती पदार्थ कार्य होता है। जैसे, जैनी लोग कहते हैं कि पूर्वपर्याय सहित द्रव्य उपादान कारण है और उत्तर पर्याय उपादेय कार्य हैं। जैसे मृत्पिण्डसे घडा बनता। तो कारण तो मृत्पिण्ड पर्याय सयुक्त द्रव्य है और कार्य घडा है तो इसके बजाय क्षणिकवादी यह कहना है कि मृत्पिण्ड बिल्कुल जुदा पदार्थ है। घडा बिल्कुल जुदा पदार्थ है। पर्यायें नहीं है कि कोई एक द्रव्य हो, फिर उसकी ये पर्यायें हो। यदि पर्यायें मान ली तो नित्य द्रव्य मानना पडेगा। सो क्षणिकवादमे पर्यायें नही किन्तु वे पूरे पूरे पदार्थ हैं तो उनमे पूर्व क्षणमे रहने वाले पदार्थ उपादान कारण कहे जाते हैं और उत्तरक्षणवर्ती पदार्थ कार्य कहे

जाते हैं। तो यहा जब सत्वका लक्षण यह मान लिया कि अर्थक्रिया जिसका स्वरूप हो सो सत्व है। तो जिस कालमे पदार्थ मौजूद है उस कालमे तो अर्थक्रिया होती नही। पदार्थ जब उत्पन्न हो ले तब तो उसके बाद उसका कार्य किया जायगा। जैसे घडा बन जाय, पक जाय, उसके बाद फिर उससे पानी भरा जायगा तो पानी भरा जाना है घडेकी अर्थक्रिया। घडा किसलिये बना ? कोई काममे तो लाया जाय। तो पानी भरनेमे काम आता है। तो जब घडा बने उसके बाद ही तो अर्थक्रिया होगी, उसका उपयोग होगा। अब तुमने सत्वका स्वरूप माना है अर्थक्रिया तो स्वरूपसे पहिले पदार्थ तो न हो जायगा। स्वरूप पीछे पैदा हो और पदार्थ पहिलेसे हो ऐसा तो नही होता। पदार्थके साथ ही स्वरूप जुडा रहता है अब वहा, यह अर्थक्रियारूप स्वरूप तो बादमे होगा और वही माना है सत्वका स्वरूप। तो इसके मायने है यह कि अर्थक्रियासे पहिले कारणका अभाव है क्योंकि अर्थक्रियाके समयमे अर्थक्रियाका कारण नही रहता जब पदार्थ क्षणिक है, घड़ा नष्ट हो गया। अब पानी भर रहे हैं तो यह हो रही अर्थक्रिया। तो जब अर्थक्रिया कर रहे तब तब तो घडेका नाश मान लिया। सो बात इतनी है कि पदार्थ तो बनेगा, पहिले, काम होगा उसमे बादमे। तो कामके समयमे, पदार्थ नही है और पदार्थके समयमें काम नही हैं। अर्थक्रिया नही है। कही अन्यकालमे रहने वाले पदार्थका अन्यकालमे रहने वाले पदार्थका अन्यकालमे रहने वाली अर्थक्रिया स्वरूप बन जाय यह बात तो नही बन सकती ? यदि अन्य समयमे रहने वाले पदार्थका अन्य समयमे रहने वाला कुछ स्वरूप बन जाय तो किसीका कोई भी कारण बन जायगा। क्रिया बन जायगी। इस कारण स्वरूपार्थक अर्थक्रियालक्षण सत्व है यह बात सिद्ध नही होती।

ज्ञापनार्थक अर्थक्रियालक्षण सत्त्वकी असिद्धि—अब शकाकार तीसरा विकल्प रख रहा है कि स्वरूपार्थक अर्थक्रिया सिद्ध न हो सकी न सही, किन्तु अर्थक्रिया लक्षणको हम अर्थ यह मानेंगे कि जो कारणको जानकारी करादे उसे कहते हैं अर्थक्रिया। जैसे जब पानी भरते हैं तो जान लेते कि "यह घडा है क्योंकि पानी भरा गया। तो काममे आनेसे कारणका ज्ञान होता है तो अर्थक्रियाका ज्ञापन प्रयोजन है अर्थात् वह वस्तुका ज्ञान करादे कि यह है कारणभूत पदार्थ। उत्तरमे कहते हैं कि यह विकल्प भी अयुक्त है, क्योंकि अर्थक्रियाके समयमे पदार्थका असत्व है। जब पदार्थ हुआ उस समयमे तो पदार्थका काम नही लिया जाता। जब पदार्थ बन चुका उसके बाद वह काम करेगा तो काम करनेका समय दूसरा हुआ और पदार्थके मौजूद रहनेका समय दूसरा हुआ। पहले तो पदार्थ मौजूद रहा बादमे उसका काम रहा तो देखो! कामके समयमे पदार्थ तो न रहा कुछ। तो जब पदार्थका असत्व है, जिस समय अर्थक्रिया हो रही उस समयमे पदार्थ हैं नही तो उसकी सत्ताको कैसे बनादे अर्थक्रिया। जो चीज है नहीं उसकी यदि जानकारी बनने लगी तो आकाशके फूलकी भी जानकारी बन जाय! गधेके सीग आदिक जो असत् हैं उनको भी जानकारी बन

जाय। इससे अर्थक्रिया लक्षणका अर्थज्ञापकार्थ भी नहीं कर सकते। क्षणिकवादी बौद्ध शंकाकार कहता है कि अर्थक्रियाके होनेके पहिले कारण था, यह व्यवस्था बनती है अर्थक्रियासे। जैसे कि पानी भरा नहाया तो यह हुई घडेकी अर्थक्रिया। अब अर्थक्रिया करनेसे हमें यह ज्ञान हो गया कि इससे पहिले कारणभूत घट था, क्योंकि घट तो क्षणिक है ना, इस समय घट मान लोगे तो नित्य सिद्ध हो जायगा। तो अर्थक्रियासे पहिले कारण था यह व्यवस्था बन जायगी। उत्तर देते हैं कि ऐसी भी व्यवस्था नहीं बना सकते क्योंकि यदि स्वरूपसे पहिले कारण ज्ञात हो, पदार्थ ज्ञात हो और उसके बाद हो अर्थक्रिया तब तो जाने हुए सम्बन्ध वाले कारणके साथ अर्थक्रिया पायी जाय और वह अर्थक्रिया पहिले हेतुकी सत्ताको व्यवस्थित करे, पर अर्थक्रियाके बिना कारणभूत पदार्थ अर्थक्रियाका कारणरूप पदार्थ स्वरूपसे कभी भी उपलब्ध नहीं होता। यदि कहो कि दूसरी अर्थक्रिया इस अर्थक्रियाके सत्वको बता देगी तो इसमे अनवस्था दोष आता है जिस सत्वका स्वरूप नहीं जाना गया ऐसी अर्थक्रिया हेतुके सत्वकी व्यवस्था नहीं कर सकती, क्योंकि यदि अज्ञानस्वरूप वाली कोई बात किसीके सत्वकी व्यवस्था करदे तो घोडाके सींग आदिक पदार्थ सत्वकी भी व्यवस्था बनादे। ऐसा भी नहीं कह सकते कि हेतुसे उत्पन्न होनेके कारण अर्थक्रिया सत् होती है अन्य अर्थक्रियाके उदयमे नहीं। यह क्यों युक्त नहीं कि ऐसा कहनेमे इतरेतराश्रय दोष होता है कि हेतुके सत्वसे तो अर्थक्रियाका सत्व बनेगा और अर्थक्रियाके सत्वसे हेतुमे सत्व बनेगा, इस कारण अर्थक्रिया लक्षण सत्वका अर्थज्ञापनार्थ भी नहीं बन सकता।

क्षणिकत्वके अर्थोंकी असिद्धि होनेसे सत्वहेतु द्वारा क्षणिकत्वकी असिद्धि – शंकाकार लोग अब यह अनुमान देते हैं कि सारे पदार्थ क्षणभरमे नष्ट हो जाते हैं क्योंकि वे सत् होता है, वह क्षणभरमे नष्ट हो जाता है और सत् मायने उसका है कि जिसमे अर्थक्रिया पायी जाय, जिसका परिणाम पाया जाय। तो अर्थक्रिया लक्षणरूप सत्व सिद्ध न हो सका, मगर हम थोडी देरको काम ले कि रहो अर्थक्रियारूप सत्व हेतु देकर तुम पदार्थमे जो क्षणिकत्व सिद्ध कर रहे तो, उस क्षणिकपनेका अर्थ क्या ? क्या यह अर्थ है कि एक क्षण रहना। पदार्थ एक-क्षण रहता। पदार्थ एक क्षण रहता है। क्या उतना ही मात्र क्षणिकका अर्थ है या क्षणिकका यह अर्थ लगायेंगे कि एक क्षणके बाद नहीं रहना ? यहाँ क्षणिक शब्दका अर्थ पूछा जा रहा है। जो क्षणिकवादी क्षणिक मानते हैं पदार्थको तो उन क्षणिकका मतलब क्या ? क्षणमे रहना। यह अर्थ है या उस क्षणके बाद नहीं रहता यह अर्थ है ? यदि कहो कि क्षणमें रहना यह अर्थ है तो उत्तर देते हैं कि इस अर्थमें तो कोई विवाद नहीं। प्रत्येक बात क्षणमे रहती है। अब दूसरा क्षण आया उसमे भी रहेगा नित्य भी अर्थ हो तो वह भी क्षण क्षणमे रहता है। यदि क्षण क्षणमे न रहे तो सदा रहते भी नहीं बनता। जैसे कोई बालक ८ वर्ष तक रहा तो

प्रत्येक मिनट रहा ना। अगर प्रत्येक मिनटमें न रहे तो वर्ष भर रह न सकता था। प्रत्येक मिनटमे रहता आया तब तो वह ८ वर्ष रहा, इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ एक एक क्षणमे रहता है, सो ठीक ही है। क्षणान्तरमें रहता है। दूसरे समयमे पदार्थ रहेगा तो उसका कारण है यह कि पहिले क्षणमे रहे। तो क्षणमे रहे सो यह सगत ही बात है। इसमे कोई विरोध नही। हाँ यदि यह अर्थ बने क्षणिकका कि एक क्षण के बाद फिर न रहा। एक क्षणके ऊपर पदार्थका अभाव होना सो क्षणिक है।

एक क्षणान्तर के बाद भी क्षणिकत्वके अर्थकी असिद्धि—यदि यह मानते हो तो यह बात बन नही सकती, क्योंकि अभावके साथ सत्वका सम्बन्ध नही है। कहा है ना कि सब पदार्थ क्षणिक हैं सत् होनेसे तो हेतु तो दिया गया है सत्व और साध्य कह रहे हो तुम कि एक क्षणके बाद नही रहता तो, एक क्षणके बाद अभाव होना यह तो है तुम्हारा साध्य। यह तो करना चाहते हो तुम सिद्ध और हेतु दे रहे हो सत्व तो अभावका सत्व हेतुके साथ सम्बन्ध नही हुआ करता। इसलिए क्षणिकत्वका अर्थ यह कहना युक्त नही है कि एक क्षणके बाद नही रहता। एक क्षण के बाद अभाव होनेका नाम क्षणिक कहकर फिर सत्व हेतुसे यदि क्षणिकको सिद्ध करोगे तो उसकी व्याप्ति नही बनती, क्योंकि सत्व हेतुकी व्याप्ति क्षणिकत्वके साथ नही है और जिसका अविनाभाव, प्रतिबन्ध न जान लिया जाय वह अनुमेय भी नही होता, नही तो गधेके सींग, खरगोशके सींग ये सब भी सिद्ध कर डालो, व्याप्ति बिना अगर किसी भी पदार्थको कुछ भी सिद्ध किया जाय तब तो कुछ भी व्यवस्था नही बनती। इस कारण सत्व हेतु देकर पदार्थमे क्षणिकत्व सिद्ध करना असिद्ध है। सत्व हेतुसे पदार्थोंकी क्षणिकताका ज्ञान नही होता।

क्षणिकवादमे कृतकत्वका स्वरूप सिद्ध न होनेसे कृतकत्व हेतुमे क्षणिकत्वकी असिद्धता—शकाकार अब अपनी अतिम बात एक रख रहा है कि सत्व होनेसे ये पदार्थ क्षणिक सिद्ध न हो सके तो न सही, मगर कृतकत्व हेतुसे तो पदार्थकी क्षणिकता सिद्ध कर लेंगे? ये सारे पदार्थ क्षणिक हैं क्योंकि कृतक हैं, किए गए हैं। जो जो चीज की गई हो वह क्षणिक होती है, विनष्ट हो जाती है। समाधान देते हैं—कृतकत्वसे भी क्षणिकता सिद्ध नही होती क्योंकि क्षणिक पदार्थमे कार्य कारण भाव सिद्ध नही होता। अच्छा तुम कहते हो कि पदार्थ क्षणिक है किया जानेसे तो क्षणिक पदार्थमे किये जानेकी बात सिद्ध नही होती, क्योंकि पदार्थ क्षणिक है। जिस समय उत्पन्न हो उस समय वह कुछ भी समर्थ है नही। उस समय तो उसे यह पडी है कि मेरा स्वरूप बन जाय पूरा। अब स्वरूप बन चुका। अब इसके बादमे कार्यका नम्बर आनेको था, इतनेमे ही वे जनाब नष्ट हो गए। तो अब कार्य कैसे सिद्ध हो? तो कृतकका स्वरूप सिद्ध न होनेसे कृतकत्व हेतु क्षणिक पदार्थके परिज्ञान करा देनेका कारण नही हो सकता। इस तरह जब पदार्थ की क्षणिकता सिद्ध नही हो

सकती अब बिल्कुल स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि विश्वास जिसके लिए किए हुए हैं और प्रतीति जिस प्रकारकी हो रही है कि ये सब पदार्थ स्थिर स्थूल और साधारण स्वभाव वाले हैं वह युक्त ही है स्थिरका तात्पर्य हुआ कि अनेक समयतक टिकने वाले, स्थूलका तात्पर्य हुआ कि परस्परका सम्बन्ध बनाकर पिण्डरूप होने वाला। और साधारण स्वभावका तात्पर्य निकला कि-सर्व पदार्थोंमे उस उस प्रकारके सदृश धर्म पाये जाते हैं इससे एक दूसरेके सदृश रहने वाला ऐसा मानना चाहिए। ऐसा माननेमे सामान्य आ गया। सामान्यका खण्डन क्षणिकवादमे किया जा रहा था वह खण्डित नही हो सकता। स्थिर स्थूल साधारण स्वभाव भावकी प्रतीति सही है सारे पदार्थ सामान्य विशेषात्मक हैं और ऐसा ही पदार्थ ज्ञानके विषयभूत हुआ करता है।

स्थिर स्थूल साधारणस्वभाव भावकी सिद्धिमे सम्बन्धका प्रतिपादन

शकाकार कहता है कि परमाणुवोमे परस्पर सम्बन्ध हो नही हो सकता। जैसे कि लोहेकी छडोमे परस्पर एकत्व अथवा सम्बन्ध नही हो सकता इस कारण जो कुछ लोगोको इन पदार्थोंमे स्थूल आदिककी प्रतीत हो रही है वह सब भ्रान्त है। जो पदार्थ मोटे जच रहे है तो भ्रान्त है क्योकि परमाणु परमाणु सब न्यारे-न्यारे है और वे कभी एक पिण्ड नही हो सकते। इसी कारण फिर जो स्थिरताका ज्ञान हो रहा है कि यह स्थिर है, स्थिरता प्रतीति भी भ्रान्त है। जब अणु-अणु न्यारे न्यारे है और पिण्ड बन नही सकते तो लोग पिण्डमे ही तो स्थिरताका भ्रम किए हुए हैं। साथ ही तीसरी बात जो कही है कि यह साधारणस्वभाव है और एक दूसरेके समान है, जैसे गाय गाय सब परस्पर समान हैं। जब परमाणुवोका सम्बन्ध ही नही बनता तो सदृशताका ज्ञान भी भ्रान्त है तो सदृश आदिककी प्रतीति भ्रान्त होने के कारण फिर कैसे सामान्य स्वभाव पदार्थ सिद्ध किया जा सकता है। समाधानमें कहते हैं कि यह कहना युक्त नही है, कारण कि सम्बन्धकी सिद्धि तो प्रत्यक्षसे ही हो रही है। जो पदार्थ प्रतिभासमे आ रहे हैं वे बराबर सम्बद्ध आ रहे ना, चूकि तखत भीट आदिक जो जो कुछ भी दृष्टिगत हो रहे हैं वे सब पिण्डरूपसे सम्बद्ध होते हुए नजर आ रहे हैं। देखो-कपड़े हैं तो ततु सम्बद्ध नजर आ रहे हैं, रूप जच रहा, रस जच रहा, गध है, स्पर्श है और इन काठ चौकी आदिकमे घनीभूत होकर यह परमाणुवोका पिण्ड नजर आ रहा है। यदि इनमे सम्बन्ध न होता तो फिर इनका प्रतिभास बिखरा हुआ होना चाहिए था। पर बिखरा हुआ कौन जान रहा है। सब सम्बद्ध ही दिख रहे हैं। कोई अन्य इस पिण्डरूपके प्रतिभास होनेके कारण हो सो और कोई कारण नही। ये सम्बद्ध हैं। घने मिले हुए हैं इसीलिए ये ऐसे सम्बद्ध नजर आ रहे हैं। तो प्रत्यक्षसे ही जब सम्बन्धकी प्रतीति हो रही तब यह कहना असिद्ध है साथ ही यह भी तो विचारिये कि परमाणुवोका परस्पर सम्बन्ध नही है, न्यारे न्यारे हैं ये ऐसी प्रतीति तो नही हो रही, उसकी तुम कल्पना कर रहे और जिस की प्रतीति हो रही कि ये सब पिण्डरूप हैं, सम्बद्ध हैं, उसे तुम भ्रान्त बता रहे। जो

प्रत्यक्षसिद्ध बात है उसका अपलाप करना ठीक नहीं है।

अणुओंका परस्पर सम्बन्ध न माननेपर अर्थक्रियाके अभावका प्रसंग- और, भी देखिये—यदि परमाणु ये मिलकर एक पिण्डमें न होते तो इनसे अर्थक्रिया नहीं हो सकती। घड़ेमें पानी भरते हैं तो यदि उसमें परमाणु बिखरे हुए हो तो पानी कैसे भरा जायगा? काममें ले रहे हैं और फिर भी कह रहे कि ये सब अणु हैं ये सब बिखरे हुए हैं। इनका परस्परमें सम्बन्ध नहीं है। प्रत्यक्षसे दृष्टिगत हो रही है कि इनका सम्बन्ध है परमाणुवोंका अगर परस्परमें सम्बन्ध न हो तो भला कोई घड़ेमें जल रख लेवे। कैसे रखेगा? अथवा कुएंसे जल खींच लवें, कैसे खिंचेगा? अगर सम्बन्ध नहीं मानते तो ये सारे काम नहीं बन सकते। और, भी प्रत्यक्ष देखलो—एक रस्सीका छोर पकड़कर खींचा तो रस्सी खिंचकर आ जाता है तो सम्बन्ध है तभी तो खिंचकर आयी, सम्बन्ध न हो तो कैसे खिंचकर आये। बिखरे हुए बहुतसे गेहूंके दाने पड़े हों तो १०-२० दाने उठानेसे ढेर तो नहीं सरक आता। तो जहां जो बिखरा है वह वहां अत्यन्त असम्बद्ध है। बांसका डण्डा एक जगह से उठावें तो सारा उठ जाता है। एक जगहसे हिलाया तो सारी जगह हिल जाता है। तो ये काम सब बता रहे हैं कि ये सब मिलकर एक पिण्डरूप हो गए। इससे सिद्ध है कि इनमें अनेक परमाणुवोंका सम्बन्ध न होता तो इनसे अर्थक्रिया नहीं हो सकती थी। कोई काम नहीं लिया जा सकता था।

अणुओंमें पारतन्त्र्यलक्षण सम्बन्धकी असिद्धिका शंकाकार द्वारा कथन—शंकाकार कहता है कि तुम इन पदार्थोंमें अणुवोंमें परस्पर सम्बन्ध मान रहे हो तो उस सम्बन्धका अर्थ क्या है? याने परतन्त्रता हो जानेका नाम सम्बन्ध है या एक दूसरेमें प्रवेश कर जानेका नाम सम्बन्ध है। यदि कहो कि सम्बन्ध नाम है परतन्त्रताका, एक दूसरेके परतन्त्र हो गए इसका नाम है सम्बन्ध जैसे कि दो रस्सियों को परस्परमें एक दूसरेमें बांध दिया तो देखिये वे एक दूसरेके परतन्त्र हो गईं। क्या ऐसा सम्बन्धका अर्थ है? यदि यह अर्थ मानते हो तो यह बतलावो कि वे दो चीजें जिनमें परतन्त्रता आयी है वे पहिलेसे तैयार अपनी सत्ता रखने वाली हैं या वे अनिष्पन्न हो पैदा ही न हो इस प्रकारके ऐसे दो पदार्थोंमें, परतन्त्रता रूपकी कल्पना कर रहे हो वे दो पदार्थ अनिष्पन्न तो हैं नहीं। यदि अनिष्पन्नमें परतन्त्रता मानते हो तो जो स्वरूपसे ही असत् हैं, उत्पन्न ही नहीं हुए हैं उन पदार्थोंमें सम्बन्ध माननेपर फिर तो खरगोशके सींग और घोड़ेके सींग इनमें भी सम्बन्ध बना दो, इनमें भी पारतन्त्र्य बना लो। तो जो चीज असत् है उनमें सम्बन्ध क्या कहा जा सकता? यहां तुम मानते हो कि प्रत्येक पदार्थ अनिष्पन्न है। तो अनिष्पन्नका अर्थ है, जिसकी सत्ता नहीं, अनिष्पन्नका अर्थ है जो उत्पन्न न हो। तो जो बने नहीं, असत् हैं उसमें सम्बन्ध कैसा? यदि कहो कि हम उन निष्पन्न दोनों

पदार्थोंमे परतन्त्रतारूप सम्बन्ध मान रहे हैं अर्थात् वे दोनो पदार्थ निष्पन्न हैं, स्वतन्त्र हैं, परिपूर्णरूपसे उत्पन्न हैं तो जो स्वतन्त्र हैं, निष्पन्न है उनमे परतन्त्रता हो ही नही सकती। क्या कोई भी सत् किसी दूसरेके आधीन है ? अध्यात्मवादमे तो इसका बहुत बडे विस्तारसे वर्णन चलता है कि कोई भी सत् किसी दूसरे सत्के आधीन नही हो सकता। जीव और कर्म इनको घनिष्ठ सम्बन्ध वाला माना है लेकिन प्रत्येक जीवकी परिणति कर्मकी परिणतिमे नही होती। तो जीव कर्मकी परिणतिसे परतन्त्र नही है किन्तु अपने ही विभावसे परतन्त्र हैं। तो जब निष्पन्नोमे परतन्त्रता नही बन सकती है तो सम्बन्ध भी नही बना। तो सम्बन्धका लक्षण परतन्त्रता तो कह नही सकते, क्योंकि जिसमें सम्बन्ध बना रहे हो यह पदार्थ ही अगर असिद्ध है, असत् है तो सम्बन्ध क्या ? और, वे दोनो पदार्थ निष्पन्न हैं जिनमें कि सम्बन्ध बनाया जा रहा तो फिर परतन्त्रता क्या ? जैसे हिमालय पर्वत और विन्ध्याचल पर्वत ये दोनो पूरे हैं तो क्या ये किसी दूसरेके आधीन बन गए ? इसी प्रकार वे अणु निष्पन्न है तो उनमे परतन्त्रता नही बन सकती। इस कारणसे सभी अणुवोमे वास्तव में सम्बन्ध नही है।

अणुओमे रूपश्लेष सम्बन्धके अभावका शंकाकारद्वारा प्रस्ताव—यदि कहो कि रूपश्लेष वा अन्योन्यप्रवेश हो जाय इसका नाम सम्बन्ध है, शकाकार ही अभी कह रहा है कि जैन आदिक लोग अगर सम्बन्धकी यह व्याख्या करें कि एक दूसरेमे प्रविष्ट हो गया उसका नाम सम्बन्ध है तो भला सोचिये तो सही कि सम्बन्ध होता है दो पदार्थोंमे। एकका सम्बन्ध क्या ? एक तो एक ही है। तो जब वे दो हैं तब एक दूसरेमे प्रवेश क्या कहलाया ? और, अगर वे परस्पर मे प्रवेश कर गए तो वे एक ही हो गए। अब उनमे सम्बन्ध क्या ढूढना ? तो अब सम्बन्ध ही न रहा उनमे, अन्योन्य प्रवेश कर दिया और इस तरह वे एक बन गए तो अब दो तो न रहे। तो जब सम्बन्ध दो पदार्थ न रहे तो सम्बन्ध नही लगाया जा सकता, क्योकि सम्बन्ध दो पदार्थों मे होता अन्योन्य प्रवेश निरन्त रहता है अथवा निरन्तर बना रहनेका नाम है रूपश्लेष। जैसे यह चौकी यदि एक पिन्डरूप है तो ऐसा सघन निरन्तर बना रहे जिसके बीच अनन्तर न हो। उसीके मायने रूपश्लेष है, वही सम्बन्ध है। तो शकाकार उत्तर देता है कि देखो—नैरन्तर्यका अर्थ क्या है ? निरन्तर बना रहना, अन्तररहित बना रहना। आप अन्योन्याप्रवेशका रूपश्लेषका अर्थ यह कह रहे हो कि एक पदार्थ दूसरे पदार्थके ऐसा निकट रहे कि उसके बीचमे न अन्तर न आये। इसीको तो सम्बन्ध कहते हो ना ? ऐसे ही अणुवोका सम्बन्ध मानते कि वे अणु एक दूसरेसे ऐसा चिपटकर रह गए कि उनके बीचमे कोई एक अणु डालने तककी भी जगह न रहे। ऐसा वह पदार्थ अन्तररहित हो उसका नाम सम्बन्ध बताते हो। जैसे चौकीपर यह चश्मा धर रखा तो यह सम्बन्ध हो गया इन दोनोका, सम्बन्धके मायने यह है कि इन दोके बीचमे कोई अन्य चीज नही लगी

जो सबसे आखिरी अश हो, जिसका दूसरा अश न हो सके, उसका ही नाम परमाणु है तो फिर उस परमाणुमे एक देश बन गया तो इसके मायने है कि उसमे कोई अंश है। उनमेसे एक प्रशकी बात कह रहे, तो जो निरश परमाणु हैं उनमे एक देश से रूपश्लेष हो ही नही सकता। परमाणु निरश है और एक देश जो माना, वह भी परमाणुस्वरूप तो क्या रहा, परमाणु ही रहा। अब उसका एक देशसे क्या सम्बन्ध? यदि कहो कि एक देश भिन्न चीज है तो फिर यह बतलावो कि उन एक एक चीजोका परमाणुमे भी सम्बन्ध कैसे हो ? क्या सर्वदेशसे हो या एकदेशसे हो ? ऐसे ही प्रश्न उठते रहेंगे। इनका उत्तर कहीं भी न हो पायगा। तो अनवस्था दोष आता है। इसी प्रकार न तो स्थिरस्थूल पदार्थसे परतन्त्रतारूप सम्बन्ध रहा और न रूपश्लेप नामका सम्बन्ध रहा। अतएव जो यह ज्ञान हो रहा यह स्थिर है, यह स्थूल है आदिक तो ये सब भ्रान्त ज्ञान हैं और भ्रान्त होनेसे सामान्य पदार्थकी सिद्धि नही हो सकती।

पदार्थोमे पारतन्त्र्यलक्षण सम्बन्धका तथा सम्बन्ध विधिका प्रतिपादन—पदार्थोमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे सिद्ध करनेके लिए क्षणिकवादीने जो सम्बध के अभावकी सिद्धि की थी उसमे जो यह विकल्प उठाया था कि सम्बन्ध नाम किसका है ? क्या परतन्त्रता हो जानेका नाम सम्बन्ध है या रूपश्लेप हो जानेका नाम सम्बन्ध है। तो पारतन्त्र्यलक्षण सबन्धमे जो दूषण दिया था शकाकारने वह दूषण उपयुक्त नही है। कारण यह है कि स्कधरूपसे एकत्व परिणमन होना यही तो पदार्थोकी परतत्रता है। और वह प्रतीतिसे बराबर प्रसिद्ध है। यह कहना कि अणु अणु प्रत्येक लोहेकी सलाईकी तरह न्यारे-न्यारे हैं, उनमे परतन्त्रता कैसे बन सकती है ? तो परतन्त्रता देखो बिल्कुल प्रत्यक्षसे सिद्ध है। जैसे चौकीको सरकाते है यो उसमे अनन्त परमाणुवोको उनके पीछे सरकना पडता है। तो स्कध रूपसे परिणमन होनेका नाम परतत्रता है। भिन्न भिन्न परमाणु जो थे अब वे भिन्न रूपमे न रह सके, स्कधरूपमे आ गए यही तो परतंत्रता है, अन्यथा इन क्षणिकवादियोके द्वारा माने गए असबधमे भी यही दोष दे सकते हैं और देखिए पदार्थोंका सबन्ध हम न सर्वात्मकरूपसे मानते हैं न, एकदेश रूपसे मानते हैं अर्थात् सम्बन्धके ये कारण नही कहे जिनसे कि यह दोष आ जाय कि सर्वात्मने सम्बन्ध हुआ अणुवोका सारा पिण्ड अणुमात्र रह जायगा आदि जो दोष दिये गए वे दोष सम्भव नही हैं, क्योकि हम न तो सर्वात्मकरूपसे सम्बन्ध माननेका नियम बनाते हैं और न एक देश रूपसे सम्बन्ध होनेका नियम बनाते हैं, किंतु प्रकारान्तरसे ही यह सम्बन्ध माना गया है। अणुवोमे सर्वरूपसे सम्बन्ध असम्भव है और अणुवोमे एकदेशका भी सम्बन्ध असम्भव है। सर्वदेशका सम्बन्ध तो यो असम्भव है कि अणु क्या पूरे रूपसे दूसरे अणुमे चला गया सो तो नही। ऐसा मानो तो दोष दे सकते कि फिर अणुवोका पिण्ड अणुमात्र रह गया और अणुवोमे एकदेशसे इस कारण नही कि अणुवोमे अश तो नही होते कि यह अणुवोका एकदेश है, यह दूसरा देश है, इस तरह अनेक प्रदेश मिलकर अणु नही बने ! तो अणुवोमे न तो

सर्वात्मकरूपसे सम्बन्ध सम्भव है और न एकदेशसे, किन्तु यह तो प्रकारान्तरसे सम्भव है। प्रकारान्तर क्या है? सो अभी बतायेंगे। पहिले तो यह समझें कि इन स्कन्धोंमें सम्बन्ध प्रत्यक्षसिद्ध है क्योंकि इनमें सम्बन्धकी बराबर प्रतीति हो रही है तब इनमें सम्बन्ध परिणति किस ढंगसे है यह है स्निग्ध रूक्षत्वके निमित्तसे। अणुओंमें स्निग्ध और रूक्षत्व गुण है जिसके कारणसे इनमें बंध माना गया है।

सम्बन्धसिद्धिके प्रसंगमें दृष्टान्तपूर्वक प्रकारान्तर और कथंचित् एकत्व परिणतिकी सिद्धि—जैसे सत्तू और पानीमें सम्बन्ध हुआ है ना। वह स्निग्ध और रूक्षताके कारण ही तो हुआ है। सत्तू है रूखा और पानी है स्निग्ध। जैसे दोनों का सम्बन्ध बन जाता है ऐसे ही अणुओंमें कोई अणु होते हैं स्निग्ध और कोई रूक्ष, तो इन कारणोंसे ये सब सम्बन्ध बन जाते हैं। और, सम्बन्ध होनेपर उन पदार्थोंमें पहिले समयमें रहने वाली स्थितिसे विलक्षण स्थिति हो जाती है। ये परमाणु जब तक कि सम्बन्धको प्राप्त न थे वे विश्लेषरूपमें थे। और जब सम्बन्ध हो गया तो ये संश्लिष्टरूपमें आ गये तो देखिये—उन परमाणुओंने विश्लिष्टरूप पनेका त्याग किया और सम्बन्धितरूप पनेका ग्रहण किया। तब देखिए कि किसी प्रकार सम्बन्धसे हुई ना कुछ बात। बस यह एकत्व परिणति है। सम्बन्धसे पहिले ये अणु बिल्कुल स्वतन्त्र न्यारे न्यारे थे। अब सम्बन्ध होनेपर वे ही अणु विश्लेषपनको त्याग देते हैं और संश्लेषरूपको ग्रहण करते हैं। तो पहिले असम्बन्धकी दशासे जो कुछ विलक्षण बात पायी है, सम्बन्ध होनेपर बस यह उसमें एकत्व परिणति है यही सम्बन्ध है पदार्थमें। जैसे क्षणिकवादी मानते हैं कि जब चित्रज्ञान होता है अर्थात् पदार्थ है दुनियामें अनन्त वे सब पदार्थ ज्ञानमें अपना आकार दे देते हैं। जितनी जिसके ज्ञानमें योग्यता है उतना उसमें बराबर प्रदान कर देता है तो जब आकार उन समस्त पदार्थोंका आ गया ज्ञानमें तो अब ज्ञानमें यह भेद तो नहीं कर पाते कि देखो—यह तो है नीलादिक आकार और यह है ज्ञान। ज्ञानमें आकार आ जानेपर अब वहाँ यह विभाग नहीं कर सकते कि यह तो है ज्ञानकी बात और यह है नीलाकारकी बात। तो जैसे चित्रज्ञानमें नील आदिक आकारसे सम्बन्ध है और वह कैसे सम्भव है। एकत्व परिणतिरूप, जिसमें यह भी जाहिर हो रहा है कि सम्बन्ध होनेसे पहिले जो अवस्था थी ज्ञानकी उसको तो त्यागें और नीलादिक आकारोंका सम्बन्ध होनेपर उस ज्ञानक्षणमें एक नवीन परिणति हुई तो अन्यथा रूप परिणाम जाना यह हुई एक परिणति। यही हुआ सम्बन्ध। जैसे चित्रज्ञानमें नीलादिक आकारका सम्बन्ध है इसी प्रकार इन अणुओंमें भी परस्परमें सम्बन्ध है और इसी कारण वे अणु पहिले तो विश्लेषपनमें थे, उसका तो त्याग किया और अब संश्लेषरूपमें आ गए। चित्रज्ञान में भी आत्यतर रूपका उत्पाद होना, इसके अतिरिक्त और कुछ भिन्न सम्बन्ध तो नहीं कह सकते, याने चित्रज्ञानमें जो नीलादिक अनेक आकार आये हैं उन नीलादिक आकारोंसे इस ज्ञानको अलग तो नहीं किया जा सकता। असम्बन्धविवेचनवाका

जो दोष रहे हैं वे कोई दोष नही आ सकते ।

परमाणुओमे अविभागिता व स्वभावभेदका प्रतिपादन—श कार कहता है कि इस तरह तो परमाणुओमे अशवानका प्रसग आ जायगा माणु साश हो गए, निरश न रहे । उत्तर देते हैं कि यह भी तुम्हारी बात है, क्योकि यहापर अश शब्दका अर्थ आप क्या कर रहे हैं ? क्या अश स हैं या अवयवार्थक है ? यदि कहो कि अश शब्द स्वभावार्थक है, अश मानने तो कहते हैं कि अशका केवल स्वभावार्थ करनेपर कोई दोष नही है क्योंकि भिन्न दिशाओमे व्यवस्थित रहने वाले अनेक परमाणुओके साथ अन्यथा सम्ब बन सकता था, याने उसमे किसी प्रकार स्वभावभेद मान लिया जाता सम्बन्ध बनता है । सो इतने ही मात्र कारणसे उन अणुवोमे स्वभाव भेदकी होती है । अर्थात् अणु नाना दिशाओंमे पडे हुए है । जब वे बिखरे हुए भि देशोमे पडे हुए हैं तब उनमे स्वभाव बिखरेपनका, स्वतन्त्रताका है । और, सम्बन्धको प्राप्त हो गए तब उनमे वह बिखरापन भिन्न भिन्न दिशाओमें र है । यह स्वभाव तो अब न रहा इसलिए कथचित अणु-अणुमे भी स्वभाव कर उनको अश अश कह लीजिए । पर वे दो प्रदेशी हो, बहु प्रदेशी हो, इस अश वाले पमराणु नही हैं । यदि अश शब्दका अर्थ अवयवार्थक कहते हो, अ अवयव । तो यह बात बिल्कुल सिद्ध नही है । परमाणुओमे अवयव नही पाये स्वभाव भेद तो मिल गया पर अवयव भेद नही है, क्योकि परमाणु तो उनके कोई टुकडे नही किए जा सकते हैं, अतएव परमाणुमे अवयव सम्भव तो इतने कथनका तात्पर्य यह है कि परमाणु जितने बिखरे पडे हैं वे वि स्वभावको त्यागकर एक स्कधरूपसे परिणत होनेका स्वभाव बना लेंगे, ऐसा ही तो सम्बन्ध बन रहा है जो कि प्रत्यक्षसिद्ध है । तो उस सम्बन्धमे अव भेद हो गया । परमाणुमे स्वभाव भेद आ गया । सम्बन्धसे पहिले नाना दिशाओमें रहने वाले परमाणुका स्वभाव और तथा सम्बन्ध होनेपर वह अ उसका स्वभाव हुआ, इस सस्कार स्वभावभेद सम्भव होनेपर यह न विरोध होगा कि वह अविभागी है । अर्थात् शकाकार यह कहने लगे कि जब परमाणु भाव भेद हो गया तो वे परमाणु विभागी हो गए, न्यारे न्यारे हो गए सो बा है । परमाणु अविभागी ही है । स्वभावभेद होनेसे कही परमाणुवोमे भेद अथ नही किया जा सकता । अविभागी होना दूसरी बात है । स्वभावभेद होने पदार्थ अविभागी रह सकता है । परमाणुमे इस प्रकारका स्वभावभेद सि लीजिए, किन्तु वे परमाणु स्वभाव भेदके कारण विभागी बन जाय, खड खड हो जाय, उनमे भेद हो जाय यह बात सम्भव नही है । परमाणु अविभागी हैं पनकी हालतमे परमाणुवोका स्वभाव और हैं तभी तो देखिए कि जब स्कधमें न थे परमाणु तब वहा पानी तो नही भरा जा सकता । अब घटरूप

आये तब उसमे जल भरने आदिक अर्थक्रिया भी होने लगी। इससे सम्बन्ध वास्तविक है और इसी कारण पदार्थ स्थिर स्थूल और साधारण स्वभाव वाले भी हैं।

कथञ्चित् निष्पन्न पदार्थोमे सम्बन्धकी सिद्धि—शङ्काकारका जो यह कहना था कि पारतन्त्र्यरूप सम्बन्ध क्या निष्पन्न पदार्थोमे होता है या अनिष्पन्न पदार्थोमे अनिष्पन्न पदार्थोमे तो होना अशक्य है, क्योकि अनिष्पन्न मायने असत् है। निष्पन्न पदार्थोमे मानोगे तो वे तो निष्पन्न हैं ही, उसमे सम्बन्ध माननेकी जरूरत ही नही। ऐसा कहकर सम्बन्धका निराकरण किया वह ठीक नही है क्योकि हम न सर्वथा निष्पन्नोका सम्बन्ध मानते न सर्वथा अनिष्पन्नोका सम्बन्ध मानते, क्योंकि सम्बन्ध्य दोनो पदार्थ कथचित् निष्पन्न है जिसका कि सम्बन्ध माना गया है। जैसे कपडा बना है तो ततुवोके सम्बन्धसे बना है तो वहाँपर वह कपडा ततुद्रव्यरूपसे तो निष्पन्न ही है पहिलेसे निष्पन्न है याने ततुवोके परस्पर सम्बन्धसे वह कपड़ा बना है तो प्रश्न तो यहा किया जायगा ना कि वह द्रव्य निष्पन्न है या अनिष्पन्न है ? तो, सत्के तो पूरे रूपसे निष्पन्न ही है। ततु द्रव्यरूपसे निष्पन्न ही है। अब अन्वयी द्रव्य हुए ततु क्योकि ततु पटकार्यमे रहता है। कपडा बननेपर अन्वयी द्रव्यका पट परिणमन बननेसे पहिले भी सत्व है, तो वह ततु द्रव्यरूपसे तो निष्पन्न ही है और पटरूप से अनिष्पन्न है। कपडा तो अभी नही बना ततुवोसे सम्बन्ध होकर कपडा बनेगा तो जो भी सम्बध बन रहा है वह कथचित् निष्पन्नमे बन रहा है, तो यह उलाहना देना ठीक नही कि सम्बन्ध निष्पन्नमे बनता या अनिष्पन्नमे ? निष्पन्न मायने तैयार मौजूद, उत्पन्न। उत्तरमे कह रहे हैं कि सबध कथचित् निष्पन्नमे बनता है, सर्वथा निष्पन्न नही, किंतु कथचित् निष्पन्न बनता है। जैसे मिट्टीसे घडा बनाया तो मिट्टीके स्कधोका सम्बन्ध जुडना, पानी वगैरह लाकर उसका एक पिण्ड बना तभी तो घट बनता, सो उसमें जो मिट्टीके अणुवोका सम्बन्ध बना और घट बन गया तो वहा देखो कि मिट्टीरूपसे तो पदार्थ निष्पन्न है और घटरूपसे पदार्थ अनिष्पन्न है तो निष्पन्न पदार्थोमें सम्बन्ध बनाकर अनिष्पन्न पदार्थ (कार्य) निष्पन्न होता है। जैसे ततुवोका सबध जोडकर कपडा बना तो वहा जो भी द्रव्य है, वह सूतके रुपसे तो निष्पन्न है, उत्पन्न है, तैयार है, सही शुद्ध है और कपडेके रुपसे अभी अनिष्पन्न है सो ततुरुप तो स्वरुप से निष्पन्न है, पर कपडेके परिणमन रुपसे अनिष्पन्न है। तो यो कथचित् निष्पन्नका सम्बन्ध बनना विरुद्ध नही है। और भी देखिये ! कभी कोई किसीसे हाथ मिलाता है, नमस्कार करते हुए, तो हाथका जो मिलावट है तो वहा सम्बन्ध ही तो हुआ, एक, एकके हाथका दूसरेके हाथसे सम्बन्ध हुआ। अब उसमे शकाकार यो कानून छाटे कि यह बताओ कि वह जो सम्बन्ध हुआ है दो हाथोमे वह निष्पन्नमे हुआ कि अनिष्पन्न मे ? अनिष्पन्नमे तो कह नही सकते। निष्पन्नमे सम्बन्धकी जरुरत क्या ? तो वहा भी यही उत्तर है कि कथचित् निष्पन्नोसे सम्बन्ध हुआ। दो पुरुषोके वे दोनो हाथ अपने-अपने स्वरुपसे तो निष्पन्न हैं और सयोगात्मक रुपसे अनिष्पन्न हैं जो सम्बन्ध

वन करके एक मिलनात्मक, नमस्कारात्मक एक वातावरणको उत्पन्न कर देता। तो यो कथंचित् निष्पन्नमें पारतन्त्र्य रूप सम्बन्ध बनता है। सम्बन्धका यह पारतन्त्र्य लक्षण असिद्ध नही है। सम्बन्धमे पारतन्त्र्य तो मिलता है। अचेतनका सम्बन्ध हो गया परस्पर तो वे परतंत्र हो गए। जैसे छितरे हुए मिट्टीके दाने स्वतंत्र-स्वतंत्र थे। उनका सबंध करके घडा बना दिया तो उसे जहाँ उठाया वहा सब उठे, जहा ले जायें वहा सबकी गति हुई। तो परतन्त्रता ही तो हुई। जीव और शरीरका सम्बन्ध है। सम्बन्ध नाना किस्मके होते हैं। सबंधके प्रकार तो जान लो कि कोई सयोग सबंध है, कोई कथंचित् तादात्म्य है। तो यह सब समझ लेनेसे सबंधमे विदित होती है परतन्त्रता अर्थात् जहाँ एक जाता है वहाँ सब जाते हैं। तो परतन्त्ररूप सबंध कथंचित् निष्पन्नमे होता, अनिष्पन्न स्वरूपता तो उसमे थी जो कि सम्बन्धमें बात न थी।

पारतन्त्र्याभाव व सबंधाभावके सम्बन्धकी प्रसिद्धि अथवा असिद्धिके शंकाकारके प्रति विकल्प—अच्छा, अब शकाकार ही खुद बतावे! जो यह कह रहा है कि परतन्त्रताका अभाव है इसलिए सबंधका भी अभाव है। परतन्त्रताका अभाव यो कह रहा शकाकार कि चूँकि सभी पदार्थ अपने स्वरूपसे पूर्ण निष्पन्न हैं, कोई किसीके आधीन नही है। अध्यात्मवादमे तो ऐसी बात सभी लोग कहा करते हैं कि सब वस्तु स्वतंत्र हैं, परतंत्र कोई नही है। तो जब परतंत्र कुछ नही तो सबंध क्या हो सकता है? तो शकाकारने जो यह कहा कि परतन्त्रताका जो अभाव है वह सबंधके अभावको सिद्ध करता है। परतन्त्रता न होना सबंध न होनेको सिद्ध करता है। तो उनसे पूछा जा रहा है कि तुम जो यह सिद्ध कर रहे हो कि पदार्थमे परतन्त्रताका अभाव है—सम्बन्धका अभाव होनेसे, तो यह बतलावो कि यहाँ जो दो चीजें हैं सामने परतन्त्रताका अभाव और सम्बन्धका अभाव, इन दोनोमे कुछ सम्बन्ध है या नही? जब साध्य और साधन बोला जाता है य। अग्नि होनी चाहिए धुआँ होनेसे तो अग्नि और धुवाँका सबंध तो कुछ माना जाता है। कहीं अनुमानमे कार्यकारण सबंध होता है, किसीमे व्याप्य-व्यापक सबंध होता है। सबंधके बिना अनुमान तो नही बनता। तो तुम जो सिद्ध कर रहे हो कि पदार्थोंमे परतन्त्रताका अभाव है सबंधका होनेसे, तो इन दोनोका सम्बन्ध है कि नही कुछ? जहाँ जहा सम्बन्धका अभाव हो वहा वहा परतन्त्रताका अभाव हो। जहा परतन्त्रताका अभाव नही है वहाँ सबंधका अभाव नहो। किसी रूपसे कोई सबंध उसमे है कि नही? यदि कहो कि सबंध है तो बस सिद्ध हो गया सम्बन्ध! किसी रूपसे मान तो लिया सम्बन्ध। अब यह तो नहीं कह सकते कि सब जगह सब समय म्बन्धका अभाव ही है। देखो! इस अनुमान प्रयोगमे परतन्त्रताके अभावके साथ सम्बन्धके अभावका सम्बन्ध जुड गया है। और, यदि कहो कि सम्बन्ध नही है तो फिर साधनसे साध्यकी सिद्धि कैसे हो जायगी? अव्यापकके अभावसे अव्यापक अभावकी सिद्धि नही हो सकती अर्थात् जो जिसमें व्यापक नही उसके अभावसे दूसरेके अभावकी सिद्धि करना फिर असम्भव हो जायगा।

अन्यथा हम जहाँ चाहे कह बैठेंगे कि वहाँ कपड़ा नहीं है। भाई तुमने कैसे जाना कि कपड़ा नहीं है? अजी, यहाँ घड़ा नहीं है इससे जान लिया, घड़ेके अभावसे कोई कपड़ेका अभाव कह बैठे क्योंकि सम्बन्ध बिना जब साध्य साधन मानने लगे तो किसी अभाव कहकर किसीका अभाव बता दीजिए! तथा किसीका सद्भाव बताकर किसीका भी सद्भाव कह दीजिये! इससे परतन्त्रतारूप सम्बन्ध सिद्ध है प्रतीतिमे आता है और सम्बन्ध होनेके कारण पदार्थोंमे स्थिर स्थूल साधारण स्वभावका ज्ञान होता है।

असाधारणस्वरूप बने रहनेपर भी पदार्थोंमे कथंचित् एकत्वापत्तिरूप सम्बन्धकी सभवता—अब शकाकार कहता है कि देखो—पदार्थोंमे एक सम्बन्ध माना है तुमने रूपश्लेष अर्थात् एक दूसरेमे प्रवेश। तो सम्बन्ध जो कुछ भी होता वह दो पदार्थोंमे होता। और, जब दो पदार्थ हैं कोई तो तुमने माना है कि दो ही हैं और हैं वे दो स्वभावसे वे भिन्न ही हैं। सो वे अपने स्वरूपसे, स्वभावसे जुदे-जुदे नहीं होते। यानी दो किसे कहते? जब दो पदार्थ स्वभावसे भिन्न हैं तब उनमे अन्योन्यप्रवेशका सम्बन्ध कभी बन ही नहीं सकता। जब प्रकृतिसे भिन्न हैं दो पत्थर है, प्रकृतिसे भिन्न हैं, न्यारे-न्यारे हैं तो क्या वे एक दूसरेमे प्रवेश कर जायेंगे? इसी तरह परमाणु भी सब पूर्ण सत् हैं, प्रकृतिसे भिन्न भिन्न हैं, अपने-अपने स्वरूपको लिए हुए हैं तो उनमें फिर अन्योन्यप्रवेशरूप सम्बन्ध कैसे बन सकता है? इस कारण वास्तवमे सम्बन्ध कुछ चीज नहीं है। सर्व पदार्थ स्वतन्त्र अपने अपने स्वरूपमे होने वाले बिखडे पडे हुए हैं। सम्बन्ध तो इनका भ्रमसे दिखता है। जैसे कि सोते हुएमे स्वप्नमे जो चीजें दिखती हैं वे हैं तो नहीं इसी प्रकार अज्ञानमे अर्थात् चूंकि पदार्थोंके स्वरूपका सही ज्ञान लोगोको नहीं है इसलिये अज्ञानमे ये सब पदार्थ मिले हुए सश्लिष्ट दिखते हैं। अब इसका उत्तर देते हैं कि ऐसा दूषण देना कि जब पदार्थ प्रकृतिसे भिन्न हैं तो उनमे रूपश्लेष कैसे होगा? यह दूषण एकान्तवादमे तो लग सकता है, पर स्याद्वादके यहाँ यह टिक नहीं सकता, क्योंकि सम्बन्धी दो पदार्थोंमे कथंचित् एकता आ जाना यही रूपश्लेष माना गया है। भले ही कैसे हो दो भिन्न पदार्थ हो फिर भी उनमे कथंचित् एकता आ जानेका नाम सम्बन्ध है। जैसे प्रकृतबातमे ही घटा लीजिए। परमाणु अनेक हैं और पूर्ण स्वतः सिद्ध हैं, निष्पन्न हैं। उन परमाणुओमे अब ऐसी स्थिति बनती है कि कथंचित् एकता आ जाती है बस वही सम्बध है। सर्वथा एकता आनेकी बात तो न रही, क्योंकि इन स्कधोमे जैसे कि यह चौकी है—इसमे परमाणु एक-एक करके अनन्त हैं। और उन सब परमाणुओका इस समयमे एक स्कधरूप परिणमन है ये दोनो बातें सही हैं कि नहीं? तो देखो कथंचित् तो रूपश्लेष हो गया क्योंकि अब जुदे जुदे परमाणुओकी विवेचना अथवा विभाग नहीं कर सकते। जैसे सत्तू और पानी मिलाया, सत्तू घुल गए। अब बतलावो सत्तू और पानीमे कथंचित् ऐकत्व आ गया कि नहीं, क्योंकि उस समय सत्तू और पानीमे विभाग नहीं किया जा सकता कि यह सत्तू है और यह

पानी । इस कारण कथंचित् एकत्व है और सत्तू व पानी मिलनेके बावजूद भी सत्तू के कण सत्तूमें और पानीके कण पानीमें है, हैं ना, दोनोंके अलग-अलग इस कारण उनमें अश्लेष हैं । तो असाधारणस्वरूप रहनेका नाम है अश्लेष और कथंचित् एकत्व हो जानेका नाम है श्लेष । अर्थात् कथंचित् सम्बन्ध है, सर्वथा सम्बन्ध नहीं है । और यह सम्बन्ध उन दो पदार्थोंके द्वित्वका याने दो बने रहनेका विरोध नहीं रखता । जैसे अनन्त परमाणुवोंको मिलकर यह स्कंध चौकी बना है, तो सम्बन्ध तो हो गया, पर यह संबंध होनेपर भी वे परमाणु एक एक करके अनन्त हैं । इसका कोई विरोध नहीं आता । क्योंकि सम्बन्धकी दशामें भी वे परमाणु प्रत्येक अपना अपना असाधारणस्वरूप बराबर रख रहे हैं ।

आपेक्षिकत्व हेतु देकर भी सम्बन्धके अभावकी असिद्धि—अब शंकाकार कहता है कि देखिये सम्बन्ध होता है आपेक्षिकत्व और आपेक्षिकत्व जो चीज होती है वह मिथ्या होती है । जैसे यह पदार्थ मोटा है । यह पदार्थ पतला है, यह आपेक्षिक चीज है कि नहीं ? तो किसी एक पदार्थको कोई आपके सामने रख दे तो क्या आप बता सकेंगे कि यह पतला है ? कोई उससे मोटा पदार्थ उसके सामने होगा तो उसकी अपेक्षा लेकर कहा जा सकेगा कि यह पतला है । तो जैसे सद्भाव आपेक्षिक चीज है इस कारण मिथ्या है इसी प्रकार सम्बन्ध भी आपेक्षिक चीज है । कहीं एकमें ही तो संबंध नहीं बन बैठता । दूसरेकी अपेक्षा रखते हैं तो सम्बंध बनता है । तो यों आपेक्षिक होनेके कारण सम्बन्ध स्वभाव मिथ्या है । उत्तर देते हैं कि इस तरह सम्बन्धको मिथ्या कहोगे तो हम कहेंगे कि असम्बन्ध मिथ्या है । जैसे सम्बन्धका होना किसी दूसरेकी अपेक्षा रखता है इसी तरह सम्बन्धका न होना भी दूसरेकी अपेक्षा रखता है । जब कहा जाता कि इसमें सम्बन्ध है तो प्रश्न होता कि किससे सम्बन्ध है ? तो इसी तरह जब कहा जाय कि इसमें सम्बन्ध नहीं है तो वहाँ प्रश्न हो सकता है कि किससे सम्बन्ध नहीं है ? तो जैसे सम्बन्ध आपेक्षिक है इसी प्रकार सम्बन्धका अभाव भी आपेक्षिक है । और आपेक्षिकका मानते हो मिथ्या तो सम्बन्ध का अभाव भी मिथ्या हो जायगा । इस कारण आपेक्षिक होनेपर भी जैसे सम्बन्ध का अभाव मानते हो इसी प्रकारसे सम्बन्ध भी मान लिया जाना चाहिए ।

सम्बन्धको आपेक्षिक बनाकर अवास्तविक सिद्ध करनेको शंका व समाधान—शंकाकार कहता है कि असम्बन्ध तो निर्विकल्प प्रत्यक्षज्ञानमें स्पष्ट प्रतिभात होता है, इस कारण अनापेक्षिक हो है । सम्बन्धका निषेध करने वाला क्षणिकवादी कह रहा है कि दो पदार्थोंमें सम्बन्ध नहीं है । तो जब सम्बन्ध नहीं है तो असम्बन्धका ज्ञान तो प्रत्यक्ष बुद्धिमें प्रतिभासमान होता है, क्योंकि क्षणिकवादका प्रत्यक्ष है निर्विकल्प और जहा कुछ भी विकल्प नहीं है वहा सम्बन्ध यों विदित नहीं होता । तो असम्बन्ध अनापेक्षिक ही है । इसके पश्चात् होने वाले विकल्पके द्वारा

निश्चित किया गया यह असम्बन्ध आपेक्षिक कहलाने लगता है। अर्थात् सर्वप्रथम तो जब प्रत्यक्षसे पदार्थोंको देखते हैं तो सभी पदार्थ स्व-स्व लक्षणमात्र नजर आते हैं और उस दृष्टिमे असम्बन्ध अनापेक्षिक है। इसके पश्चात् जब विकल्पसे कुछ निर्णय करते हैं पदार्थोंके बीच तो सभी पदार्थ अपने अपने स्वरूपमे है। किसीका किसी अन्यमे प्रवेश नही होता। ऐसा विकल्प करके यहा निश्चय किया जाता है कि असबन्ध इनका इन दोनो पदार्थोंमे है या समस्त पदार्थोंमे है। फिर यह आपेक्षिक बन जाता है और अवास्तविक भी बन जाता है अवास्तविक बन जाता है। उत्तर देते हैं कि यह कथन तो सबधके विषयमे भी किया जा सकता है ? प्रथम ही प्रथम जब हम प्रत्यक्षज्ञानसे इन पदार्थोंको निरखते हैं तो इनमे सबन्ध अनापेक्षिक ही विदित होता है। पश्चात् विकल्पोके द्वारा निश्चय करते हैं तो समस्त आपेक्षिक हो जाते हैं। सम्बन्ध प्रत्यक्षसे न ज्ञात होता हो यह बात तो है नही। सम्बन्ध प्रत्यक्षसे अनेक पदार्थोंको देखते ही विदित हो जाता है जैसे चौकी तखत आदिक दिखते है तो ये अनेक अणुवोके पिण्ड हैं। इनमे परस्पर ऐसा घनिष्ट सम्बन्ध है यह भी प्रत्यक्षसे शीघ्र विदित हो जाता है इस कारण सर्वप्रथम पदार्थोंका निरखना इस सम्बन्धका ज्ञान अनापेक्षिक है। पश्चात् विकल्प द्वारा विमर्श करनेपर सम्बन्ध आपेक्षिक हो जाता है।

सम्बन्धमे सत् असत्के विकल्प करके अवास्तविक सिद्धि करनेकी शका — अब शकाकार कहता है कि सभी पदार्थ क्षणिक अपने-अपने लक्षण मात्र हैं, किसीका किसीके साथ सम्बन्ध नही बन सकता क्योकि सम्बन्धका अर्थ तो परकी अपेक्षा करना है। परको अपेक्षा ही सम्बन्ध कहलाता है। तब सम्बन्ध दो पदार्थोंमें हुआ एक पदार्थमे सम्बन्ध नही बन सकता तो दो पदार्थोंके सम्बन्ध होनेके कारण अब आपसे यह पूछा जायगा कि वह सम्बन्ध क्या स्वयं सत् होता हुआ सम्बन्धियोकी अपेक्षा करता है या स्वय असत् होता हुआ सम्बन्धियोकी अपेक्षा करता है। सम्बन्ध हुआ परकी अपेक्षा करना क्योंकि एक पदार्थमे सम्बन्ध नही कहलाता। दो या अनेक पदार्थोंमे सम्बन्ध होता है। तो परकी अपेक्षा हो गयी न सम्बन्धमे। तो यह सम्बन्ध क्या स्वय सत् होता हुआ परकी अपेक्षा करता है या स्वय असत् ही रहकर परकी अपेक्षा करता है ? असत् ही रहकर परकी अपेक्षा करता है यह बात तो कह नही सकते क्योकि फिर तो अपेक्षा धर्मके आश्रयपनेका विरोध हो जायगा। क्या असत् भी कुछ परकी अपेक्षा करता है ? यदि असत् परकी अपेक्षा करने लगे तो यो असत् होता हुआ सम्बन्ध परकी अपेक्षा करता है यह बात अयुक्त है। यदि कहो सम्बन्ध सत् हो कर परकी अपेक्षा करता तो जो स्वय सत् है अतएव परिपूर्ण है। स्वतन्त्र है वह दूसरे की अपेक्षा क्या करेगा। यदि सत् होकर भी परकी अपेक्षा करने लगे तो सत्त्वका विरोध है। किसी दूसरेका कोई मुह ताकता है पदार्थ तो इसके मायने है कि वह अधूरा है, असहाय है, बना नही, पर जो सत् है कोई भी सत् किसी भी परकी अपेक्षा

नही करता, क्योंकि जो सत् होता है वह स्वयं अपने आपके सहायपर ही सत् होता है इस कारण परापेक्ष बन न सके तब सम्बन्ध भी न बन सकेगा। सम्बन्ध तो परकी अपेक्षा रखकर ही हुआ करता है। सो यदि सम्बन्ध असत् है तो वह अपेक्षा करे कैसे ? यदि सत् है तो वह सर्व निराशंस है अर्थात् समस्त पदार्थोंकी इच्छा आशासे रहित हुआ करता है सत्। जो सत् है वह अपने स्वरूपसे अपने आप सत् है। अपना सत्त्व रखनेके लिए कोई पदार्थ किसी दूसरेकी अपेक्षा नही करता है। यो परापेक्षता ही सिद्ध नही होती फिर सम्बन्ध क्या रहा ?

सम्बन्धको अवास्तविक कहनेकी शंकाका समाधान—अब उक्त शंकाका समाधान करते हैं कि इस तरह तो असम्बन्धमे भी विकल्प उठा सकते हैं। क्षणिकवादी शंकाकार सम्बन्ध नही मानता, क्योंकि सम्बन्ध मानले यदि क्षणिकवादी तो इसका अर्थ है कि पदार्थ पिण्ड कुछ बडा हो जायगा, स्थूल हो जायगा, तब स्थिर भी रहेगा और फिर एक दूसरेके साथ सदृश भी हो जायगा तब क्षणिकवादका सिद्धान्त समाप्त हो जायगा इस कारण क्षणिकवादी पदार्थोंके साथ सम्बन्ध नही मानते। उनका सिद्धान्त है कि जो पदार्थ ये स्थूल दिख रहे हैं यह सब भ्रम है। वास्तवमे तो एक एक अणु अब भी स्वतन्त्र परिपूर्ण सत् है। तो सम्बन्धका वे पूर्ण निषेध करते हैं। तो इस प्रकरणमे सम्बन्धका अभाव सिद्ध करनेके लिए जो भी वचन बोले गए हैं ऐसे ही वचन असम्बन्धकी असिद्धिके लिए भी बोले जा सकते हैं। किस तरह देखो असम्बन्ध होता है परकी अपेक्षा रखकर इसका सम्बन्ध नही है तो यह तो जान जायगा कि किससे सम्बन्ध नही है। एक पदार्थमे असम्बन्ध नही होता। असम्बध भी अनेक पदार्थों मे होता है। लगाव यह अलग है तो कैसे अलग है ? दूसरेकी अपेक्षा तो आयी। तो असम्बन्धता द्विष्ठ है अर्थात् दो मे रहता है। तो अब यह बतलाओ कि असम्बन्ध भाव स्वय सत् होता हुआ परकी अपेक्षा करता है या स्वतन्त्र सत् होता हुआ परकी अपेक्षा करता है या स्वतन्त्र सत् रहकर परकी अपेक्षा करता है ? असत् होकर तो अपेक्षा ही क्या होगी ? और सत् है असम्बन्ध तो सब ओरसे वह आशंसारहित हो जायगा, फिर दूसरेकी अपेक्षा ही क्या करे ? तो ऐसे विकल्प मचाकर तो कुछ भी दोदा जा सकता है, पर जो बात प्रत्यक्षसे स्पष्ट विदित होती है उसको तो मना ही कोई नहीं कर सकता। ये पदार्थ पिण्डरूप हैं अनन्त अणुवोका इनमें सम्बन्ध है। यह तो साव्यवहारिक प्रत्यक्षसे समझमे आया। अब युक्तिसे, आगमसे, अनुमानसे यह विदित हुआ कि यह जो स्कध है, इसका हो जाता है अश, टुकडे जो अश करो उसका भी अश हो जाता है। तो यो अश होते जायें तो अन्तिम जो अविभाग अश है वह ही वास्तविक पदार्थ है, उस हीका नाम अणु है। तो ऐसा अणु अपने असाधारण स्वरूप को रख रहा है। तो प्रत्यक्षमें यह सम्बन्ध भी विदित होता है और वस्तुके निजी स्वरूपमें अपने आपमें ही रहना भी विदित होता है।

सम्बन्ध व सम्बन्धियोमें भिन्न अभिन्न विकल्प उठानेका व्यर्थ प्रयास—

अब शंकाकार कहता है कि देखो सम्बन्ध होता है दो सम्बन्धियोमे । कोई दो पदार्थ हो उनमे सम्बन्ध हुआ करता है तो यह बतलावो कि यह सम्बन्ध नामक वस्तु उन दो सम्बन्धियोसे भिन्न है या अभिन्न ? अब यहा तीन बातें हो गयी । दो तो सम्बन्धी और एक सम्बन्ध और इनको दो पालीमे रखो—एक ओर सम्बन्ध और दूसरी ओर सम्बन्धी ये दो पदार्थ । तो यह बतलावो कि यह सम्बन्ध उन सम्बन्धियोसे भिन्न है अथवा अभिन्न ? यदि कहो कि अभिन्न है, सम्बध और सम्बधो एकमेक है तो इसका अर्थ हुआ कि वह सम्बध कुछ न रहा, असम्बध ही रहा । जब सम्बधी और सम्बध परस्पर अभिन्न है तब एक चीज मान लो । भिन्नमे तो दो की सत्ता नही होती । यदि कहो कि भिन्न है सम्बध उन सम्बधियोसे तो सम्बध रहित पदार्थ सम्बद्ध कैसे कहलायेगा ? जब सम्बध सबधियोसे न्यारा है तो उनका नाम सबधी भी कैसे पडा ? शंकाकार कहता जा रहा है । खैर मान लो कि सबध कोई भिन्न चीज है तो भी उस एक सम्बधके साथ उन दोनो सम्बधियोका कोई सम्बध है क्या ? उस सम्बधका उन सबधियोके साथ क्या सबध है ? कोई सबध सिद्ध नही करसकते क्योकि यह प्रश्न कर दिया जायगा कि यह सबध भी सबध व सबधियोसे भिन्न है अथवा अभिन्न दोनोमे उक्त दोष हैं । इस कारण सबध सिद्ध नही होता । यदि कहो कि उन दो सबधियोमे सबधियोकी सबध करने वाला कोई दूसरा सबध है तो उस दूसरे सबधका सबध करने वाला कोई और होगा । फिर तीसरेके लिए और होगा । इससे अनवस्था दोष हो जायगा । इस कारण सबधियोमे जो सम्बन्धकी बुद्धि की जाती है वह वास्तविक नही है । पदार्थसे अलग कोई सबध सम्भव ही नही है । बस सभी पदार्थ हैं क्षणक्षणवर्ती, उनके अतिरिक्त सबध नामकी फिर और कोई चीज नही है । उक्त शकाके उत्तरमे कहते हैं कि इस प्रकार सम्बन्धके विषयमे बात बढ़ाना यह वस्तुस्वरूपके प्रतिपादकोका अभिप्राय न जाननेके कारण है । क्योकि हम लोग सबधियोका सबध उस प्रकारकी परिणतिसे अतिरिक्त और कुछ नही मानते । जो पदार्थ पहिले देखे हुए रूपसे रहा था वह पदार्थ देखे रूपपनेका परित्याग करके सश्लेष सम्बन्धरूपसे हो जाय, उनमे एकरूप परिणति हो जाय, वह एक पिण्डमे आ जाय, इसके अतिरिक्त और सम्बन्ध नामकी कोई चीज नही है जिससे कि अनवस्था दोष आये । यही तो सम्बन्ध है । जो पदार्थ पहिले बिखरे हुए थे, वे पदार्थ अब सयोगरूपमें हो जाये, बिखरापन उनका मिट जाय, इसीका नाम तो सम्बन्ध है ।

स्वस्वरूपावस्थित पदार्थोंको व्यवहारियो द्वारा कल्पनामिश्रणकी शका

अब शकाकार कहता है कि देखो—यहा ३ बाते आयी हैं—२ तो सबधी और उन सबधी पदार्थोंमे भिन्न कोई सम्बन्ध तो ये तीनो अपने स्वरूपमे है । सबध सम्बन्धी सम्बन्धमें वेस्वरूपमे हैं । इस कारणसे एक दूसरेसे मिले हुए वे दोनो स्वयभाव हैं । सबध भी अलग, पदार्थ भी अलग । लेकिन एक व्यवहार चलानेके लिए कोई उनको कल्पनामे मिश्रित कर देते हैं, उनको जोड़ देते हैं । इसी कारणसे पदार्थोंमे वास्तविक

सबन्ध न होनेपर भी उस कल्पनापर डट जाने वाले व्यवहारी लोगोको उन पदार्थोंमे जो भेद हो, अन्यापोह है, उसका विश्वास करानेके लिए क्रिया कारक आदि बताने वाले शब्दोका प्रयोग करते है। जैसे कोई पुरुष कहता है कि देवदत्त उस सफेद गायको डण्डेसे भगा दो ! तो यहा देवदत्त अलग है, गाय भी अलग है डण्डा भी अलग है। ये सारी चीजें अपने अपने स्वरूपमे हैं। और उनका अर्थ क्या है ? अन्यापोह। डण्डा मायने जो डण्डा नहीं हैं उनसे अलग रहना। गाय मायने जो गाय नही हैं उन सबसे अलग रहना। तो ऐसा जो शब्दका सही वाच्य अन्यापोह है उसको प्रकट करनेके लिए व्यवहारीजन वाच्य बोला करते हैं। और वास्तवमें कारकोका क्रियाके साथ कोई सम्बन्ध ही नही है। क्योकि पदार्थ तो सारे क्षणिक हैं। जब उनकी क्रिया है उस कालमे कारक नही है। कारकका सम्बन्ध अलग है, क्रियाका सम्बन्ध अलग है। कारकोमें जब क्रिया जुड ही नही सकती। तब जितने भी वचन व्यवहार हैं एक दूसरेको कुछ बताते हैं। जो वाक्य पद्धति है वह सारीकी सारी केवल एक अन्यापोहको बतानेके लिए है। वह प्रयोग वास्तविक नही है। जितने शब्द हैं वे पदार्थोंका अन्यापोह बतानेके लिए, भावका भेद बतानेके लिए यह भी समस्त गौन न्यारी है। इसके प्रतिपादन करनेके लिए समस्त क्रिया कारक भेदका प्रयोग होता है, वास्तवमें न कारकोका सम्बन्ध है न क्रियाओका सम्बन्ध है।

कल्पनासे कारक क्रियाओका मिश्रण करनेके अतिरिक्त सम्बन्ध कुछ नहीं, इस मन्तव्यकी मीमासा—अब उक्त शकाका समाधान करते हैं। शकाकारने जो यह कहा है कि सम्बन्धी पदार्थ और सम्बन्ध ये तीनोका वृत्तस्वरूप है, एक दूसरेसे अलग हैं। वे स्वय भावरूप हैं, कल्पना प्रयोजनवश उनमे उनका मिश्रण कर देती है। जैसे अक्षर तो १६ स्वर ३३ व्यञ्जन हैं, पर कल्पना जब उन शब्दोको मिला देती है तो नाम बन जाता है। ऐसे ही बने हुए जो शब्द हैं उन शब्दोको कल्पना मिलादे तो वाक्य बन गया। यो लोग वाक्य बोलते हैं। अर्थ तो शब्दोका अन्यापोह है, पर कल्पनायें करके उनका नाम रखना और उनको वाच्य समझना ये सब हुआ करते हैं। इस शकाके समाधानमे इतना ही कहना पर्याप्त है कि सम्बन्ध असिद्ध नही है जिससे कि इस मे कल्पनासे मिश्रण करनेकी बात मानी जाय और सम्बन्धकी असिद्धि की जाय। क्रियाकारक आदिक जो सम्बन्धी है अर्थात् एक वाक्यमे कोई कर्ता कारकके प्रयोगमे है कोई कर्मकारकके और कोई क्रियाके प्रयोगमे है तो इन सबधियोकी प्रतीतिके लिये और उनके सबधकी प्रतीतिके लिये उन वाक्योंके अभिधायक जो शब्द हैं उनका प्रयोग किया जाता है। कहीं यह नही है कि शब्दोका अन्यापोह अर्थ है और वह अर्थ नही है स्वय जिसके लिए शब्द बोले गए। अन्यापोहका निराकरण तो अभी बहुत विस्तार पूर्वक किया ही गया है और ऐसा भी न सोचना चाहिये कि जब पदार्थ बहुतसे हैं और उन पदार्थोंमें सबध रहता है तो सबंध भी बहुत हो जायगा सो नही। भले ही पदार्थ दो हैं मगर दोके बीच सबध एक ही है। जैसे स्वय क्षणिकवादियोने माना है कि

चित्र ज्ञान होता है तो वह नाना पदार्थोंका ज्ञान करता है किन्तु स्वय है एक चित्र ज्ञान एक स्वरूप है, नानाकारमय। तो जैसे नाना पदार्थोंसे दो पदार्थोंसे सम्बन्ध होने पर भी चित्रज्ञान एक होता है । इसी प्रकारसे दो पदार्थोंका सम्बन्ध होनेपर भी सम्बन्ध दो न होंगे, सम्बन्ध एक ही होगा।

सम्बन्धोंके कुछ प्रकार अब शकाकार कहता है कि तब वह सम्बन्ध किस जातिका है ? यदि दो पदार्थोंमे सम्बन्ध एक ही माना है तो सम्बन्ध सामान्य क्या चीज होती है ? कुछ उसकी खासियत बताना चाहिए कि वह सम्बन्ध क्या कहलाता है ? उत्तर यह है कि सम्बन्ध नाना प्रकारके हुआ करते हैं । किन्ही पदार्थोंमे कार्य कारण सम्बन्ध होता है किन्हीमे व्याप्य व्यापक सबन्ध होता है किन्ही पदार्थोंमे पूर्वापर सबध होता है, किन्हीमे सयोगमात्र सबध होता है, किन्हीका कथचित् तादात्म्य सबध होता है। जैसे अग्नि और धूमका क्या सबध है ? कार्यकारण सबध है। यह वृक्ष है क्योंकि नीम न होनेसे। तो इसमे नीमपनेका और वृक्षपनेका क्या सबध ? व्याप्य व्यापक सबध है। कल बुधवार होगा क्योंकि आज मङ्गलवार होनेसे। तो इसमे क्या सबध है ? पूर्वापर सबध है। जीवमे राग नही है, वह कभी मिट जायगा तो इस जीवसे रागका क्या सवध ? कथचित् तादात्म्य सबध है ? जिस कालमे राग होता है उस कालमे जीवमे तादात्म्यरूपसे बन रहा है। सबध अनेक होते हैं।

कार्य कारणभाव; सम्बन्धकी शकाकार द्वारा आलोचना—शकाकार कहता है कि उन सबधोमे एक कार्य कारण सबधकी ही चर्चाकर लीजिए। कार्य कारण सबध कुछ हो ही नही सकता, क्योंकि कार्य कारण दोनो एक साथ नही रहते जिस कारणसे कार्य होता है वह कारण पहिले है, उसका कार्य बादमे है। जैसे अग्नि से धुवा होता है तो अग्नि पहिले है धुवा उसके बाद उत्पन्न हुआ। तो जो चीज एक साथ नही हैं, क्रमसे हो रही हैं तो क्रमसे होने वाली चीजोमे सबध कैसे आ सकता ? क्योंकि जब कार्य हुआ तब कारण न रहा, जब कारण था तब कार्य नही है। सबध तो दोमे हुआ करता है। दो तो कभी हो ही नहीं सकते, हमेशा एक ही रहेगा। कार्य कारण एक साथ नही होते क्योंकि वे क्षणिक हैं। तो क्षणिक होनेके कारण भी कभी भी एक साथ कार्यकारण हो ही नही सकते। वैसे भी कारण कार्य एक समयमे नही होते और फिर जब प्रत्येक वस्तु क्षणमात्र ही ठहरती है तो कार्य होनेपर तो कारण ठहर ही नही सकता। और, सबध होता है दोमे तो दोमे रहने वाला सबध पदार्थोंमे कार्यकारणरूपसे नही रहता। कारणके समय कार्य नही, कार्यके समय कारण नही। और एक साथ दोनोको मान लिया जाय तो उनमे कार्यकारणपना नही बनता। जैसे बछडेके सिरपर दो सींगें उगते हैं एक साथ ही ना तो उसमे कौन कार्य है और कौन कारण है ? कोई भी नही। एक साथ रहने वाली चीजोमे कार्य कारणका विभाग नही बना सकते। इस कारण कार्यकारण भाव एक साथ रहने वाले दो पदार्थोंमे

होता नही। फिर सम्बन्ध कैसे उनमें रह सकता है? समस्त पदार्थ एक एक हैं। अकेले अकेले है, उनमे सम्बन्ध कभी बन ही नही सकता।

कार्य कारणमे क्रमसे सम्बन्ध लगनेकी असिद्धिका शकाकार द्वारा आरेकन—कदाचित् यह कहो कि कार्य और कारणमे क्रमसे सम्बन्ध हो जायगा। सम्बन्ध पहिले कारणमे लग गया और जब उसका काम निपटा चुके तब सम्बन्ध कार्यमे लग जायगा। ऐसा क्रमसे भी सम्बन्ध नही लगा करता। क्योकि क्रमसे भी अगर सम्बन्ध नामक भाव ले तो एक जगह जब सम्बन्ध लग रहा है तो कार्यमें सम्बन्ध नही लग रहा। कार्य कार्यकी अपेक्षा नही कर रहा। वह सम्बन्ध कार्यसे निस्पृह हो गया और मान लो कार्यमे सम्बन्ध लग रहा तो उस समयमे वह सम्बन्ध कारणसे निस्पृह हो गया तब सम्बन्ध बन हो नहीं सकता। एकमे सम्बन्ध क्या? तो कार्यकारणके अभाव होनेपर भी सम्बन्ध तुम मान रहे हो तो इसका अर्थ है कि एक मे ही सम्बन्ध हो गया सम्बन्ध एकमे नही रहा करता। यदि कहो कि कार्य और कारणमेसे एक किसीकी अपेक्षा करके और अन्यमे सबध क्रमसे रहा आयेगा तो इसमे अपेक्षा भी हो गई। इस कारणसे दोमे रहने वाला भी बन गया। यह भी बात यो युक्त नही है फिर तो जितनी अपेक्षा की है कार्य अथवा कारण जिसकी अपेक्षा कीगई है वह उपकारी होना चाहिए तब तो अपेक्षा की जाय। कोई भी पुरुष किसीकी अपेक्षा करता है तो किसी प्रकार वह उपकारी हो तब तो उसकी अपेक्षा की जाती है। अब यहाँ सम्बन्ध रह तो रहा एकमे और अपेक्षा रख रहे' दूसरेकी भी। जैसे सम्बन्ध रह तो रहा कार्यमें और वह कारणकी अपेक्षा रख रहा तो कारण उस सबध का कुछ उपकारी हो तब तो अपेक्षा करना ठीक है अथवा कारणमे सबध रह रहा, कार्यकी अपेक्षा कर रहा। तो कार्य उस सम्बन्धका कुछ उपकारी हो तब तो अपेक्षा बनेगी। सो वह उपकार बताओ क्या है? वह भिन्न है अथवा अभिन्न है? इन विकल्पोमेसे भी न टिक सकेंगे। और, फिर जब उपकार कुछ रहा ही नही अथवा कारण के समयमे कार्य नहीं और कार्यके समयमे कारण नही और सम्बन्ध रह रहा एकमे तो जिस दूसरेकी वह अपेक्षा कर रहा है वह तो असत् है। तो जो स्वय असत् है वह उपकार कैसे करेगा? असत्मे सामर्थ्य नही है कि वह उपकार कर सके। नही तो गधेके सींग, आकाशके फूल ये भी उपकार करने लगें। ये असत् हैं, असत्मे क्या काम हो सकता है? तो जब कारणके समयमे कार्य नही है तो कारणमे रहने वाला सबध कैसे कार्य द्वारा उपकृत हो जाय? अथवा कार्यमें रहने वाला सम्बन्ध कैसे कारण द्वारा उपकृत हो जाय? इससे कार्य कारण नामका सम्बन्ध कुछ भी नही है।

कार्यकारणभावके निर्णयका आधार—अब इस शकाका उत्तर देते हैं कि कार्य कारणभावके निषेध करनेके लिए जो भी अभी कहा है कि सुननेमे तो वह दिलचस्प लग रहा है लेकिन वह सब विना विचारे ही कहा गया है। हम लोग कार्य

कारणभावका साधन एक साथ होना, क्रमसे होना इसे नही मानते, अर्थात् कार्य एक साथ हो तब कार्य कारणपना बने यह भी नही होता। कोई चीज क्रमसे हो तब कार्य कारणपना बने यह भी नही मानते। कार्यकारण सम्बन्धकी निर्भरता, सहभाविता और क्रमभावितापर नही है, किन्तु इस नियमपर है कि जिसके होनेपर नियमसे जिस की उत्पत्ति हो वह उसका कार्य है और दूसरा कारण है। अब उसमे चाहे पदार्थ एक साथ होते हैं अथवा क्रमसे, सबमे एक नियम लगेगा कि जिसके होनेपर जिसकी उत्पत्ति निश्चित् हो वह तो है उसका कार्य और दूसरा है कारण। सो देखो ! कोई कारण तो सहभावी भी हो जाता है और कोई कारण कार्यक्रमभावी भी हो जाता है, जैसे घटका कारण क्या ? मिट्टी, द्रव्य, दण्ड चक्र आदिक। तो ये सहभावी कारण हो गए। देखो ! जिस समय घट बन रहा है उस समय बराबर मिट्टी है कि नही ? है। और दण्ड चक्र आदिक भी है। तो कोई कारण तो सहभावी होता है पर उनमे यह नियम तो जरूर पाया जायगा कि समर्थ कुम्हार, व्यापार, दण्ड, चक्र, मिट्टी आदि के होनेपर घट बनता ही है तो कार्य कारणभाव बननेका साधन न सहभावित्व है न क्रमभावित्व है, किन्तु यह नियम है कि जिसके होनेपर जो कार्य हो उनमे कार्यकारण-पना बनता है। और देखिये ! कोई कारण कार्यभाव क्रमभावी भी होते। जैसे पूर्व पर्याय उत्तरपर्यायका कारण है। जैसे बचपन होना जवानीका कारण है तो बचपन जवानी एक समयमे तो नही हैं, क्रमसे है, मगर कारण कार्यपना सही बैठ रहा कि नही ? ९ वर्षकी उम्र हो जानेका कारण ८ वर्षकी उम्र हो जाना है। कोई चीज ८ वर्षकी नही बन पायी तो ९ वर्षकी कैसे बनेगी ? तो कोई कार्य कारणभाव क्रमभावी पदार्थोंमे हुआ करता है तो कार्य कारणभावकी निर्भरता सहभावित्व और क्रम-भावित्वपर नही है, अपने अन्वय व्यतिरेकपर है कि जिसके होनेपर कार्य देखा गया और जिसके न होनेपर कार्य न देखा गया, उनमे कार्यकारण सम्बन्ध मान लिया।

कार्यकारण भावका परिज्ञान—प्रश्न—इस बातका परिज्ञान कि यह इसके होनेपर हुआ, इसके न होनेपर न हुआ, इसका परिज्ञान करता कौन है ? यह आत्मा ही करता है और वह तर्क नामक ज्ञानकी सहायतासे करता है। इन विचारोके द्वारा करता है कि प्रत्यक्षसे जहाँ विदित हुआ कि इसमे होनेपर देखो यह हुआ ना या अभाव से विदित हुआ कि इ के न होनेपर यह नही हुआ है तो ऐसे अन्वय व्यतिरेककी सहायता लेकर अन्वयव्यतिरेकसे दृष्टान्तोकी सहायता लेकर आत्मा ही निर्णय करता है। सो जो नियत विषय है उसका तो एकदम प्रत्यक्षसे ही जान लेता है और जो अनियत विषय है जिसे पहिले पुन: पुन समझा नही उसमे तर्ककी सहायता लेकर हम परिज्ञान कर लेते हैं। एक ही यह प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष–उपलम्भ शब्दने कहा गया है, अर्थात् जिसके होनेपर होना और न होनेपर न होना, यह बात तो इसकी है मगर इसको हमने प्रत्यक्षसे जान लिया। जैसे इस कमरेमे चौकी रखी है, यह प्रत्यक्षसे जानते हैं और इस कमरेमे दरी नही है यह भी हम प्रत्यक्षसे जान रहे तो एक ही प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष

और अनुपलम्भ शब्दसे कहा गया है और वह क्या प्रत्यक्ष है, कार्य कारण भावके सम्बन्धमें जो विषयभूत हुआ है वही प्रत्यक्ष है, कार्यकारण रूपसे प्रत्यक्ष है। वही प्रत्यक्ष भिन्न जो अन्य वस्तु है जहापर कार्य कारणभाव नही पाया जाता है उस व्यतिरिक्त वस्तु विषयक जो विषय है वह अनुपलम्भ शब्दसे कहा गया है जैसे अनुमान बनाया कि यहाँ अग्नि होनी चाहिए, धूम होनेसे। जैसे रसोई घर। तो रसोई घर में तो अग्नि और धूम दोनोंका विधिरूप प्रत्यक्ष है जहाँ अग्नि नही होती वहाँ धुआ भी नही होता। जैसे तालाब। तो यहाँ उसका व्यतिरेक—अनुपलम्भ द्वारा ज्ञान हुआ है। उसमे रूपक यह बनता है कि धुवाँ अग्निजन्य है। यदि अग्नि होनेसे पहिले भी उस जगह धुवा हो जाता या अन्य जगहका धुवा आ जाता तो वह धुवाँ अन्य पदार्थोंके कारणसे हुआ कहलाता पर यह बात तो प्रत्यक्ष विदित है कि धूम अग्निसे ही उत्पन्न होता है इस कारण कार्य कारण प्रत्यक्षसे सिद्ध है।

प्रागसत्त्व, अन्यक्षेत्रसे अनागम व अन्याहेतुक होकर उपलब्धि होनेपर कारण कार्यभावका आगम—शकाकार कहता है कि कोई चीज पहिले उपलब्ध न हो और किसी चीजके आनेपर या सन्निधानके बाद उपलब्ध हो जाय उसीको तो कहते हो कि यह कार्य है और वह कारण है, कार्य तो पहिले न था और कारणके आनेपर या किसी चीजके आनेपर कार्य उपलब्ध हो गया इससे ही तो तुम कारण कार्यकी व्यवस्था बनाते हो, तो इस तरह मान लो किसी कुम्हारके घरमे गधा तो न था और कुम्हारके सन्निधानके बाद वहा गधा उपलब्ध हो गया तब फिर गधा कुम्हार का कार्य हो जाना चाहिये। उत्तर देते हैं कि ऐसी कुयुक्ति लगाना ठीक नही है। यदि ये तीन बातें वहाँ निश्चित हो तो कुम्हारका कार्य भी गधेको कह दें। वे तीन बातें क्या कि कुम्हारके सन्निधानसे पहिले गधेका न रहना, दूसरी बात—अन्य देशसे न आना, तीसरी बात—दूसरा कुछ भी इसका कारण न होना, ये तीन बातें होती, तो यह भी कह सकते थे कि गधा कुम्हारका कार्य है। इन तीन बातोमे कदाचित् यह मान लीजिए कि कुम्हारके सन्निधानसे पहिले गधा न था, मगर अन्य जगहसे न आया हो और उसके अन्दर कोई कारण न हो यह बात तो बनती सम्भव नही, इस कारण गधा कुम्हारका कार्य नही बनता।

ज्ञानावरणका क्षयोपशम विशेष, साधनोपलब्धि व अभ्यासके बलसे कार्य कारणभावका अवगम - अब शकाकार कहता है कि भिन्न पदार्थोंको ग्रहण करने वाले दो प्रत्यय हैं जैसे अग्नि और धूमको जाना तो अग्निको भी प्रत्यक्ष कर लेने वाला एक ज्ञान और धूमको भी प्रत्यक्षमे लेने वाला एक ज्ञान। यो दो ज्ञानोमे भिन्न भिन्न पदार्थोंका ग्रहण होता है तब बतलावो कि एक बारमे तो एकका प्रत्यक्ष हुआ तो दूसरेका ग्रहण तो नही हुआ जैसे मान लो कारणका प्रत्यक्ष हुआ तो कार्यका तो नही ग्रहण हुआ। कार्यका प्रत्यक्ष हुआ तो कारणका ग्रहण नही हुआ। क्षणिकवादमें

तो क्षणिक पदार्थ होनेके कारण एक कालमे कार्य कारण हो ही नही सकते। जब कार्य कारण होगा तो कारण नष्ट हो चुका होगा। जब तक कारण है तब तक कार्य की सत्ता ही नही है। तो एक पदार्थका प्रत्यक्ष होनेपर दूसरा तो ग्रहणमे न आया, और जब दूसरा ग्रहणमे न आया तो उसमे, कारणता या कार्यताका ज्ञान कैसे हो सकता है ? क्योंकि कार्यत्वका ज्ञान कारणकी अपेक्षा रखता है और कारणताका भी ज्ञान कार्यकी अपेक्षा रखता है। यह कारण है तो किसका ? कुछ तो जवाब देना ही होगा। यह कार्य है तो किसका ? कुछ तो जवाब देना ही होगा। तो कार्य कारण पना सिद्ध नही होता। उत्तर देते हैं कि जिन मनुष्योंके क्षयोपशम विशेष है उस सम्बध का ज्ञानावरणका क्षयोपशम है, योग्यता है, तो ऐसे पुरुषोंको जब धूम ज्ञान हुआ तो धूमकी उपलब्धि होनेपर अभ्यासकी वजहसे चूँकि पहिले बराबर इसको समझ रखा है कि धूम और अग्निका कार्य कारण सम्बन्ध है। जहाँ धूम होता है वहाँ अग्नि होती है। अग्निके अभावमे धूम नही हो सकता, इन परिज्ञानोका बहुत अभ्यास उसे रहा, उसकी वजहसे इस विशिष्ट ज्ञान वाले पुरुषका धूम मात्रके उपलम्भ होनेपर भी यह ज्ञान हो जाता है कि यह धूम अग्निजन्य है। यदि ऐसा न होता याने क्षयोपशम भी हो और साधनकी उपलब्धि भी हो और अभ्यास भी हो फिर भी वह कारण कार्यका बोध न कर सके तो कभी अग्निका अनुमान बन ही न सकेगा, क्योंकि भाप आदिक पदार्थोंसे विलक्षण यह धूम है, इसका भी अवधारण न हो सकेगा। जब अग्नि का अनुमान न बन सका तो अन्यका ही क्या, बात तो सभी साध्य साधनकी एक सी है। कुछ भी अनुमान न बन सकेगा। फिर तो सारे व्यवहार खतम हो जायेंगे। इस कारण यह मानना चाहिए कि ऐसा आत्मा जिसने कि पहिले किसी पदार्थको कारण रूपसे समझ रखा था तो कारण रूपसे अभिमत पदार्थको जाननेका परिणाम न छोडते हुए आत्माके द्वारा कारण कार्यके स्वरूपकी प्रतीति होती ही है। जैसे कि चित्र ज्ञान मे माना है कि नीलादिक आकारोंमे व्यापकर रहने वाला जो एक ज्ञान है, चित्र ज्ञान है उसके स्वरूपकी प्रतीति जैसे मान लेते हैं क्षणिकवादी लोग है तो आकार बहुत का और उन बहुतोंमे भी एकका बोध कर लेते हैं तब कारण और कार्य इन दो पदार्थों के बीच यदि कार्य कारण सम्बन्धका ज्ञान कर लेवें तो इसमे कौन सी आपत्ति है ?

कार्यकारणभावके अवगमका अन्तरङ्ग व बहिरङ्ग कारण अब शङ्काकार कहता है कि कोई आदमी जैसे नारिकेल द्वीप आदिकमे बसने वाले हों और वहाँ एकदम धुवा दिख जाय तो वह पुरुष ऐसे द्वीपमे रहता था कि जहां धुवाँ और अग्निके साधन न थे जैसे आजकल भी कई स्थान हैं कि जहां रोटी अन्न, अग्नि धुवा इनका दर्शन ही नही है केवल पानीकी जगह बरफोंपर रहने वाले लोग हैं ऐसे पुरुषोंको धुवाँ दिख जाय अग्नि दिख जाय तिसपर भी कार्य कारणभावका निश्चय तो नही होता, इससे जाना जाता है कि कार्य कारणभाव अवास्तविक है। यदि वास्तविक होता, वस्तुमे रहने

वाली बात होती तो वस्तु तो दिख गई और वस्तुका धर्म न दिखे, कार्य कारणभाव न दिखे यह कैसे हो सकता है ? अब इसका समाधान करते हैं कि कार्य कारणभावका निश्चय आ जाय इस निश्चयके लिये पहिले बाह्य कारण क्या है और अन्तरङ्ग कारण क्या है ? इसे तो समझलो ! बाह्य कारण और अन्तरङ्ग कारण क्या है इसे समझ लेनेपर फिर उसका निश्चय कर लेना आसान होगा। कार्य कारणभाव भी समझका अन्तरङ्ग कारण तो है क्षयोपशम विशेष उस कार्यकारणभावावरण कर्मका क्षयोपशम हो। और बाह्य कारण है कारणके होनेपर कार्यके होनेका बहुत बार अभ्यास। जैसे कि अकार्यकारणभावके जाननेका बाह्य कारण है अनन्वयव्यतिरेक जिसके न होनेपर भी जो हो जाय, वही तो उनका अकार्यकारण भाव है। जैसे घड़ेके न होनेपर भी कपड़ा देखा जाता बुना जाता तो मालूम हुआ कि घड़ेका और कपड़ेका कार्यकारणभाव नहीं है, और जिसके होनेपर जो बात होती हुई बारबार ज्ञानमें आये उसका अभ्यास बन गया कि हां, इसका यह कार्य है। तो बाह्य कार्य तो है, उसके होनेपर दूसरेका होना, इस बातका अभ्यास बना रहे। जिसे प्रकृत शब्दोंमें कहो — कारणभूत पदार्थोंके होनेपर कार्यभूत पदार्थका होना इसका जिसे अभ्यास हो वह तो है बाह्य कारण और तत्सम्बन्धी ज्ञानावरणका क्षयोपशम विशेष जो यह है अन्तरङ्ग कारण तो अन्त. कारण और बाह्य कारण न होनेसे कहीं भी उनके कार्य कारण भावका अथवा अकार्य कारणभावका निश्चय नहीं हो सकता।

सर्वथा अकार्यत्व व अकारणत्व होनेपर वस्तुके असत्त्वका प्रसङ्ग— अब शङ्काकार कहता है कि धूमादिक कार्यभूत पदार्थोंका ज्ञान कराने वाली सामग्री मात्रसे उसके कार्यत्वका निश्चय नहीं होता इस कारणसे धूम आदिकका कार्यत्व आदि स्वरूप नहीं है अर्थात् धूम आदिकका ज्ञान हुआ, उसे हम नेत्रोंसे निरखते सो धूम ज्ञान को उत्पन्न करने वाली सामग्री है आंख। तो उस आंखके व्यापारसे धूमका तो ज्ञान हो गया, पर यह धूम अग्निका कार्य है या किसका कार्य है ऐसा कार्यत्वका ज्ञान तो आंखसे नहीं हुआ था, तो धूम आदिकका स्वरूप कार्यत्व नहीं है। उत्तर देते हैं कि ऐसी ही बात तो क्षणिकत्व आदिकके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। क्षणिक पदार्थोंका ज्ञान करानेकी जो सामग्री है, जिस व्यापारसे हमने किसी पदार्थका ज्ञान किया तो उस ही सामग्रीसे क्षणिकत्वका ज्ञान नहीं होता। तब तो पदार्थोंका क्षणिकों का क्षणिक स्वरूप न रहेगा। यदि कहो कि वाह ! यदि पदार्थोंका, क्षणिकोंका क्षणिकत्व स्वरूप न रहा सो वह वस्तु ही न रहेगी। तो कहते हैं कि यह बात और जगह भी कही जा सकती है कि अगर कोई पदार्थ सर्वथा अकार्य हो और अकारण हो तो वह वस्तु ही नहीं ठहर सकती। लोकमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो किसी प्रकार बने अथवा न कार्य बने। ऐसा कुछ तो ज्ञानमें भी न आ सकेगा। असत् जो कार्य भी नहीं, कारण भी नहीं वह है ही नहीं। तो इससे धूम आदिक देखे गए उस की सामग्री है भिन्न। नेत्रने जाना और यह धूम कार्य है, अग्नि कारण है, इसका

परिज्ञान करने वाला है मानसिक ज्ञान, तर्क प्रमाण। इससे पदार्थमे कार्यत्वका और प्रमाणत्वका कोई विरोध नही है।

पदार्थोंमे स्वरसत कारणत्व व कार्यत्वकी शक्ति—यह बात भी नही है कि अनुत्पन्न कार्यका ही कार्यत्व धर्म हो अर्थात् जो न उत्पन्न हो ऐसे ही कार्यमे एकत्व पाया जाय उसका कार्यत्व बनाना भी धर्म है यह बात नही कह सकते, क्योकि असत् होनेसे। अनुत्पन्नमे कायत्व नही बता सकते। अगर अनुत्पन्नमे कार्यत्व बताने लगें तो खरगोशके सीग आदिकमें भी कार्यत्व धम कह लीजिए और यह भी नही कह सकते कि उत्पन्न पदाथका वह भिन्न है कार्यत्व, क्योकि कार्यत्व तो उस पदार्थका धर्म है। कोई दो सद्भूत पदार्थ नही हैं कि कार्यभूत पदार्थ अपनी सत्ता अलग रखते हो और कार्यत्व नामक धर्म अपनी सत्ता अलग रखता हो, तो कार्यत्वकी पदार्थसे एकता है, भिन्नता नही है और इस प्रकार कारणका कारणत्व भी एकान्तरसे भिन्न नही है, और वह कार्यत्व और कारणत्व जब पदार्थसे अभिन्न है तो पदार्थका ग्रहण करने वाले प्रत्यक्षके ही द्वारा वह कार्यत्व और कारणत्व भी समझ लिया जाता है। थोडा उसमे विचार और रखना पडता है। जैसे पदार्थको जानकर व्यक्ति स्वरूप जान लिया जाता है ऐसे ही कार्यत्व और कारणत्व भी जान लिए जाते हैं। तथा ऐसा देखा भी जाता है कि प्याससे व्याकुल जिसका चित्त हो रहा है ऐसा पुरुष अन्य पदार्थोंका व्यवच्छेद करके प्यासकी वेदना मिटानेमे समर्थ जलमे ही प्रत्यक्षसे प्रवृत्त होता है। तो अब देखिये—सब समझ बनी हुई है, प्यासकी वेदना है तो यह वेदना जलसे मिटेगी। जल कारण है इस वेदनाके मिटनेका और तभी अन्य पदार्थोंपर दृष्टि न देकर उनको अलग करके, उपेक्षा करके केवल जलको ही ग्रहण करनेका यत्न करता है। तो इससे क्या निर्णय हुआ उस पुरुषको कि जलमे ऐसी शक्ति है कि प्यासको बुझा सके तो उस कारणकी शक्तिकी प्रधानता उसके ज्ञानमे है ना, तब तो उस कारणको खोज निकालता है, सो उसकी शक्ति है। शक्तिकी प्रधानतामे काय देखा गया उससे निश्चय हुआ कि यह कारण है क्योकि उस जल-आदिक कारणके बिना इसकी यह पिपासा मिटने रूप कार्य नही बन सकता। इससे सिद्ध है कि विचार तर्क आदिक ज्ञानोकी सहायता लेते हुए प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाने हुए पदार्थमे कायपने और कारणपनेका निश्चय कर लेता है। यहा कार्य कारण सम्बन्धका नाम क्यो आया कि मूल प्रकरण तो यह था कि वस्तु सामान्य विशेषात्मक होती है और उसमे सामान्यका खण्डन क्षणिकवादी कर रहा है। सामान्यके वर्णनमें यह आया कि स्थिर स्थूल अथवा सामान्य पदार्थ जाना जाता है तो स्थूलता होती है सम्बन्धसे, अनन्त अणुवोका सम्बन्ध होनेपर स्थूलता आती है। तो सम्बधका निराकरण शकाकारने पहिले करना चाहा, उसी सिलसिलेमे सम्बन्ध बनानेका निराकरण शकाकार कर रहा है अथवा सम्बन्ध विशेषका यह कार्य कारण भाव नामक सम्बन्धकी चर्चा है। कार्य कारण भाव आबाल गोपाल मनुष्योके चित्तमे बसा हुआ है सो कार्य कारण सम्बन्ध भी है, अन्योन्य प्रवेश सम्बन्ध भी है

और इसी कारण पदार्थ नित्य माना गया है, स्थूल माना गया है और सदृश माना गया है।

पदार्थोंमें स्वरूपत: कार्यकारणत्व— पदार्थ परस्पर एक दूसरेके कार्य और कारण होते हैं उनमे जो यह कार्य कारण पना है सो स्वरूपसे कार्य कारणपना न हो तो उनमे कार्य कारण भाव कभी सम्भव ही नही हो सकता। पदार्थ है पहिले और बादमे किसी भिन्न सम्बन्धके द्वारा पदार्थोंमें कार्यकारणता की जाती हो सो बात नही है। कोई भिन्न सम्बन्ध नही मान रहे हैं कि वह सम्बन्ध जब पदार्थोंमें जुडे तो पदार्थ कार्य कारण कहलाये। पदार्थका हो स्वरूप इस प्रकारका है। यदि कोई भिन्न सम्बन्ध नामका पदार्थ सम्बन्धी पदार्थोंमें जुटकर कार्य कारण भावको बना देनेकी बात होती तो बतलाओ कि उस भिन्न सम्बन्धके द्वारा क्या अभिन्न कार्य कारणपना किया जाता है या भिन्न किया जाता है? यदि उस भिन्न सम्बन्धके द्वारा पदार्थोंकी अभिन्न कार्य कारणताकी जानेकी बात कहो तो इसमें विरोध आ गया परस्पर। अभिन्न है तो भिन्न सम्बन्धके द्वारा कहा जा सकता और भिन्न सम्बन्धके द्वारा यदि कार्य कारणता की जाती है तो वह अभिन्न कैसे रही? तो भिन्न सम्बन्धके द्वारा पदार्थोंकी अभिन्न कार्य कारणता नही की जा सकती इसी तरह भिन्न सम्बन्धके द्वारा पदार्थोंको भिन्न कार्य कारणता मानोगे तो अर्थ यह हुआ कि वे पदार्थ स्वरूपसे ही कार्य कारण हो गए। तो यहाँ किसीने कार्य कारणपना थोडे ही रख दिया। उनके स्वरूपमें ही ऐसा है। अग्निका ढग ही ऐसा है कि उसमे धूम उत्पन्न होता है उस बातको बताया जाता है, कहीं कार्य कारणपना उत्पन्न नही किया जाता। तो जब स्वरूपसे ही पदार्थ कार्य कारण रूप हैं तो उनमे किसी भिन्न सम्बन्धकी कल्पना इससे क्या प्रयोजन है? पदार्थकी कार्य कारणता स्वत: सिद्ध है। जो जैसा है, जिस प्रकार बर्त रहा है उस ही मे कार्य कारणपनेकी बात विदित होती है।

पूर्वापरापेक्ष क्षणिकत्वके ज्ञानकी तरह पूर्वापर पदार्थोंमें कार्यकारण भावका अवगम— अब शकाकार कहता है कि कार्यके ज्ञान न होनेपर कारणमें कारणताका ज्ञान कैसे हो जायगा? जब यह पता हो कि यह कार्य है तब तो कारणको कारणताका ज्ञान होगा कि यह कारण है क्योंकि कार्यकी प्रतिपत्ति होनेपर ही कारण की कारणता जानी जाती है। कारणकी कारणताका ज्ञान कार्यके ज्ञानकी अपेक्षा रखता है। उत्तर देते हैं कि इस तरह फिर पूर्व और उत्तर क्षण के ज्ञान न होनेपर मध्य क्षणका ज्ञान कैसे हो जायगा? अर्थात् यह वर्तमान क्षण पूर्व क्षणसे प्रथक् है और उत्तर क्षणसे प्रथक हैं ऐसा ही तो क्षणिकवादमे ज्ञान किया जाता है तो उसका ज्ञान कैसे हो जायगा? क्षणिकत्वका ज्ञान भी फिर सम्भव नही हैं क्योंकि क्षणिकत्व मे यह समझा जाता है कि यह वर्तमान क्षण पूर्व क्षणसे निराला है और उत्तर क्षण से निराला है। तो देखो वर्तमान क्षणके क्षणिकत्वको जाननेके लिए पूर्व और उत्तर

क्षणके जाननेकी अपेक्षा रही कि नही ? रही। फिर तो ऐसा सिद्धान्त बनाना कि ये योगी देखते हुए क्षणिकको ही दिखते हैं, असगत रहा। अरे ! क्षणिकत्वको समझने के लिए अब तो पूर्व और उत्तर क्षणोके ज्ञानकी अपेक्षा हो गई। यदि शकाकार यह कहे कि पदार्थ मध्यक्षणके स्वभाव वाला हुआ करता है अर्थात् क्षणिक हुआ करता है पूर्व और उत्तर क्षणसे पृथक हुआ करता है, इस कारणसे पूर्व और उत्तर क्षणसे व्यावृत्त होकर रहने वाले मध्यक्षणका जो ज्ञान ग्रहण करना है उसी ज्ञानसे पूर्व और उत्तर क्षणोकी भी प्रतिपत्ति हो जाती है। तो उत्तरमे कहते हैं कि यही बात तो प्रकृतमे है कि कार्यकी उपादान शक्ति कारण स्वभाव वाली है, इस कारणसे उस कारणको ग्रहण करने वाले ज्ञानके ही द्वारा कार्यका भी ज्ञान हो जाता है। जैसे कि पूर्व और उत्तर क्षणकी व्यावृत्ति मध्य क्षण स्वभावरूप है सो मध्यक्षणके जान लेनेसे पूर्व और उत्तर समयके क्षण भी जान लिए जाते हैं। यहाँ क्षण शब्द सुनकर इस तरहकी दृष्टि बनाना कि जैसे पर्याय होती है। वर्तमान पर्याय कब जानी जाती है ? जब यह समझमे आये कि यह पूर्व पर्यायसे अलग है और उत्तर पर्यायसे अलग है। ऐसे ही क्षणोमें दृष्टि लगाकर कहा जा रहा है। और कार्यका ज्ञान तो प्रत्यक्ष आदिक ज्ञानोकी सहायता लेकर आत्मा जानता ही रहता है इससे कार्यकारणका बराबर ज्ञान भी रहता है और उनमे स्वरूपसे कार्यकारणपना बना हुआ है। ऐसा नही है कि कोई सम्बन्ध अलगसे इन पदार्थोंमे जुटाया जाय जिससे कि यह कार्यकारण कहाये।

शक्ति और कार्यकारणभावका अवगम—दूसरी बात यह है कि यदि शङ्काकार यह कहे कि कार्यका निश्चय न होनेपर शक्तिका भी निश्चय नही होता तो इस तरह नील आदिक पदार्थोंका भी निश्चय न हो सकेगा। क्षणिकवादमे रूपरस-गध स्पर्शादिक पदार्थ नही माने गए। जो रूप है बस वही पदार्थ है। जो रस है वही पदार्थ है जो गधादिक हैं वही पदार्थ है। जैसे कि आज कलके कुछ वैज्ञानिक लोग शक्ति को पदार्थ मानते हैं कि बस जो इनर्जी है वही निरपेक्ष वस्तु है और उन शक्तियोके मेलसे प्रयोग करना माना है। पर यह विदित नही है कि अणु कितने सूक्ष्म होते है। शक्ति निराधार नही होती कि पदार्थ ही न हो और शक्ति कुछ वस्तु हो। वैज्ञानिको की दृष्टि प्रयोगके कालमे शक्तिपर अधिक रहती है क्योकि शक्तियोके हिसाबसे, मेलसे तो वे अपना विज्ञान बनाते हैं, तो चूंकि उनके चित्तमे शक्तिकी प्रधानता रहती है तो वे पदार्थ कुछ नही मानते। पर यह बात सही नहीं है, इसी तरह क्षणिकवादी लोग भेद प्रिय होनेके कारण रूपको अलग पदार्थ, रस, गध, स्पर्श आदिकको अलग पदार्थ मानते हैं। कोई एक वस्तु है वह रूपरस गधादिमय है ऐसा वे स्वीकार नही करते। तो कार्योंका निश्चय न होनेपर शक्तिका भी अनिश्चय करने वाले शंकाकारके यहाँ यह कहा जा सकेगा कि नीलादि ज्ञानका निश्चय न होनेपर नीलादिकका भी निश्चय न होगा, क्योकि जो ही शक्तिका कार्य है वही नीलादिकका कार्य है।

कार्य कारणभावके परिज्ञानकी यत्नपरीक्षितता—शंकाकारने जो पहिले एक उलझना दी थी। कि देखो–एक इंधन आदिकसे उत्पन्न होने वाली अग्नि है और एक मणि आदिकसे उत्पन्न होने वाली अग्नि है, पर देखो–एक जगहसे धुवाँ निकल रहा है और दूसरी जगहसे नहीं निकलता तब इससे कार्य कारणभाव निश्चित तो न रहा। उत्तरमे कहते हैं कि ईंधनसे उत्पन्न हुई अग्निका स्वरूप न्यारा है और मणि आदिकसे उत्पन्न हुई अग्निका स्वरूप न्यारा है। तो वहाँ यह निश्चय होता है कि ईंधन आदिक जन्य अग्नि है क्योंकि धुवाँ होनेसे। अब यह जानकार पुरुषपर निर्भर है कि उसका विचार सही बना ले। बडे यत्नसे परीक्षित किया हुआ जो कार्य कारण भाव है उसका उल्लघन नहीं होता अन्यथा यह बतलावो कि वीतराग और सरागकी व्यवस्था आप कैसे बनाओगे? क्योंकि बाहरी चेष्टा तो दोनोंक अनेक अंशोसे मिलती जुलती हैं। कोई सराग पुरुष भी जप तप कर रहा है, कोई वीतराग साधु भी जप तप कर रहा है तो वहाँ आप यह व्यवस्था कैसे बनायेंगे कि यह वीतराग है और यह सराग है अथवा यह मरा है यह जीवित है यह व्यवस्था कैसे बनाओगे? यदि कहो कि उनका व्यापार व्यवहार आकार विशेष किसीमे तो ऐसा पाया जाता कि वह चेतनका कार्य जचता तो वहा हम समझ लेते हैं कि इस जीवित शरीरमे चेतन है, क्योंकि इस तरहका व्यापार आकार विशेष पाया जा रहा है, परन्तु मृत शरीरमे उस तरहका व्यापार आकार विशेष नहीं पाया जाता, इससे जान जाते कि यह मृत है। कहते हैं कि यही व्यवस्था तो यहाँ लगा दी जाती है आकार आदिक विशेषसे यह समझ लिया जाता कि यह ईंधन प्रभव अग्नि है और यह मणि आदिक प्रभव अग्नि है।

अकार्यकारणभावमे भी शंकाकार द्वारा विकल्पित सह भावित्व व क्रमभावित्व आदि विकल्पोकी आपत्ति करके भङ्ग करनेका प्रसग–अब यह भी देखिये कि जितने भी दोष दिए हैं शंकाकारने वे सब दोष अकार्य कारणभावमे भी लग जाते हैं। हाँ दो प्रसग हो गए अब सामने एक तो कार्य कारणभावकी मान्यता कोई पदार्थ कार्य है कोई दूसरा पदार्थ कारण है और एक अकार्यकारणभाव याने कारण कार्यपना कुछ नहीं है ऐसा समझनेका सिद्धान्त। सो जैसे कार्य कारण भाव की सिद्धी मिटानेके लिए विकल्प दिये थे कि बताओ–कार्य कारण भाव सहभावी पदार्थोंमे है या क्रमभावी पदार्थोंमें है, क्योंकि सम्बन्ध तो दोमे रहा करता है ना तो यों ही अकार्य–कारणमे भी पूछा जा सकता है कि अकार्य कारणभाव सम्बन्ध क्या सहभावी पदार्थोंमें है या क्रमभावी पदार्थोंमे है। अर्थात् इसमे कार्य कारणपना नहीं है ऐसा साबित करना क्या सहभावी पदार्थोंमे होगा या क्रमभावी पदार्थोंमें होगा? यदि कहो कि सहभावीमे कार्य कारणपनेका निषेध है तो इसके मायने है कि क्रमभाव में कार्य कारणपना हो जायगा। एकमे तो कोई सम्बन्ध नहीं होगा। सम्बन्ध बताना और सम्बन्धका निषेध करना ये दोनो बातें एकमे नहीं हुआ करती। यदि कहो कि

पहिले अकार्य कारणपना या उसका सम्बन्ध पहिले समयमे रहने वाले पदार्थोंमे जुट गया, पीछे दूसरे पदार्थमे सम्बन्ध जुटेगा। उत्तर क्षणमे होने वाले पदार्थोंमे अकार्य कारणभाव रखा जायेगा। तो देखिये—जिस समय यह अकार्य कारणभाव पूर्ण क्षण मे रहते वाले पदार्थमे लग गया। अब वह दूसरेकी अपेक्षा न रखेगा। तो फिर कैसे अकार्य कारणता विदित हो सकेगी। यदि कहो कि वह अकार्यकारणभाव पना रहता तो है पूर्ववर्ती पदार्थमे, पर उत्तरवर्ती पदार्थकी अपेक्षा भी रखता है तो कहते हैं अपेक्षा तो उसकी ही मानी जाय जो उपकारी हो। तो उसने उपकार क्या किया ? कुछ भी उपकार नही किया। तो जब उपकार नही है तो अपेक्षा कैसे लगेगी ? इस तरह जितने दोष कार्य कारणभावकी सिद्धि मिटानेके लिए शकाकारने दिये थे उतने ही दोष उन ही शब्दोमे पदार्थोंमे अकार्य कारणभाव मिटानेके लिए भी दिये जा सकते हैं।

पदार्थोंमे अकार्यकारणभावकी प्रतीतिकी तरह कार्यकारणभावकी भी प्रतीति—यदि यह कहो कि पदार्थोंमें कुछ भी सबध नही होता, अकार्यकारण सबध भी नही है, पदार्थमे अकार्यकारणका सम्बन्ध नही है इसका अर्थ यह हुआ कि उनमे कार्यकारणपना है। एकका निषेध करनेका अर्थ है कि उससे उल्टेकी विधि हो गयी। पदार्थ परस्परमे न कार्यरूप है न कारणरूप है ऐसा अकार्यकारणका सम्बन्ध होता है, इस सम्बन्धको नही मानते तो अर्थ हुआ कि कार्यकारण सम्बन्ध होता है यदि यह कहो कि दोनो ही सम्बन्ध नही होते। न पदार्थोंमे कार्यकारण सम्बन्ध है और न पदार्थोंमे अकार्यकारण सम्बन्ध है। कहते हैं कि यह बात तो अयुक्त है। यह तो विरोधकी बात है। जैसे किसी पदार्थमे कहे कोई, घटमें कहे कोई कि न इसमे घटत्व है न अघटत्व है, किसी भी जीवमे न मनुष्यत्व है, न अमनुष्यत्व है। अरे! दो ही तो चीजें हैं दुनियामे, दोनोका विरोध एक साथ कैसे हो सकता है ? इससे सम्बन्धका निराकरण नही किया जा सकता। और, जब सम्बन्धका निराकरण न किया जासका तो जैसे जिस किसी प्रमाणसे किन्ही दो अनमिल पदार्थोंमें अकार्यकारणभावकी प्रतीति होती है। जैसे गायका कारण घोडा नही, घोडेका कारण गाय नही। तो जैसे अकार्य कारणताकी प्रतीति सही है ऐसे ही किन्ही पदार्थोंमे कार्यकारणताकी भी प्रतीति सही है। अग्नि कारण है धूम कार्य है। अकार्यकारणताकी प्रतीति तो अतद्भावभावितासे होती है अर्थात् जिसके न होनेपर जो हो जाय वहाँ कार्यकारणभाव नही है। तो इसी प्रकार कार्यकारणताकी प्रतीति तद्भावभावित्वपर है अर्थात् उसके ही होनेपर ही तो उससे समझा जाता है कि इसमे कार्यकारणभावका सम्बन्ध है। तो अणुवोमे परस्पर श्लेष सम्बन्ध होता है, उस सम्बन्धके कारण ये पदार्थ स्थूल हो जाते हैं जो कि ये नजर आ रहे हैं चौकी, तखत आदिक। तो यह स्थूलताकी प्रतीति गलत नही है, भ्रात नही है। यहा अणुवोंकी इस प्रकारकी एक द्रव्य परिणति है तभी तो अणुवोसे पानी नही भरा जा सकता और अणुवोका जब पिण्ड होकर एक स्कध बन गया, घड़ा बन

गया तो अब उसमे पानी भरा जा सकता है। तो यह कार्य-भेद भी यह सिद्ध करता है कि हाँ, कभी असम्बद्ध अणु भी होता है और कभी सम्बद्ध अणु भी होता है, इससे सम्बन्ध मानना युक्त है और सामान्य स्थिर स्थूल सदृश आदिक सब मानने पड़ेंगे। उस हीसे लोकव्यवहार है और उस हीसे फिर सब कल्याणमार्ग व्यवस्था बन सकेगी।

तद्भावभावित्वकी यत्नत. परीक्षामे कार्यकारणभावकी समस्याका समाधान – अब शङ्काकार कहता है कि अभी कार्यकारणत्व सम्बन्धकी बात स्पष्ट नही हुई। जिन पदार्थोंमे आप कार्यकारणभाव मानते हो उनमे क्या कार्यकारणता इस कारणसे है कि उनमे एक पदार्थका अभिसम्बन्ध है अर्थात् एक पदार्थमें कार्य हो रहा और कारण भी था, ये दोनो ही बातें एक पदार्थसे सम्बन्ध रखती है, इस कारण से कार्यकारणता है क्या ? जैसे एक मिट्टीमें मृत्पिण्ड भी रहा और घट भी बना तो एक ही पदार्थमे उन दोनोंका सम्बन्ध है इस कारण कार्यकारण है क्या ? यदि इससे कार्यकारण हो तब तो देखो, एक बछड़ेके दो सीग हैं और दोनो सीगोंका एक अर्थसे सम्बन्ध है। बछड़ेके शिरमे वे दोनो सीग उगे हैं। तो उन दोनो सीगोमे सम्बन्ध भी है। क्या-क्या सम्बन्ध है ? एक तो द्वित्वका सम्बन्ध है। कहते हैं कि सीग दो हैं तो एकको देखकर तो दो नही कहा जा सकता। दोको देखकर ही दो कहा जा सकेगा। तो दोनोसे सम्बन्ध रहा ना द्वित्वका। तो देखो ! एक ही पदार्थमे शिरमे दो सीग हैं और दोनोमे द्वित्वका सम्बन्ध है—बाया, दाया। इस तरहके व्यवहारका भी सम्बंध है तब फिर वे दोनों सींग भी परस्पर कार्य कारण हो जाना चाहिए। उनमे एक सींग कार्य हो जाय और एक कारण हो जाय। यदि कहो कि किसी और एक सम्बन्धसे कार्यकारणता मानी जा रही है इसमे एक अर्थमे रहने मात्रसे तुम कार्यकारणता नही मानते तो शङ्काकार ही कह रहा है कि यह भी ठीक नही है क्योकि सम्बन्ध दोमें रहनेवाला होता है याने सम्बन्ध दो पदार्थोंमे रहे, इसके सिवाय और कुछ लक्षण है नही सम्बन्धका। तो देखो ! द्वित्व सख्या दोमें रह रही, दाया बाया सींगका व्यवहार दोकी वजहसे है। तब तो उसमे भी कार्यकारण सम्बन्ध हो जाना चाहिए। समाधान इसका यह है कि वस्तुत वे दोनो सींग दोनो पदार्थ हैं और यदि एक पदार्थसे सींगो की उत्पत्ति मानते हो तो सीगसे सीगका कार्य कारण न मानो। किन्तु शिरसे दोनों सीगोका कार्य कारण मानो। और, फिर कार्य कारणका तो लक्षण यह है कि जिसके होनेपर जो हो जिसके न होनेपर जो न हुआ करे ऐसा जिसका नियम हो उसे कार्य कारण कहते हैं सो घटित कर समझो।

कार्यकारणविभागमे तद्भावभावित्वकी आधारता — अब शङ्काकार कहता है कि कार्य कारणता क्या इसका नाम होगा कि किसीके होनेपर दूसरेका होना और किसीके अभाव होनेपर दूसरेका अभाव होना, ऐसा जो विशेषण जिसके सम्बन्धमे आया उसका नाम कार्य कारणता है सभी प्रकारके सम्बन्धोका नाम कार्य कारणता

नही है तो उत्तर देते हैं। शकाकार ही कह रहा है, जो फिर किसीके होनेपर होना न होनेपर न होना यह भाव और अभाव कारण कार्यपना कहलाया। फिर असत् सम्बन्ध की कल्पना करना व्यर्थ है। समाधानमे कहते हैं कि किसीके होनेपर होना न होनेपर न होना यह सम्बन्ध कार्यकारणमे भी घटित होता है और अन्य सबधमे भी घटित होता है पर इसके साथ इतना और उसके साथ समझ लेनेपर कि वह कार्य उस कारणसे पहिले न था और अब हुआ है तो वहाँ कार्य कारण सम्बन्ध होता है। तो कार्य कारण विभागका तद्भावभावित्व लक्षण ही अविरुद्ध है। कार्य कारण सम्बन्धका निषेध किया जानेपर लोकमे किसी भी प्रकारका व्यवहार नही बन सकता है। कोई क्या काम करेगा किसीको प्यास लगी तो रहा आये प्यासा। जब उसे यह बोध ही नही है कि प्यास बुझानेका कारण है जल तो जलपानके लिए वह यत्न कैसे करेगा ? भोजन भी कुछ बनाये खाये तो क्यो ? भूख लगी है अब भूखकी वेदना मिटानेका कारण है भोजन कर लेना। कार्य कारण माने नही तो सभी अव्यवस्थायें और सभी विडम्बनायें वहाँ चलेंगी। इससे कार्य कारण सम्बन्ध भी है अन्य सम्बन्ध भी है।

स्कंधोमें बन्ध, बन्धका कारण और बन्धस्वरूप—यहाँ प्रकृत बात यह चल रही थी कि भिन्न-भिन्न अनेक अणुवोमे सम्बन्ध हो जाना इसमे तो स्निग्ध और रूक्षताका कारण है। स्निग्ध रूक्षत्वके कारण उनमे बध हो जाता है। तो अब यहाँ यह परखलो कि उन दोनो परमाणुवोमे स्निग्ध रूक्षत्व तो था ही पहिलेसे किन्तु जब अबध अवस्थामे, स्वतत्र स्वतत्र बिखरे हुए थे और अब उन निष्पन्न परमाणुवोमे पाये जाने वाले स्निग्ध और रूक्षत्व गुणके कारण बध अवस्था हो गयी तो पूर्ण स्वतत्र अवस्थाको तजकर वे सब अणु अब परतत्र अवस्थामे आये यह उनका सम्बन्ध है, यह तो एक स्वभाव दृष्टिसे द्रव्य दृष्टिसे परखनेकी बात है कि प्रत्येक अणु स्वतत्र हैं, अपने पूरे स्वरूप सत्त्वको लिए हुए हैं। उनमे किसी भी पर पदार्थका प्रवेश नही हो सकता। यह सब उनके सहज सत्त्वकी बात है पर स्कध होना, सम्बन्ध होना यह सब तो पर्याय सम्बन्धी बात है। द्रव्य दृष्टिसे निहारी जाने वाली बातको पर्यायके रूपमे भी थोपी जाय तो यह मिथ्या बात होती है।

कार्य कारणभूत पदार्थोंमें कथचित् भिन्नत्व और अभिन्नत्व—अब शकाकार कहता है कि दोनो-यह कारणभूत और कार्यभूत जो पदार्थ है वह परस्पर भिन्न है या अभिन्न है ? यदि भिन्न है तो भिन्नसे सम्बन्ध कैसे बन सकता है ? कारण बिल्कुल जुदा है, कार्य बिल्कुल जुदा है तो भिन्नोमे सम्बन्ध क्या बनेगा ? यदि कहो कि अभिन्नमे भी कार्य कारणपना कुछ नही हो सकता। वह तो एक ही है, अभिन्न ही है। उत्तर देते हैं कि कार्य कारणभूत पदार्थ कथचित् भिन्न है कथचित् अभिन्न है, जैसे इस प्रकरणको दो प्रकारोमे समझना है—एक प्रकार तो है उपादान उपादेय वाला और एक प्रकार है सहकारी कारण और कार्य वाला। जैसे मृत्पिण्डसे घट बना तो

मृतपिण्ड कारण है, घट कार्य है और इसमें उपादान उपादेय सम्बन्ध है। अब यहाँ परखिये—मृतपिण्ड और घट ये दोनों सर्वथा अभिन्न तो है नहीं, क्योंकि वे पर्यायें जुदी जुदी हैं किन्तु पर्याय स्वरूपसे भिन्न होनेपर भी चूँकि उस ही द्रव्यकी मृतपिण्ड पर्याय थी और उस ही द्रव्यकी घट पर्याय हुई। तो उस ही एक द्रव्यकी अवस्था होनेके नाते एक द्रव्यत्वका सम्बन्ध रखनेकी दृष्टिसे अभिन्नता भी है। इसी तरह सहकारी कारण और कार्यके बीच निरखिये। घटकी उत्पत्तिमे सहकारी कारण कुम्हार दड चक्र आदिक जो कार्यमे तन्मय होकर न रहे और जिसके बिना कार्य न हो सके यह सहकारी कारण कहलाता है। जिसका दूसरा नाम है निमित्त कारण। तो निमित्त कारणमे और कार्यमे तद्भाव–भावित्वका सम्बन्ध है। कुम्हारका व्यापार दड चक्र आदिककी परिणतिके होनेपर घटका होना और इसके न होनेपर घटका न होना इस तरहका तद्भावभावित्व सम्बन्ध है। इस नाते अब उनमें सर्वथा भेद नहीं हुआ, और भिन्न तो प्रकट है ही। कुम्हार दड चक्र आदिक भिन्न पदार्थ हैं और यह घट भिन्न पदार्थ है। तो इसी प्रकार अनेक पदार्थोंमें अनेक प्रकारके सम्बन्ध हुआ करते हैं। यहा सामान्य स्वरूपकी सिद्धि करनेमे तिर्यक् सामान्यको सिद्ध करने वाला प्रत्यय और ऊर्ध्वता सामान्यको सिद्ध करने वाले उपादान उपादेय सम्बन्धका ज्ञान निर्बाध है। तो प्रमाणसे जो एकदम स्पष्ट हो रहा है ऐसा कार्य कारणका सम्बन्ध भी है और अन्योन्य प्रवेशका सम्बन्ध भी है, कथंचित तादात्म्यका सम्बन्ध भी है। इतना सब कुछ होनेपर भी स्वरूपतः प्रत्येक पदार्थ अपने अस्तित्वमें ही है।
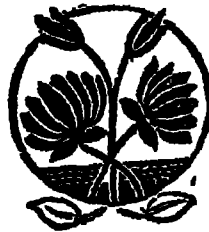
परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[एकोनविंश भाग]

●

प्रवक्ता

[अध्यात्मयोगी, श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज]

●

प्रमाणादर्थससिद्धिस्तदाभासाद्विपर्ययः ।
इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्म सिद्धमल्प लघीयसः ॥

सामान्यविशेषात्मक पदार्थके विशेष अर्थके स्वरूपका अधिकार—इस ग्रन्थमे प्रमाणके स्वरूपका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेके बाद प्रमाणके विषयका विवरण चल रहा था । प्रमाणका विषय क्या है ? उत्तर मिला—सामान्यविशेषात्मक पदार्थ प्रमाणका विषय है । अर्थात् प्रमाण याने ज्ञान सामान्यविशेषात्मक पदार्थको जानता है । न कोई पदार्थ केवल सामान्यात्मक होता है, न कोई पदार्थ केवल विशेषात्मक होता है । इस सिद्धान्तपर सामान्य तत्त्वके विरुद्ध विशेषवादियोने शकायें की उनका निराकरण भी किया। सामान्य दो प्रकारके होते हैं—तिर्यक् सामान्य और ऊर्ध्वता सामान्य । तिर्यक् सामान्यमें सदृश प्रत्यय द्वारा बोध होता है । एक कालमे अनेक पदार्थोंमे सदृशत्व देखकर तिर्यक् सामान्यकी जानकारी होती है । तो वहां प्रत्येक पदार्थोंसे प्रत्येकको परस्पर व्यावृत्त दिखाकर सामान्य भावका ही निराकरण करना चाहा था । वहा प्रमाणसे युक्तियोसे सिद्ध किया गया कि तिर्यक् सामान्य धर्म है । इसके बाद ऊर्ध्वता सामान्यके विरोधमे विशेषवादियोंने आपत्ति उठायी थी कि प्रत्येक क्षणमे चूंकि नवीन-नवीन पदार्थ होते हैं इस कारण ऊर्ध्वता सामान्य नही बन सकता । उसका निराकरण किया । और सामान्य स्वरूपकी व्यवस्था बतायी । अब सामान्य स्वरूपका विवरण करनेके बाद विशेष तत्त्वका वर्णन कर रहे हैं। विशेषका अर्थ है जो दूसरेसे भिन्न हो अथवा कुछ विलक्षण हो । तो सर्वप्रथम विशेषके भेदोका वर्णन करनेका सकेत एक सूत्रमे कहते हैं ।

विशेषश्च ॥ ४-७ ॥

सामान्यवत् विशेषके प्रकारोंका भी उल्लेख—विशेष भी दो प्रकारका

होता है—जिस प्रकार सामान्यके दो प्रकार बताये गए थे—तिर्यक् सामान्य और ऊर्ध्वता सामान्य। इसी प्रकार विशेषके भी दो भेद होते हैं—तिर्यक् विशेष, ऊर्ध्वता विशेष। याने एक प्रकारका तो ऐसा विशेष जिससे एक साथ रहने वाले अनेक पदार्थों मे भिन्नता बताई जा सके। जैसे गायसे भिन्न भैंस है। भैंसादिकसे भिन्न घोडा है, इस तरह तो एक ही कालमें रहने वाले अनेक पदार्थोंमे विशेष बताया जा सकता है। एक तो ऐसा विशेष अथवा एक ही जातिमे भी विलक्षणता बता सके। जैसे अनेक गायें हैं उनमे भेद डालना, यह पीली है, यह काली है, यह अमुक गुणकी है आदिक भेद बताना यह सब है तिर्यक विशेष। तो एक विशेष तो होता है एक ही कालमे रहने वाले अनेक पदार्थोंमे भिन्नता बताने वाला। दूसरा विशेष होता है अनेक कालोमें होने वाली परिणतियोंमे परस्पर भेद बताना। तो ठीक जिस तरह सामान्यके भेद किए गये थे, उन्हीं दृष्टियोमे उनके मुकाबलेतन विशेष भी दो प्रकारके होते हैं। उन विशेषों के नाम क्या हैं उसके लिए सूत्र कहते हैं।

पर्यायव्यतिरेकभेदात् ॥ ४–८ ॥

विशेषके दो प्रकारोंका निर्देश—एक पर्याय विशेष दूसरा व्यतिरेक विशेष यहाँ पर्याय विशेष तो कहा गया ऊर्ध्वता विशेषके लिए और व्यतिरेक विशेष कहा गया है तिर्यक् विशेषके लिए। पर्याय विशेषसे मतलब है कि अनेक पर्यायोमे परस्पर विलक्षणता भिन्नता बताना। तो यहाँ चूंकि अनेक पर्यायोमे बताया जा रहा है सो अनेक पदार्थोंके अनेक पर्यायोमे विशेषता बतानेकी बात यदि कही जाय तो वहाँ बन जायगा वह व्यतिरेक विशेष। इस कारणसे एक ही पदार्थमे होने वाली पर्यायोंमे भेद बताने का नाम है पर्यायविशेष। व्यतिरेकविशेष। व्यतिरेक कहते हैं भिन्न–भिन्नको। भिन्न–भिन्न रहने वाले पदार्थोंकी विलक्षणता बताना यह है व्यतिरेक विशेष। सो किसी एक पदार्थकी भिन्न–भिन्न पर्यायोको मानकर उसमे विशेष बतानेको यदि व्यतिरेक विशेष कहा जाय तो वह पर्यायविशेषमे आ जायगा। इस कारणसे एक ही काल में अवस्थित अनेक पदार्थोंमे परस्पर भिन्नता बताना यह कहलाता है व्यतिरेक विशेष यो विशेषके दो भेद बताकर पर्यायविशेषका स्वरूप बताते हैं।

एकस्मिन् द्रव्ये क्रमभाविन परिणामाः पर्याया आत्मनि हर्षविषादादिवत् ॥ ४–९ ॥

पर्यायविशेषका स्वरूप और पर्यायोमें अनुगत एक पदार्थकी अमान्यता का समाधान—एक ही द्रव्यमे क्रमसे होने वाले परिणामोको पर्याय कहते हैं। और उनकी विशेषतामे होने वाले भावको पर्यायविशेष कहते हैं। जैसे कि एक आत्मामें पूर्वोत्तर उत्पन्न हुए हर्ष विषाद आदिक परिणामोको पर्यायविशेष कहा जाता है। द्रव्य है वहाँ एक। जैसे कोई सा भी एक आत्मा ले लीजिए। उस एक आत्मामें कभी

हर्ष परिणाम होता कभी विषाद परिणाम होता तो यो, हर्ष विषाद अनेक परिणाम हुए, उन परिणामोंकी कथंचित् भिन्नता है, क्योंकि प्रत्येक पर्यायानुभवन उसके काल मे उस ही रूप होता है इस कारण वह पर्याय विशेष कहलाता है। यहा क्षणिकवादी शङ्काकार कह रहा है कि हर्ष विषाद आदिक भेदोसे भिन्न कोई आत्मा नही है। जो, हर्ष विषाद आदिक पर्यायें उत्पन्न हो रही हैं जा भेद उत्पन्न हो रहे हैं वे सब एक-एक पदार्थ हैं। उनमे रहने वाला कोई एक आत्मा हो सो नही है। इस कारणसे यह उदाहरण देना बिल्कुल अयुक्त है कि आत्मामे हर्ष विषाद आदिक पर्यायें विशेष कहलाती हैं। इनमे तो एक हर्ष पदार्थ हुआ एक विषाद पदार्थ हुआ। और इस तरह से जितने भी भेद उठेंगे वे सब एक-एक पदार्थ हैं उनमे अन्वय रूपसे रहे कोई आत्मा आदिक किसी भी नाम वाला सा वान् नही। अब इस शकाका समाधान करते हैं कि शकाकारने यह बात अरा मक्ष करके नही कही है। पहिले तो यह सोच लो कि अनेक आकारोमे व्यापने वाला एक कुछ हुआ करता या नही। इस ही आधारपर तो तुम अन्वयी आत्माका खण्डन कर रहे हो। तो पहिले यह निर्णय कर लो कि अनेक आकारोमे व्याप करके रहने वाला कुछ एक हुआ करता कि नही हुवा करता है? ऐसा तो इन क्षणिकवादियोने भी माना। चित्रज्ञान होता है तो वह नीलाकार पीताकार आदिक अनेक व्यापारोसेमे व्यापने वाला है और उसे अद्वैत माना है। तो इतनी बात तो माननी ही पडेगी कि अनेक आकारो मे रहने वाला एक कुछ होता है। ऐसा नही कि जितने आकार हैं वे सब पदार्थ हैं। यो माननेपर चित्रज्ञानका स्वरूप न बनेगा। वहाँपर भी थे अनेक ज्ञान बन बैठेंगे। अनेकान्तात्मक एक सम्वेदन जो अद्वैत क्षणिकवादमें माना है वह न बन सकेगा। तो इसी प्रकार अनेक आकारोमे व्याप करके रह रहा यह आत्मा कोई किसी आकारमें कोई किसी आकारमें अथवा एक साथ उत्पन्न हुए आत्मत्वके ज्ञानके आकारमें रहने वाला आत्मा एक है और वह स्वसन्वेदन प्रत्यक्षसे सिद्ध है। क्रमसे भी इसमे अनेक आकार आ रहे हैं। कभी हर्ष करता है कभी विषाद करता है तो उन हर्ष विषाद आदिक परिणामोमे रहने वाला कोई एक आत्मा है। जो बात जिस तरहसे प्रतिभात होती है उसका उसी तरहसे व्यवहार करना चाहिए। जैसे कि अनेक ज्ञेयाकारोमे एक रूपसे सम्वेदन करने वाला चित्रज्ञान एक माना गया है इसी प्रकार सुख आदिक अनेक आकारोमे एक आत्मारूपसे प्रतिभासमान आत्मा भी तो है। इस कारण मानना होगा कि द्रव्य तो एक है वह आत्मा और उसमे पूर्वापर कालमें अनेक पर्यायें उत्पन्न होती हैं। वह पर्याय विशेष है।

हर्षविषादादि परिणामोको सर्वथा भिन्न माननेपर अनुसन्धान ज्ञानके अभावका प्रसग—और भी देखिये! यदि सुख दु ख आदिक पर्यायोको परस्परमें सर्वथा भिन्न मान लिया जाय अर्थात् सुख दु ख आदिक पर्यायोमे कोई एक आत्मा नही है, या एक आत्माकी वे परिणतियाँ नही हैं वे स्वतत्र एक-एक पदाथ हैं, सुख दु ख आदिक इस तरह उनमे यदि एकान्ततः भेद मान लिया जाय तो 'मैं सुखी था अब मैं

दु:खी हू" इस प्रकारका अनुसधान ज्ञान नही बन सकता जैसे कि जीवोको ऐसा प्रत्यभिज्ञान होता है कि मैं पहिले तो सुखी था अब तो मैं बड दु खी हू या मैं पहिले दुखी था अब सुखी हू आदि। प्राय: अनेक लोग इस तरहसे अपनेको अनुभव करते हैं, अजी पहिले समयमे बडे सुखी थे लोग, अब तो ये सब दु:खी हैं। मैं भी पहिले बडा सुखी था, अब मैं दु खी हूँ, इस प्रकारका जो प्रत्यभिज्ञान हुआ करता है फिर वह न होगा।

वासना जाग्रतिके कारण सुख दु खोंका अनुभवन—शकाकार कहता है कि उस प्रकारकी वासना रहती है, उस वासनाके जगनेसे ऐसा ज्ञान हो जाया करता है कि मैं सुखी था अब दु:खी हू या मैं पहिले दु:खी था अब सुखी हूँ। वस्तुत: कोई वह एक नही है, जो ही एक पहिले सु:खी था वही एक अब दुखी है। सुख दु ख आदिक जितने भी भेद हैं वे सब पूरे स्वतत्र भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं, केवल उस प्रकारकी वासना लगी हुई है उस वासनाके कारण इस प्रकारका अनुसधान होता है। उत्तर देते हैं कि यह कथन बिल्कुल असत्य है। भला यह बतलाओ कि यह जो अनुसधानकी वासना हुई है—जो पहिले सुखी था वही मैं अब दु:खी हूँ, इस प्रकारके प्रत्यभिज्ञानकी वासना बनी है सो वह अनुसधान वासना अनुभन्यमानमे आये हुए सुख आदिकसे भिन्न है अथवा अभिन्न है ? अर्थात् जो हमारे ज्ञानमे हमारे प्रत्यभिज्ञानके विषयभूत सुख दु ख हो रहे उन सुख दु खोसे यह प्रत्यभिज्ञानकी वासना जुदी है क्या ? यदि जुदी मानते हो तो अब परखिये। मेरे आत्मामें जो सुख दु ख हो रहे हैं उनका कर रहा हू मैं प्रत्यभिज्ञान लो यही तो मैं सुखी था, अब यही मैं दु खी हो गया हू। तो इसमे अब दो बातों पर विचार किया जा रहा है। एक तो प्रत्यभिज्ञानकी वासना हुई है। दूसरे वे प्रत्यभिज्ञान के विषयभूत सुख दु ख आदिक हैं तो ये दोनो क्या भिन्न हैं ? यदि ये सर्वथा भिन्न हैं तो जैसे दूसरे पुरुष हमारे सुख दु खका विषयका ज्ञान नही कर सकते इसी प्रकार मेरेमे जगी हुई अनुसधान वासना भी मेरे सुख दु खोका ज्ञान न कर सकेगी। क्योंकि अब तो इस ज्ञान वासनाको सुख दु ख आदिकसे भिन्न मान लिया गया है। यदि कहो अनुसधान वासना अनुभयमान सुख दु ख आदिकसे अभिन्न है तब अनुसधान वासनायें भी उतनी बन जायेंगी जितनी कि हर्ष विषाद आदिक भेद हैं, क्योकि अनुसधान वासनायें उन अनेकोमें अभिन्न हो गई। तो जब उन अनेकपे अभिन्न होगई तो वा ना एक कैसे रहेगी। सुख-दुख आदिक हैं अनेक पदार्थ और उन अनेक पदार्थोंमे अभिन्न रूपसे रह रही वासना तो जितने भी पदार्थ हैं उतनी ही वासनायें कहलायेंगी। फिर एक अनुसधान कैसे कहलायेगा ? जैसे घट पट आदिक अनेक पदार्थ रखे हैं उन पदार्थों मे अभेदरूपसे उनका स्वरूप रह रहा है तब जितने पदार्थ हैं उतने ही तो स्वरूप कह लायेंगे। इसी प्रकार हर्ष विषाद आदिक अनेक भेद हैं और उनमे भेदरूपसे अनुसधान वासना मान लिया तो जितने ही पदार्थ हैं उतनी वे अनुसधान वासनायें बन जायेंगी। और, जब उतनी ही वासनायें बन गयीं और अभेदरूप हो गयी तो सुख दुख आदिक

जो अचेतन पदार्थ हैं, सुख दुःखमे चेतनाका स्वरूप तो नही है, चेतनका स्वरूप तो ज्ञानमे है, तो अब वासना भी अचेतन बन गयी, क्योंकि जब सुख दु.खमे अभेदरूपसे रह रही है वासना तो जो सुख दु.खके गुण होगे, जो सुख दु.खकी तारीफ होगी वही तो वासनाकी तारीफ बनेगी। तो जब वासना अचेतन होगई तो उन अनेक वासनाओ के जगनेमे सुख आदिकमे एक अनुसधान ज्ञान कैसे पैदा हो सकता है ? जितने सुख दु ख आदिक हैं उतने ही अनुसधान बनेंगे और फिर उनका स्वरूप भी नही बन पाता, क्योंकि वे अचेतनरूपमे हो गए। जब कारण पहिले है तो कार्य भी पहिले हो गए। सुख दु ख आदिक पहिले हैं तो सुख दु ख आदिकके सम्वेदन भी न्यारे-न्यारे तभी हो जायेंगे।

वासनाको सुखदु खादिकसे अथचिद्भिन्नाभिन्न माननेपर आत्माका ही अमान्तकरण--यदि सुख दु.ख आदिकमे वासनाको कथचित् ही भिन्न मान लेते हो, तब फिर यह नाम मात्रका विवाद रह गया है। उस हीका नाम आत्मा है, उस हीका नाम तुमने अनुसधान वासना रख रखा है। अह अहके रूपसे स्वसवेदन प्रत्यक्षमे प्रसिद्ध जो आत्मा है, जो कि सहकारी गुणोको और क्रमभावी पर्यायोको आत्मसात् कर रहा है, आत्मीयरूप कर रहा है ऐसा जो आत्मा उसका 'वासना' यह दूसरा नाम रख लिया है। अर्थात् एक साथ रहने वाले ज्ञान, दर्शन चारित्र आदिक गुणोको जो आत्मसात् कर रहा है आत्मस्वरूप बन रहा है और क्रमसे होने वाली पर्यायोको भी अपनेमे कथचित् तादात्म्य रूप कर रहा है ऐसे ही यह आत्मा है जो स्वसवेदन प्रत्यक्ष से सिद्ध है। अह-अह रूपसे जाना जाता है, उस हीका नाम वासना रख लिया गया है। तब अन्वयी आत्मा सिद्ध हो गया ना। फिर उनमे जो सुख दु ख आदिक भेद उठते हैं वह पर्याय विशेष कहलाता है।

आत्म द्रव्यके अपलापमें ज्ञानक्षणोमे सन्ततिकी अव्यवस्था—शकाकार कहता है कि क्रमसे होने वाले सुख दु ख आदिकमे एक सतति पडी हुई है अर्थात् ये सुख दु.ख आदिक क्षण एक सततिमे पडे हुए हैं इस कारण यह सततिमें पडना ही अनुसधानका निमित्त बनता है। शकाकार यह शका इस सिद्धान्तके विरोधमे कर रहा है कि यदि सुख दु ख आदिक पर्यायोका आधार कोई एक आत्मा न होता तो मैं दुःखी था, अब सुखी हूँ इस प्रकारका परिज्ञान नही बन सकता था इसके विरोधमे शकाकार यह कह रहा है कि अनुसधान चलानेके लिए आत्माको माननेकी आवश्यकता नही है किन्तु उन सुख दु.ख आदिक अनेक क्षणोमे संतति जो पडी हुई है वह सतति अनुसधान का निमित्त बनती है। समाधानमे कहते हैं कि यह कहना भी तुम्हारा उसीके समान जैसा कि पहिले कहा था माने संतति शब्दसे तुमने आत्माको ही कह डाला। जैसे कि पहिले वासना वासना कह कहकर उसका रूप वही बनाना पडा था जो कि आत्मा का रूप है अर्थात् आत्माको ही वासना शब्दसे कह डाला था। तब यहाँ आत्माको ही

सनति शब्दसे कहा जा रहा है। यदि उन सुख दुःख आदिकमे कथंचित् एकत्व न हो तो जैसे अनेक पुरुषोंके सुखोमें सतति तो नही होता है इसी प्रकार एक देहमें होने वाले सुख दु ख आदिक अनेक पर्यायोमें भी सतति नही बन सकती। सन्तति बनती ही वहां है जहां कथंचित् एकत्व होता है। फिर दूसरी बात यह है कि यदि आत्माको न माना जाय तो कृतनाश और अकृताभ्यागमका दोष आयगा। आत्माको न माननेपर एक तो यह दोष आता है कि आत्माने जो किया सो करके वह आत्मा तो नष्ट हो गया। अब उसका किया हुआ फल कौन भोगे ? मतलब यह है कि कृतका नाश हो गया और दूसरा आत्मा उसका फल भोग रहा है। तो यह भी तो बडा अंधेर है कि किया तो दूसरने है और फल भोगता है कोई दूसरा यो अकृताभ्यागमका भी दोष हो गया। कर्त्ताका निरन्वय नाश होनेपर किये गए कर्मका नाश हो गया क्योकि जिसने किया उसका तो हो गया नाश। अब उसके फलके साथ सम्बन्ध बन ही नही सकता। तो मतलब किया कराया बेकार खूब पाप करें, फल तो भोगना ही पड़ेगा, क्योकि जो पाप करता है यह नष्ट हो गया। दूसरा दोष यह आता है कि उस सततिमें दूसरा आत्मा भी बना तो उसका फल भोगा दूसरेने। जिस बेचारेने कुछ नही किया उसको फल भोगना पडा। उससे आत्माको मानना ही पडेगा। तब किये हुए कर्मका फल भोगना यह बन जाता है।

आत्माकी प्रमाणभूतता – वह आत्मा अप्रमाणभूत नही है क्योकि उस आत्माके सद्भावमे प्रमाण है, स्वसम्वेदन ज्ञानसे जाना जाता है और अनुमान ज्ञानसे भी समझा जाता है। और, फिर ऐसा जो अपन अन्दर ज्ञान होता है कि मैंने जाना था और मैं ही अब जान रहा हू अर्थात् पहिले भी मैंने जाना था और इस समय भी मैं ही जान रहा हूँ। इस प्रकारका जो ज्ञान है वह एक प्रमाताके विषयका ज्ञान सिद्ध कर रहा है कि नही ? प्रमाता कहते हैं ज्ञाताको। ऐसा कहनेमें जानने वाला एक ही है यह ज्ञान हो रहा है कि नही ? उससे भी यह सिद्ध है कि आत्मा वास्तविक पदार्थ है। जो कि सनातन अर्थात् सदा रहता है। क्षणिकवादमे एक नैरात्म्य ही मान लिया गया है, अर्थात् आत्मा कुछ नही माना। ज्ञान सुख दुःख आदिक सब समान होते भी आत्मा नही माना गया है। वह ज्ञान सुख दुःख आदिक जो क्षण हुए हैं वे हुए हैं, पर उनमे जब सतति रही नही, सत्ता रही नही सो तो आत्मा नही है, यो तो एक तरह से नैरात्म्य ही मान लिया गया है।

प्रत्यभिज्ञानसे भी आत्माकी सिद्धिका शङ्का समाधान – अब शकाकार कहता है कि प्रत्यभिज्ञानसे आत्माकी सिद्धि कैसे हो जायगी ? उत्तर देते हैं कि देखो, प्रत्यभिज्ञान जो हो रहा है वह प्रमाताके विषयमे हो रहा है। इस बातमें न क्षणिकवादियोको विरोध है और न स्याद्वादियों को ही विवाद है। देखिये! क्षणिकवादी प्रमाताको मानता है, पर उसे नित्य नही मानता दूसरे क्षण भी ठहरता ऐसा नही

मानता। तो प्रमाताके विषयमे ही तो यह ज्ञान हुआ ना कि मैंने ही जाता था और मैं ही जान रहा हू। तो इतना तो विवादरहित तुम्हारा भी निर्णय है और हमारा भी निर्णय है कि ऐसा जो ज्ञान हो रहा है कि देखो! मैंने ही पहिले जाना था और मैं ही अब जान रहा हूँ ऐसा जाननेके सम्बन्धमे तो दोनोका विवाद नही, अर्थात् वह प्रमाता है। अब यह बतलाओ कि वह जो प्रमाता हो रहा है क्षणिकवादमे, वह आत्मा है या ज्ञानमात्र? आपका प्रमाता ज्ञानस्वरूप है अथवा आत्मारूप है? अगर कहो कि ज्ञानमात्र ही है वह, आत्मारूप नही है, ज्ञान ही प्रमाता है तब तो फिर मैंने ही जाना था, मैं ही इस समय जान रहा हूँ, ऐसा एक प्रमाताके प्रत्यभिज्ञानसे जो यह बुद्धि उत्पन्न हुई है उसका विषय ज्ञानक्षण मान रहे हो तुम, तो यह बतलावो कि यह बुद्धि अतीत ज्ञानक्षणमे हुई है या अतीत वर्तमान दोनोमे हुई है अथवा किसी सतानमें हुई है? क्षणिकवादियोसे यह पूछा जा रहा है कि मैंने ही जाना था और मैं ही जान रहा हूँ, इस प्रकारका जो प्रत्यभिज्ञान होता है तो वह प्रमाता आत्मा है या ज्ञान है? यदि ज्ञान ही ज्ञान है तो ज्ञानक्षण तो क्षणिक है। एक समयमे होते हैं, दूसरे समय नही ठहरते। तो अब यहाँ हो रहे हैं दो कालविषयक ज्ञान। मैंने ही जाना था, मैं ही जान रहा हू। तो यह बतलाओ कि इस तरहका जो प्रत्यभिज्ञान कर रहा है ज्ञान भो क्या अतीत ज्ञान कर रहा है अथवा वर्तमान ज्ञान कर रहा है?

क्षणिक ज्ञानक्षणो द्वारा अनुसधानकी अशक्यता—अतीत ज्ञान ही "जो मैं पहिले जानता था वही मैं अब जान रहा हूँ' ऐसा ज्ञान कर रहा है, यदि ऐसा कहोगे तो केवल वहाँ वह ही समझ बनना चाहिए कि मैंने जाना था। अतीत ज्ञान इस तरह तो न कल्पना कर सकेगा कि मैं जान रहा हूँ। वह तो अतीत हो गया। उसमे तो यह तो युक्त कहा जा सकता कि मैंने जाना था, पर यह नही कहा जा सकता युक्त अतीत ज्ञानक्षणमे कि वह इस तरहसे जाने कि मैं ही इस समय जान रहा हू। अतीत ज्ञान क्षण वतमान कालमे नही जान सकता, क्योंकि अतीतका तो पहिले ही नाश हो गया जो ज्ञान अतीत हुआ, पहिले हुआ वह तो नष्ट हो गया। अब वह इस प्रकार नही जान सकता कि मैं जान रहा हूँ। यदि कहो कि हम वर्तमान ज्ञानसे उस प्रत्यभिज्ञान को मान लेंगे, मैंने ही जाना था और मैं ही जान रहा हूँ। इस प्रकारके प्रत्यभिज्ञानका करने वाला वर्तमान ज्ञानक्षण रूप प्रमाता है। ऐसा द्वितीय विकल्प यदि मानते हो तो वह ठीक नही है, क्योंकि वह वर्तमान ज्ञानक्षण इस रूपमें जाने सो तो सही है कि मैं ही जान रहा हूँ किन्तु वह कभी भी इस तरह नही जान सकता कि मैंने ही जाना था। वतमान ज्ञानक्षण अतीत कालके सम्बन्धी रूपको नही जान सकता। और इसी कारण तीसरा पक्ष भी युक्त नही है, अर्थात् वर्तमान और अतीत दोनो ही ज्ञानक्षण हमने जाना था यो नही जान सकता और हम दोनो जान रहे है ऐसा भी नही जान सकता, किन्तु वहाँ एक तो जानेगा कि मैंने जाना था और एक जानेगा कि मैं जान रहा हू। दो बातें दो कालके ज्ञान एक प्रत्यभिज्ञानको कैसे बना लेंगे? चौथा पक्ष भी

शक्ति है कि परको भी प्रकाशित करदे और स्वको भी प्रकाशित करले। और, जैसे चित्रज्ञान नीलादिक अनेक पदार्थाकार हैं उन अनेकाकारोरूपसे परिणमन करके भी जैसे चित्रज्ञानमे एकाकारताका अभाव नहीं मानते शङ्काकार लोग और है भी यह बात कि कोई सा भी ज्ञान हो, वह यदि अनेक पदार्थोंको जानता है तो जाने! अनेकाकार ग्रहण हो फिर भी ज्ञान एक ही रहता है। तो जैसे चित्रज्ञान नीलादिक अनेक आकाररूपसे परिणमनकर भी उसमें एकाकारता घात नही होता। इसी प्रकार सुख दु.ख आदिक अनेक क्रियारूपसे परिणमनकर भी आत्माके एकत्वका घात नही होता, क्योंकि अनेकाकाररूपसे परिणमनकर भी अपने स्वरूपसे अद्वैतताका उल्लघन नही हो रहा है। वहाँ यह भेद नही डाल सकते कि भाई! चित्रज्ञानमें तो एक साथ एक ही समयमे नीलादिक अनेकाकारके रूपसे परिणमन हो रहा है किंतु यहा एक आत्मामे सुख दु ख आदिक जो अनेक परिणाम होते हैं वे तो एक साथ नही हो रहे। वे तो क्रमसे परिणाम रहे तो चित्रज्ञानका दृष्टान्त देकर सुख दु.ख आदिकमे आत्माके एकत्वकी बात कहनेमे सदृशता तो न आई। उत्तर देते हैं कि देशभेदसे अनेकाकार हो या कालभेदसे अनेकाकार हो, एकताका नियामक देशका अभेद या कालका अभेद नही है किन्तु प्रतीति है नियामक। आत्मामें बराबर एकत्वकी प्रतीति हो रही है। चाहे देश कालसे भिन्न वस्तु हो चाहे देश कालसे अभिन्न वस्तु हो। जहाँ ही प्रतीति एकत्व का समर्थन करे वहाँ एकत्व मानना ही चाहिए और चाहे देश एक ही हो, चाहे समय एक ही हो जहाँ प्रतीति नानात्वको कबूल करे वहाँ नानापन मानना ही चाहिए। यहाँ एक आत्मामें मैं सुखी था, मैं अब दु खी हूं यो अभेद रूपसे जो अनुसधान होता है, प्रत्यभिज्ञान बन रहा है उससे बराबर एकत्वकी प्रतीति चल रही है।

प्रमाण प्रतिपन्न पदार्थोंमे शंका बनानेका प्रयास—शकाकार कहता है कि सर्वरूपसे यदि अभेद बन जाय तब फिर उस जगह अभेदसे उल्टी बात कैसे कही जा सकेगी? अर्थात् सर्वात्मक रूपसे अभेद बननेपर भेद नही कहा जा सकता है क्यो कि एक समयमें विधि और प्रतिषेध जो कि परस्पर विरुद्ध हैं बताये नहीं जा सकते। इस सम्बधमें अनुमान भी है कि जहाँ अभेद होता है वहाँ उससे उल्टी बात अर्थात् भेद नही हो सकता। जैसे कि उन्ही पर्यायोके द्रव्यका जो प्रति नियत असाधारण आत्मास्वरूप है उसके स्वभावसे भेद नहीं है और यदि द्रव्यमें पर्यायमे अभेद है तो यह बतलाओ कि पर्यायोसे द्रव्यका अभेद है या द्रव्यसे पर्यायो का अभेद है। यहाँ शकाकारकी ही बात बतायी जा रही कि पर्याय और द्रव्यमे एकपना मान रहे हो तो यह बतलाओ कि पर्यायोमें द्रव्यको अभेद कर दिया या द्रव्यमे पर्यायोको अभेद कर दिया? यदि कहो कि पर्यायोसे द्रव्यका अभेद बनाया है अर्थात् पर्यायें मुख्य हैं और उसमे द्रव्यको विलीन कराया है तो इसका अर्थ यह होगा कि पर्याय अनेक होती हैं इस तरह द्रव्य भी अनेक बन जायेंगे क्योंकि जो जिस अभिन्न रूप होगा वह उस हीके ढगसे ही होगा। तो जैसा पर्यायका स्वरूप है वैसा ही द्रव्यका स्वरूप बन जायगा। पर्यायें अनेक हैं,

क्षणिक हैं तो द्रव्य भी अनेक हो गए, क्षणिक हो गए। यदि कहो कि द्रव्यसे पर्यायो का अभेद किया जाता है तो द्रव्य हुआ, यहा मुख्य और पर्यायोको किया विलीन, तो जो द्रव्यकी खासियत है वही पर्यायोंकी हो जायगी। द्रव्य है एक तो पर्याय भी एक ही रहेंगी, क्योंकि अब यहाँ कहां है द्रव्यसे पर्यायोका अभेद। और, द्रव्य है अनुगत स्वरूप सबमे रहने वाला एक। और, उसमे जो कुछ भी अभिन्न बनेगा वह अनुगता-त्मक ही तो रहा। उस अनुगतात्मक स्वरूपसे अभिन्न बतला रहे हो सुखदु.ख आदिक पर्यायोको तो वे पर्यायें भी द्रव्यकी तरह केवल एक रह जायेंगी। इस तरह शङ्काकार ने उन दोनोको नाना सिद्ध किया और क्षणक्षणवर्ती जो हर्ष विषाद आदिक क्षण हैं उनसे अलग कोई नित्य आत्मा हो उसका खडन किया।

प्रमाणप्रतिपन्न पदार्थोंमे कुप्रश्न उठानेमें अविवेकताका प्रकाश— अब समाधान करते हैं कि इस तरहके खोटे प्रश्न उठानेका यहा अवकाश ही नहीं है। जो वस्तुस्वरूप प्रमाणसे समझा गया है उसमे इस तरहके खोटे अटपट प्रश्न नहीं उठाये जा सकते। अगर इस तरह प्रश्न उठाने लगोगे तो कुछसे भी कुछ कहा जा सकता है। जैसे कोई कहे कि यह मदोन्मत्त हाथी लोगोको मारता चला जा रहा है। वहा प्रश्न कर दिया जाय कि क्या यह हाथी सन्निहित पुरुषको मार रहा है या दूर रहने वाले पुरुषको मार रहा है? यदि सन्निहित पुरुषको मार रहा है तो हाथीपर जो महावत बैठा है हाँकने वाला उसे भी मारनेका प्रसङ्ग आ जायगा, पर हाथी महावतको तो नही मार रहा। और कहो कि दूर वालेको मारता है तो दूर तो सारी दुनियां है। सारी दुनियाको मार डालनेका प्रसङ्ग आ जायगा। तो यो किसी भी बात मे कुछसे कुछ प्रश्न उठाकर उसे असिद्ध किया जा सकता है 'एक ऐसा कथानक है कि कही कोई तेली अपने कोल्हूमे एक बैलको जोते हुए था। वह बैल कोल्हुके चक्कर काट रहा था। तेलीने सोचा कि हमारा व्यर्थं समय जाता है ऐसा करें कि बैलके गलेमे घण्टी बाधदें। जब तक यह बैल चलेगा तब तक घण्टी बजेगी। जब तक घण्टी सुन पडेगी तब तक और काम हम करते रहेंगे, जहाँ घण्टी बद हो जायगी वहा हम समझ लेंगे कि बैल खडा हो गया और उसे आकर हाँक जायेंगे। यो बैलके गलेमे घण्टी बाँधकर बैलको चलाकर अपने काममें लग गया। इतनेमे कोई वकील आया। वकीलने पूछा कि यह क्या कर रहे हो? तेली बोला कि बैलके गलेमे घण्टी बाध दी है, जब तक घण्टी बजती रहेगी तब तक समझेंगे कि बैल चल रहा है और जब घण्टी बन्द हो जायगी तो समझ लेंगे कि बैल खडा हो गया, फिर आकर हाँक देंगे। वकील बोला कि यदि यह बैल खडे ही खड़े रहकर घण्टी हिलाता रहे तो तुम धोखा खा जावोगे। तब तेली बोला कि जब हमारा बैल ऐसा वकील बन जायगा, तब दूसरी बात सोचेंगे। तो ऐसा खोटा प्रश्न उठाना जिसकी सम्भावना भी नही और कुप्रश्न उठाकर किसी भी कामको असिद्ध कर देना यह अव्यवहार्य बात है। आत्माके सबध मे सबको यह प्रतीति है कि यह ही मै हूँ। जो पहिले था सो अब हूँ। और वही आगे

रहूँगा। तो हमने अपने आपमें भी एकत्वको प्रतीतिमें लिया और बाहरमें जो दिखने वाले पदार्थ हैं—तखत, चौकी, भीट दरी आदिक ये सब स्थिर मालूम हो रहे हैं। वे ही हैं और उत्पादव्ययध्रौव्य भी समझमें आ रहा है। यह समझमें आने योग्य जब परिवर्तित पर्याय बनती है तब तो स्पष्ट समझ होती है कि यह नवीन अवस्थामें आ गया और पुरानी अवस्थाका व्यय हो गया। और न भी समझमें आये तो भी यह बात युक्तिगम्य है कि क्षण–क्षणमें नवीन–नवीन पर्यायें उत्पन्न होती हैं और पुरानी पर्यायें विलीन होती रहती हैं। चीज वही है, वही एक है, इन पदार्थोंमें एकत्व भी प्रमाण प्रतिपन्न है। तो प्रमाणसे जाने हुए, सिद्ध हुए पदार्थोंमें खोटे प्रश्न उठाना यह हितमार्गके बिल्कुल प्रतिकूल है।

सामान्यविशेषात्मक पदार्थ स्वीकार करनेपर ही व्यवहार और मोक्ष मार्गकी सिद्धि—पदार्थ सामान्यविशेषात्मक होता है केवल सामान्य कुछ तत्त्व नहीं सामान्यरहित विशेष कुछ हो ही नहीं सकता। कुछ भी हो, सत् तो होगा और जो सत् है वह एकदम अपना अभाव कैसे कर सकता है? प्रतीतिसे, बिल्कुल बाहर बात है कि कोई पदार्थ सत् हो और वह अपना समूल नाश कर लेता है। तो जो भी पदार्थ होता है वह उत्पादव्ययध्रौव्यरूप होता है, और उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप पदार्थके मानने पर ही हमारा लोकव्यवहार बनता है और मोक्षमार्गकी भी सिद्धि होती है। जितनी भी व्यवहारकी प्रवृत्तियाँ चल रही हैं वे सब उत्पादव्ययध्रौव्यके आधारपर चल रही हैं और मोक्षमार्गमें भी यदि एक आत्मा नहीं है क्षण क्षणमें नये–नये आत्मा होते हैं तो मोक्षमार्गकी क्या सिद्धि होगी? किसको सिद्ध कराना?, जो आत्मा तपश्चरण कर गया वह एक क्षणमें मिट गया और एक क्षणमें तपश्चरण भी क्या किया। मान लो किया तपश्चरण, तो नया आत्मा मोक्ष पायगा। तो ऐसे हो किसको पड़ी है कि, हम तो अनेक प्रकारसे श्रम करें और हम मिट जायेंगे, कोई दूसरा भोगेगा। मुक्तिकी कोई स्थिति ही नहीं बन सकती है, उनके सिद्धान्तमें तो आत्माको स्वीकार नहीं करते, यही मैं बद्ध हुआ और यही मैं मुक्त हो गया। मुझे मुक्त होनेकी आवश्यकता है क्यों कि संसारमें जन्म–मरणका बड़ा कठिन सङ्कट हैं। इससे छूटनेमें ही मेरी भलाई है। इस प्रकारका विचार जो कोई एक आत्मा करता है वही प्रयत्न करे और बद्ध मलिन इस आत्माको मुक्ति प्राप्त हो तो यह तो उसके लिए कर्तव्यकी बात है पर नवीन–नवीन आत्मा बनें और उनमें किसी अन्यके मुक्तिकी कल्पना की जाय तो वह कल्पना ही है।

संतति मानकर भी नैरात्म्यसिद्धिकी असफलता—यों भी सोचना कि उस आत्माकी संततिका मोक्ष हो जायगा व्यर्थका श्रम है। अरे, संतति क्या? क्षणिकवादमें संततिका कुछ भी अर्थ नहीं। यहाँ संतति शब्द तो क्षणिकवादमें इस प्रयोग के लिए है कि कहीं नित्यत्वके विरोधमें जवाब न दे सके तो उसके लिए रिजर्व शब्द क्या हो? संतति तो अवास्तविक है। तो अवस्तुको मोक्ष क्या दिलाना? जो बँधा

हो जो स्वय मलिन हो उसको तो मुक्तिकी आवश्यकता है। जो आत्माका एकत्व माने बिना कही हमारी कुछ सिद्धि नहीं हो सकती। इस तरहके प्रश्न उठाकर अपने कार्यमे भी अनुत्साह कर देना प्रायोग्य नहीं है फिर तो हम चित्रज्ञानमे भी प्रश्न उठा सकते हैं। बतलावो चित्रज्ञानमे जो नीलादिक नाना आकार आये हैं वे क्या उस ज्ञानसे सर्वथा अभिन्न है ? यदि सर्वथा अभिन्न है तो चित्रज्ञान एक है तो आकार भी एक बन जायगा। यदि चित्रज्ञानका आकारोसे अभेद है तो आकार हैं नाना और आकारम चित्रज्ञानका अभेद है तो जैसे आकार नाना हैं वैसे ही चित्रज्ञान भी नाना बन पडेगे। तो इस तरहके खोटे प्रश्न तो किसी भी कार्य व्यवस्थाको मिटानेके लिए दोद सकते हैं। और, फिर पदार्थ क्षणिक है यह बात तो सिद्ध हो ही नही सकती है। पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है। इसमे जो सामान्य तत्त्व है किसी भी एक पदार्थमें वह ऊर्द्धता सामान्य रूप है अर्थात् त्रैकालिक एक है और जो इसमे विशेष है वह ऊर्द्धता विशेषरूप है अर्थात् इसमे काल भेदसे एक नवीन-नवीन पर्यायकी बात बनती है। यों प्रत्येक पदार्थ त्रिकालवर्ती है और प्रतिक्षणमे नवीन-नवीन पर्यायको उत्पन्न करने वाला और पूर्व पूर्व पर्यायोको विलीन करने वाला है। इस तरह पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होता है उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक होता है और ऐसे ही पदार्थके प्रमाणका विषयभूत माना गया है अब इस समय व्यतिरेक विशेषके व्याख्यानके प्रसगमे सर्वप्रथम व्यतिरेक विशेषका लक्षण और उसके उदाहरणमे सूत्र कहते हैं।

अर्थान्तरगतो विसदृशपरिणामो व्यतिरेक गोमहिषादिवत् ॥ ४-१० ॥

व्यतिरेक विशेषका विवरण—पदार्थान्तरमे प्राप्त जो विसदृश परिणमन है उसे व्यतिरेक कहते हैं, जैसे कि गाय भैंस आदिकमें जो परस्पर विसदृश धर्म है वह व्यतिरेक कहलाता है। अर्थान्तरका अर्थ है कि एक पदार्थसे भिन्न पदार्थ। तो अर्थान्तर के कहनेमे सजातीय अर्थान्तर भी आ जाता है और विजातीय अर्थान्तर भी आ जाता है। जैसे ५० गायें खडी हुई हैं तो उनमे एक गायसे दूसरी गायमे भी व्यतिरेक विशेष बता सकते हैं। और गायोकी अपेक्षासे, भैंस आदिकमे भी व्यतिरेक विशेष बता सकते हैं उन अर्थान्तरोमे जो विसदृश धर्म पाया जाता है उसका नाम है व्यतिरेक। जैसे कि अनेक गायोमे काली पीली, चितकबरी, खडी मुडो आदिक नाना प्रकारके विसदृश परिणमन जो कहे जाते हैं वे व्यतिरेक विशेष हैं। व्यतिरेक विशेषसे यह जानकारी होती है कि यह वह नही है, यह उससे भिन्न है, तब जिसका प्रयोजन हो उसमे प्रवृत्ति करलें और शेषसे निवृत्ति करलें, ऐसे ही भैंस भैसमे परस्पर विसदृश परिणमन हो सकता है। जैसे कोई भैंस मोटी है कोई दुर्बल है। कोई कठिन सीग वाली है, कोई थोडी जगह घेरने वाली सीगसे सहित है तो उनमें यह विशाल है, यह विसंकट है आदिक विसदृश परिणाम बनाता सो व्यतिरेक विशेष है। ये तो हुए सजातीयमे व्यतिरेक विशेष। अब गाय अश्व आदिक विजातीय बहुतसे पदार्थ हैं उनमे परस्परका

असाधारण स्वरूप बताना और उसको लखकर एक दूसरेसे भिन्न समझना यह विजातीयोंके सम्बन्धमे व्यतिरेक विशेष है। तो इससे पहिले सामान्य स्वरूपका बहुत वर्णन किया जा चुका था और अब तक विशेषका भी पर्याप्त वर्णन किया गया है तो ऐसा सामान्य और विशेष जिसके स्वरूप हो उस पदार्थको कहते हैं सामान्य विशेषात्मक। ऐसा सामान्य विशेषात्मक पदार्थ प्रमाणका विषय होता है केवल सामान्य प्रमाणका विषय नही, केवल विशेष प्रमाणका विषय नही, और स्वतन्त्र होकर सामान्य भी और विशेष भी प्रमाणके विषय नही हैं। अर्थात् कोई प्रमाणका विषय तो मानें दोनोंको (सामान्य और विशेषको) किन्तु घट पटकी तरह वे दोनो अलग स्वतन्त्र पदार्थ हैं और फिर उनको प्रमाणका विषय माना जाय सो भी नही बनता है, क्योंकि न तो किसीके ज्ञानमे केवल सामान्य आता है, न किसीके ज्ञानमें केवल विशेष आता है और न किसीके ज्ञानमे स्वतन्त्र अलग अलग सामान्य और विशेष भी आते हैं। भले ही प्रयोजन वशसे किसीकी दृष्टिमे सामान्यकी प्रधानता है परन्तु उसके साथ यदि विशेष न हो तो सामान्यका ज्ञान कभी हो ही नही सकता, इसी प्रकार किसी मनुष्यकी प्रयोजनवश विशेषपर मुख्य दृष्टि होती किन्तु यदि सामान्य रहित विशेष मानें तो वह भी दृष्टिमे नही आ सकता। तो न केवल सामान्यका प्रतिभास है न केवल विशेषका प्रतिभास है और न स्वतन्त्र दोनोंका प्रतिभास है किन्तु सामान्य विशेषात्मक पदार्थका प्रतिभास हुआ करता है। उस सामान्य विशेषात्मक पदार्थमें प्रयोजन वश जिस धर्म की मुख्यता होती है उस धर्मका ज्ञान होता है और उस समय यदि प्रमाणसे प्रतिपन्न सामान्य विशेषात्मक पदार्थमे से सामान्यकी ही दृष्टि हो तो वह नय कहलाता है। अथवा विशेषका दृष्टि हो तो वह भी नय कहलाता है, किन्तु कोई पुरुष सामान्य विशेषात्मक पदार्थ नही मानें और केवल सामान्य ही मानें तो वह भी नही है, प्रमाण तो है ही क्या ? इसी प्रकार केवल स्वतन्त्र मात्र सामान्य व विशेष ही मानें तो वह भी नय नही है। नय हुआ करता है प्रमाणसे जाने हुए पदार्थमे प्रयोजनवश किसी एक धर्मको प्रधानतासे जानना। इस तरह पदार्थोंकी सामान्यविशेषात्मकता प्रमाण प्रसिद्ध है।

पदार्थमे सामान्यविशेषात्मकताको असिद्ध करके विशेषवादके समर्थन का शंकाकारका प्रयास—अब यहांपर वैशेषिक शंका करता है कि पदार्थमे सामान्य विशेषात्मकता बताना अयुक्त है क्योकि पदार्थ सामान्यविशेषात्मक रूपसे जाने जायें ऐसा जानने वाला कोई प्रमाण नहीं है. और फिर सामान्याकार और विशेषाकार इन दोनोमे परस्पर प्रतिभास-भेद है। सामान्याकारका प्रतिभास और ढगका है। विशेषाकारका प्रतिभास और ढगका है इस कारण सामान्य और विशेषमें तो अत्यन्त भेद है। देखो ना—घडा और कपडा रखे हैं तो घडेका आकार कपडेके आकारसे अत्यन्त जुदा है और उनका प्रतिभास भी न्यारे-न्यारे ढगका है। घडेको जब जानते हैं तो क्या कपडा जिस तरह जाना जाता उस तरहसे जान रहे हैं अथवा कपडेको जब जानते

मिट्टीके कण हैं वे हैं अवयव। तो अवयव अवयवी भी एक नही है, अवयव भिन्न पदार्थ है अवयवी भिन्न पदार्थ है क्योंकि प्रतिभास भेद है। अवयवका ज्ञान जिस सकल मे होता है उससे भिन्न सकल है अवयवीके ज्ञानमें और अवयवीका लक्षण और है, अवयवका लक्षण और है। इसी तरह गुण और गुणीमें अत्यन्त भेद है। जैसे कि कुछ लोग मानते हैं कि आत्मा तो गुणी है और ज्ञानदर्शन आदिक गुण हैं तो देखो! जब गुणोका ज्ञान किया जाता है तब उस समय ज्ञानकी मुद्रा और ढङ्गकी है, और जब आत्माका, गुणीका ज्ञान किया जाता है तब ज्ञानकी मुद्रा और ढङ्गकी है। लक्षण भी जुदे हैं। तब गुण और गुणीमे भी अत्यन्त भेद है। इसी तरह क्रिया और क्रियावानमे भी अत्यन्त भेद है। मनुष्य चलता है तो मनुष्यकी गति यह तो है क्रिया और मनुष्य चलने वाला यह है गतिवान! सो गतिवानका लक्षण और है गतिका लक्षण और है, चलना – इसका जब ज्ञान किया जाता है तो उस समय प्रतिभासकी मुद्रा और प्रकार की बनती है और चलने वाला इसको जब ज्ञानमे लिया जाता है तो उसके प्रतिभासकी मुद्रा और तरहकी है। तब क्रिया और क्रियावानमे भी अत्यन्त भिन्नता है। इसी तरह सामान्य और विशेषमें भी प्रतिभासभेद पाया जाता है, विरुद्ध धर्मका समावेश पाया जाता है, इस कारण इसमे भी अत्यन्त भेद है। तब कोई भी पदार्थ सामान्यविशेषात्मक बन ही नही सकता। देखो ना! जैसे तंतु और पट। तंतु मायने सूत और पट मायने कपडा। जब कपडेका ज्ञान होता है तब वह ज्ञान सूतके ज्ञानके समय जो प्रतिभास होता है उससे जुदा प्रतिभास है ना? और जब सूतका प्रतिभास होता है तब कपडेके प्रतिभाससे विलक्षण है ना? तब यह सिद्ध हुआ ना कि कपडा जुदा है सूत जुदा है। तो इस तरहसे सूतमें ही देखलो! सूतमें रूप है किन्तु जब रूपका हम ज्ञान करते हैं तो उस समयकी प्रतिभासमुद्रा न्यारी है और जब हम सूतका ज्ञान करते हैं तो उस समय उसकी प्रतिभास मुद्रा न्यारी है। तब सूतका रूप बिल्कुल अलग है। यो वैशेषिक शङ्काकार सामान्य और विशेषमे अत्यन्त भेद सिद्ध करना चाहता है।

पदार्थके अनेक धर्मात्मकत्वकी सिद्धि— अब इसके समाधानमें कह रहे हैं शङ्काकारने जो यह कहा है कि पदार्थका, सामान्यविशेषात्मक रूपसे कोई ज्ञान करे, ऐसा ग्रहण करने वाला कोई प्रमाण नही है, तो यह बात असिद्ध है। पदार्थ वास्तवमें अनेकधर्मात्मक है और इसका ज्ञान करने वाला सम्यक प्रमाण है। अनुमान प्रयोग करके देख लीजिये! पदार्थ वास्तविक अनेकधर्मात्मक है, क्योंकि परस्पर विलक्षण अनेक अर्थक्रियावोको करने वाला होनेसे। कोई एक पदार्थ यदि परस्पर विलक्षण अनेक अर्थक्रियावोको करे तो उससे सिद्ध होता है कि यह अनेक धर्मस्वरूप है। जैसे कोई एक देवदत्त नामका पुरुष पिता पुत्र, मा, भानजा आदिक अनेक ढङ्गकी अर्थ क्रियावोको करने वाला है, उसमें ये अनेक बातें पायी जाती हैं और उस ही प्रकारसे उसके सम्बन्धीजन उससे व्यवहार करते हैं, इस कारण देवदत्त अनेक धर्मात्मक हुआ कि नहीं? उसमे पितृत्व भी है, पुत्रत्व भी है, भ्रातृत्व भी है आदिक अनेक धर्म पाये

जाते हैं। यह हेतु असिद्ध नही है अर्थात् प्रकृत पक्ष है आत्मा, जिसमे हम अनेक धर्मात्मकताको सिद्ध कर रहे हैं। सो आत्मामे हेतु बराबर पाया जा रहा है, अर्थात् यह आत्मा अनेक अर्थक्रियावोको करने वाला है। देखो ना ! यह आत्मा मनोज्ञ स्त्रीका निरीक्षण करे, स्पर्श कर, सुन्दर ध्वनियोको सुने, बहुत स्वादिष्ट पदार्थ खाये, कपूर आदिककी गधको ले, प्रिय वचनोच्चारण करे, यहा वहा डोलता फिरे, जहा चाहे बैठ जाये, हर्षविषाद करे, कभी अच्छा ज्ञान करे, कभी खोटा ज्ञान करे, देखोना ! परस्पर विलक्षण अनेक अर्थक्रियावोको इस आत्माने किया है। यह क्या आप सबके प्रत्यक्षमे जाना नही जा रहा है ? तब आत्मा अनेक धर्मात्मक है, इसमे सशयकी कौनसी बात है ? ये घटपट आदिक पदार्थ ये भी तो परस्पर विलक्षण अनेक अर्थक्रियाओको करते हुए प्रत्यक्षसे प्रतीतिमे आ रहे हैं। प्रथम तो देखो ! घट पट आदिक परस्पर अपने प्रदेशादिककी अपेक्षा महत्ता विशदता आदिकके ज्ञानोको उत्पन्न कर रहे हैं, यह घट स्थिर हो गया, घट जलमे चला गया, घटने जल धारण कर लिया। देखो ! कितनी अर्थक्रियायें उसमे पायी जाती है, तब घट अनेक धर्मात्मक हुआ ना ! और यहा जो दृष्टान्त दिया गया है, उसमे भी साध्य साधन बराबर पाये जा रहे हैं, सबमे वास्तविक अनेक विलक्षण अर्थक्रियायें पाई जाती और अनेक धर्म भी पाये जाते। इस से पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है, यह प्रत्यक्षसे ही जाना जा रहा है, उसका कैसे निराकरण किया जा सकता है ?

भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व होनेसे धर्ममे अभेदकी असिद्धिकी शकाका समर्थन व समाधान—शकाकार कहता है कि यद्यपि किसी भी धर्मीमे अर्थात् पदार्थमे अनेक धर्मोका सद्भाव सिद्ध है, जैसे कि ऊपर बताया गया है कि एक ही आत्मा कितनी ही अर्थ क्रियायें करता है, एक ही घटमे कितनी प्रकारकी अर्थ क्रियायें होती हैं यो वस्तुमे वस्तुगत् अनेक धर्मोका सद्भाव सिद्ध है किन्तु वे सब धर्म भिन्न–भिन्न प्रमाणो के द्वारा ग्रहणमे आते हैं, इस कारण धर्म और धर्मीमे भेद है अथवा धर्म और धर्मी ये भिन्न–भिन्न प्रमाणोके द्वारा ग्रहणमे आते हैं—इस कारण धम और धर्मीमे तादात्म्य सम्बन्ध सिद्ध नही हो सकता। उत्तर देते हैं कि यह भी अयुक्त बात है। तुम्हारे अनुमानमे हेतु क्या है ? भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व सो यह हेतु सदोष है। शकाकारने अनुमान बनाया था कि धर्म और धर्मी जुदे–जुदे हैं क्योकि भिन्न प्रमाणो द्वारा ग्राह्य होनेसे। तो यह जो हेतु है भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व इसमे अनैकान्तिक दोष आता है, अर्थात् भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व होनेपर भी पदार्थोमे एकता पायी जाती है, और कही भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व नही भी है तो भी उनमे अनेकता पायी जाती है। तो हेतु निर्दोष नही है। देखो ना एक ही आत्मा प्रत्यक्षसे भी जाना जाता है और अनुमानसे भी जाना जाता है। मैं सुखी हू दुखी हूँ इस प्रकारका जो स्वसम्वेदन ज्ञान है यह तो हुआ प्रत्यक्ष। इस प्रत्यक्षसे भी आत्माका ग्रहण होता और इसमे आत्मा है क्योकि वचनालाप आदिक व्यवहार होनेसे, इस अनुमानसे भी आत्मा जाना गया। तो एक ही आत्मा देखो–भिन्न

प्रमाणोंके द्वारा ग्राह्य हुआ। प्रत्यक्षसे भी ग्राह्य हुआ अनुमानसे भी ग्राह्य हुआ, फिर भी आत्मा एक है। हेतु तो पाया गया "भिन्न प्रमाण द्वारा ग्राह्य होनेसे" पर आत्मा भिन्न-भिन्न है यह साध्य नहीं पाया गया। आत्मा वही एक है और अनेक प्रमाणोंसे ग्रहण किया गया तो अनेक प्रमाणोंसे ग्रहण किया जानेके कारण पदार्थोंमें भेद ही मानना चाहिए, यह बात नही होती। दूसरी बात देखो। दूर देशमें रहने वाले जो लोग हैं वे बहुत दूरसे देखते हैं पहाड़पर या किसी लम्बी सड़कपर तो कोई सा भी एक वृक्ष अस्पष्ट दिखता है और पासमें पहुँचनेपर स्पष्ट दिखता है तो देखिये कि वृक्ष तो वह एक ही है। पहिले तो जाना गया अस्पष्ट ज्ञान द्वारा, बादमें जाना गया स्पष्ट ज्ञान द्वारा तो भिन्न प्रमाणोंसे ग्राह्य हुआ ना, तिसपर भी वृक्ष अनेक नही हो गए। भिन्न प्रमाणसे ग्राह्य होनेपर भी विषय अनेक हो जायें, भिन्न हो जायें सो बात नही है। एक ही वस्तुको अनेक प्रमाणों द्वारा जाना जाता है, इसी प्रकार धर्म और धर्मी ये भिन्न प्रमाणों द्वारा ग्राह्य हैं। जैसे कि एक गुण पर्यायवान समूचे आत्माको जिस ज्ञानने जाना उस ज्ञानकी मुद्रा अन्य है और उस आत्माके ज्ञान दर्शन आदिक गुणों का ज्ञान जानता है तो उन ज्ञानोंकी मुद्रा जुदी है अर्थात् धर्म अन्य प्रमाणोंसे जाने गए और धर्मी अन्य ज्ञानसे जाने गए, यों भिन्न प्रमाणोंसे ग्राह्य होनेपर भी धर्म और धर्मीमें अत्यन्त भिन्नता नही है कि वे अनेक पदार्थ हो जावें।

स्पष्टास्पष्ट प्रतिभासभेद होनेपर भी अर्थान्तरविषयताका अनियम— शंकाकार कहता है कि भिन्न प्रमाणों द्वारा ग्राह्य होनेपर भी विषय एक हो सकता है, इसकी सिद्धिमें जो वृक्षका दृष्टान्त दिया है कि वृक्ष दूरसे पहिले अस्पष्ट ज्ञान द्वारा ग्राह्य है पश्चात् स्पष्ट ज्ञान द्वारा ग्राह्य है तो देखो भिन्न प्रमाणग्राह्य होनेपर भी वृक्ष एक है। ऐसा दृष्टान्त देना गलत है क्योंकि वहाँपर भी ज्ञानके भेदसे विषयमें भेद पाया जाता है। पहिले समयमें जो ज्ञान उत्पन्न हुआ उसमें तो खाली ऊँचाई सी दीखी। भिन्न-भिन्न शाखायें तो नजर नहीं आती। दूरसे जो ज्ञान किया गया है उस अस्पष्ट ज्ञानमें केवल ऊर्ध्वता ज्ञानमें आयी। और जब पास गया तब जो ज्ञान हुआ वह स्पष्ट ज्ञान हुआ। उसमें शाखा आदिक भिन्न-भिन्न पदार्थ ज्ञात हुए, तो वहाँ एक विषय कहाँ रहा? पहिले जाना ऊंचा ऊँचापन बादमें जाना शाखा आदिक तो पदार्थ तो एक न रहा। इस कारण जो दृष्टान्त दिया है वह दृष्टान्त सही नहीं है। समाधान करते हैं कि इस तरहसे यदि वहाँ विषय भेद मान लिया जाय कि भाई पहिले स्पष्ट ज्ञानसे तो और कुछ जाना, फिर स्पष्ट ज्ञानसे दूसरा पदार्थ जाना, इस तरह यदि विषय भेद मान लिया जाता है तब फिर उस सम्बन्धमें एकत्वका अध्यवसाय (ज्ञान) न होना चाहिए कि जिसको मैंने दूर खड़े होकर देखा था उस ही को मैं अब यहाँ पाससे देख रहा हूँ ऐसा एकत्वका ज्ञान होता है ना। और अब मान रहे हो तुम विषय भेद, तो इस तरहका एकत्वका ज्ञान न होना चाहिए। यह उत्तर ज्ञानके सम्बन्धमें, शाखा, आदिक भिन्न-भिन्न विशेषणोंके साथ ज्ञान करनेके सम्बन्धमें यह

जान रहा है कि देखो इस ही को मैंने दूरसे यो देखा था, अब इस ही को मैं यहाँ यो देख रहा हू तो इसीको देख रहा हू, ऐसा जो बोध हो रहा है उससे तो यह जाहिर है ना कि एकको ही जाना था पहिले और उसको ही जाना है अब। विषयभेद कहा रहा ? हा यह बात जरूर है कि अस्पष्ट प्रतिभासमे तो सामान्य विषयपना हुआ करता है और स्पष्ट प्रतिभासमे विषय विशेष हुआ करता है। सो स्पष्टप्रति भास और अस्पष्ट प्रतिभास यह है इन दोनोका भिन्न विषय यो तो कहा जा सकता है कि दूरसे तो सामान्य बोध हुआ और पासमे जाकर विशेष बोध हुआ, मगर चीज वही जानी गई जो दूरसे जानी जा रही थी। दूरसे उस ही वस्तुको सामान्यरूपसे जान रहे थे और पासमे उस ही वस्तुको विशेषरूपसे जाना जा रहा है, लेकिन चीज तो वही जानी गई। विषयभेद कहा रहा ? तब तुम्हारा जो प्रयोग है कि जो भिन्न प्रमाणग्राह्य है वह भिन्न ही होता, अनेक ही होता, यह बात तो सिद्ध नही होती।

प्रतिभासभेदमे भी विषयके कथचित् भेदाभेदकी प्रसिद्धि—अब शकाकार कहता है को बात यहाँ ऐसी है कि वृक्ष की अपेक्षा तो पूर्वज्ञानमें और उत्तर ज्ञान मे विषय एक रहा अर्थात् दूरसे भी जाना था तो वृक्षको ही जाना था। पाससे जाना है तो वृक्षको ही जाना जा रहा है। तो इस तरह तो एक विषयपना है मगर सामान्य और विशेषकी अपेक्षा तो विषयभेद हुआ ना, कि बहुत दूर खडे होकर सामान्यका जाना था, अब पासमे आकर विशेषको जाना जा रहा है। इस शङ्काका समाधान करते हैं कि चलो, तुम्हारी बात मान ली, लेकिन एकान्त तो न रहा कि भिन्न प्रमाण ग्राह्य जो हो वह भिन्न ही हो। देखो ना ! वृक्षकी अपेक्षासे दूरके ज्ञानने और समीप के ज्ञानने एकका ही विषय किया। तो एकान्त मानना तो गल सड गया। अब एकांत तो न रहा। तो जिस तरह यहाँ एकान्त भेद न रहा तो गुण गुणीमे, अवयव अवयवीमे, क्रिया क्रियावानमे, सामान्य विशेषमे भी सर्वथा भेद तो न रहा। कथचित् भेद है, कथचित् अभेद है, यह बात भी सिद्ध हुई, पर भिन्न प्रमाणग्राह्य होनेसे भेद ही होना है इस बातका तो निराकरण हो गया।

अवयव अवयवी आदिकमे भिन्नप्रमाणग्राह्यत्वकी भी असिद्धि—अब दूसरी बात भी सुनो ! जो यह समझ बना रखी है शङ्काकारने कि अवयव अवयवीमे, गुण गुणीमे भिन्न प्रमाणग्राह्यता है अर्थात् अवयव अन्य प्रमाणो द्वारा जाना जाता है और अवयवी भिन्न प्रमाणो द्वारा जाना जाता है यह बात भी असिद्ध है। शङ्काकारका यह आशय था कि जैसे एक घडेको जाना तो घड़ा समूचा जो कुछ एक नजर मे समझा गया है वह तो है अवयवी, अवयवो वाला, और उसका जो एक-एक कण है वह है अवयव। तो इन दोनोका ज्ञान भिन्न प्रमाण द्वारा माना है लेकिन सर्वथा यह बात नही है कि भिन्न प्रमाणसे ही अवयव और अवयवी जाना गया। जैसे कपडे के विषयमे ज्ञान किया कि यह कपड़ा है तो यह कपडा है इस मुद्रामे देखो ! अभिन्न

प्रमाणग्राह्यता आगई ना ! यह कपड़ा है, ऐसा ज्ञान करते समय सारे सूत जान लिए गए और कपड़ा जान लिया गया। तो देखो, एक ही ज्ञानमे अवयव भी जान लिया गया और अवयवी भी जान लिया गया। अवयव तो हुआ सूत और अवयवी हुआ वह पूरा कपड़ा।

अवयव अवयवीके अभिन्न प्रमाणग्राह्यत्वपर शङ्का व समाधान— अब शङ्काकार कहता है कि "पटोऽयम्" इस उल्लेखसे अभिन्न प्रमाणग्राह्यता कहना असिद्ध है। देखो, यह कपड़ा है इस उल्लेखसे इस प्रकारके बोधमे अवयवी ही प्रतिभासमान होता है, अवयव नही जाने जा रहे फिर एक ज्ञानसे अवयव और अवयवी जाने गए यह बात कैसे सिद्ध रही ? समाधान देते हैं कि अवयव और अवयवीमे भेद सिद्ध नही है। अवयवोंको निकाल लें, फेंक दें, और अवयवी बना रहे ऐसा हो सकेगा क्या ? वे तंतु ही ताना बानाके रूपसे विशेष अवस्थामे आये हुए कपडा कहलाता है यह कपडा है, उल्लेखसे वे सारे तंतु ही प्रतिभासित हो रहे हैं इस कारण तंतुवोंसे जुदा कपडा नही है, सूतसे न्यारा कपड़ा नही है, और यह कपडा है, इस ही एक ज्ञानसे वे सारे तंतु जान लिए गए हैं। तो भिन्न प्रमाण ग्राह्यता कैसे रही ? प्रमाण जिस प्रकारके वस्तुस्वरूपको ग्रहण करता है, वस्तुस्वरूप वैसा ही मानना चाहिए जहाँपर अत्यन्त भेदको ग्रहण करने वाला प्रमाण हो वहाँ तो आप अत्यन्त भेद मान लीजिए। जैसे कि घट, पट, तखत, चौकी, दरी, ईंट, चटाई, ये सब भिन्न-भिन्न हैं, इनका जो ज्ञान हो रहा है वह अत्यन्त भेदरूपसे हो रहा है। तो जहाँपर अत्यन्त भेदरूपसे ग्रहण करने वाला प्रमाण बने वहाँ तो अत्यन्त भेद समझ लेना चाहिए किन्तु जहाँपर कथंचित् भेदरूपसे ग्रहण करने वाला प्रमाण बने वहा कथंचित् भेद समझना चाहिए। अब जैसे घडा कपडा चटाई आदिक पदार्थोंमे भेद समझा जा रहा है उसी ही तरहसे कपड़ा और सूतमे या घडा व घडेके कणोंमे भी भेद मान लिया जाय कि भाई इसमे कुछ थोडा प्रतिभास भेद हो रहा है ना, गुण गुण कहलाता है, गुणी गुणी कहलाता है, इतने मात्रसे आप घडा कपडा चटाई आदिकको भाँति उनमे भेद समझ डालें तो यह युक्त नही है। हाँ प्रतिभासमे, लक्षणमें एक जानकारीमे, थोडा भेद है कि सूत होना है एक एक तंतु और कपडा कहलाया यह सारा बुना हुआ, और अर्थक्रियामे भी भेद है, यदि वे तंतु न्यारे-न्यारे हों तो उनसे ठंड कैसे मिटायी जाय ? और, वे ही तंतु संयोग सम्बन्धमे आकर कपडेकी अवस्था धारण करलें तो उससे ठंड मिटाई जा सकती है। तो कपडा बननेसे पहिले भिन्न-भिन्न रहकर तो थोडा भेद था तो उस हालतमे ता कह सकते कि यह तो भिन्न चीज है। तंतु जुदी चीज है, कपडा जुदी चीज है, मगर आतान वितानकी अवस्थामे वे अवयव आ चुके, उनको हम यह पट है इस ज्ञानसे जान रहे हैं। उस समय भी उनमे ऐसा भेद मान डालें जैसा कि घट पटमे है तो यह युक्त नही है।

भिन्नप्रमाणग्राह्यत्व व अभिन्नप्रमाणग्राह्यत्वसे भेदाभेदविभागका

अभाव और वस्तुस्वरूपतः भेदाभेदकी सिद्धि— यहा निष्कर्ष समझना चाहिए कि चाहे भिन्न प्रमाण द्वारा ग्राह्य हो तो भी यदि वहाँ भेद है तो भेद है और भेद नही है तो नही है। और, चाहे एक ज्ञानमे आ रहे हो पदार्थ फिर भी उनमे भेद हो सकता है जैसे आँखें खोलते ही सामने देखा, तो एक साथ कई पदार्थ देखनेमें आ गए। तो देखो एक प्रत्यक्ष ज्ञानके द्वारा ही वे पदार्थ ज्ञानमे आये और हैं वे अनेक। तो विजातीय अनेक पदार्थ भी एक ज्ञान द्वारा ग्राह्य हो सकते हैं और सजातीय अनेक पदार्थ भी एक ज्ञान द्वारा ग्राह्य हो सकते हैं। जैसे–गेहूँका ढेर है, एक ही नजरमे उन सारे अनेक गेहूँओको जान लिया अथवा बाजरा चना, गेहूँ मिले हुए हैं, एक ही नजरसे हमने उन भिन्न–पदार्थोंको जान लिया तो इससे भिन्न प्रमाण द्वारा ग्राह्य होनेसे वस्तु भिन्न हो जाय, यह भी नही, एक ज्ञान द्वारा ग्राह्य होनेसे वस्तु एक हो जाय सो भी नही।

भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व हेतुका प्रत्यक्ष बाधितपना होनेसे अकिञ्चित्कर-त्वका प्रसग—शकाकारने गुण गुणीको, अवयव अवयवीको, सामान्य विशेषको भिन्न भिन्न पदार्थ सिद्ध करनेके लिए जो हेतु दिया था भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व, वह हेतु बाधित है, कालात्यापदिष्ट है। जैसे कि अनुमान बनाये कोई कि अग्नि ठंडी होती है द्रव्य होनेसे जलकी तरह। जो जो द्रव्य होता है वह ठंडा होता है–जैसे जल। तो क्या यह हेतु सही मान लिया जायगा? वह तो प्रत्यक्ष बाधित है। इसी प्रकार यह जो हेतु दिया गया है कि भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व भिन्न प्रमाणसे ग्रहणमे आ रहे हैं, इस कारण ये भिन्न–भिन्न हैं, यो कहना प्रत्यक्ष बाधित है। घट पट आदिकमे यदि इस तरहका भेद दिख गया, भिन्न प्रमाणसे ग्राह्य है और साथ ही घट पट आदिक आपसमे अत्यन्त भिन्न हैं तो घट पट आदिकमें यदि सर्वथा भेद देखा गया और उस भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्वकी सर्वथा भेदके साथ घट पट आदिकमे व्याप्ति मिल गई तो इसके मायने यह नही है कि भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व हेतुसे सब ही जगह अत्यन्त भेदकी कल्पना कर दीजिए। यदि इस तरह अघटित कल्पना की जाय तो किसी जगह तृण आदिकके विशेष आधार रखने वाला अग्निके साथ यदि कही धुवाँ दिख गया और उस धूमसे व्याप्त तृण वाली अग्नि पायी गई तो इसका अर्थ यह नही है कि धूम देखकर सब ही जगह तृण वाली अग्निकी सिद्धि की जाय। यदि कहो कि तृण वाली अग्निके भेदको छोडकर धूम से सब अग्निमे पायी जाने वाली साधारण अग्निकी ही सिद्धि की जाती है तो ठीक है। इस ही तरह अत्यन्तभेदको छोडकर अवयव अवयवी आदिकमे भी भिन्न प्रमाण ग्राह्यक हेतुसे भेदमात्रकी सिद्धि करो, सर्वथा भेदकी सिद्धि मत करो।

भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व हेतुके दृष्टान्तमें साध्य विकलता एवं साधन विकलता होनेसे अप्रमाणता—और, भी देखिये–इस अनुमानमे जो शकाकार द्वारा दृष्टान्त दिया गया है घट पट आदिकका कि जो भिन्न प्रमाणोके द्वारा ग्राह्य होते हैं वे सर्वथा जुदे जुदे ही होते हैं–जैसे कि घट पट आदिक। तो इस दृष्टान्तमे भी सर्वथा

भेद नही पाया जा रहा इस लिए साध्य नही है, "अत्यन्त भिन्न है" यह साध्यपना यहाँ न रहा इस कारण दृष्टान्त भी गलत दिया याने हेतु गलत हुआ। देखो–घट पट आदिकमे भी अत्यन्त भिन्नता नही है। कैसे कि सत्त्व घटमे भी है और पटमे भी है। तो सदृश होनेसे घट पट आदिक विश्वके समस्त पदार्थोंमे अभेद है। भेद और अभेद अपेक्षासे देखे जाया करते हैं जितने आशयमे प्रयोजन हो उस प्रयोजनके अनुकूल भेद और अभेद सिद्ध किए जाते हैं। और, भी देखिये जो हेतु दिया है–भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व और उसके लिए जो दृष्टान्त दिया है घट पट आदिक, अर्थात् घट पट आदिक पदार्थ भिन्न प्रमाणके द्वारा ग्राह्य हैं इस कारण वे अत्यन्त भिन्न हैं। सो अभी दृष्टान्तको साध्य विकल तो बताया ही था। अब सुनो–दृष्टान्त साधन विकल भी है। किस तरह ? तुम कह रहे हो कि घट पट आदिक भिन्न प्रमाणोंके द्वारा ग्राह्य हैं, लेकिन कोई मनुष्य जब आँखें खोलता है तो आँखें खुलनेसे बाद एक ही प्रत्यक्षमे घट पट आदिका प्रतिभास सम्भव है। तो आँखें खुलते ही जितने पदार्थ सामने हैं वे सारे पदार्थ प्रतिभासित हो जाते हैं। तब देखिये यहाँ एक ही प्रमाणके द्वारा ही वे भिन्न भिन्न अनेक पदार्थ प्रतिभासमे आ गए तब घट पट आदिकमे भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व हो यह नियम न बनेगा। भिन्न प्रमाण ग्राह्य भी है, और कभी किसीसे एक प्रमाणके द्वारा भी ग्राह्य हो जाता है।

प्रतिविषय विज्ञानभेद माननेपर भेदकज्ञानके अभावका प्रसङ्ग—शंकाकार कहता है कि हम तो प्रत्येक विषयमे जो विज्ञान होता है उसे भिन्न–भिन्न समझते हैं, अर्थात् प्रत्येक विषयमे होने वाला ज्ञान भिन्न–भिन्न ही है। भले ही आँखें खोलकर किसीने देखा और एक ही निरखनमे घट पट आदिक बहुतसे पदार्थ ज्ञानमें आ गए, लेकिन एक ज्ञानमे सब नही आये। जितने पदार्थ हैं उतने ही तुरन्त ज्ञान बन गए और उतने ज्ञानोंके द्वारा उतके विषयोंका ज्ञान किया गया। उत्तरमे कहते है कि इस तरह अगर मानोगे तो क्षणिकवादियोंका मेचक ज्ञान भी कुछ न रहा। अथवा सभीका मेचक ज्ञान भी तो कभी कभी होता है। मेचक मायने चित्र विचित्र। एक ज्ञानमे अनेक ज्ञेयाकार प्रतिभासित हो रहे हो ऐसा ज्ञान मेचक कहलाता है अथवा कह लीजिए चित्रज्ञान। चित्रज्ञानका फिर अभाव ही हो जायगा। ज्ञान तो मेचक बनता ही है। जब सभी पदार्थ ज्ञानमे एक साथ झलक गये या जिसके ज्ञानमे जितने पदार्थ एक साथ ज्ञात हो रहे हैं। देखो वह ज्ञान मेचक बन गया ना,, लेकिन अब यह कहनेपर कि प्रत्येक विषयके लिए ज्ञान जुदे–जुदे हैं—यदि २० पदार्थोंका एक साथ ज्ञान हो रहा है तो वे २० ज्ञान हैं एक साथ। इस तरह माना ना ! तो यों माननेपर मेचक ज्ञान नहा बन सकता अथवा किसी भी एक पदार्थको भी कुछ एक ज्ञानके द्वारा नही जान सकते, क्योंकि जैसे एक बडा घट जाना तो घटमें तो कितने ही अंश हैं। घटका मुंह, घटका पेट, घटकी पेंद आदिक ये सब घटके अवयव ज्ञानमे आये ना, तो वहा अनेक विज्ञान मान लेना चाहिये। घटके जितने अंश हैं उतने ही ज्ञान मानोगे

तो घटज्ञान भी न हो पाया। जिन अशोका ज्ञान किया उन अशोंका ज्ञान हुआ। प्रत्येक पदार्थमे ऊपरी हिस्सा, मध्यका हिस्सा, नीचेका हिस्सा, यो अनेक भाग होते हैं और उन भागोका ज्ञान हो रहा है। एक वस्तुको जानकर उसके अनेक, भागोका ही तो ज्ञान हो रहा। तो अब वे विज्ञान उतने बन बैठेंगे, फिर तो अवयवी कुछ पदार्थ ही न ठहर सकेगा। क्या है अवयवी ? सारे अवयव ही रहे, घट पट भीट आदिक कोई पदार्थ सिद्ध नही हो सकते, क्योंकि जितने विषय हैं उतने तुम ज्ञान मानते। तो एक चोजमे तो अनेक भाग होते हैं और उनका ज्ञान किया जा रहा है तो उतने ही ज्ञान हो गए। सो उन ज्ञानोने उतने अशोको जाना। अशी एक एक तो जाने नही जा सकते फिर तो उसके लिए तिलाञ्जलि दे दो। अब अवयवीका ज्ञान हो ही नही सकता। यदि कहो कि इसमे तो प्रतीतिका विरोध है। प्रतीतिमे यह बात समाई हुई है कि यह घट एक है तो जो अवयवीकी ही तो प्रतीति हुई। इस अवयवीकी प्रतीति होनेसे अब नही कह सकते कि अवयवीका ज्ञान ही न हो सकेगा। हो तो रहा है। उत्तरमे कहते हैं कि यह बात अवयव अवयवी आदिकके सर्वथा भेदमे भी तो प्रतीतिका विरोध है, फिर वहाँ क्यो सर्वथा भेद मानते ? अवयव अवयवी सर्वथा भिन्न नही है। इस तरह भिन्न प्रमाण ग्राह्यत्व हेतु देकर जो शकाकार गुण गुणीको परस्पर भिन्न, अत्यन्त भिन्न सिद्ध करना चाहता है, गुण गुणीको, क्रिया क्रियावानको, सामान्य विशेषको परस्पर अत्यन्त भिन्न सिद्ध करना चाहता है सो नही सिद्ध हो सकता।

विरुद्धधर्माध्यास हेतु द्वारा ज्ञेयोंमे अत्यत भेद सिद्ध करनेका शङ्काकारका पुन प्रयास अब शकाकार कहता है कि घट पट आदिक पदार्थोंमे विरुद्ध धर्म भी तो पाये जारहे। घटमे धर्म, आकार, अर्थक्रिया आदिक और भाँति है, पटमे अर्थक्रिया, धर्म, आकार और भाति है तो इसमे विरुद्ध धर्मोंका अध्यास समावेश है तो फिर कैसे नही ये भिन्न-भिन्न कहलायेंगे ? देखो ! पट पटत्व जाति सम्बन्धी पदार्थ हैं। जिनमे पटत्व जाति पाई जाय जो बडी विरुद्ध अर्थक्रियाको उत्पन्न करे। जैसे कि ठण्ड मिटाना आदिक और जो बहुत महत्त्वका हो बडा हो वही तो पट है। और ततुवोको देखो ! तो ततु वे कहलाते हैं जिनमें ततुत्व जातिका सम्बन्ध है और जो अल्प परिणाम वाले हैं, तब पटमे और ततुमे भेद कैसे न सिद्ध होगा ? तो इसी तरह गुण गुणीमे, सामान्य विशेषमे भी सामान्य विशेष धर्मका अध्यास है। सामान्यमे है सामान्यत्व, विशेषमे है विशेषत्व। सामान्य प्रतिभासमे ज्ञानमुद्रा बनती है साधारणरूपसे, विशेषके प्रतिभासमे ज्ञानमुद्रा बनती है असाधारणरूपसे, तो फिर इसमे भेद कैसे न होगा ? और, फिर आप तादात्म्य बतला रहे हो कि सामान्य विशेष एक पदार्थमे तादात्म्यरूपसे रहते हैं तो तादात्म्यका अर्थ है एकत्व ! तादात्म्यमें नाना चीजें तो नही हुआ करती और जब एकत्व उनमे है तब प्रतिभासभेद या विरुद्ध धर्मका अध्यास न होना चाहिए, अब माना है कि प्रतिभासभेद विभिन्न विषय होनेपर ही होते हैं। तब सामान्य विशेषमे अभेद सिद्ध नही किया जा सकता। ये दोनो अत्यन्त

भिन्न पदार्थ हैं। यदि जैन आदिक कोई कहे कि तंतुवोसे भिन्न कपड़ा कुछ नहीं है, तंतुवोंका ही नाम कपड़ा है तब अब तंतुवोंकी बात बताओ ? तंतुवोंमे जो तंतुके हिस्से हैं उनसे तंतु कुछ भिन्न चीज है क्या ? वे भी क्यों भिन्न होंगे ? तो तंतुवोंके अवयवसे भिन्न कोई तंतु भी न रहे और उनके जो अंश हैं उनमे भी तो और अंश होते ना ! तो वे अपने अंशोंसे क्यों भिन्न रहेंगे ? तो उन अंशोंके अंशोंसे भी अंश भिन्न न ठहरेंगे। इस तरह अंशोके अंशोका चिन्तन करते जाइये ! जब तक कि निरंश परमाणु न आ जाय। तो अब निरंश परमाणुवोंसे भी अंशोका अभेद रहेगा। इसके मायने यह हुआ कि फिर किसी भी कार्यकी उपलब्धि नहीं हो सकती, क्योंकि कार्य कहलाता है वह कि जहा दों कोई दो अणुवो वाले पदार्थ और बन जाये ३-४-६ अणुवों वाले ! मगर यहा तो अवयव अवयवीमें अभेद माना जारहा है तो द्वयणुक और चतुरणुकादि ये प्रसग क्या रहे ? फिर तो किसी भी कार्यकी उपलब्धि नहीं हो सकती। इस कारण मानना ही पड़ेगा कि पटसे तंतु भिन्न है और तंतुवोंसे रूपादिक भिन्न है, सामान्यसे विशेष भिन्न है। धर्म धर्मी, गुण गुणी, अवयव अवयवी, क्रिया क्रियावान, सामान्य विशेष ये सब परस्पर अत्यन्त भिन्न हैं।

अत्यन्त भेद सिद्ध करनेके लिये दिये गये विरुद्धधर्माध्यास हेतुकी सदोषताका वर्णन—अब उक्त शंकाका समाधान करते हैं। पदार्थोंमें यदि भेद सिद्ध करनेके लिए शंकाकारने विरुद्ध धर्माध्यास हेतु दिया है अर्थात् विरुद्ध धर्म पाये जाने से वे पदार्थ अत्यन्त भिन्न हैं। ऐसा जो विरुद्धधर्माध्यास हेतु है उसमे अनेकान्तिक दोष आता है। कैसे ? जैसे यह सिद्ध किया जाय कि इस पर्वतमे अग्नि है धूम होनेसे तो यहा धूम नामक जो हेतु है उसमें विरुद्ध धर्म पाये जाते हैं। कैसे विरुद्ध धर्म है कि वह धूम अपने साध्यका तो गमक है और साध्यान्तरका अगमक है। तो देखिये ! उस धूममे दो धर्म पाये गए, साध्य गमकत्व और साध्यन्तरागमकत्व अथवा असाध्यागमकत्व। अर्थात् अपने साध्यको तो जता देना और साध्यसे भिन्नको न जताना। तो धूममे गमकत्व और अगमकत्वरूप विरुद्धधर्म मौजूद होनेपर भी धुवामे क्या कोई भेद हो रहा है ? वह तो एक ही है। तो अब देख लो ! विरुद्धधर्म होनेपर भी पदार्थ मे भेद नहीं न रहा है। तो अनैकान्तिक दोष इस ही को तो कहते हैं कि जहां हेतु पाया जाय, कभी साध्य भी पाया जाय। जो हेतु सपक्ष और विपक्ष दोनोंमें रहे तो उसे अनैकान्तिक कहते हैं। तो विरुद्ध धर्मका अध्यास होनेसे कहीं भेद भी सिद्ध होता है ? धूममे गमकत्व और अगमकत्व ऐसे दो धर्म होनेपर भी देखो, धूममें भेद तो न रहा तो इसी तरह अवयव अवयवीमें सामान्य विशेषमें विरुद्ध धर्म हो तो भी उनमे भेद नहीं किया जा सकता। संज्ञा संख्या प्रयोजन आदिकके भेदसे तो उनमें भेद बनता है पर अवयव कोई स्वतत्र पदार्थ हो और अवयवी अन्य कोई स्वतन्त्र पदार्थ हो और अवयवी अन्य कोई स्वतत्र पदार्थ हो इस तरह सिद्ध नहीं हो सकता। सामान्य कोई स्वतन्त्र पदार्थ हो और विशेष कोई स्वतन्त्र पदार्थ हो ऐसा अत्यन्त भेद नहीं

बन सकता। तो विरुद्ध धर्माध्यास होनेपर भी पदार्थ भिन्न ही हो यह नियम नही बनाया जा सकता। प्रत्येक पदार्थ परस्पर विरुद्धानेकधर्मात्मक पदार्थकी भिन्नताका नियामक नही है।

अवयव अवयवीमें सर्वथा भेद सिद्ध करनेके लिये शङ्काकार द्वारा कथित विरुद्धधर्माध्यास हेतुकी सदोषताका कथन—शंकाकारका कहना था कि विरुद्ध धर्मक रहनेके कारण पदार्थोंमें भेद सिद्ध होता है। अवयव अवयवी, गुण गुणी क्रिया क्रियावान, सामान्य विशेष इन सबमे परस्पर विरुद्ध धर्म पाये जाते हैं, इसलिए इनमे अत्यन्त भेद है। इस शंकाका उत्तर यह दिया गया था कि विरुद्ध धर्माध्यास नामक हेतु अनैकान्तिक दोष सहित है, क्योकि एक ही धूम साधन अग्निको सिद्ध करता है इस कारण गमक है और अनग्निको सिद्ध नही करता इस कारण अगमक है। तो देखो! धूममे भी दो धर्म तो आ ही गए—अग्निका गमक होना और अनग्निका गमक न होना। लेकिन धूममे भेद कहां है? वह तो एक ही है। इसपर शंकाकार कह रहा है कि इस धूममे भी सामग्रीभेद है। जो धूम पक्ष धर्मत्व आदिक कारणोंसे युक्त है अर्थात् जिस धूम साधनमे पक्ष धर्मत्व सपक्षसत्त्व आदिक कारण मौजूद हैं वे धूम तो हैं अपने साध्यको जताने वाले और जहा पक्षधर्मत्व आदिक न हो उससे विपरीत कारण हो, विपक्षसत्त्व आदि हो, ऐसे धूममे चूकि अन्य सामग्री आ गई ना, इसलिए अन्य साध्यका भी गमक नही होता। एक ही धूमको हम गमक और अगमक नही कह रहे किन्तु वह धूम ही दो तरहकी है—एक पक्षधर्मत्व आदिक सहित धूम और एक विपक्षसत्त्व आदिक सहित धूम। तो धूम ही दो हो गए। जो जो धूम पक्ष धर्मादिक सहित हो सो गमक है, अन्य धूम गमक नही है। यह भी उलट फेर करके अनेकान्त मन्तव्यका सहारा लेनेकी बात हुई क्योकि धूम तो वही है, एक है। उस ही एक धूमको जब हमने परखा, अविनाभाव सम्बन्धका स्मरण किया, पक्ष धर्मत्व आदिक जाना, उस करके युक्त जो धूम है सो अग्निका तो गमक है और अनग्निका अगमक है। तब अनेकान्त मत ही तो हुआ। धूम कथचित् गमक है कथचित् अगमक। अविनाभाव सम्बन्ध स्मरण सहित यह धूम अग्निका गमक है, अन्यका अगमक है। शंकाकार कहता है कि अपने साध्यके प्रति जो गमक है वह तो धूम है अन्य, और जो अनग्निका अगमक है ऐसा धूम है अन्य। तो उत्तर देते हैं कि इस तरह यदि धूम दो तरहका मान लिया तो जो गमक धूम है, साध्यको सिद्ध करनेवाला साधन है तो उसमे तो गमकपना ही रहा, अगमकता तो रही नही। सो वह गमक ही गमक रहा करे, कभी भी अगकक न बने। दूसरा धूम अगमक है सो अगमक रहे उस की बात अभी हम नही कह रहे। सो गमक जैसे अपने साध्यका गमक है ऐसे ही साध्यन्तरका भी गमक रहे, क्योकि दो धूम मानकर अब एक धूममे तो गमकत्व ही माना है तब एक ही धूम साधनसे दुनियाभरके समस्त साध्योकी सिद्धिका प्रसङ्ग हो जायगा फिर अन्य हेतुवोका कहना व्यर्थ हो जायगा।

पटावस्थाभावितन्तुओसे पटकी अनर्थान्तरताका प्रतिपादन—और भी सुनो—जो विरुद्ध धर्माध्यास हेतु देकर ततु और कपडेको अत्यन्त भिन्न सिद्ध कर रहे हो सो यह वतलावो कि इस हेतुसे तुम पटका जो ततुवोसे भेद वता रहे हो तो किस प्रकारके ततुवोका भेद वताते हो ? क्या जो कपडा अवस्थामे नही आये, विखरे जुदे अपनी पिंडीमे ही पडे हैं उन ततुवोसे कपडेका भेद वता रहे हो या कपडेकी अवस्थामें रहने वाले ततुवोसे कपडेका भेद वता रहे हो ? यदि कहा कि हम उन ततुवोंसे कपडे को भिन्न वता रहे हैं जिन तन्तुओने कपडेकी अवस्था धारण नही की और पूर्व अवस्था मे आने ही मात्र ततुरूपमे ही पडे हुए हैं ऐसे ततुवोसे कपडेको हम न्यारा कह रहे हैं तो यह तो युक्त वात है, इसका कौन विरोध करता है ? जो ततु अपनी गुत्थीमे ही पडा हुआ है, आतान वितानमें नही आया है उस तनुसे तो कपडा न्यारा है ही, क्यो कि पूर्व अवस्था और उत्तर अवस्थामें भेद ही क्या है ? क्योकि जो ही पदार्थकी पूर्व अवस्था है वह ही पदार्थकी उत्तर अवस्था है सो वात नही । वे इकले इकले जो तनु हैं वह तो पूर्व अवस्था है और आतान वितान होकर जो पटरूपमे आगए ततु हैं वह उनकी उत्तर अवस्था है । तो पूर्व अवस्थामे रहने वाले ततुवोसे कपडेको भिन्न कहने पर तो वात यथार्थ है, क्योकि पूर्व अवस्था जुदी है और उत्तर अवस्था जुदी है । पूर्व अवस्थाका ही त्याग करके तो उत्तर अवस्थाकी उत्पत्ति होती है ना ! तो सही है तुम्हारा पक्ष । यदि कहोगे कि तन्तुओंका आतान वितान होकर जो कपडा वना, उस पटकी अवस्थामे रहने वाले ततुवोसे कपडेको भिन्न कहते है तो यह हेतु असिद्ध है, क्योकि पट अवस्थामे रहने वाले ततुवोसे पट भिन्न है ही नही । न वहाँ विरुद्ध धर्माध्यास हेतु है और न वहाँ भिन्न प्रमाण ग्राह्यपना है, और न विभिन्न कर्तासे भी कोई धर्म वहाँ पृथक् नजर आ रहे । अर्थात् पट अवस्थामें रहने वाले ततुवोसे पट भिन्न चीज नही है, और फिर तुम्हारा यह हेतु कि वहा विरुद्ध धर्माध्यास है इस कारणसे भेद है यह विल्कुल प्रत्यक्ष वाधित है । जो ताने वानेके रूपमे आये हुए ततु हैं उनको छोड़कर अन्य कोई कपडा प्रत्यक्षसे पाया नही जाता इस कारणसे तुम्हारे भेदका जो कथन है वह प्रत्यक्ष वाधित है ।

चार विकल्पात्मक हेतुओसे अवयव अवयवीमे भेद सिद्ध करनेका शकाकारका प्रयास—अब शकाकर कहता है कि वाह ! ततुवोका करनेवाला दूसरा है और पटका करने वाला दूसरा है इस कारण भिन्न हैं ।

जैसे कि पटका करने वाला जुलाहा है और घटका करने वाला कुम्भार है तो जब करने वाले जुदे हैं तब तो ये जुदे-जुदे ही पदार्थ हो गये ना । देखो ना, ततुयो को सूतको तो बनाया करती हैं जुलाहोकी स्त्रिया । वे अपने घरमे चरखा रखकर सूत कात लेती हैं और कपडा बनाते हैं जुलाहा लोग तो देखो—कपडा और ततु इन दोनों के कर्ता भिन्न-भिन्न हो गए । जब कपडा और ततु इन दोनोके कर्ता भिन्न भिन्न हो गए तो ततु और पट ये भी भिन्न-भिन्न हो गए । अथवा कपड़ेकी शक्ति भिन्न

प्रकारकी है, तंतुकी शक्ति भिन्न प्रकारकी है। तो जब भिन्न-भिन्न शक्तियां हैं तो इस से भी भेद सिद्ध होता है कि ततु अलग चीज है, कपडा अलग चीज है। जैसे कि विष और अमृत। जब इनमें शक्तियां जुदी-जुदी हैं तो ये एक तो न हो जायेंगे? इसी तरह अब कपडा और ततु इन दोनोंको शक्तियां न्यारी-न्यारी हैं तो ये एक कैसे हो जायेंगे? अथवा ततु तो पूर्वकालमे पैदा हुआ और कपडा बना बहुत समय बाद तो ततु और कपडा एक कैसे हो जायेंगे? जैसे पिता और पुत्र। पिता तो उत्पन्न हुआ था पहिले और पुत्र उत्पन्न हुआ २५ वर्ष बाद तो ये पिता और पुत्र दोनो एक तो न हो जायेंगे? ऐसे ही ततु बना पहिले कपडा बना बादमे अथवा ततुका परिमाण तो है और किस्मका और कपडेका परिमाण है और किस्मका तो फिर ये दोनो एक कैसे हो जायेंगे? जैसे कि बेर और आवला, केला, और पपीता जब इनका परिमाण न्यारा न्यारा है तो ये एक तो नहीं हैं न्यारे हैं, इसी तरह ततु भी पटसे न्यारे हैं। और, फिर इनमें संज्ञा भेद भी पाया जाता। ततु ततु ही कहलाता, पट पट ही कहलाता। इनमें फिर कैसे अभेद हो जायगा?

उक्त चार विकल्पोसे अवयव अवयवीमे अत्यन्त भेद सिद्ध करनेकी शकाका समाधान—उत्तर देते हैं कि यह ततु है यह कपडा है। ततु ही कपड़ा है। तंतुमे बहु वचन लगाकर बोलते हैं, कपड़ेको एक वचनमे बोलते हैं। "ततवः पट." इस प्रकार जो संज्ञा भेद है वह पदार्थ भेदकी वजहसे नही, किन्तु अवस्था भेद की वजहसे है। कहीं अन्य-अन्य द्रव्य हैं इस कारणसे यहा संज्ञा भेद नही होता है। इस न्यारी तरहकी अवस्था और किस्मकी है और आतान वितानमे आ चुके ततुवोकी अवस्था और किस्मकी है इससे ततु और पट, पट अवस्थामे आये हुए ततु और उनके समूह रूप यह कपड़ा ये दो संज्ञायें हैं, किन्तु भिन्न-भिन्न वस्तु नही हैं। जब केवल ततु हों तो उनसे ठंड तो नही मिटा सकते, किन्तु जब उन ततुवोको जुलाहा अपनी हस्तादिक क्रियाओंसे कपडेके रूपमे ला देता है तो वह अवस्था ठंड मिटानेमे समर्थ है। तो अवस्था भेद हैं इनमें, भिन्न कर्ता होनेसे ततु और पटमे अन्तर माननेकी बात यो युक्त नही है कि जब वे ततु आतान वितानमें आकर कपडेके रूपमें आ गए भिन्न वहां कर्ता भिन्नका सवाल क्या है? उस समय कोई विभिन्नता नही है वह ततु ही पटत्व कहलाता है। और, जो यह कहा है कि विभिन्न शक्तियां हैं उन ततुवोमे और पटमें इससे परस्पर भेद है तो भाई विभिन्न शक्तियां हैं यह बात केवल अवस्था भेदको बताती है सर्वथा भेदको भी सिद्ध न कर सकेगी अवयव अवयवीमे अत्यन्त भेद सिद्ध न कर सकेगी। जब ततु केवल ततुकी ही हालतमें है उस समयकी उसमे शक्तियां जुदी हैं और जब कपड़ा रूपमें ततु आ गए तब उसमें शक्तियां जुदी प्रकारकी हो गईं। तो इससे अवस्थाका भेद ही सिद्ध हुआ। यह सिद्ध नही हो सकता कि ततु बिल्कुल अलग चीज है और कपड़ा अत्यन्त भिन्न पदार्थ है। जब ये ततु एक पिण्ड रूप हो गए तो कपड़ा नाम जिसको भी हम कह रहे हैं उसके ये अवयव कहलाने लगे। अवयवियोंसे

अवयव अत्यन्त भिन्न नही हुआ करते। जिनका स्वरुप सत्त्व भिन्न-भिन्न है उनमे तो अत्यन्त भेद है पर जो उस एक धर्मीके ही धर्म है उनमें भेद नही हो सकता। तथा जो यह कहा कि पूर्व और उत्तर काल भावी होनेसे भी ततु और पदार्थमे भेद है, ततु तो उत्पन्न हुए ६ महीना पहिले और कपडा बना ६ महीने बाद ६ महीने पहिले वे ततु कपडा नही कहलाते थे, किन्तु अब उन ततुवोका ही नाम एक ताना बाना आ जानेके कारण पट हो गया। पट कोई भिन्न वस्तु थोडे ही है। जब वे अकेले थे तब उनका नाम ततु था। जब वे ततु विधिपूर्वक एक पिण्डमे आ गए तो उसका नाम कपडा हो गया। तो ततुकी पूर्व अवस्था और कपडा है उत्तर अवस्था। कोई दो पदार्थ नही हैं अब विभिन्न परिमाण वाली जो बात कह रहे कि देखो-ततुवोका परिमाण तो बिल्कुल पतला और छोटा है और कपडेका परिमाण है बहुत। तो कपडा कोई भिन्न वस्तु नही। जो ततुवोका समूह पहिले अलग-अलग रूपमे था वह ततु कहलाता था, अब ताना बितान होकर पिण्ड रूपमे बन गया है तो कपड़ा कहलाने लगा। वहाँ एक ततुको निरखकर परिमाण देखा जा रहा था यहाँ अनेक ततुवोके समूहमें परिमाण देखा जा रहा है। कपडा ततुवोंसे कहीं अलग चीज नही है।

" षष्ठी विभक्ति लगानेके कारण पदार्थोंमे परस्पर अत्यन्त भेद सिद्ध करनेकी शङ्का —अब शङ्काकार कहता है कि पटके भावको पटत्व कहते हैं। इस तरह देखो ! षष्ठी विभक्ति लगाई गई है ना ? तो यदि कपडा कोई वास्तविक जुदा पदार्थ न हो तो उसमे षष्ठी विभक्ति कैसे लग जायगी ? जैसे कहते हैं कि यह बाबूजी की कमीज है। तो बाबूजी अलग पदार्थ है, कमीज अलग पदार्थ है। तब तो षष्ठी विभक्ति लगाई गयी। यो ही 'पटस्य भाव पटत्वम्' इसमें जो षष्ठी विभक्ति लगाई गई है सो भेदको सिद्ध कर रही है। साथ ही पटत्वमे जो त्व प्रत्यय लगा है सो यदि भेद न होता तो प्रत्यय भी न लगाया जा सकता। सामान्य और विशेषमे अभेद माननेपर जैसे ततु तो सामान्य होता है, पट विशेष हुआ या पटत्व सामान्य हुआ ? पट विशेष हुआ तो उनमे षष्ठी विभक्ति न लग सकेगी। यदि पट और पटत्व जुदे पदार्थ न माने जायें, ततु और पटमे अत्यन्त भेद न माना जाय। लोकमें जितने षष्ठी विभक्ति वाले पद हैं वे उनके वाच्य सम्बन्धित पदार्थसे भिन्न ही होते हैं। जैसे सेठकी दुकान, गोपालका कम्बल आदि। यो ही पटका पटत्व आदि कहना भी भेद सिद्ध करता है। यो ही अवयवीके अवयव आदि भी कहे जाते हैं सो अवयवीसे भिन्न होगये।

भिन्न पदार्थोंमे भी षष्ठी विभक्ति लगानेका अनियम अब उक्त शङ्का का समाधान करते हैं। शङ्काकारने जो यह कहा था कि षष्ठी विभक्ति जहा लगती है वहा भेद सिद्ध होता है। जैसे मनुष्यका घर, आदिक सभी जगह षष्ठी विभक्ति भिन्न पदार्थोंमे लगती है। अभेदमे षष्ठी विभक्ति प्राप्त नही होती, सो यह बात अयुक्त है। ऐसा नियम नही बनाया जा सकता कि षष्ठी विभक्ति भिन्नमे ही लगती है। भिन्नमें

भी लगती है और अभिन्नमे भी लगती है। जैसे यह कहा कि छहो द्रव्योका अस्तित्व, वैशेषिकोके प्रति कहा जा रहा है। वैशेषिक ६ द्रव्य मानते हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय। और ६ जातिके पदार्थ भी माने गए हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। पर यहा शंकाकारके लिए कहा जा रहा है—तो उसके माने हुए द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय नामके ६ पदार्थोंका अस्तित्व अथवा ६ पदार्थोंका समूह जब कहा जाता है तो देखो! यहा विभक्ति तो लग गई षष्ठी, पदार्थोंका अस्तित्व, मगर उन ६ पदार्थोंका अस्तित्व उन ६ पदार्थोंसे अभिन्न है तो अभेदमे भी षष्ठी लगती है। ६ पदार्थोंका समूह, तो समूह क्या कहलाया? ६ ही पदार्थ, तो अभेदमे भी षष्ठी लग गई। ६ पदार्थोंसे जुदा अस्तित्व तो कुछ नही है। जैसे पडित जीकी धोती। तो धोती पडितजीसे अलग है। यो ६ पदार्थोंका अस्तित्व, यह अस्तित्व ६ पदार्थोंसे जुदा कुछ नही है व नही माना है। तो यह कहना कि षष्ठी विभक्ति भिन्नमे ही लगती है सो अयुक्त बात है। अभेदका भी षष्ठी विभक्तिपर प्रयोग होता है।

ज्ञापकप्रमाणविषयत्वरूप सत्त्वकी अर्थान्तरता माननेपर अनिष्टप्रसग

अब शकाकार कहता है कि सत्त्वका अर्थ क्या है? सत् अर्थात् ज्ञापक प्रमाणो का विषय। उसका नाम सत् है। सत्का अर्थ है प्रमाणका विषयभूत पदार्थ। और, उसके भावका नाम है सत्त्व। जिससे अर्थ क्या निकला कि सत्ताका उपलम्भ करने वाले प्रमाणकी विषयताका नाम है सत्त्व। अर्थात् सत्ताका निर्णय करने वाले ज्ञानके विषयत्वको कहते हैं सत्त्व। तो यह जुदा धर्म हो गया ना? और उस अस्तित्वको फिर कहते हैं कि ६ पदार्थोंका अस्तित्व। तब तो हमारा हेतु ठीक रहा ना कि जहा जहा षष्ठी विभक्ति लगती है वहा वहा भेद रहा करता है। उत्तर देते हैं कि यह बात बिल्कुल अयुक्त है। यदि ६ पदार्थोंका अस्तित्व उन ६ पदार्थोंसे व्यतिरेक कोई धर्मान्तर हुआ तब ६ की सख्या मिट जायगी। देखो! अब यह ७ वा भी निकल आया। ६ पदार्थोंका अस्तित्व, इसमे जो अस्तित्व है वह ७ वां पदार्थ है, क्योकि तुमने ही इस समय ६ पदार्थोंसे भिन्न मान लिया अस्तित्वको इससे अस्तित्व भिन्न, नही माना जा सकता। तो अभेदमे भी षष्ठी विभक्तिका प्रयोग बन गया ना!

केवल धर्मीरूप व धर्मरूप भावविभाग करनेमें अनेक अनिष्टापत्तियां

अब शकाकार कहता है कि बात यहाँ ऐसी समझना चाहिए कि धर्मीरूप ही जो भाव हैं वे तो हैं ये छ पदार्थ, परन्तु धर्मरूप जो भाव हैं वे छ पदार्थोंसे भिन्न हैं। वे कितने ही रह जावें। और, इसी प्रकार ग्रन्थोमे भी कहा है कि धर्मैर्विना धर्मिणामेव निर्देश कृतः अर्थात् इस प्रकार धर्मोंके विना धर्मियोका ही निर्देश किया गया है। तब बात क्या रही कि जो केवल धर्मीरूप भाव हैं वह तो है ६ पदार्थ और जो धर्मीरूप व धर्मरूप दोनो प्रकारके हैं वे उनसे अलग हैं, सो वे कितने ही रहे आवो! यो अस्तित्व

भी यदि एक अन्य धर्म बने तो उससे ६ पदार्थोंकी संख्याका विघात नहीं होता। उत्तरमें कहते हैं कि खैर, जैसा तुम कहते हो ऐसा भी मान लिया जाय कि पदार्थ जो धर्मीरूप ही हैं वे तो हैं यहां ६ पदार्थ, परन्तु धर्मीरूप उन ६ से अलग है। मानलो थोडी देरको, और ऐसा माननेका प्रयोजन यहाँ यह है कि अस्तित्व भी एक धर्म है जो ६ पदार्थोंके साथ जोडा गया है। षष्ठी विभक्तिके द्वारा कि ६ पदार्थोंका अस्तित्व। तो अब यहां यह बतलाओ कि उस अस्तित्वका ६ पदार्थोंके साथ कौनसा सम्बन्ध है? ६ पदार्थ जुदे हैं और अस्तित्व धर्म जुदे हैं। अब अस्तित्व धर्मका ६ पदार्थोके साथ सम्बन्ध जुडा है तो वह किस प्रकारका सम्बन्ध है? जो पदार्थोंके साथ अस्तित्व बना है। क्या संयोग सम्बन्ध है या समवाय सम्बन्ध है? संयोग सम्बन्ध तो यों नहीं कह सकते कि संयोग तो गुणरूप है, वह तो द्रव्यके आश्रय रहेगा। द्रव्याश्रय गुण हुआ करता है। तो संयोग हुआ गुण। यह रहेगा द्रव्यके आश्रय। मगर यहाँ तो अस्तित्व को बता दिया है धर्म और ६ पदार्थ जो कहे उनमें भी द्रव्य नामक पदार्थ है एक, तब फिर उन ६ पदार्थोंके साथ अस्तित्वका सम्बन्ध कैसे जुट सकता है? द्रव्य और द्रव्यके सम्बन्धको संयोग सम्बन्ध माना गया है। मगर अस्तित्व तो द्रव्य नहीं है, वह तो है धर्म। उसका कैसे सम्बन्ध जुट सकता है? तो षट पदार्थोंके साथ धर्मका संयोग सम्बन्ध नहीं बना। यदि कहो कि समवाय सम्बन्ध हो जायगा ६ पदार्थोंके साथ अस्तित्वका समवाय सम्बन्ध है तो यह भी बात नहीं बनती। क्योंकि समवाय सम्बन्ध तो एकत्व रूपसे माना गया है। जिसके साथ समवाय सम्बन्ध होता है वे दोनों तादात्म्य हुआ करते हैं। जैसे आत्मामें ज्ञानका समवाय सम्बन्ध है तो आत्मासे ज्ञान जुदा थोड़े ही है। एक है। और, फिर दूसरी बात यह है कि ६ पदार्थोंके साथ अस्तित्वका सम्बन्ध किया तो उस समवायका भी उन दोनोंके साथ कौनसा सम्बन्ध कहोगे? कहोगे कि अन्य समवाय है तो उसका भी इन सबके साथ कौन सा सम्बन्ध कहोगे? यों अन्य अन्य समवाय कहते जावोगे तो समवाय अनेक हो जायेंगे और अनवस्था दोष हो जायगा यदि कहो कि सम्बन्धके बिना ही धर्म और धर्मी भाव बन जाता है, ६ पदार्थोंका अस्तित्व, वहाँ ६पदार्थ तो हैं धर्मी और अस्तित्व है धर्म तो धर्मी धर्म सम्बन्ध यों ही बन जायगा अपने आप सम्बन्धके बिना ही, तो ऐसा माननेपर अति विडम्बना हो जायगी। वह किस तरह कि आकाशके फूलका और अस्तित्वका भी धर्म धर्मी साथ बन बैठे क्योंकि सम्बन्धके बिना अब धर्म धर्मी भाव होने लगा है। तो असत् पदार्थोंमें भी अस्तित्व का धर्म धर्मी सम्बन्ध बन जाना चाहिए।

अस्तित्वका अस्तित्व माननेपर अनवस्था और धर्मी पदार्थोंकी ६ संख्याका विघात—अब और दूसरी बात सुनो अस्तित्वमें भी क्या अन्य अस्तित्व पड़ा हुआ है? जैसे ६ पदार्थोंका अस्तित्व कह कर अस्तित्वको न्यारा स्वीकार करते हो और फिर उनका पदार्थोंमें सम्बन्ध बनाते हो तो यह भी बतलाओ कि क्या अस्तित्वका भी अस्तित्व हुआ करता है तो तो है नहीं तो जब अस्तित्वमें अन्य अस्तित्वका

अभाव हो गया और विभक्ति देने लगोगे कि अस्तित्वका अस्तित्व और दूसरा अस्तित्व कुछ भिन्न है नही तो वहाँ विभक्ति कैसे बन बैठेगी ? भेद निमित्तक विभक्ति तो अब यहाँ न बनी। यदि कहो कि हम वहाँ भी और नया अस्तित्व मान लेंगे, अस्तित्वका भी अस्तित्व है तो फिर दूसरे अस्तित्वका भी अस्तित्व मानो, उस तीसरे अस्तित्वको भी अस्तित्व मानो। यो अस्तित्व माननेमे अनवस्था हो जायगा। मानते चले जावो, कहीं विश्राम ही न हो सकेगा। इसके अतिरिक्त एक दोष यह बड़ा विकट आता है कि जब कहा अस्तित्व अस्तित्व तो जिसमे लगी षष्टी विभक्ति वह तो हो गया धर्मी और जिसमे प्रथमा विभक्ति है वह हो गया धर्म। और, जब उस दूसरे अस्तित्वमे भी कहोगे कि अस्तित्व तो दूसरा अस्तित्व तो हो गया धर्मी और तीसरा अस्तित्व हो गया धर्म। और, जब तीसरे अस्तित्वके लिए ही कहोगे कि अस्तित्वका अस्तित्व तो तीसरा अस्तित्व हो गया धर्मी और चौथा अस्तित्व हो गया धर्म, तो यो उत्तरोत्तर धर्मके समावेश होनेसे उन अनेक अस्तित्व आदिकमे भी धर्मीरूपता बन गई। तो यह कहना कि धर्मी ६ ही होते हैं इस सख्याका विघात हो गया। शकाकार कहता है कि हम तो यह मानते हैं कि जो भाव धर्मीरूप ही है—वे हैं ६ और जो ऐसे भाव है कि धर्मरूप भी हैं, धर्मी रूप भी हैं, उनको हम इन ६ सख्या वाले धर्मीमे सामिल नही करते हैं। तो उत्तर देते हैं कि फिर यह भी सारहीन बात हुई। ऐसा कहनेपर कि जो धर्मीरूप ही हैं—वे हैं ६ तो यह बतलावो कि गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय ये क्या धर्मरूप ही हैं ? ये तो केवल धर्म रूप हैं। तब फिर ६ पदार्थ कुछ न रहे, फिर तो एक ही पदार्थ मानो—द्रव्य ही द्रव्य; और गुण, कर्म, सामान्य विशेष, समवाय इनको एक रूप ही मानो। यो ही ६ सख्याका विघात होता है तो यह कहना कि जिसमे षष्टी विभक्ति लगती है वे पदार्थ जुदे-जुदे होते हैं जैसे सेठकी दुकान, तो की लग गयी ना। तो सेठ न्यारी चीज हो गयी और दूकान न्यारी चीज हो गयी। तो का के की प्रत्यय लगा हुआ होता है, इनमे परस्पर भेद होता है, यह कहना युक्त नही है क्योंकि जिनमे भेद नही है उनमे भी का के की षष्टी विभक्ति लगती है। जैसे कहा कि आकाशका भाव आकाशत्व, मनुष्यका भाव मनुष्यत्व। अब यह बतलावो कि आकाशका भाव आकाशत्व, इस प्रयोगमे आकाश और आकाशपना ये क्या भिन्न-भिन्न चीजें हैं ? एक, मगर इनमे विभक्ति लग गयी और तद्धित प्रत्यय भी लग गया त्व, कृत्व, आकाशत्व। तो यह कहना भी अयुक्त है कि भिन्न पदार्थोंमे तद्धितका प्रत्यय लगा करता है, इस कारण षष्ठी विभक्ति और तद्धित प्रत्ययकी उत्पत्ति, ये भेद-प्रतीतिको ही उत्पन्न करे सो बात नही है।

शकाकार द्वारा उपस्थित किये गये तादात्म्य शब्दके अर्थके तीन विकल्पोंका विवरण—अब शकाकार कहता है कि तादात्म्य शब्दका अर्थ क्या है ? जो यह कह रहे हो कि सूतोंका जो समुदाय है ताना, बाना बुनकर, उसका नाम पट है याने पट तन्तुमय है। जब वह पट है तन्तुमय तो मयका क्या अर्थ है ? क्या तादा-

त्म्यका यह अर्थ है कि कपडा ही है आत्मा जिन ततुवोका उन ततुवोके भावका नाम है तादात्म्य, क्या तादात्म्यका यह विग्रह करना चाहिये ? अथवा वे ततु ही हैं आत्मा जिसका ऐसा पटका भाव तादात्म्य कहलाता, यह विग्रह करना चाहिए अथवा ततु और पट है आत्मा जिसके उसके भावका नाम है तादात्म्य ? इन तीन अर्थोंमेसे तादात्म्य शब्दका कौनसा अर्थ मानते हो ? कहते ना, कि कपडा सूतमय है। सूतसे निराला कपडा क्या चीज है ? इन तीन विकल्पोमेसे यदि प्रथम विकल्प कहोगे कि तादात्म्य का अर्थ यह है कि पट ही है स्वरूप जिसका ऐसे ततुवोके भावोका नाम है तादात्म्य, तो इसमे यह आपत्ति आयगी कि जब ततु और कपडा एकमेक हो गए तो ततु अर्थात् सूत तो हैं अनेक और अनेको सूतोमय है कपडा तो कपडा भी अनेक हो जाना चाहिए, अथवा कपडा है एक और तन्मय है तादात्म्य ततुका तो ततु भी सारे एक बन जाने चाहिए। यदि ऐसा नही होता अर्थात् कपड़ा तो रहे एक और सूत रहे अनेक तव उन उनका तादात्म्य नही माना जा सकता है। यदि दूसरा विकल्प लेते हो कि तादात्म्य का यह अर्थ है कि वह ततु है स्वरूप जिसका ऐसा पटके भावको नाम है तादात्म्य तो उसमें भी यह दोष है। या तो पट अनेक होना चाहिए या सूत एक रह जाना चाहिए, उन तीन विकल्पोंमेसे तीसरा विकल्प तो बिल्कुल अयुक्त है। यह कहना कि कपडा और ततु ही जिसका स्वरूप है तो कपडा और सूत इनके अतिरिक्त तीसरी चीज और है ही क्या ? उनसे अतिरिक्त कोई तीसरा पदार्थ नही है। सूत और कपडेको छोडकर और कोई वस्तु नही है, जिसका ततुपट स्वभावत्व कहा जाय। अर्थात् तृतीय वस्तुमे पटका व सूतका स्वभाव है और तन्तु कपडसे विभक्त है। इन तीन विकल्पोमे तादात्म्य शब्दका ठीक अर्थ नही बनता। इस प्रकार शकाकार तादात्म्यके अर्थको बिगाड करके यह सिद्ध कर रहा है कि अवयव अवयवीमें अत्यन्त भेद है। अब इसका समाधान करते हैं।

तादात्म्य शब्दके व्युत्पत्त्यर्थका विवरण—प्रमाणको विषय सामान्य विशेषात्मक पदार्थ है। इसका अर्थ है—पदार्थ सामान्य विशेषमे तादात्म्य रखता हुआ है। तो इस तादात्म्य शब्दके अर्थका शकाकारने तीन विकल्प उठाकर खण्डन करना चाहा था किन्तु उन विकल्पोमे तादात्म्य खण्डित नही होता। पूछा था कि तादात्म्यका यहापर किस तरहसे विग्रह करना चाहिए ? तो सुनो ! तादात्म्य शब्दका विग्रह इस तरहसे देखना चाहिए—तादात्म्य शब्दमे हैं दो शब्द—तत् और आत्मा। तत् मायने वस्तु और आत्म मायने स्वरूप। उस वस्तुकी द्रव्य और पर्याय ये दो आत्मा है। और इन दोनो आत्मावोका जो भाव है उसका नाम है तादात्म्य। अर्थात् भेदाभेदात्मकपना। वस्तुमे जो भेद है वह तो है पर्याय रूपपना और जो अभेद है वह है द्रव्य पर्यायरूपपना। वस्तु भेदाभेदात्मक है। इसका अर्थ है द्रव्य पर्यायस्वभाव है, सो निरख लीजिए। पदार्थ न केवल द्रव्यमात्र निकलेगा और न पर्यायमात्र निकलेगा। द्रव्य पर्यायात्मक समुदायका ही नाम वस्तु है। अब अलग अलगसे अगर पूछा जाय कि द्रव्य

वस्तु है या नही, या पर्याय वस्तु है या नही ? तो अलग अलग पूछनेपर यह उत्तर आगया कि द्रव्य न वस्तु है न अवस्तु है । इसी प्रकार पर्याय न वस्तु है न अवस्तु है, किन्तु वस्तुका एक देश है । पदार्थमें रहने वाला धर्म जो सामान्य है, द्रव्यरूप है वही पूर्ण वस्तु तो नही और विशेषमे रहने वाला जो विशेष धर्म है पर्यायरूप है वह भी तो वस्तु नही वस्तुका पूर्णरूप नहीं, किन्तु ये सब वस्तुके एक देश है । जैसे कि कोई समुद्रकी एक बूंदके बारेमे पूछे कि बतलावो वह बूंद समुद्र है या नही ? तो उत्तर यह होगा कि यह समुद्रका एकदेश अंश है । यह समुद्रका एक घडा प्रमाण जल भी न समुद्र है न असमुद्र है । अगर यह कह दें कि यह समुद्र है तब फिर समुद्रमे डूबें नहावें, जहाज चलायें, तो घडा प्रमाण जलमे जहाज चलाकर देखिये—कैसे चलता है । यदि कहो कि यह समुद्र नही है तो जनने उतने प्रमाण सारे जल हैं, वे समुद्र न रहे तो सारा पानी मिलकर भी समुद्र न कहलायेगा । तो समुद्रका जैसे थोडा जल न समुद्र है न असमुद्र है किन्तु समुद्रका एक देश है इसी प्रकारसे सामान्य न वस्तु है न अवस्तु है, किन्तु वस्तुका एकदेश है, इसी प्रकार विशेष पर्याय, यह भी न वस्तु है, न अवस्तु है, किन्तु वस्तुका एक देश है ।

तादात्म्य शब्दके अर्थका विकल्पोसे अखण्डन—सामान्य विशेष होते हैं दो दो प्रकारके । तिर्यक सामान्य और तिर्यक विशेष ऊर्ध्वता सामान्य और ऊर्ध्वता विशेष जो एक साथ अनेक पदार्थोंमे सदृश धर्म हो वह तो है तिर्यक् सामान्य और तिर्यक् विशेष जो एक साथ अवस्थित पदार्थोंमे विसदृश धर्म हो । ऊर्ध्वता सामान्य एक ही पदार्थमे त्रिकालवर्ती जो सदृशधर्म है वह है ऊर्ध्वता सामान्य । ऊर्ध्वता विशेष एक ही पदार्थमे काल भेदसे जो अवस्थाएँ हु हैं उनमे जो विसदृश धर्म हैं, अवस्थायें हैं वे ऊर्ध्वता विशेष हैं । ये चारो ही वस्तुमे गुम्फित हैं और उन्हीको तादात्म्य माना गया है । तादात्म्यके सम्बन्धमे शकाकारने एक विग्रह करके दोष दिया था कि तादात्म्यका क्या यह अर्थ है पटके उदाहरणमे घटाकर कहा था कि वह पट है आत्मा जिन ततुवोका उनका नाम हैं तादात्म और उसके भावका नाम है तादात्म्य । इस विग्रहमे जो दोष दिया था कि फिर तो वे सारे ततु एक हो जाने चाहिएँ, क्योकि पटके साथ ततुवोका तादात्म्य हो गया—और पट है एक । तो यह दोष भी नही है । अवस्था विशेपकी अपेक्षा देखो तो उन सब ततुवोका एकत्व इष्ट ही है । उन सब ततुवोकी अवस्था है पट रूप । अब उस पट रूपकी ओरसे देखो—जो समस्त ततु एक हैं, एकत्व मे आये है, वे तो इष्ट ही हैं । शकाकारने दूसरा विग्रह करके दोष दिया था—क्या यह विग्रह है कि ततव. आत्मनस्य वे समस्त ततु जिसके आत्मा हैं, किसके पटके, वे तो हुए तादात्म और उसके भावका नाम हुआ तादात्म्य । इस विग्रहमे चूंकि ततु अनेक हैं तो पटमे भी अनेक बन बैठेंगे, यह दोष दिया था शकाकारने, लेकिन यह दोष नही दिया जा सकता । जरा विचार करें कि ततु अनेक हैं इसलिए पटको भी अनेक बनना पडेगा, इसमे पटको अनेक बनना होगा इस अनेकपनेका अर्थ है क्या ?

क्या इस अनेकपनेका अर्थ यह है कि अनेक अवयव रूप बनना ? यदि यह अर्थ मानते हो कि पटको अनेक अवयवरूप बनना पडेगा तो यह तो इष्ट ही है, क्योंकि आतान वितान रूपमे आये हुए जो अनेक ततु हैं वे ही तो कपडेके अवयव हैं और कपडा उन समस्त अवयवोंमे तादात्म्य रूप है, अवयवात्मक है, उन समस्त ततुवोका ही तो पिण्ड पट है, इस कारण अनेकपनेका यदि यह अर्थ किया जाता है कि अनेक अवयवात्मक होना तो यह युक्त बात है। यदि उस पटकी अनेकताका अर्थ यह किया जाय कि प्रत्येक ततु पट कहलायेंगे तो यह बात प्रत्यक्ष विरुद्ध है। प्रत्येक ततुमे परिणाम कहाँ है। समुदित होकर उन ततुवोमें आतान वितान रूप जो परिणाम है वही तो ततुवो में देखा जा रहा है और आतान वितान रूप परिणाममे आये हुए जो ततु हैं वे ही पट की आत्मा है तो इसमे कौन सा विरोध है इससे तादात्म्यका अर्थ ठीक बैठ जाता है। पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है यह अर्थ बिल्कुल युक्त हो गया, इस कारण न केवल सामान्य मानो, न केवल विशेष मानो। है ही नही ऐसा स्वरूप। तो प्रमाणका विषय सामान्य विशेषात्मक पदार्थ है।

भेदाभेदात्मक वस्तुमें संशयादि दोषोकी असिद्धि तथा संशयदोषकी असिद्धिका प्रतिपादन—अब शकाकार कहता है कि ततु और पटमें इसी प्रकार अन्य दृष्टान्तोमे कथञ्चित् भेदाभेदात्मकपना जो माना है वह बात अयुक्त है, क्योंकि भेदाभेदात्मक माननेमे सशयादिक अनेक दोष उपस्थित होते हैं। वे कितने दोष आ जाते हैं ? कथञ्चित् भेदाभेदात्मककी मान्यता करनेमे ? सशय, विरोध वैयधिकरण उभय, सकर, व्यतिकर, अनवस्था, अभाव। ये सारे दोष उपस्थित होते हैं। जैसे कि वस्तुको माना कथञ्चित् भेदरूप कथञ्चित् अभेदरूप, तो यहा यह सशय हो जाता है है कि भला किस रूपसे तो इतमें भेद है ततु और पटमे और किस तरहसे अभेद है ? कथञ्चित् भेदाभेद शब्द सुनकर यह सशय हो जाता है, क्योंकि भेदाभेदात्मकपना माननेपर किसी असाधारण आकारका निश्चय नही कर सकते तो फिर बात है क्या, भेद है या अभेद ? ऊहापोहमें उपयोग भ्रमानेका नाम तो सशय है। समाधानमे कहते हैं कि वस्तुको भेदाभेदात्मक माननेपर सशयादिक कोई दोष नही लग सकता, जिनपर क्रमसे विचार करके निर्णय कर लीजिये। देखो ! भेद और अभेदकी अप्रतीतिमे सशय हो सकता है, पर भेद और अभेद जहाँ जाने जा रहे हैं वहा सशयका काम क्या ? देखो ! कुछ अधेरे-उजेलेमे घूमने जो चले तो थोडी दूर खडा हुआ ठूठ दीखा। अब उसमें जो सशय बन गया कि यह ठूठ है या पुरुष है ? तो यह सशय तो तभी बना जब ठूठ और पुरुषमे प्रतीति नही हो रही। न ठूठ समझा जा रहा, न पुरुष तो दोनोमें अप्रतीति होनेरूप ही सशय हो रहा है, तो यों ही न भेद समझा जा रहा हो, न अभेद समझा जा रहा हो, दोनोंकी अप्रतीति बने तब तो सशय कहलायेगा, मगर वस्तुमे जब भेदकी प्रतीति हो रही है और अभेदकी भी प्रतीति हो रही है तो फिर सशयका कहां स्थान रहा ? जैसे कि ठूठ भी जाननेमें आ रहा हो और पुरुष भी

जाननेमे आ रहा हो तो उसके संशय फिर रहा कहाँ ? चलित प्रतीतिका ही तो नाम संशय है। पुरुष है या ठूठ ? ऐसी प्रतीति हो तो संशय है। इसी तरह वस्तुमे यदि ऐसी चलित प्रतीति बने कि भेद है या अभेद ? कुछ समझमे नही आ रहा तब तो संशयका रूप बना, पर जहाँ वस्तुमे दोनो बातें समझमे आ रही —लो यह है भेद, लो यह है अभेद, तब वहाँ संशयका क्या काम ? देखो ! जब पदार्थको हम द्रव्यदृष्टिसे देखते हैं तो अभेद नजर आता है। तो द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षा अभेद है। जब पर्यायदृष्टिसे निरखते हैं तो वहाँ भेद समझमे आता है, तो पर्यायदृष्टिसे भेद है। जैसे कोई किसी पुरुषके बारेमे कहे कि यह पिता भी है और पुत्र भी है तो दोनो बातें जब समझ मे आ रही हैं कि अमुकका पिता है अमुकका पुत्र है। ये दोनो बातें यही हैं, तो दोनो की जब प्रतीति बन रही है तो संशय तो नही कहा जा सकता। हाँ यदि अप्रतीति हो जाय —यह पिता है या पुत्र ? तो संशय कहलाया ! तो यो ही जब वस्तुमे भेद और और अभेद दोनोकी बराबर प्रतीति हो रही है तो संशयका क्या अवकाश ?

भेदाभेदात्मक वस्तुमे, भेद और अभेदमें विरोधदोषकी असिद्धि— अब शंकाकार कहता है कि वस्तुको भेदाभेदात्मक माननेमे विरोध आ रहा है, क्योकि जहाँ अभेद है वहाँ भेदका विरोध है जहाँ भेद है वहाँ अभेदका विरोध है। अभेद है तो भेद कैसा ? भेद है तो अभेद कैसा ? जैसे शीत और उष्ण स्पर्श ! यदि कहीं शीतस्पर्श है तो उष्ण तो नही होता। जहाँ उष्ण स्पर्श है वहाँ शीत स्पर्श तो नही होता। इसी प्रकार वस्तुमे यदि भेद है तो अभेद नही हो सकता, यदि अभेद है तो भेद नही हो सकता, इस कारण वस्तु भेदाभेदात्मक नही है। और जब भेदाभेदात्मक नही है वस्तु तो वह सामान्यविशेषात्मक भी नही है। अब इसके समाधानमे कहते हैं कि वस्तुमे भेद और अभेद इन दोनोका विरोध नही है, क्योकि द्रव्य और पर्यायकी अपेक्षासे भेद और अभेद विवक्षित है। जैसे कि विवक्षाके अनुसार सत्त्व और असत्त्व दोनोका एक वस्तुमे विरोध नही है। वस्तु अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नही है। तो देखो ! वस्तुमे अस्तित्व और नास्तित्व दोनो ही हो गए ना ! जब हम वस्तुके स्वरूपकी अपेक्षा करते हैं तब उसमे सत्त्व प्रतीत होता है। जब हम परवस्तुकी अपेक्षा करते हैं तो उस अपेक्षासे वस्तुमे नास्तित्व हो गया। तो जैसे विवक्षित सत्त्व और असत्त्वका एक पदार्थमे विरोध नही है इसी प्रकार विवक्षित भेद और अभेदका एक पदार्थमे विरोध नही है और भेदाभेदात्मक रूपसे पदार्थकी प्रतीति भी हो रही है। जो बात प्रतीतिमे आ रही है उसका विरोध कैसे कहा जायगा ? क्योकि विरोध तो अनुपलम्भ साध्य है, अर्थात् न पाया जाय तो समझ लेना चाहिये कि विरोध है, पर भेद भी पाया जा रहा है वस्तुमे, अभेद भी पाया जा रहा है। त्रिकाल अन्वयरूपसे रहने वाला सामान्य तत्त्व भी पाया जा रहा है और प्रतिक्षण भिन्न भिन्न रूपसे रहने वाले विशेष तत्त्व पाये जा रहे हैं तो विरोध कैसे ? जैसे कि वस्तुका सर्वथा सद्भाव होना स्वरूप नही है। क्या घटका सर्व अपेक्षाओसे सत्व है ? यदि घड़ा घट आदिककी

अपेक्षासे भी सत् है, तब घटका सत्व क्या ? यों ही वस्तुका सर्वथा अभाव होना भी स्वरूप नहीं है। यदि वस्तुका सब प्रकारसे सद्भाव होना स्वरूप बन जाय तो अपने स्वरूपसे जैसे सत् है उसी प्रकार पररूपसे भी वह सत् बन बैठेगा। इसी तरह वस्तुमें सर्वथा अभाव भी नहीं है। यदि वस्तुमें सर्वथा नास्तित्व मान लिया जाय तो जैसे पररूपसे नास्तित्व है, इसी प्रकार स्वरूपसे भी नास्तित्व आ जायगा। तो जैसे सत्व और असत्व ये सर्वथा नहीं है, अपेक्षाधीन है, यों भेद अभेद भी अपेक्षासे है। यदि वस्तुमें सर्वथा भेद मान लिया जाय तो वह भेद, वह विशेष कैसे अन्वयमें रह सकता है ? भेदका भी अभाव हो जायगा। यदि वस्तुमें सर्वथा अभेद मान लिया जाय तो वस्तुका कोई व्यक्त रूप ही न बन सकेगा। तो अभेद भी दृष्टिसे ओझल हो जायगा। इस कारण वस्तु कथंचित् भेदाभेदात्मक है। जो भेद स्वरूप है वह तो है विशेषत्व, और जो अभेद स्वरूप है वह है सामान्य तत्व। तो यों पदार्थ सामान्यविशेषात्मक है, और ऐसा ही पदार्थ प्रमाणका विषयभूत होता है।

अपेक्षणीय भेदके निमित्तसे भिन्न-भिन्न धर्मोंकी एक वस्तुमें अबाध प्रतीति—पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है। सामान्य तो द्रव्यरूप और अभेदरूप है, विशेष पर्यायरूप और भेदरूप है। सो चाहे पदार्थको सामान्य विशेषात्मक कहो, द्रव्य पर्यायात्मक कहो, आशय प्रायः एक है। इस प्रसङ्गमें शंकाकार यह आपत्ति बता रहा था कि वस्तुको भेदाभेदात्मक माननेसे तो विरोध आयगा। जो भेद है वह अभेदस्वरूप कैसा, जो अभेद है, वह भेदस्वरूप कैसा ? तो उसका उत्तर चल रहा है कि जैसे जो अभेद है वह भेदस्वरूप कैसा ? तो उसका उत्तर चल रहा है कि जैसे भाव और अभावका सत्व और असत्वका एक वस्तुमें विरोध नहीं है क्योंकि उनकी अपेक्षायें न्यारी-न्यारी हैं। जैसे कि स्वरूपसे सत्व होना, पररूपसे असत्व होना इसी तरहसे भेद और अभेदका भी एक वस्तुमें विरोध नहीं है। द्रव्यदृष्टिसे अभेद होना, पर्यायदृष्टि से भेद होना उसमें ये दो अपेक्षायें हैं। यहाँ शंकाकार कहता है कि ये दो बातें पृथक पृथक नहीं हैं। स्वरूपसे होनेका नाम ही पररूपसे न होना है। और, पररूपसे न होने का नाम ही स्वरूपसे होना है। कोई दो बातें नहीं हैं—सत्व और असत्व जिसको एक पदार्थमें समावेश बनाकर विरोधका अभाव अथवा अभेद सिद्ध कर रहे हो। उत्तर देते हैं कि स्वरूपसे होनेका ही नाम पररूपसे अभाव हो सो बात नहीं पररूपसे अभाव होनेका ही नाम स्वरूपसे भाव हो सो बात नहीं, क्योंकि इसमें अपेक्षणीय निमित्तसे भेद है। यदि यही अर्थ होता स्वतं तो अपेक्षा और दृष्टि लगानेकी जरूरत क्या थी ? देखो ! स्वद्रव्यादिक निमित्तकी अपेक्षा करके तो सत्वका ज्ञान उत्पन्न करता है पदार्थ और परद्रव्यादिककी अपेक्षा करके अभेद प्रत्ययका ज्ञान किया जाता है। जैसे कि एकत्व और द्वित्व ये दो संख्यायें हैं। एकत्व तो अपनी अपेक्षासे माना गया है और द्वित्व परकी अपेक्षासे माना गया है। जब तक अन्य चीज न हो तब तक द्वित्व तो नहीं कहा जा सकता। तो जैसे स्व अपेक्षासे एकत्व है उसी तरह परकी अपेक्षासे द्वित्व

है, यो ही सत्व और असत्वमे भी भेद है । स्वकी अपेक्षासे सत्व है और परकी अपेक्षा से असत्व है । तो अपेक्षणीय निमित्तका भेद होनेसे अभाव और भावको एकरूप नही कह सकते वे दो आशय हैं, दो धर्म हैं और उनका एक वस्तुमे अविरोध रूपसे रहना बन रहा है । कही ऐसा नही है कि एक द्रव्यमे अन्य द्रव्यकी अपेक्षा करके प्रकट हुई द्वित्व आदिक सख्या रखने वाली एकत्वकी सख्यासे अन्य न प्रतीति होती हो अर्थात् द्वित्व और त्रित्व आदिक जो अनेक सख्यायें हैं वे द्रव्यान्तरकी अपेक्षासे ही बनती हैं । एकत्वमे द्रव्यान्तरकी अपेक्षा नही होती और न ऐसा ही है कि वह एकत्व द्वित्वादिक सख्या सख्यावानसे अत्यन्त भिन्न ही रहती हो । अगर सख्या सख्यावान पदार्थसे अलग ही रहती हो तो पदार्थमे असख्येयता बन बैठेगी क्योकि पदार्थोंमे तो सख्याका कोई विचार या सम्बन्ध ही नही रहा । सख्या पदार्थोंसे भिन्न मान ली गई । यदि कहो कि सख्याके समवायसे सखेयपना आ जायगा—ये पदार्थ दो हैं, चार हैं, गिनने योग्य है, ऐसा जो सखेयपना है वह सख्याके सम्बन्धसे है । कहते हैं कि यह भी बात भली नही जच रही है, क्योकि समवाय कथञ्चित् तादात्म्यको छोडकर अन्य कुछ भी नही है । इससे यह सिद्ध हुआ कि अपेक्षणीय निमित्तके भेदसे एकत्व द्वित्व आदि सख्याकी तरह सत्व असत्वमे भेद है और इसी तरह भेद और अभेद ये भी दो धर्म न्यारे-न्यारे स्वरूपक हैं । और इनका भी एक वस्तुमे समावेश है । भिन्न-भिन्न सत्व असत्वका एक वस्तुमे बराबर ज्ञान हो रहा है ना, तो कैसे विरोध है ? देखो ! स्पष्ट बोध हो रहा है चौकी चौकी है, चौकीके सिवाय अन्य सारे पदार्थ नही हैं । तो सत्व और असत्व दोनोंका ज्ञान अपेक्षणीय निमित्तके भेदसे बराबर चल रहा है । इसी तरह द्रव्यत्व और पर्यायत्वकी अपेक्षासे अभेद और भेदका भी प्रत्यय हो रहा है, उसका विरोध नही है अर्थात् पदार्थ सामान्यविशेषात्मक है, द्रव्यपर्यायात्मक है, भेदाभेदात्मक है इन दोनो धर्मोंका विरोध नही है

सामान्य और विशेषके एक पदार्थमे रहनेका अविरोध—शकाकार कहता है कि वस्तु सामान्य विशेषात्मक है' वस्तुमे भेद और अभेद दोनो अविरोध रूप से रहते हैं यह तो मिथ्या प्रतीति हो रही है । उत्तर देते हैं कि यह बात असगत है, क्योकि इसमे कोई बाधक है ही नही । स्पष्ट प्रत्यक्षसे जान रहे, युक्ति अनुमानसे भी समझ रहे, भेद और अभेदसे एक वस्तुमे बराबर समावेश है । शकाकार कहता है कि विरोध तो बाधक है । भेद और अभेद जो एक दूसरेके निषेधात्मक हैं, बिल्कुल विरुद्ध हैं तो यह विरोध बाधक है । उत्तर देते हैं कि यह बात युक्त नही । इसमें इतरेतराश्रय दोष आता है । जब विरोध सिद्ध होने लगे तब तो इस ज्ञानके बाधित होनेसे मिथ्यात्व की सिद्धि हो और जब ज्ञानमे मिथ्या पनकी सिद्धि हो तब विरोधकी सिद्धि हो । तो देखिये—विरोध नाम है किसका ? विरोधका निश्चय बनता कैसे है ? सम्पूर्ण कारण वाला कोई एक पदार्थ हो रहा है । जैसे कि ठड वातावरण है, वहाँ पर ठढा हो रही है तब द्वितीय चीज आ जाय अर्थात् कोई उष्ण वस्तु आ जाय तो ठडका अभाव हो

आता है। इससे समझा गया है कि शीत स्पर्शमें और उष्ण स्पर्शमें विरोध है परन्तु यहाँ ऐसा नहीं देखा जा रहा कि भेदके सन्निधान होनेपर अभेदका अभाव हो जाय अथवा अभेदके सन्निधान होनेपर भेदका अभाव हो जाय यह बात यहाँ नहीं देखी जा रही, अर्थात् पदार्थमें द्रव्यत्व होनेपर भी पर्यायत्व बराबर चल रहा है। पर्यायत्व होने पर भी द्रव्यत्व भी बराबर बन रहा है। वहाँ तो कुछ भी विरोध नहीं।

सामान्य विशेषमें सहानवस्थानरूप विरोधका अभाव—यदि भेद अभेद में सामान्य विशेषमें विरोध ही मानते हो तो यह बतलावो कि किस प्रकारका विरोध है भेद और अभेदमें सामान्य और विशेषमें ? क्या एक साथ न रह सकना इस तरह का विरोध है इन दोनोंमें या एक दूसरेको हटाकर ही रह सके ऐसे स्वभावका होना इस प्रकारका विरोध है या वध्य-घातक रूप विरोध है याने एक दूसरेको मार डाले, दूसरा मर जाय, इस प्रकारका विरोध है। इन तीन प्रकारके विरोधोंसे अतिरिक्त और तो कोई विरोधका लक्षण होता नहीं है। तो भेद अभेदमें सामान्य विशेषमें किस प्रकारका विरोध है ? एक साथ न रह सके इस प्रकारका विरोध तो इसमें है नहीं। क्योंकि ये भेद और अभेद यद्यपि एक दूसरेके स्वरूपसे विपरीत हैं। ये अपने आपमें अपना-अपना स्वरूप रख रहे हैं, किन्तु एक ही आधारमें भेद अभेद दोनों ही एक दूसरे को हटाये बिना अविरोध रूपसे प्रतिभास मान हो रहे हैं जैसे कि सत्त्व और असत्त्व, ये दोनों बातें एक वस्तुमें एक साथ प्रतिभासमान हो रही हैं, और वहाँ यह बात नहीं है कि सत्त्व असत्त्वको हटा दे और असत्त्व सत्त्वको हटा दे। दोनों ही रहते हैं। इसी प्रकार द्रव्य पर्याय अथवा सामान्य विशेष या भेद अभेद ये परस्पर एक दूसरेको अलग किए बिना एक पदार्थमें अविरुद्ध रूपसे रह रहे हैं, यद्यपि इनका स्वरूप एक दूसरेसे विपरीत है पर अपेक्षणीय निमित्तके भेदसे ये दोनों भिन्न स्वरूप वाले होकर भी एक पदार्थमें रह रहे हैं, इस कारण सहानवस्थानरूप विरोध तो इसमें कहा नहीं जा सकता।

विद्यमानोंमें ही परस्पर परिहार स्थिति हो सकनेसे एक पदार्थमें सामान्य विशेष धर्मके होनेका अविरोध—यदि कहो कि इसमें परस्पर परिहार स्थितिरूप विरोध है सो इसकी भी बात सुनो। परस्पर परिहार स्थिति रूप विरोध उनमें ही हो सकता है जो एक साथ रहते हों। जैसे एक आम फलमें रूप, रस ये दोनों रहते कि नहीं रहते ? रहते और रसका परिहार करता हुआ रहता है, याने रूपका स्वरूप रसस्वरूप तो नहीं बन जाता, रसका स्वरूप रूप स्वरूप तो नहीं बन जाता। तो परस्पर परिहार करके रह रहे हैं दोनों और बराबर एक पदार्थमें रहते हैं, तो परस्पर परिहार स्थिति रूप विरोध तो विद्यमानोंमें हुआ करता है, अविद्यमान पदार्थोंमें नहीं हुआ करता। जैसे गधेका सींग और घोड़ेका सींग इन दोनोंमें क्या कोई विरोध होता है ? विरोधकी कोई बात ही नहीं है। परस्पर परिहार क्या करे ? वह स्वयं

असत् है, अथवा दोमें एक हो असत् तो उनमे भी परस्पर परिहार स्थिति रूप विरोध नहीं चल सकता। तो जैसे एक ही आम फलमे रूप और रस परस्पर परिहार स्थिति रूपमे रह रहे हैं और उनका एक अधिकरण बराबर बन रहा है इसी तरह सामान्य विशेपका भेद अभेदका भी एक पदार्थमे रहना बनता है और स्वरूप दृष्टिसे वे दोनो परस्पर परिहार स्थिति रूपसे रहते हैं।

धर्म और धर्मीमे परस्पर परिहार स्थिति रूप विरोध असंभव होनेसे एक पदार्थमे अनेक धर्मोकी अविरोध रूपसे वृत्ति—अच्छा अब यह बतलावो कि यह विरोध जो परस्पर परिहारस्थिति रूप कह रहे हो—क्या दो धर्मोंमे बता रहे हो या धर्म और धर्मीमे परस्पर बता रहे हो अर्थात् क्या तुम्हारा यह आशय है कि दो धर्मोंमे परस्पर परिहारस्थिति रूप विरोध है या तुम्हारा यह मतलब है कि धर्म और धर्मीमे, गुण और गुणीमे परस्पर परिहार स्थिति रूप विरोध है। यदि कहो कि धर्म धर्मोंमे है विरोध कि वे परस्पर एक दूसरेका परिहार करते हुए ही रह सकते हैं। उत्तर देते हैं कि यह बात तो युक्त ही है। धर्मोंका तो यह लक्षण है कि दूसरे का परिहार करके रहा करें अर्थात् कोई सा भी धर्म दूसरे धर्मके स्वरूपको अगीकार नही करता। अन्यथा वह धर्म ही क्या रहेगा ? तो यह धर्मोंका लक्षण ही है कि वह दूसरेका परिहार करके हुए अपने स्वरूपको बनाये रहे, मगर उन सब धर्मोंका एक ही धर्मीमे रहना रहे इसमे कोई विरोध नही है। जैसे एक आमफलमे रूप, रस, गध, स्पर्श चारो धर्म रह रहे है और ये चारों धर्म परस्पर एक अन्य तीनके स्वरूपको अगीकार नही करते और फिर भी एक फलमे रह रहे हैं तो इसी तरह सामान्य विशेष भेद अभेद ये यद्यपि परस्पर एक दूसरेके स्वरूपका परिहार करके ही रह सकते हैं, लेकिन इसका ऐकाधिकरण बराबर है याने वे एक अधिकरणमे रह सकते है। इसमे किसी प्रकारका विरोध नही है। यों धर्मोंमें विरोधकी बात कहते हैं तो यह कोई समस्याकी बात नही है। यदि कहो कि धर्म और धर्मीमे विरोध है तो यह बात अयुक्त है, क्योंकि धर्म और धर्मीमे विरोध हो जाय। ज्ञान और आत्मामे विरोध हो जाय। रूप और पुद्गलमे विरोध हो जाय तो धर्मीमे धर्मकी प्रतीति ही न होगी। पर ऐसा तो नही है। बराबर धर्मीका ज्ञान हो रहा है और उसमे धर्मोंका निर्बाध प्रतिभास हो रहा है। इससे धर्म धर्मीका परस्पर परिहारस्थिति रूप भी विरोध नही कह सकते।

सामान्यविशेषमे वध्यघातकरूप विरोधका अभाव—भेद अभेदके विरोधमे शकाकारस पुरुष्य तीसरा जो विकल्प है कि भेद अभेदमे वध्य घातक भावरूप विरोध होगा, तो देखो! वध्य घातक भावरूप विरोध होता है—बलवान और निर्बलमे जैसे सर्प और नेवला। कभी सर्प बलवान है तो नेवला वध्य हो जाता है, कभी नेवला बलवान है तो सर्प वध्य हो जाता है, तो बलिष्ठ और निर्बलोंमे वध्य घातक भावरूप विरोध जाना गया है। मगर सत्व और असत्वमे कौन तो बलवान है और

कौन दुर्बल है ? उनमें बध्य-घातक भावरूप विरोध नहीं है। सत्व असत्वमे बध्यपना घातकपना नहीं है। अच्छा बतलावो ! एक पदार्थमे सामान्य विशेष रहता है, तो उनमे कौन बलवान है और कौन दुर्बल है ? दोनो ही समान बलवान हैं, इस कारण सामान्य विशेषमे भेद अभेदमे भी परस्पर बध्य घातक भावरूप विरोध नहीं है, क्योंकि भेद अभेद अथवा सत्व असत्व, अपना सामान्य विशेष, नित्यत्व अनित्यत्व, द्रव्यत्व पर्यायत्व आदि सब धर्म अपनी अपनी अपेक्षामे पूर्ण समान बलवान हैं।

सर्वथा अथवा कथंचित् विरोधके विकल्पोका प्रकरण करके एक वस्तुमे धर्मोके अविरोधकी सिद्धि—भेद और अभेदमे किसी भी प्रकारका विरोध सिद्ध नहीं हो सकता, अर्थात् न सहानवस्थारूप दोष है, न परस्पर परिहारस्थितिरूप विरोध है, न बध्य घातकरूप विरोध है। कदाचित् थोड़ी देरको स्वीकार भी कर लिया जाय कि किसी भी प्रकारका विरोध है भेद और अभेदमे तो भी यह बतलावो कि भेद और अभेदमे सर्वथा विरोध है या कथंचित् ? - सर्वथा विरोध तो कह नहीं सकते। सर्वथा विरोध तो तुम्हारे दिये गए दृष्टान्तमे भी न मिलेगा। शंकाकारका दृष्टान्त है शीतस्पर्श और उष्णस्पर्श। इन दोनोमे परस्पर सर्वथा विरोध नहीं है, क्योंकि शीतस्पर्श भी सत् है, उष्णस्पर्श भी सत् है। तो सत्व धर्मसे दोनोंमें समानता है अर्थात् सत्वकी दृष्टिसे शीत और उष्णमें विरोध नहीं रहा। और, एक आधारकी अपेक्षा भी देखो, तो एक धूपदहनमें किसी जगह शीतस्पर्श है और किसी जगह उष्णस्पर्श है तभी तो धूपदहन उठाकर इधरसे उधर रख देते हैं। यदि यह कहो कि गर्म और ठंडे प्रदेशोमे भेद है अर्थात् धूपदहनमे हैं बहुतसे अवयव, सो उसमे कोई हिस्सा ठण्डा है और कोई गर्म। एक ही तो ठण्डा और गर्म न बन सका। उत्तर देते हैं कि भले ही हो प्रदेशमे भेद, लेकिन धूपदहन जो एक पिण्ड है उस एककी अपेक्षा तो भेद नहीं है। वह एक धूपदहन देखो ! कहीं ठण्डा है और कहीं गर्म है। यह तो कह ही नहीं सकते कि एक धूपदहन ठण्डा है तो ठण्डा ही है गर्म है तो वह गर्म ही है। कहीं शीत है कहीं उष्ण, दोनों धर्मोका आधार है यह धूपदहन ! इसका निषेध तो कर नहीं सकते, क्योंकि निषेधमे प्रत्यक्ष विरोध है। हाथसे उठाकर, छूकर देख लिया, एक ही धूपदहन कहीं शीत मिलेगा तो कहीं उष्ण मिलेगा। एक जगहसे उठाकर दूसरी जगह रखते हैं ही जब चाहे, सो इसमे सर्वथा विरोध नहीं है। और कथंचित् विरोधकी बात कहोगे तो यह विरोध सर्वत्र समान हो जायगा याने इस तरहका विरोध तो अत्यन्त भिन्न-भिन्न पदार्थोंमे भी दिखा सकते हैं जैसे घट और पट। घटमें जो आकार है उसका पटमे अभाव है, तो क्या विरोध हो गया ? अथवा स्वरूपकी दृष्टिसे विरोध कहे तो वह इष्ट ही है। भेदका जो स्वरूप बुद्धिमे आता है वही अभेदका स्वरूप नहीं है, अभेदका का जो स्वरूप बुद्धिमे आता है वही भेदका स्वरूप नहीं है, सो स्वरूप जुदा है, इसका खण्डन नहीं किया जा रहा है, किन्तु अपना-अपना लक्षण रखकर भी भेद और अभेद धर्म एक ही पदार्थमे रह रहे हैं, यह कहा जा रहा है।

विरोधकी भावोसे भिन्नता व अभिन्नताके विकल्पोंकी मीमांसा करके एक वस्तुमे धर्मोंके अविरोधकी सिद्धि—अच्छा, अब और भी बताओ कि विरोध रहा भावोंके साथ, तो वह विरोध उन भावोसे भिन्न है या अभिन्न है ? जैसे भेद और अभेदमें विरोध बता रहे तो बतावो उस भेद व अभेदसे विरोध न्यारी चीज है या उन ही रूप है जिन भावोसे विरोध बता रहे हो ? जैसे सामान्य और विशेषमे विरोध कह रहे हो तो वह विरोध सामान्य विशेषसे भिन्न है या अभिन्न ? यदि कहो कि अभिन्न है तो विरोध करने वाला रह ही न सका । जो पदार्थसे अभिन्न है वह क्या पदार्थका विरोध कर सकता है ? जैसे पदार्थोंसे स्वरुप अभिन्न है तो पदार्थोंका स्वरुप पदार्थका विरोधक बन जायगा क्या ? तो यहा विरोधको भी पदार्थोसे अभिन्न मान लिया । जब विरुद्ध पदार्थोंसे अभिन्न मान लिया तो फिर विरोधक हो नही सकता और अभिन्न होनेपर भी अगर विरोधक मान लेते हो तो जैसे भावका विरोधक विरोधको कह रहे हो तो हम यह कह बैठेंगे कि विरोधका विरोधक भाव है । जब भाव और विरोध दोनो एक स्वरुप हो गए तो उनमेसे विरोधको भावका विरोधक कहे और भावको विरोधका विरोधक न कहे, यह विभाग कैसे बन सकता है ? यदि कहो कि विरोध भावोसे भिन्न है तो वह भी विरोधक नही है, क्योकि विरोध तो भिन्न हो गया, अनात्मभूत हो गया । तो जैसे अन्य-अन्य पदार्थ एक दूसरेके विरोधक नही होते हैं इसी प्रकार विरोध भी भावोका विरोधक न होगा । जैसे घटका पट विरोधी तो नहो । एक जगह एक घरमे एक कमरेमे घट और पट दोनो रह सकते है । घटपर कपडा ढाक भी देते हैं, घटमे छन्ना रख देते हैं, क्योकि भिन्न हैं, भिन्न विरोधक कैसे होगा ? इस तरह भावोसे भिन्न मान लिया विरोधको तो विरोधभावका विरोध नही कर सकते ।

भावोका विशेषण बनाकर विरोध सिद्ध करनेकी अशक्यता—यदि कहो कि विरोध यद्यपि भावोसे भिन्न है तो भी भावका विरोधक है, क्योकि भावोका विशेषण बन गया विरोध । जैसे सामान्य विशेषका विरोध । तो सामान्य विशेष तो हो गए विशेष्य और विरोध हो गया विशेषण । जैसे इस मनुष्यकी कमीज—तो मनुष्य तो हो गया विशेष्य और कमीज हो गयी विशेषण, तारीफ करने वाली, लेकिन सामान्य विशेषका घडा यो तो कोई नही कहत', क्योकि घडा उसका विशेषण नही या जिसका जो विशेषण नही वह विरोधक नही, मगर विरोध ता भावोका विशेषण है इस कारण विरोध भावोका विरोधक बन जायगा, अन्य भाव न बनेंगे, क्योकि भावान्तर विशेषण नही बनता । इसका समाधान करते हैं कि यह बात यो युक्त नही कि विरोध होता है तुच्छरूप अभाव । विरोध मायने क्या ? क्या विरोधके अग हैं, कि अवयव है, कि सत्त्व है, कि सकल सूरत है । विरोध तो तुच्छाभाव रूप हुआ करता । और तुच्छा भावरूप विरोध यदि भावोका विशेषण बन जाय तो भावोका लोप हो जायगा । जैसे शीत और उष्ण पदार्थोंका विरोध है यो कहा । अब विरोध है शीत उष्ण पदार्थका

विशेपण और विरोध है तुच्छाभावरूप, तो अभाव जिसका विशेपण है सो जैसा अभाव है वैसा ही भाव हो पडेगा। तो जैसे अभाव न देखनेकी बात है इसी तरह वे पदार्थ भी न दीखेंगे, क्योंकि विरोधका याने अभावका उन शीत और उष्ण पदार्थोंमें सम्बन्ध है। शीत और उष्ण द्रव्यके वे विशेपण हैं। यदि कहो, कि भावसे विरोधका, अभाव का सम्बन्ध नही है फिर भी वह विशेपण बन जाता है। जैसे शीत उष्णका विरोध। इस विरोधी अभावका शीत उष्णसे सम्बन्ध नही है फिर भी विशेपण बन गया है। जैसे कहते हैं ना कि यह विरोध है शीत उष्णका, यह विरोध है सामान्य विशेपका। अब इसका उत्तर देते हैं कि विरोधका भावसे सम्बन्ध न होनेपर भी विशेपण मान लोगे तो बडी विडम्बनायें हो जायेंगी। जो चाहे विरोध हो, जिस चाहेका विरोध बन बैठे, क्योंकि बिना सम्बन्धके ही जब विरोध विशेपण बनने लगा तो जैसे कहा शीत उष्णका विरोध। अब उस विरोधका भी शीत उष्णके साथ सम्बन्ध है नही तो विरोध है पुरुप और मकानका, यो विरोधको ज ो चाहे चमक दिया जाय।

विरोधको अन्यतर पदार्थका विशेपण बताकर विरोध सिद्ध करनेकी अशक्यता —अब शङ्काकार कहता है कि विरोध विशेपण तो है पर उन दो पदार्थोंमे से एकका विशेपण बनता है याने विरोध दोनोका विशेपण नही। जैसे कि कहनेमे भी आता कि शीतका विरोधी उष्ण है तो विरोध एकमे रहा ताकि वह उसके साथ न रह सके तो उन दो पदार्थोंमेसे किसी एक पदार्थका विशेपण माना ज गया ऐसी शका की गई है। अब उसका उत्तर देते हैं कि इसमे भी यही दूपण आता है कि विरोध जिसका विशेपण हो उसका अदर्शन हो जायगा। शीत और उष्णमेसे यदि विरोध शीतका विशेपण है तो शीत खतम, फिर विरोध किसमे दिखाते हो ? और जिसका भी विशेपण दिया जाय वही विरोधी रहा, परस्पर विरोध तो न रहा। एक पदार्थमे विरोध नही हुआ करता है, विरोध तो द्विष्ठ होता है अर्थात् दो पदार्थोंमे रहा करता है। यदि विरोध दो पदार्थोंमें न रहे, एकमे ही रह जाय तो सभी पदार्थोंमे सदा ही विरोधका प्रसङ्ग आ जायगा, कोई चीज ही न रह सकेगी। जैसे कि सत्ताके सबध से सद्रूप कहलाता ना पदार्थ, तो अब विरोध तो एकमें ही रहने लगा। सत् भी विशेपण है तो वह भी विरोधरूप हो गया। यदि न सत्व रहेगा, न रुपादिक स्वभाव रहेंगे तो फिर कुछ भी न रहा। जब विरोध एक पदार्थमे ही रहने लगा तो सकल शून्य हो जायगा।

विरोध्यविरोधकभाव सम्बन्धकी अपेक्षासे उभय विशेषण कहकर विरोधको सिद्ध करनेकी अशक्यता—अब शङ्काकार कहता है कि विरुध्यमानपना और विरोधपना इनकी अपेक्षासे कर्म और कर्तामें रहने वाला विरोध है अर्थात् विरो- धक होना, विरोधी बनना, यह तो हुआ कर्तारूप और विरुध्यमानपना रहना यह हुआ कर्मरूप। जैसे कि शीत जगहमें उष्ण पदार्थ लाया गया तो उष्ण तो हुआ विरोधक

और शीत हुआ विरुध्यमानपना और विरोधकपना इनकी अपेक्षासे कर्म और कर्तामें रहने वाला विरोध बन गया और विरोध सामान्यकी अपेक्षासे दोनोका विशेषण भी बन गया। इससे वह विरोध द्विष्ठ बन गया। देखो! अब दोमे रहने लगा, पर दोमे इस तरहसे रहने लगा कि एकमे विरोधकत्वरूपसे और एकमे विरुध्यमानत्वरूपसे। यदि समानतासे दोनोमे विरोध मानते होते तो दोनोका अभाव होता, पर यहा माना जा रहा है कर्म कर्तामे रहने वाला विरोध, तो उससे भावका अभाव न हो पायगा। हा एकका अभाव हो गया। तो विरुध्यमानपना और विरोधपना इसकी अपेक्षासे रहने वाला विरोध है। अब इस शङ्काका उत्तर देते हैं कि यदि विरोध्य और विरोधक भाव इस सम्बन्धकी अपेक्षासे विरोध माना है तो रूपादिकमे भी द्विष्ठताकी आपत्ति हो जायगी, क्योकि रूपसामान्य भी द्विष्ठ है, दोमे रहने वाला है। इस समय शकाकार यह कह रहा था तो विरोध अभावरूप तो नही है, पर गुणरुप है। तो यदि विरोध गुणरुप हो गया और गुणरुप होकर दोनोमे रहने लगा तो गुण तो रुपादिक भी है। जो गुण होता है वह दोनोमे रहता है। तो रुप भी द्विष्ठ हो जायगा, दोमें रहने वाला हो जायगा पर ऐसा हो जाय तो पदार्थोंमे सकरता आ जायगी। कोई पदार्थ न रहेगा। यदि कहो कि विरोध अभावरुप है तो फिर सामान्य और विशेषपने का अभाव नही बन सकता क्योकि विरोध अभावरुप है और अभावका कोई प्रभाव नही होता। यदि कहो कि अभाव गुणरुप है तो यह बात यो नही बनती कि गुणमे विशेषणपना नही माना। निर्गुणा गुणा. गुण गुण रहित होते हैं। अब सामान्य विशेष तो खुद गुण है, खुद धर्म है, भेद अभेद तो खुद धर्म है फिर उनमे विरोध नामका एक गुण कहाँ से आ जायगा? तो इस तरह सामान्य विशेषमे किसी भी प्रकारका विरोध सिद्ध नही होता।

प्रमेयके सामान्य विशेषात्मकत्वकी प्रमाण सिद्धता—सामान्य विशेष तो एक वस्तुके धर्म हैं, स्वतन्त्र हैं। उन धर्मोंमे परस्पर स्वरूप नही जा रहा, यह बात तो है, अर्थात् सामान्यका जो स्वरूप है वह विशेषमे नही घटित होता है, विशेषका जो स्वरूप है वह सामान्यमे नही घटित होतापर सामान्यविशेष एक पदार्थमे रहे इसमे कोई विरोध नही। जैसे कि आत्मामे ज्ञान दर्शन आनन्द आदिक अनेक गुण हैं तो इन गुणोका जो परस्परमे विरोध है अर्थात् एक गुणका जो स्वरूप है वह अन्य गुणमे नही बनता। ज्ञानका स्वरूप ज्ञानमे ही है, दर्शन आनन्द आदिकमे नही है। आनन्द का स्वरूप आनन्दमे ही है, अन्य गुणमे नही हैं, तो परस्पर परिहारस्थिति रूप विरोध गुणोका परस्परमे तो होता है अन्यथा गुणका अभाव हो जायगा। यदि परस्पर परिहार स्थिति गुण धर्ममें न हो तो सब एक बन गए। एक बननेके मायने सबका अभाव हो गया। सो गुणोमे तो धर्मोमे तो परस्पर परिहारस्थिति रूप विरोध है। ज्ञान ज्ञान ही है, दर्शन, दर्शन ही है, आनन्द आनन्द ही है, एक गुण दूसरे गुण स्वरूप न बन जायगा, लेकिन उन सब गुणोका अभिन्न आधार आत्मा है। आत्मा उन सब गुणोमे

तादात्म्य रूपसे है इसमे कोई विरोध नही। इसी तरह सामान्य विशेष इनका स्वरूप न्यारा न्यारा है। सामान्य सदृश धर्मकी अपेक्षासे हैं, विशेष विसदृश धर्मकी अपेक्षासे है। तो यो सामान्य और विशेषमे स्वरूपसे तो विरोध हुआ, अर्थात् स्वरूप एक नहीं है। न रहा स्वरूप एक। यह तो गुण ही है। यदि स्वरूप एक हो जाता तो न सामान्य कुछ था, न विशेष कुछ था। सो यह तो इष्ट सिद्धिकी बात है, लेकिन सामान्य और विशेष दोनो एक ही पदार्थमे तादात्म्य रूपसे रहे, इसमें किसी भी प्रकारका विरोध नही है। और, तभी सभी पदार्थ सामान्य विशेषात्मक कहे गए हैं, न केवल सामान्य रूप कोई पदार्थ है और न केवल विशेषरूप कोई पदार्थ है। सामान्य विशेषात्मक पदार्थ है। जैसे- कि स्पष्ट ज्ञात भी होता है कि द्रव्य रूपसे पदार्थ हैं, सदाकाल रहता है, पर्यायरूपसे पदार्थ देखा तो क्षण-क्षणमें नया-नया होता है। तो ये दोनो धर्म एक पदार्थमे रहे उसमे कोई विरोध तो न रहा। तो सामान्य विशेषका कोई विरोध नही है। एक पदार्थमे तादात्म्यरूपसे रहते, इस कारण यह बात अविरुद्ध है कि पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होता है और सामान्य विशेषात्मक ही पदार्थ प्रमाण का विषयभूत होता है।

विरोधको पदार्थ विशेष माननेपर विरोधका विरोध्योके साथ सम्बन्ध की मीमासमे तीन विकल्पोका उत्थापन—शकाकार कहता है कि द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय इन ६ पदार्थोसे भिन्न कोई विरोध नामका पदार्थ विशेष है जो अनेकमे रहता है, और विरोध्य विरोधकज्ञान विशेषसे प्रसिद्ध होता है। वस्तु सामान्य विशेषात्मक है ऐसे स्याद्वादवादियोके कथनपर शकाकारने यह आपत्ति दी कि सामान्यका स्वरूप और है विशेषका स्वरूप और है सो इनमे विरोध है। जहाँ सामान्य है वहाँ विशेष नही रह सकता, जहाँ विशेष है वहा सामान्य नही रह सकता उस विरोधके सम्बन्धमे चर्चा चल रही हैं कि विरोध है नही। भले ही सामान्य के स्वरूपमे विशेषका स्वरूप नही है विशेषके स्वरूपमे सामान्यका स्वरूप नही है किन्तु सामान्य और विशेष दोनो एक साथ पदार्थमे रहे, इसमें कोई विरोध नही। उसकी चर्चा बढते-बढ़ते यहाँ तक आलोचना हुई कि विरोध तो एकमे नही होता, अनेकमे होता है। तो उन अनेकोमे विरोध किस तरह रहे ? भेद रूपसे, अभेद रूपसे। यह सब बात जब न बनी तो शकाकारने यह कहा कि विशेषण रूपसे रहता है। अर्थात् सामान्य विशेषका विरोध है बस षष्ठी विभक्ति लगनेसे विशेषण बन गया, इसका भी निर्णय हो गया कि विशेषण रूपसे विरोधका समर्थन नही बन सकता। उसपर यह शका शकाकार कर रहा है कि ६ पदार्थोसे भिन्न कोई विरोध नामक पदार्थ विशेष है जो अनेकमे रहता है। इसपर समाधान करते हुए पूछा जा रहा है कि यह बतलावो कि ऐसा विरोध जो द्रव्योका विशेषण बनता है सामान्य विशेषका विरोध, तो यो विरोध तो हुआ विशेषण और सामान्य विशेष हुआ विशेष्य तो उनका यह 'विरोध विशेषण सामान्य विशेषरूप विशेष्यसे असम्बद्ध होकर विशेषण है या सम्बद्ध होकर ?

विरोध जिनमे होता है उनसे यह विरोध असम्बद्ध रहकर ही विशेषण बनता या सम्बद्ध होकर ? यदि कहोगे कि असम्बद्ध होकर ही विशेषण बनता है तो इसमे तो बडी विडम्बनायें बन जायेगी ? जिस चाहे चीजको जिस किसी चीजका विशेषण कह दें, क्योकि अब सम्बन्धके बिना भी विशेषण होना मान लिया है, पर एसी प्रतीति तो नही । दडादिकका सम्बन्ध न हो और फिर कहे कि यह अमुक बूढेका डंडा है, ऐसा तो नही देखा जाता । सम्बन्ध हुए बिना विशेषणका भान किसीने नही किया । पुरुष के द्वारा असम्बद्ध हो दड और फिर वह पुरुपका विशेषण कहलाये ऐसा तो कभी नही देखा गया है । तो यह विरोध भी अगर सामान्य व विशेषसे सम्बद्ध नही है तो सामान्य विशेषका यह विरोध है वह विरोध विशेषण है यह कैसे बन सकेगा ? यदि कहो कि विरोधका सम्बन्ध है, सामान्य विशेषके साथ जिन जिनका विरोध है उनके साथ विरोधका सम्बन्ध होता है तो वह कौन सा सम्बन्ध है ? क्या सयोग सम्बन्ध है अथवा समवाय सम्बन्ध या विशेषण भावरूप सम्बन्ध है किस सम्बन्धसे वह पदार्थ विरोधको लगा देता है ?

विरोधका विरोध्योंसे सयोग, समवाय व विशेषण भावरूप तीनो सम्बन्धोकी असम्भवता - सयोग सम्बन्धसे तो विरोधको विरोध्य सामान्य व विशेषका विशेषण कह नही सकते, क्योकि सयोग तो द्रव्य नही है । द्रव्य द्रव्यमे सयोग सम्बन्ध माना है । द्रव्य और गुणमे समवाय सम्बन्ध है । द्रव्य कर्ममे समवाय सम्बन्ध है । जो द्रव्य द्रव्य हो उनमे सयोग सबध होता है । तो विरोध तो द्रव्य है नही, सो वह सयोगका आश्रय नही बन सकता । यदि कहो कि विरोध पदार्थोंमे समवाय सम्बन्धसे सम्बद्ध हो जायगा तो समवायी पदार्थ तो द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष है । ५ प्रकारके पदार्थोंको छोडकर अन्य कोई समवायी है ही नही । विरोधका पदार्थोंके साथ समवाय कैसे हो जायगा ? यदि कहो कि विशेषण भावरूप सम्बन्धसे विरोधका सम्बन्ध पदार्थोंमे हो जायगा । जैसे कहते हैं ठढ और गर्मीका विरोध है । तो विशेषण बन गया ना, इस रूपमे पदार्थोंमे सम्बन्ध हो जायगा । उत्तरमे कहते हैं कि अन्य सम्बन्धोमे जब तक सम्बन्ध वस्तुमे न बन जाय तब तक विशेषण भाव भी असम्भव है । विशेषण भावका सम्बन्ध हम तब लगाते हैं जब हम और सम्बन्धसे उसका सम्बन्ध जान पाते हैं । जैसे नील कमल है, तो कमलके नीलपनका हम विशेषण सम्बन्ध तब लगा पाते हैं जब हम उस कमलमे खुद देख लेते हैं कि कमलमे नीलका तादात्म्य सम्बन्ध हो रहा, समवाय सम्बन्ध हो रहा या जिस किसीका जो सम्बन्ध हो तो अन्य सम्बन्धसे जब हम सम्बन्ध जान लें तब हम इस विशेषण भावका सम्बन्ध लगा सकेंगे, अन्यथा अर्थात् सम्बन्धान्तरसे सम्बन्ध न हो वस्तुमे और फिर भी विशेषण मान लिया जाय तो जैसे जिस दण्डके साथ पुरुषका कभी सयोग न हो, न जिसे कभी पास रखते, उसे भी विशेषण मानना पडेगा । जगतमे अनन्त पदार्थ पडे हैं, क्या वे हमसे चिपके हैं ? चिपके तो नही हैं, पर सारी दुनियाको विशेषण बना दिया

जायगा फिर तो सयोग आदि सबधोकी कल्पना करनेका परिश्रम व्यर्थ है तथा शकाकारने जो यह कहा था कि विरोध विरोध्यविरोधक प्रत्ययसे जान लिया जाता है। हा, सो जान तो लिया, विरोध्यविरोधक ज्ञानसे समझ तो लिया कि इन पदार्थोंका विरोध है लेकिन उस ज्ञान विशेषने एक विशिष्ट वस्तुधर्मका आलम्बन किया। विरोध नामका कोई सत्तावान पदार्थ है और उसका पदार्थोंमे सम्बन्ध है इसका ज्ञान थोडे ही किया विरोध्य विरोधक प्रत्ययने। यह विरोध्य है, यह विरोधक है ऐसा जानकर कोई धर्म ही समझा है, पदार्थ नही समझा। तो विरोधनामक कोई पदार्थ नही है। तब विचार करनेपर विरोधकी कोई सिद्धि नही होगी, इस कारण सामान्य और विशेषमे विरोध घटित नही होता।

पदार्थोंकी सामान्यविशेषात्मकतामे वैयधिकरण दोषका भी अभाव – अब शकाकार कहता है कि पदार्थ सामान्यविशेषात्मक यो नही हो सकते कि सामान्य तो है अभेदरूप, उसका तो स्वभाव है एकत्वका और विशेष है भेदरूप उसका स्वभाव है अनेकत्वका, तो एकत्व स्वभाव वाले अभेदका आधार तो होगा अन्य कुछ और अनेकत्व स्वभाव वाले भेदका आधार बनेगा और पदार्थ, याने एकाधिकरणने एक ही पदार्थमे एकत्व स्वभाव वाला अभेद भी रह जाय और अनेकत्व स्वभाव वाला भेद भी रह जाय यह नही हो सकता। उसका स्वभाव भेद है तो उसका आधार भी सयोग न्यारा होगा। जैसे–जलका स्वभाव शीतलता है, अग्निका स्वभाव गर्मी है तो ये दोनो एक आधारमे तो नही है। भिन्न–भिन्न आधारमे हैं। तो सामान्य धर्म तो अभेद रूप है और विशेष धर्म भेद रूप है तो विरुद्ध धर्मोंका ऐकाधिकरण्य नही बन सकता। यो इसमे एक वैयधिकरण नामका दोष आता है। समाधानमे कहते हैं कि जहाँ निर्बाधरूपसे भेद और अभेद प्रतिभासमे आ रहे हो और एक ही पदार्थमे, तब फिर उसका विरोध करना बिल्कुल अविवेक है। अनेक पदार्थोंको देखकर उसमे हमे सदृश धर्मरूप सामान्यका भी बोध होता है, जैसे–गाय–गाय सब समान हैं और गाय भैंसोको निरख कर विसदृश धर्मरूपका बोध होता है, यह उनसे विलक्षण है। तो जैसे–प्रत्यक्ष समझमे आ रहा कि देखो–इस पदार्थमे सदृशता भी है, विसदृशता भी है, फिर उनका विरोध कैसे मान लिया जाय? अथवा एक ही पदार्थमे अन्वय भी पाया जा रहा तीनों काल एक असाधारण स्वभाव साधारणतया बराबर सब पर्यायोंमे चला जा रहा है और क्षण–क्षणमे नवीन नवीन अवस्थायें भी हैं तो भेद और अभेद दोनो एक आधारमे रह गए कि नही? उनका विरोध कैसे माना जाय? निर्बाध ज्ञानमे भेद और अभेदका सत्त्व और असत्त्वका एक आधार रूपसे बराबर ज्ञान हो रहा है इस कारण पदार्थ सामान्य विशेषात्मक हैं इस कथनमे वैयधिकरण दोष नही आता।

पदार्थोंकी सामान्य विशेषात्मकतामे उभय दोषका भी अभाव—अब शकाकार कहता है कि देखो जो एकान्तसे एकात्मक है उसमे तो अनेक स्वभावपना व

आ सकेगा और जो एकान्तसे अनेकान्तात्मक है उसमे एक स्वभावपना न आयगा । तो जिस किसी दार्शनिकने जब यों निरखना चाहा कि यह एकान्तसे एकात्मकता मान रहा है तो उसमे दोष देते हैं कि फिर तो इसमे एक स्वभावता नही आ सकती, और कोई एकान्त सो अनेकात्मक माने पदार्थको तो उसे दोष देते हैं कि फिर उसमे एक स्वभावपनेकी बात कभी न आ सकेगी । लेकिन ये दोनो दोष तो तुम्हारे इस सामान्य विशेषात्मक पदार्थके माननेमे आ रहे । देखो—सामान्यात्मक है पदार्थ तो उसमे विशेपत्व तो आ ही नही सकता । विशेषात्मक है पदार्थ तो उसमे सामान्यपना आ ही नही सकता तो उभय दोष हो गया । उत्तर देते हैं कि इसमे उभय दोषकी कुछ भी बात नही है । जैसे दुनियामे चोर पुरुष भी रहते हैं और अचोर भी रहते हैं चोर तो अचोर से भिन्न जाति स्वरूप है उनका अलग, रहते है एक दुनियामे, तो यो ही सामान्य और विशेष स्वरूप इनका भिन्न है, सामान्यसे विशेष अलग स्वरूप रखता है, विशेष सामान्यसे अलग स्वरूप रखता है और एक पदार्थ उनका आधार है तो इसमे विरोध क्या है ? हैं दोनो, और एक पदार्थमे रह रहे हैं । यदि इस भेद और अभेदको परस्पर निरपेक्ष रखकर एकत्व मानें तब तो दोष दे सकते हैं अर्थात् सामान्य स्वतन्त्र धर्म हो, विशेष स्वतन्त्र धर्म हो, ऐसा दोनोको अति स्वतन्त्र मानकर फिर इसमे एकत्व कराये तो तब तो दोष दे सकते हैं पर अन्योन्य निरपेक्ष होकर इनमे एकता नही है । फिर कैसा है ? द्रव्य तो पर्यायकी अपेक्षा रखकर रह रहा है, पर्याय द्रव्यकी अपेक्षा रखकर रह रहा है जैसे घट और पट दोनो अलग-अलग स्वतन्त्र स्वतन्त्र रह रहे हैं इस तरह द्रव्य और पर्याय स्वतन्त्र स्वतन्त्र नही रहते । पर्यायको साथ लेकर ही द्रव्य रह सकते है, द्रव्यत्वको साथ लेकर ही पर्याय रह सकती है । और इस तरह परस्पर अपेक्षासे उनकी प्रतीति भी होती है । इस कारण पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है ऐसा माननेमे उभय दोष नही आता ।

पदार्थोंकी सामान्यविशेषात्मकतामे सकरव्यतिरेक दोषका भी अभाव

अब शङ्काकार कहता है कि देखो ! पदार्थको सामान्य विशेषात्मक माना अर्थात् एकानेक स्वभाववाला माना, तो देखो ! जिस स्वभावसे एकस्वभावता है पदार्थमे उसी स्वभावसे अनेक स्वभावपना भी आ बैठेगा । यदि एक पदार्थमे सामान्य और विशेष मानते हो तो जिस स्वभावसे उसमे सामान्यपना है उस ही स्वभावमे उसमे विशेषपना आ बैठेगा तथा जिस स्वभावसे विशेषपना है उस ही स्वभावसे सामान्यपना आ जायेगा, तो सकर दोष आ जायगा । सकरके मायने जिस चाहेको जहाँ चाहे फिट करदे । समस्त धर्म एक साथ आ जायें, समस्त स्वभाव एक साथ पदार्थमे लग बैठें उसको कहते है सकर । और न केवल सकर दोष ही नही, व्यतिकर दोष भी आ जाता है, पदार्थको सामान्यविशेषात्मक माननेपर । यह किस तरहसे ? कि जिस स्वभावसे एकत्व है उसी स्वभावसे अनेकत्व लग बैठा पदार्थमें और जिस स्वभावसे पदार्थमे अनेकत्व है उसी स्वभावसे पदार्थमे एकत्व आ जायगा । परस्पर एक दूसरे विषयमें पहुँच जाने

का नाम व्यतिकर है। तो सामान्यविशेषात्मक माननेसे संकर और व्यतिकर दोनो दोष आते है। समाधान करते हैं कि पदार्थको सामान्यविशेषात्मक माननेमे न संकर दोष आता, न व्यतिकर। क्योंकि पदार्थमें स्वरूपसे ही सामान्य और विशेषकी प्रतीति हो रही है। और फिर पदार्थ एक स्वभाव भी है अनेक स्वभाव भी है। द्रव्य दृष्टिसे पर्याय दृष्टिमें पदार्थ अनेक स्वभाव है। तो पदार्थ ही जब सामान्य विशेषात्मक प्रतीति में आ रहा तो उसमें संकर और व्यतिकर दोष बताना व्यर्थ है।

पदार्थोंकी सामान्य विशेषात्मकतामे अनवस्था दोषका भी अभाव—अब शंकाकार कहता है कि पदार्थको सामान्य-विशेषात्मक माननेपर अनवस्था दोष आ गया। जिस रूपसे भेद है (विशेषसे भायने भेद) उस रूपसे कथंचित् भेद है और जिस रूपसे अभेद है उस रूपसे भी कथंचित् अभेद है। तब भेदको सिद्ध करनेके लिए अन्य भेद बताने होंगे और अभेदको सिद्ध करनेके लिए फिर अन्य अभेद बताने होंगे क्योंकि यहाँ उत्तरोत्तर भेद या अभेद धर्म मानसे पूर्व पूर्वके भेद अभेद धर्मी बनते जावेंगे और नये नये भेद अभेदोंका विराम ही नहीं हो सकेगा। उत्तर देते हैं कि पदार्थको भेदाभेदात्मक माननेपर अनवस्था दोष नही आ सकता। क्योंकि अनेक रूप तो धर्मी हुआ करते हैं। धर्म अनेक रूप नही हुआ करता। जो धर्म है वह एक रूप है, जैसे आत्मामें ज्ञान दर्शन आनन्द आदिक धर्म है तो प्रत्येक धर्म अपने अपने एक स्वभावको लिए हुए हैं, किन्तु उन सब धर्मोंका समुदायरूप जो एक द्रव्य है वह तो अनेक धर्मी है। पदार्थ अनेक धर्मी होते हैं, उसमे अनेक रूप होते हैं। परन्तु धर्मोंका अनेक रूपत्व कभी नही होता। तो वस्तुका जो अभेद है वह तो धर्मी ही रहता है। और वस्तुका जो भेद है वह धर्म ही रहता है इस कारणसे अनवस्था दोष नही आता।

पदार्थोंकी सामान्यविशेषात्मकतामे अभाव दोषका भी अभाव—शंकाकार कहता है कि सामान्य विशेषका अथवा भेदाभेदका स्पष्ट परिज्ञान किसीको नही है और संशयादिक दोष भी इसमे प्रतीत हो जाते हैं इस कारण इनका अभाव है। समाधानमे कहते हैं कि कोई विश्लेषण कर सके या न कर सके किन्तु सभी प्राणि-योंको पदार्थ अनेकान्तात्मक ही अनुभवमे आ रहे हैं और पदार्थ अनेकान्तात्मक हो, सामान्य विशेषात्मक हो तब ही उनका अनुभवमे आ सकना सम्भव है। देखो ना, प्रत्-यक्षसे भी सामान्य विशेषात्मक दृष्टिमे आ रहा, गाय गायकी दृष्टिसे सब गायें सामा-न्य रूप हैं, गाय भैंसोके मुकाबलेमे विसदृशता आ गयी अथवा किसी एक मनुष्यत्वकी अपेक्षा सारी उमर भर भी मनुष्य समझमे आ रहा और उसके बचपन जवानी आदिक की अपेक्षासे विशेष समझमे आ रहा है। भेदाभेदता द्रव्यपर्यायरूपता ये सभी प्रमाण सिद्ध हैं इस कारण अभाव दोषका कहना तो बिल्कुल ही अयुक्त है। पदार्थ अनेकान्ता-त्मक है, सामान्य विशेषात्मक है।

आत्माके नित्य एकरूप होनेसे सर्व पदार्थोंकी अनेकांतात्मकताके खण्डनकी आशका—अब शकाकार कहता है कि सभी पदार्थ अनेकान्तात्मक हैं, यह बात नही कही जा सकती है क्योंकि देखो ना—आत्मा नित्यएकरूप है। यह आत्मा जो शरीर इन्द्रिय, बुद्धि इनमे न्यारा है, इच्छा आदिक गुणोंका आश्रयभूत है, उस आत्मा मे जब नित्यत्व और एक रूपत्व बराबर प्रसिद्ध हो रहा है, फिर यह कैसे कह दिया कि सभी पदार्थ अनेकान्तात्मक होते हैं ? कोई यदि ऐसा कहे कि आत्मा अगर नित्य और एकरूप मान लिया जाय तब फिर उसमे कर्तृत्व, भोक्तृत्व, जन्म, मरण, जीवन, हिंसकत्व आदिक कुछ भी व्यपदेश नही किए जा सकते, क्योंकि आत्मा नित्य एक रूप है। जब उसमे परिणमन ही नही तो फिर कर्ता भोक्ता कैसे कहा जा सकता है किसी को ? वह भी शका कोई न करे। शकाकार कहता जा रहा है कि इनका अर्थ तो पहिले समझ लो। कर्तृत्वका अर्थ है ज्ञान, चिकीर्षा (करनेकी इच्छा) एव प्रयत्न इनका समवाय होना, आत्माके साथ सम्बन्ध होना इसका नाम है कर्तृत्व। आत्मा तो अपरिणामी नित्य एक रूप है, पर ज्ञान चिकीर्षा प्रयत्नका आत्माके साथ समवाय सम्बन्ध होता है, बस इस ही का नाम कर्तृत्व है। और सुखादिक सम्वेदनका आत्मा के साथ समवाय होना इसका नाम भोक्तृत्व है। सुख दुःखादिकका ज्ञान हो रहा, उन ज्ञानोंका आत्माके साथ समवाय सम्बन्ध बनना, उसका नाम भोक्तृत्व है। और अपूर्व नये—नये शरीर इन्द्रिय बुद्धि आदिकसे सम्बन्ध बनना आत्माके साथ इसका सम्बन्ध होना, इसका नाम है जन्म, और शरीर इन्द्रिय बुद्धि आदिकसे वियोग होना इसका नाम है मरण। सो देखते जावो कि आत्मा नित्य एक रूप भी रहता है और जो ये सारे काम हो रहे हैं ये आत्माके काम नही हैं। आत्मासे इनका सम्बन्ध मात्र है। काम तो जिस विधिसे हो रेहे सो हो रहे हैं देखो ना—जीवन भी किसका नाम है ? सशरीर आत्माका धर्म अधर्मकी अपेक्षा रखते हुए जो मनके साथ सम्बन्ध हो रहा, इस ही का नाम जिन्दगी है और शरीर नेत्रादिकका वध होनेसे हिंसकपना है। शरीर और इन्द्रियका वध हो गया इससे हिंसकपना आता है। कही आत्माके वध होनेसे हिंसकपना नही आता। आत्मा तो नित्य एक रूप ही है। कार्यका आश्रय और कर्ता इनका वध होनेसे हिंसा कहलाया करती है कार्याश्रय है शरीर क्योंकि सुख दुःखादिक जितने भी कार्य है उनका आश्रय बनता है शरीर और कर्ता कहलाती हैं इन्द्रियां क्यो कि पदार्थोंकी उपलब्धिके करने वाली ये इन्द्रिया हैं। इन्द्रियाँ ही पदार्थोंको जानती हैं। तो इन इन्द्रियोंका वध होनेसे और कार्याश्रय शरीरका वध होनेसे हिंसा कहलाया करती है। तो ये सारी बातें भी बन गयी और आत्मा देखो ना नित्त एक रूप ही बन गया। तो जब आत्मा नित्य है, एक रूप है तो कैसे कह दिया कि जगतमे सभी पदार्थ अनेकान्तात्मक हैं।

आत्माकी सर्वथा नित्यैकरूपता असम्भव होनेसे पदार्थोंके अनेकाता-त्मकताकी सिद्धि—अब इस शकाका समाधान करते हैं कि आत्माको नित्य एकरूप

जो तुमने कहा तो यह सब बिना विचारे ही कहा है, उसपर यदि विचार करोगे तो समझ जाओगे कि आत्मा भी अनेकान्तात्मक है नित्य एकरूप एकान्तत नही है। देखो ! यदि आत्मा अपने पूर्वरूपका सवथा परित्याग न करे, किसी भी दृष्टिसे पूर्वरूप का परित्याग उसमे न समझा जाय तो आत्माके साथ ज्ञानादिक गुणोका समवाय ही नही सम्भव हो सकता। यदि अपना पूवरूप जरा भी छोडे बिना ज्ञानादिक गुणोका समवाय मान लिया जाय तो आकाशके फूलमे या गधेके सीगमे भी ज्ञानका समवाय करके दिखा दीजिये ! क्योंकि अब तो पूर्वरूपका परित्यागके ही बिना ज्ञानादिकका समवाय मानने लगे। और, जब ज्ञानादिकका समवाय अपरित्यक्त पूवरूप आत्मामे सम्भव नही है तब फिर समवायकी दृष्टिसे कह देना पडेगा कि आत्माके साथ सुख सम्वेदनका समवाय होना तो उस समयका भोक्तृत्व है और फिर बादमें हुआ दु ख सम्वेदनके साथ समवाय तो यह उत्तर समयका भोक्तृत्व है । और, तब कहना ही पडेगा कि देखो ! पहिले आत्मा सुख सम्वेदनमें समवाय सम्बन्ध वाला बन रहा था, अब वह न रहकर आत्मा दु ख सम्वेदनक समवाय वाला बन रहा है। कुछ भी पूर्वरूप परित्याग न हो तो समवाय सम्बन्ध भी नही बन सकता और यदि कहो कि पूर्वरूपका परित्याग हो जाता है, तब अनेकान्तात्मक कैसे सिद्ध न होगा ? यही तो अनेकान्तात्मकता है कि पूवरूपका तो हो व्यय और उत्तरपर्यायका हो उत्पाद और दोनो अवस्थाओमे रहता हुआ वह पदार्थ रहे, तो उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक बन गया ना, बन यही तो अनेकान्तात्मक है। इस आत्माकी अनेकान्तात्मकता स्वसम्वेदन प्रत्यक्षसे भी सिद्ध हो रहा है। देखो यह पर्यायकी अपेक्षासे तो आत्मा व्यावृत्तात्मक है अर्थात् उस पर्यायसे देखो यह अलग है। अब इस पर्यायसे भी देखो अलग है। इस तरह भिन्न–भिन्न पना होना यह भी ध्यानमे आ रहा है ना और चैतन्यकी अपेक्षासे देखा आत्माको तो अनुगमात्मक प्रतीतिमे आ रहा। वही वही हैं ना आत्मा चैतन्य स्वरूप जो पहिले था सो ही स्वरूप अब है। तो पर्यायकी अपेक्षा तो इसमे व्यावृत्ति पायी जाती है और चेतन की अपेक्षा इसमे अनुवृत्ति पायी जाती है। सबके स्पष्ट प्रतीत हो रहा है। अभी आत्मा मे सुख हो फिर दु ख आ गया। फिर शान्ति आयी फिर चिन्ता हुई आदिक स्वरूप की अपेक्षासे तो आत्मामें व्यावृत्ति है और आत्मामे वहीं चैतन्यस्वरूप जो पहिले था सो अब भी है। वही द्रव्यत्व सत्त्व आदिक स्वरूप जो पहिले था सो अब भी है। तो व्यावृत्तिसे भी युक्त और अनुगमसे भी युक्त आत्मा है यह बात प्रत्यक्षसे ही प्रसिद्ध है।

प्रमाणप्रतिपन्न वस्तुस्वरूपमे अनुवृत्तव्यावृत्त स्वरूपके विरोधका अनवकाश—शकाकार कहता है कि अनुवृत्तका स्वरूप है और कुछ व्यावृत्तका स्वरूप है और कुछ। सब भिन्न स्वरूप हैं, अनुवृत्त तो सदृश धर्मसे बनता है, व्यावृत्त विसदृश धर्मसे बनता है तो ऐसे भिन्न–भिन्न स्वरूप वाल इस अनुवृत्ति और व्यावृत्तिमे जब परस्पर विरोध है तो फिर आत्माको अनुवृत्ति व्यावृत्त्यात्मकता कहना कहाँ तक युक्त है। अर्थात् सामान्यविशेषात्मक कह देना कहाँ तक सही है ? अनुवृत्ति सामान्यसे

व्यावृत्ति विशेषसे बनी । तो इन दोनो मे विरोध है. अतः आत्माको सामान्य विशेषात्मक नही कहा जा सकता । उत्तर देते हैं कि यह कहना भी तुम्हारा असत्य है प्रमाण से जानी गयी वस्तुके स्वरूपमे विरोधका अवकाश नही होता । देखो एक सर्पने अपने शरीर की कुण्डली बना लिया । अर्थात् गोल गोल बनकर बैठ गया फिर उस कुण्डली को खतम कर दिया लम्बा होकर चल दिया तो उस सर्पमे जो दो अवस्थायें आयी कुण्डली की और अकुण्डली की उन दोनो अवस्थाओंकी अपेक्षा देखो तो व्यावृत्ति रही कि नही । पहिले कुण्डल अवस्थामे था अब अकुण्डल अवस्थामे है , पर इस व्यावृत्ति के होनेपर भी क्या सर्प अन्य-अन्य हो गया ? वह तो अनुमात्मक ही रहा । अथवा जैसे अगुली टेढी किया पीछे सीधी किया तो टेढी और सीधी स्वभाव कि अपेक्षासे तो उसमे व्यावृत्ति पायी जा रही । जो सीधी है सो टेढी नही जो टेढी है सो सीधी नही किन्तु इतने मात्रसे क्या वह भिन्न-भिन्न पदार्थ बन गया ? वह तो वही है । पहिले टेढी अवस्थामे थी अब सीधी अवस्थामे आई, तो यो ही आत्माका भी परिज्ञान हो रहा कि सुख दु खादिक स्वरूपकी अपेक्षासे तो इसमें व्यावृत्ति प्रतीत होती है, जो पर्याय सुखमयतामे था सो दुःखमयतामे न रहा, पर इतने मात्रसे चैतन्यस्वरूप आत्मा भी क्या भिन्न भिन्न पदार्थ बन गया ? वह तो वही एक है । तो यो आत्मवस्तुमें अनेकान्तात्मकता बराबर प्रसिद्ध है ।

सुखदु खादिक अवस्थाओंकी आत्मासे अत्यन्त भिन्नताकी असिद्धि— अब शकाकार कहता है,कि सुखदुःख आदिक अवस्थायें हैं वे आत्मासे अत्यन्त जुदी हैं, तो सुख दु ख आदिकमे अगर व्यावृत्ति चलती है. अभी सुख था, अब न रहा, अब दु ख आ गया । अब दु खकी भी व्यावृत्ति हो गई तो यो सुखदु खादिकमे व्यावृत्ति बनो रहो, पर आत्मासे जब ये सुखदु ख आदिक अवस्थायें अत्यन्त भिन्न हैं तो सुखदु ख आदिकको व्यावृत्तियोसे आत्मामे क्या आ गया जिससे आत्माको भी तुम व्यावृत्तात्मक कर रहे हो ? उत्तर देते हैं कि यह कहना तुम्हारा यो अयुक्त है कि सुखदु.ख आदिक परिणतियां होती हैं और विलीन होती हैं । नवीन परिणतिया होती हैं । तो सुखदु खादिक जब आत्मासे अत्यन्त भिन्न हैं ही नही तो कैसे न यह माना जा सकेगा कि आत्मा अभी सुखी था सो अब दु.खी होगया, तो व्यावृत्ति आ गई । शकाकार कहता है कि आत्मा और सुखदु.खादिक अवस्थायें इनमे तो स्वरूपभेद हैं, ये भिन्न कैसे न हुए ? यदि आकारभेद होनेपर भी अर्थात् स्वरूपभेद होनेपर भी आत्मा और सुख आदिकको एक मान लिया जाय, नाना न समझा जाय तो घट और पट इनको भी एक मान लो । जब आकारभेद होनेपर भी, स्वरूपभेद होनेपर भी आत्मा और सुख आदिकको एक मान लिया तब तो भीट पहाड आदिक सारी दुनिया के पदार्थोंको एक ही मान लो ! हैं तो नही वे एक घट पट आदिक, क्योंकि उनमे आकारभेद है, स्वरूपभेद भी है । तो इसी तरह आत्मा और सुख आदिक अवस्थायें, इनमें स्वरूपभेद है । इस कारण ये एक नही हो सकते, ये भिन्न ही है । उत्तर देते हैं

कि तुम्हारी बात बिना विचारे तो बडी सुन्दर लगती है पर विचार करनेपर इसमें शोभा नही जचती। क्योंकि आत्मामे जैसा पूर्वपर्याय और उत्तर पर्याय ज्ञानमें तादात्म्य है, स्वरूप है, इस तरहके तादात्म्यरूपसे घटमें पट प्रमाणसे कहा प्रतीत हो रहा है? देखो! पूर्वपर्याय ज्ञानके साथ भी आत्माका तादात्म्य है। उत्तर पर्याय ज्ञानके साथ भी है। तो जैसे एक वस्तुमे पूर्वोत्तर क्रियाका तादात्म्य मिल रहा है उस तरह अत्यन्त भिन्न घट पट आदिकमें तो इस तादात्म्यकी प्रतीति नही हो रही, और प्रतीति मान लोगे तो फिर मान लो, स्वरूपभेद होनेपर भी उनमे भी नानापन नही है, पर प्रतीति तो नही है। जैसे—प्रत्यभिज्ञान ज्ञान एक ही है, और उसमे स्मरण और प्रत्यक्ष दो प्रकारके आकार आते हैं। पदार्थ एक ही है और उसमें सामान्य और विशेष दो आकार (धर्म) हैं। संशयज्ञान एक ही है, पर उसमे अनेक कोटियोंका आकार आता है, चित्रज्ञान एक है और उसमें आकार नाना आ रहे हैं तो यो आत्मा एक रहे और उसमें सामान्य विशेषपना रहे, इसमे क्या विरोध है? कुछ भी विरोध नही। अत. निर्विवाद यह सिद्ध हो गया कि प्रत्येक पदार्थ सामान्यविशेषात्मक होते हैं और सामान्यविशेषात्मक पदार्थ ही प्रमाणके विषयभूत होते हैं।

पदार्थको सामान्यविशेषात्मक न मानकर द्रव्यगुण आदिको स्वतन्त्र स्वतन्त्र पदार्थ माननेकी शङ्का—शङ्काकार कहता है कि पदार्थ सामान्यविशेषात्मक होता है यह बात तो जोड-मेलकी की गई है। वास्तवमें तो परस्पर अत्यन्त भिन्न-भिन्न द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष, समवाय नामके ६ ही पदार्थ होते हैं। जिस सामान्य व विशेषसे तादात्म्य मिलाकर पदार्थ बना हो वह सामान्य व विशेष स्वय स्वतन्त्र पदार्थ है। अब इन सब पदार्थोंका क्रमसे वर्णन सुनो! प्रथम पदार्थ है द्रव्य। द्रव्य होते हैं ६ - पृथ्वी, जल अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन। द्रव्य वह कहलाता है जिसमे गुण, कर्म, सामान्य, विशेष मोजूद रहा करते हैं। जो स्वय कोई पदार्थ है स्वतन्त्र, पिण्डरूप, जिसकी अर्थक्रिया होती है, जिसका ग्रहण होता है ऐसा प्रधान पदार्थ द्रव्य नामसे कहा जाता है और वे द्रव्य ९ होते हैं - जिनमेंसे पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये चार द्रव्य तो नित्य भी होते और अनित्य भी होते। पृथ्वी दो प्रकारकी है नित्य और अनित्य। जल दो प्रकारका है—नित्य और अनित्य, अग्नि दो प्रकारका है—नित्य और अनित्य। वायू भी दो प्रकारकी है—नित्य और अनित्य। जो परमाणुरूप हैं पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु वे सब नित्य हैं, क्योंकि परमाणुरूप नित्य पदार्थ अकारण हुआ करता है, वह किसी कारणसे उत्पन्न नही होता। जैसे कि स्कध है वह कारणसे उत्पन्न होता है। अनेक परमाणुवोंका मिलकर स्कध होता है तो स्कध अनित्य हो गए, पर जो परमाणु हैं वे परमाणुरूप द्रव्य तो नित्य ही हैं क्योंकि अकारणवान हैं। हाँ, उन परमाणुवोंसे रचे गये जो द्वयणुक आदि कार्य हैं वे नित्य हैं। तो ऐसे परमाणु पृथ्वीमे होते और जल, अग्नि वायुमे भी होते। वह भी परमाणुवोंका पिण्डरूप है। तो वे सब इस दृष्टिसे नित्य भी हैं और अनित्य

भी हैं। और, आकाश, काल, दिशा आदिक द्रव्य नित्य ही हैं, क्योंकि इनकी उत्पत्ति नही होती। और, इन सभीके न भी ६ द्रव्योमे द्रव्यत्वके सम्बन्धसे द्रव्यरूपता आती है नाम तो है यह द्रव्य पर इसमे द्रव्यत्वका सम्बन्ध होता है उससे यह द्रव्य कहलाता है।

विशेषवादमें द्रव्यत्वसबद्ध द्रव्यका समर्थन—यह शंकाकार वैशेषिक सिद्धान्तवादी है। वैशेषिक सिद्धान्तमे भेदवादका महत्त्व दिया है। जहाँ जानते जानते कुछ भी अन्तर सहित सोलना होवे बस वहाँ मान लिया जाता है कि यह प्रथक् पदार्थ है। जैसे- रूप जाना, रस जाना, गंध, स्पर्श जाना तो ये सब प्रथक् पदार्थ हो गए, पर रूपी भी तो जाने जाते। तो जो भी रूपी जाने गए, जिन्ह रूप जाने गए वे प्रथक् पदार्थ हैं। जिस जिसके ज्ञानमे किसी भी प्रकार रच रच भी अन्तर आये तो वे प्रथक् प्रथक् पदार्थ कहलाते हैं। तो इस वैशेषिकसिद्धान्तकी कुञ्जीसे ये द्रव्य गुण कर्म सामान्य आदिक प्रथक् प्रथक् पदार्थ माने गए हैं। तो शकाकार कह रहा है कि पदार्थ ६ जातिके होते हैं, जिनमे द्रव्य ९ प्रकारके हैं और इन ९ प्रकारके द्रव्योमे असाधारण स्वरूप क्या है जिससे ये भिन्न-भिन्न जाने जाये? इनका असाधारण स्वरूप यह है कि ये इतरका व्यवच्छेद करके रहते हैं। अर्थात् पृथ्वी जल, अग्नि, वायु, आकाश, दिशा, आत्मा, मन ये ९ पदार्थ द्रव्य, गुण, कर्म आदिकको हटाकर रहते हैं अर्थात् उनका स्वरूप और कुछ है, और इनका स्वरूप और कुछ है। पृथ्वी आदिक मन: पर्यन्त समस्त द्रव्य अन्य गुण आदकसे भिन्न रहा करते हैं और उनको किन शब्दोसे कहा जाव। वह क्या चीज है यह स्वय नही बताया जा सकता, किन्तु द्रव्यत्वके सम्बध से उनको द्रव्य है ऐसा व्यवहार करते हैं। जिनमे द्रव्यत्वका सम्बन्ध नही है उनमें द्रव्य है ऐसा व्यवहार नही किया जाता जो द्रव्य नही है जिसमे द्रव्यका व्यवहार नही होता उनमे द्रव्यत्वका सम्बन्ध नही है। जैसे गुण कम सामान्य विशेष, समवाय, इनको कोई द्रव्य नही कहता। पृथ्वी, जल, अग्नि वायु, आकाश, दिशा आत्मा और मन इनको सब लोग द्रव्य कहा करते हैं, तो जिनको लोग द्रव्य शब्दसे कहा करते उनमे द्रव्यत्वका सम्बन्ध है।

द्रव्यके पृथ्वी आदिकके आभ्यन्तर भेदोमे द्रव्यत्वकी व्यवस्था – पृथ्वी आदिक आवान्तर भेदोमे भी यही बात है। पृथ्वीत्वका सम्बन्ध होना पृथ्वीका लक्षण और फिर पृथ्वी द्रव्यजातिके भी अन्दर अन्य द्रव्योसे भिन्न रहा करती है पृथ्वी जल, अग्नि, वायु, आकाश, दिशा, आत्मा और मन इन ८ द्रव्योसे निराला है। इसी प्रकार जल अन्य ८ द्रव्योसे निराला है। तो इसका जो लक्षण है द्रव्यका कि अन्यका व्यवच्छेदक रहना, दूसरेसे हटा हुआ भिन्न रहना यह है पदार्थका लक्षण, इससे जाना जाता है पदार्थ। सो यह लक्षण समष्टिरूपसे और व्यक्तिरूपसे भी द्रव्यमे घटित है। और, फिर जैसे पृथ्वी कहलाती है पृथ्वीत्वके सम्बन्धसे, जल है जलत्वके सम्बन्धसे, इसी प्रकार समस्त पदार्थ अपनी जातिके सम्बन्धसे रहा करते हैं। जो पृथ्वी आदिक ९

द्रव्य बताये गए हैं और उनका लक्षण यह बताया है कि वे गुण कर्मादिक अन्य सब पदार्थोंसे भिन्न रहा करते हैं तो इसी लिए उनमें द्रव्यका व्यवहार होता है तो यहा कोई जानना चाहे कि पृथ्वी आदिकमे भेद और पृथ्वी आदिकका व्यवहार किस कारण से है तो उसका भी कारण यह है कि पृथ्वी अन्य शेष ८ द्रव्योसे भिन्न है और पृथ्वीत्वका उनसे सम्बन्ध है जिससे पृथ्वीका व्यवहार चलता है, अब कोई पृथ्वी पृथ्वीके अन्तर जानना चाहे जैसे घट पट ये सब पृथ्वी ही तो हैं। अब घटमे पृथ्वी व्यवहार कैसे बना? तो घट घटको छोडकर अन्य पटादिक जितने पिण्ड हैं उन सबसे भिन्न हैं और साथ ही घटन घटत्वका सम्बन्ध है सो घटत्वके सम्बन्धसे यह घट कहलाता है। हाँ कह दो पदार्थ जो नित्य हैं, निरश हैं, एक हैं उनमे आवान्तर भेद नही बनता। उनमे केवल गुण कर्मादिकका भेद है। यदि आकाशके अनेक प्रकार होते या अनेक आकाश होते, तो उनमे भी परस्पर भेद बताया जाता, लेकिन इनका आवान्तर भेद ही सम्भव नही है। तो इन पृथ्वी आदिकमें आवान्तर भेदका भी साधन यही रहा कि अन्यसे तो भेद है और इनकी जातिका इनमे सम्बन्ध है। इस तरह द्रव्य ९ प्रकारके होते हैं।

पृथ्वी आदिक द्रव्योमे गुणोंकी व्यवस्था—अब इन द्रव्योकी और गुणों की ओरसे पहिचान करें तो पृथ्वीमे है गध जलमे है रस, अग्निमे है रूप और वायुमे है स्पर्श। जैसे–जैन लोग बताते हैं कि प्रत्येक पुद्गलमे चार गुण होते हैं रूप, रस, गध, स्पर्श तो प्रत्येक अणुमे ४ ही गुण हों यह बात नही बनती, किन्तु जातिके विभाग से उनमे विभाग है। पृथ्वीमे गध गुण है। जलमे रस गुण है। अब किसी जलमें अगर गध आती है तो वह गध जलकी नही है वह तो जो पार्थिव तत्व हैं, अर्थात् जो मिट्टीके कण हैं उनका गध है, इसी प्रकार पृथ्वीमे रस गुण आया, जैसे किसी सूखे फलमे रसका ज्ञान होता है तो वह रस पृथ्वीका गुण नही है किन्तु उसमे जल तत्त्व मिला है उसका वह गुण है। इस तरह इन चार द्रव्योमें भिन्न भिन्न चारो प्रकारके गुण रहा करते हैं और इस तरह इन द्रव्योकी व्यवस्था है। और, आकाश, काल, दिशा ये अनादि सिद्ध हैं और इनमें आवान्तर भेद नही हुआ करते।

गुण और क्रियानामक पदार्थोंका निर्देश—द्रव्यके सत्त्वकी भाति रूपादिक २४ गुण भी सत् होते हैं वे गुण सब अपने–अपनेमे अपना अपना जुदा–जुदा स्वरूप रखते हैं और, वे भी सत् हैं इस लिए पदार्थ कहलाते हैं। या यो कह लीजिए कि पद का जो अर्थ हो सो पदार्थ। जितने भी पद हैं जितने भी शब्द हैं उनका कुछ न कुछ वाच्य अर्थ होता है। नही तो पद बन कैसे गया? कुछ अर्थ न हो, कुछ चीज न हो, वस्तु न हो और बन जाय पद, तो नहीं बन सकते। भले ही उनमे ऐसा विचार कर सकते हैं कि गधेके सींग कहाँ होते, तो भले ही गधेके सींग नहीं लेकिन गधा कोई पदार्थ है और सींग कोई पदार्थ है। कोई पदार्थ न हो तो ये पद शब्द भी नही बन

सकते। तो रूपादिक २४ गुण होते हैं ये भी पदार्थ हैं। उत्क्षेपण आदिक ५ अर्थ क्रियायें होती हैं वे भी पदार्थ हैं। फिकना, आना, जाना, गोल घूमना ये सब क्रियायें हैं वे सब पदार्थ हैं।

सामान्य और विशेष नामक पदार्थोंका निर्देश— सामान्य भी पदार्थ है। वह सामान्य दो प्रकारका होता है एक पर सामान्य और एक अपर सामान्य। किन्तु सामान्यका जो लक्षण है वह दोनो प्रकारके सामान्यमे घटित होता है। सामान्यका लक्षण है अनुगत ज्ञानका कारण बने। यह सत् है यह सत् है इस तरह अनुगत ज्ञान का कारण सामान्य होता है। यह द्रव्य है यह द्रव्य है अथवा यह गुण है यह भी गुण है इस प्रकारका जो अनुगत ज्ञान बनता है उसका कारण सामान्यका सम्बन्ध है। और वह सामान्य दो प्रकारका होता है परसामान्य और अपरसामान्य जो उत्कृष्ट सामान्य है, जिससे बढकर और कोई व्यापक नही है वह तो पर सामान्य है और परसामान्य के भेद कर देनेपर फिर एक भेद कोई सामान्य दृष्टिसे दिखता है तो वह अपरसामान्य है। जैसे—पदार्थ ६ होते हैं—तो पदार्थ यह तो हुआ परसामान्य। अब ६ बताये गए द्रव्य, गुण कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय तो उनमेसे एकको ग्रहण करो, द्रव्य कह लो, तो द्रव्य हो गया अपरसामान्य क्योकि यह भी पदार्थमे गर्भित हो जाता है। तो यो दो प्रकारके सामान्य होते हैं विशेष भी पदार्थ है और विशेष अत्यन्त व्यावृत्ति बुद्धि का कारणभूत है, एक दूसरेसे अलग है। इस प्रकार अलगावका ज्ञान करानेका कारण भूत होता है विशेष।

समवायनामक पदार्थका निर्देश और शकाकारका उपसहार—छटवाँ पदार्थ है समवाय। अयुत सत् पदार्थोंमे अर्थात् जो अलग–फलग नही हैं, एक ही हैं ऐसे पदार्थोंमे याने जो आधार्य और आधारभूत हैं, उनमे ऐसा ज्ञान बनता है कि इसमे यह है, तो इसमे यह है इस प्रकारके ज्ञानका कारणभूत जो सम्बन्ध है उसे समवाय कहते हैं। जैसे यह बोध होता है कि आत्मामे ज्ञान है—अब आत्मा और ज्ञान ये अयुत सिद्ध हैं, ज्ञानको छोडकर आत्मा किसीने देखा, आत्माको छोडकर ज्ञान कही किसीने देखा है ज्ञान और आत्मा सदा एक साथ रहते हैं। अयुत सिद्ध सम्बन्ध है, फिर भी इसमे ऐसा ज्ञान तो होता है लोगोको कि आत्मामे ज्ञान गुण है, पर ऐसा कोई नही ज्ञान करता कि ज्ञानमे आत्मा है। जैसे पृथ्वीमें गंध है, यो तो ज्ञान कर सकते हैं, पर गधमे पृथ्वी है इस प्रकारका कोई व्यवहार नही करता। तो जो अयुत सिद्ध पदार्थमे जो कि आधार्य आधारभूत है उनमे इसमे यह है इस प्रकारके ज्ञानका जो कारणभूत है, ऐसा ज्ञान बनता है। उस सम्बन्धका नाम है समवाय इन ६ पदार्थोंमे जैसे कि द्रव्य नित्य भी होते, अनित्य भी होते इसी प्रकार गुण भी कोई नित्य होते हैं कोई अनित्य होते हैं। जो नित्य द्रव्यके आश्रयमे रहने वाला गुण है वह नित्य ही होता है और जो अनित्य द्रव्यके आश्रयमे रहने वाला गुण है वह अनित्य ही होता है। पर क्रियायें

सब अनित्य होती है। परन्तु सामान्य, विशेष, समवाय ये तीन पदार्थ नित्य ही होते हैं। इस तरह लोक ६ पदार्थोंका समूह है, इस कारण पदार्थोंको सामान्यविशेषात्मक कहना ठीक नही, किन्तु इस तरह ६ पदार्थोंकी व्यवस्था बनाना ठीक है।

द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवायके रूपसे ६ पदार्थोंकी असिद्धि—अब उक्त शंकाओंका समाधान करते हैं। वैशेषिक सिद्धान्तमे जो यह कहा गया है कि प्रमाणके द्वारा प्रमेय द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय नामके ६ ही पदार्थ हैं और उनकी व्याख्यायें भी जो बतायी हैं वे सब भी कथनमात्र हैं, क्योंकि जब उनपर विचार करते हैं तो द्रव्यादिक ६ पदार्थ सही नही उतर सकते। प्रथम तो यह बात है कि पदार्थोंकी जातिया उतनी मानना चाहिये कि जिनमे कोई पदार्थ जातिमे छूट न जाय। और, जो अपने आपकी जातिमे दूसरा कभी आ न सके, जातियाँ उतनी होती हैं; किन्तु इस प्रकारके नियन्त्रण आपके ६ पदार्थोंमे नही बन सके। देखो-ना ! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति इन ५ की जातियाँ यो अलग-अलग नही हो सकती कि चूँकि उनमे एक दूसरेरूप गुण परिणमन बन सकते हैं। जैसे जलके अणु कभी हवा बन सकते हैं, पृथ्वीके अणु वनस्पति बन सकते, वनस्पतिके अणु पृथ्वी बन जाते हैं। जो अब सजीव पेड खडा है उसे तो मान रहे वनस्पति और जब वह सूख जाता है, निर्जीव हो जाता है तब उसे मानने लगते हो पृथ्वी, तो यो जातियाँ तो नही ठीक बन सकी चार अलग द्रव्य नही रह सके। दूसरे—इनमे अनेक पदार्थ छूट भी गए हैं, इस का भी वर्णन आगे करेंगे। तो ये ६ प्रकारके इस ढङ्गके पदार्थ ठीक युक्तिमें नही उतरते।

सर्वथा नित्य द्रव्यकी असिद्धि—और भी विचार करो ! जो यह कहा है कि पृथ्वी आदिक चार प्रकारके द्रव्य नित्य भी हैं और अनित्य भी हैं। सो किसी भी पदार्थको नित्यात्मक व अनित्यात्मक मानना तो युक्त है लेकिन यो नित्य अनित्य मानना कि उसमे यह तो नित्य ही है और यह अनित्य ही है, यो स्वतन्त्र स्वतन्त्र नित्य ही अनित्य मानो तो वह अयुक्त बात है, क्योंकि जिसको नित्य माना उसको तो नित्य ही मान लिया। वह कथंचित् अनित्य भी है जिसकी गुन्जायश न रखी, जिसको अनित्य माना उसे अनित्य ही मान लिया। वह कथंचित् नित्य है ऐसी गुन्जायश नही रखी गई है। तो देखो ! जो एकान्त नित्य है उसमें किसी भी प्रकारसे अर्थक्रिया नही बन सकती। न तो क्रमसे अर्थक्रिया बनेगी और न एक साथ। और, अर्थक्रिया हो, परिणमन हो, काम हो तभी वह सत् रह सकता है। अर्थक्रिया नही है तो वह असत् हो जायगा। किस तरह ? जैसे माना है कि जो परमाणु है वह तो नित्य ही है और जो परमाणुवोका कार्य है—दो अणुवोका सम्बन्ध बन जाता, अनेक अणुवोका पिण्ड बन जाता वह अनित्य है। तो यह बतलावो कि आपके उन परमाणुवोमे द्वयणुक आदिक कार्य द्रव्यको उत्पन्न करनेका स्वभाव है या नही ? यदि कहो कि परमाणुवो

मे द्वयणुक आदिक कार्योंके उत्पन्न करनेका स्वभाव है तो एक साथ ही सारे कार्य क्यो नही उत्पन्न हो जाते ? क्योंकि परमाणुवोमे कार्यजनकत्व स्वभाव है। और, जब स्वभाव है तो सदा ही कार्य एक साथ ही एक समय हो जाना चाहिए, क्योंकि जो सम्पूर्ण कारणसहित है वह एक ही साथ उत्पन्न हो जाया करता है। जिसके कारण पूरे मिल चुके हैं वे सब एक साथ ही उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे कि बहुतसे बीज जमीन मे बो दिए गए। अब सारे कारण मिल गए—खेत, पानी, खाद आदिक सब कारण मिल चुके हैं तो वे सारे अकुर एक ही समयमे उत्पन्न हो जाते हैं। अब अणुवोको कार्य उत्पन्न करनेका स्वभाव वाला मान लिया है, अब कारणकी क्या कमी रही ? जब स्वभाव ही अणुवोमे कार्यद्रव्यको उत्पन्न करनेका मान लिया गया तब सारे द्वयणुक आदिक कार्य एक साथ उत्पन्न हो जाने चाहियें। और, यदि मानलो कि द्वयणुक आदिक कार्योंके उत्पन्न करनेका स्वभाव है परमाणुवोमे, द्वयणुक आदिक कार्योंके सारे कारण एक साथ मिल चुके हैं और फिर भी कार्य उत्पन्न न हो तब फिर कभी भी कार्य उत्पन्न न होना चाहिए। तो इससे नित्यकी व्यवस्था बन नहीं सकती। और यदि मान लोगे कि अणुवोमे द्वयणुक आदिक कार्य उत्पन्न करनेका सामर्थ्य नही है तब फिर कभी भी कार्य न होना चाहिए। फिर अनित्य द्रव्य कोई रहे ही नही।

शकाकार द्वारा कार्यके तीन प्रकारके कारणोका प्रतिपादन—शकाकार कहता है कि बात यह है कि कारण होते तीन प्रकारके। समवायि कारण असमवायि कारण और निमित्त कारण इसका हम लक्षण अभी ही कहेंगे। प्रकरणमे यह जानना कि अणुमे कार्य उत्पन्न करनेका स्वभाव है और वह नित्य है, लेकिन जब तक तीनो कारण नही मिल जाते तब तक द्वयणुक आदिक कार्य उत्पन्न नही होते। कारण तीन प्रकारके होते हैं समवायिकारण असमवायिकारण और निमित्तकारण। समवायि कारण तो वह कहलाता कि जिसमे कार्य उत्पन्न होता है। जैन सिद्धान्तमे उपादान कारण माना गया है उसका भी अर्थ यह ही किया करते हैं कि जिसमे कार्य उत्पन्न हो उसे उपादान कारण कहते हैं इस किंतु इन दोनो कारणोमे यह अन्तर है कि उपादान कारणसे कार्यको अप्रथक्भूत माना है, किन्तु समवायि कारणसे कार्य प्रथक्भूत है। अर्थात् जिसमे कार्य प्रथक् रूपसे उत्पन्न होवे उसको समवायि कारण कहते हैं। जैसे कि दो अणुवोसे द्वयणुक स्कध बनता है तो द्वयणुक हुआ कार्य और उसका समवायि कारण हुये वे दोनो अणु। असमवायि कारण उसे कहते हैं कि जो कार्यके एक पदार्थमे समवाय रूपसे रह रहा हो अथवा कार्यके कारणभूत एक पदार्थमे जो समवाय सम्बन्धसे रहता हो और कार्यको उत्पन्न करे उसे असमवायि कारण कहते हैं। जैसे कि कपडारूप कार्यकी उत्पत्ति होनेमे ततुवोका सयोग है, वह असमवायि कारण है। कपडा रूप कार्यके बननेमे समवायि कारण तो हुए वे सब अणु जिनमे कि कार्य उत्पन्न होगा, पर उन अणुवोमे समवेत है सयोग। सयोग गुण माना गया है और गुण और

द्रव्यका होता है समवाय सम्बन्ध। तो सयोगका उन तंतुवोमे समवाय सम्बन्ध है। तो वह बतलाया जा रहा है कि कपडा बननेका समवायि कारण तो हैं वे तंतु और असमवायि कारण है तंतुवोंका सयोग। जैसे द्वयणुक कार्यकी उत्पत्ति होनेमे समवायि कारण तो है वे दो अणु पर उन दो अणुवोका जब तक सयोग न बनेगा तब तक द्वयणुक तो न बनेगा तो सयोग है असमवायि कारण। अथवा यो समझिये कि पटमें भी समवेत है रूपादिक। कपडामे रूपादिक गुणोका समवाय तो है, अब उन रूपादिकके उत्पन्न होनेमे पटको उत्पन्न करने वाले तंतुवोके रूपादिक असमवायि कारण हैं। शेष सब जितने भी उत्पादक कारण हैं वे निमित्त कारण कहलाते हैं। इन तीन कारणोका सक्षेपमें स्पष्ट स्वरूप यह हुआ कि जिसमे कार्य बनता है वह तो है समवायिकारण, पर उन समवायि कारणोंका सयोग बने तो वह है असमवायि कारण, और बाकी जितने भी और कारण हैं, जो उत्पत्तिके हेतुभूत हैं वे सब हैं निमित्त कारण। जैसे—भाग्य, आकाश आदि। जिन जीवोके भाग्यके उदयसे उनका उपयोग होगा तो उनके कार्योंके बननेमे भाग्य भी तो निमित्तकारण है।

असमवायि कारण सदा न मिलनेसे परमाणुसे सर्वथा कार्यकी अनुत्पत्तिका शकाकार द्वारा प्रस्ताव—समवायि कारण, असमवायि कारण व निमित्त कारण ये तीनो कारण जब मिलें तो कार्यकी उत्पत्ति होती है। उनमेसे अपेक्षणीय जो सयोग है उसका जब अभाव है तो सारे कारण हुए, कहाँ मिले अब द्वयणुक आदिक कार्य नही बनते। शकाकार कह रहा है कि नित्य परमाणुवो जो द्वयणुक आदिक कार्य द्रव्य बनते हैं, जो कि अनित्य हैं तो यह कह कर कि परमाणुवोमे यदि द्वयणुकादि कार्य उत्पन्न करनेका सामर्थ्य है तो सब कार्य एक साथ क्यो नही हो जाते ? सो यह आक्षेप ठीक नही है। उसका कारण यह है कि सारे कारण पूरे हुए कहाँ ? समवायि कारण तो हर जगह मौजूद है पर असमवायि कारण तो नहीं मिल पा रहा। अर्थात् अणु-अणु हैं मौजूद पर जब उनका सयोग बने तब ना द्वयणुक आदिक कार्य बनेंगे। तो सयोग नामक असमवायि कारण नही मिला हुआ है इस कारण पूरे कारण नही मिल पाये अतः कार्यकी उत्पत्ति नही होती। उसमे यह दोष देना अयुक्त है कि अणुवोंसे समस्त कार्य क्यो नही एक साथ हो जाते ?

शकाकारकथित अपेक्षणीय सयोगकी कारणतापर ऊहापोह—अब उक्त शकाका उत्तर देते हैं कि समवायि असमवायि कारणका विभाग करके कार्यकी उत्पत्तिकी व्यवस्था बनाना सही नही है, क्योकि यहां शकाकार कह रहा है कि अपेक्षणीय जो सयोग है वह अभी नही मिल पाया इसलिए द्वयणुकादिक कार्य नही बन रहे हैं। तो उन अणुवोको क्या सयोगकी अपेक्षा करनी पड़ रही है ? जो नित्य होते हैं उनको तो किसीकी अपेक्षा नही करनी पडती। यदि कोई पदार्थ किसीकी अपेक्षा करे कि इसकी अपेक्षा करके यहाँ यह कार्य उत्पन्न हो सक रहा है तो उस कारणभूत

पदार्थमे नित्यता न ठहर सकेगी, क्योंकि उनमे अब दो स्वभाव आगए—अपेक्षा करके कार्य उत्पन्न कर सकना और अपेक्षा न करके कार्य उत्पन्न न कर सकना, नित्य पदार्थमे सयोगकी अपेक्षा नही हो सकती, क्योंकि सयोगादिक उसमे कोई अतिशय ही नही धर सकते। अपेक्षाका तो अर्थ यह है कि जिसकी अपेक्षा की गई, उसका सयोग हो जानेपर कोई अतिशय पैदा कर दिया जाता है। अतिशय अगर नही पैदा किया जा सकता तो अपेक्षाकी आवश्यकता ही क्या? किन्ही दो पदार्थोंको मिलाकर विज्ञान में कोई एक अत्यतर तीसरी प्रयोगकी बात बनाया करते हैं। वो रसायन मिलाकर कुछ एक नया प्रभाव बनाते हैं उन दो रसायनोका सयोग कुछ अतिशय ही तो पैदा करता है तब तो उसकी अपेक्षा पडती है। इसी तरह नित्य परमाणुवोको सयोगकी जो अपेक्षा पड रही है तो यह बतलावो कि उनमे अतिशय क्या कर दिया जाता है?

सयोगको ही परमाण्वतिशय माननेपर विडम्बनाओका प्रदर्शन—यदि कहो कि सयोग हो जाना ही परमाणुवोका अतिशय कहलाता है क्योंकि और अतिशय कुछ कहे जायें तो उनकी नित्यताका घात होता है। ऐसा यह अतिशय है कि उन परमाणुवोका सयोग हो जाता है। तो पूछते हैं कि वह अतिशय नित्य है अथवा अनित्य, परमाणुवोमे जो अतिशय पैदा किया गया उसे चाहे सयोग नामसे ही कहकर दोषोसे परे होनेकी चेष्टा की लेकिन वह भी अतिशय है। अथवा अनित्य न कहकर सयोग नामक अतिशय नित्य है तो सदा कार्यकी उत्पत्ति होनी चाहिए, क्योंकि परमाणुवोमे द्वयणुक आदिक कार्य उत्पन्न करनेका स्वभाव तो था ही और असमवायि कारण जो सयोग है वह भी नित्य मान लिया गया तब तो सभी ही कार्य उत्पन्न होने चाहियें। यदि कहो कि वह सयोग अथवा अतिशय अनित्य है, तो जब वह अतिशय अनित्य है तो इसका अर्थ है कि अभी उस अतिशयको भी पैदा करना पड रहा है। जो अनित्य है वह पैदा किया जाता है और नष्ट होता है, यह नीति है तो वह अतिशय आदि अनित्य है सो उस कल्पित उत्पत्तिमे किसकी उत्पत्ति मानी जाय? सयोग अथवा कार्यकी? परमाणुवोके सयोग नामका अतिशय और वह है अनित्य तो उसकी उत्पत्तिका कारण क्या है? यदि सयोग कहते हो तो वही सयोग कारण है या अन्य सयोग कारण है? यदि कहोगे कि वही सयोग कारण है तो अभी तो उस सयोगकी सिद्धि नही हो पा रही। उस की तो चर्चा चल रही है उस सयोगकी तो अब तक भी सिद्धि नही हो सकी। और फिर अपनी ही उत्पत्तिमे अपने ही व्यापारका विरोध है। अर्थात् सयोग सयोग को उत्पन्न करनेमे वही सयोग व्यापार करके इसका विरोध है, क्योंकि जो स्वय उत्पन्न नहीं हो रहा उसका अपने आपमे व्यापार कैसे हो जायगा? उस ही सयोगकी उत्पत्तिकी ही बात पूछ रहे हैं। यदि कहो कि अन्य सयोगसे उस सयोगकी उत्पत्ति हो जायगी तो प्रथम बात यह है कि अन्य सयोग माना नहीं गया है शकाकारके सिद्धान्तमे और फिर मान भी लिया जाय अन्यसयोग तो फिर उस द्वितीय सयोगकी उत्पत्तिमे कारण मान लिया जायगा तृतीय सयोग नामका अतिशय, फिर

तृतीय सयोगकी उत्पत्तिमे कारण माना जायगा चतुर्थं सयोगातिश
दोष आयगा, इसलिए सयोग सयोग नामक अतिशयको उत्पन्न करते
यदि कहो कि क्रियाका अतिशय सयोग नामक अतिशयको उत्पन्न ब
उस क्रिया अतिशयमें भी पूछा जायगा कि उसकी उत्पत्ति कैसे हुई
स्था आदिक दोष बराबर रहेगे। तो सयोग नामक अतिशय असमर्थ
कर परमाणुवोंमें हमेशा कार्य नहीं होता यह सिद्ध करना अयुक्त है

अदृष्टापेक्ष आत्मपरमाणुसयोगसे द्व्यणुकादि कार्य म
समाधान – शकाकारकी एक यह मान्यता है कि अदृष्टकी अपेक्ष
और परमाणु सयोगसे परमाणुवोमे क्रिया उत्पन्न होती है और उन
है कि द्व्यणुक आदिक कार्य आत्माके अदृष्टके कारण होते हैं क्योंकि
है और उसका अदृष्ट सब जगह फैला हुआ है। जहाँ अणुवोमे द्व्यणु
हो उसमे कारण आत्माका अदृष्ट पडता है। तो ऐसा मानने वालोसे
आत्मा और परमाणुका जो सयोग बना तो उस सयोगकी उत्पत्तिमे
शय है सो तो बताओ? यदि कुछ अन्य अतिशय बताये जायेंगे तो
आता है। शकाकारकी ऐसी मान्यतामें कुछ यह बुद्धि भी उनको सह
कि जितने भी द्व्यणुक आदिक कार्य हो रहे हैं वे सब काय तो आत्माके
जो भी दुनियामे स्कध बन रहे हैं उनका उपभोग कौन करेगा? आत्मा
आत्माके भाग्यसे ही ये सारे काम हो रहे हैं। तब यो मानो कि अदृ
और परमाणुक सयोगसे परमाणुओमे द्व्यणुक आदिक क्रियायें होती हैं
अतिशय बताया जाना चाहिए जिसके कारण इनमे ही सयोग बनता है
कोई उन परमाणुवामे अतिशय पैदा होता है। यदि अन्य अतिशयको
अनवस्था दोष होगा।

द्व्यणुकादिकार्यनिर्वर्तक सयोगका परमाण्वाद्याश्रितत्व,
व अनाश्रितत्व इन तीन विकल्पोमे निराकरण – और भी बतलाय
आदिकका रचने वाला यह सयोग क्या परमाणु आदिकके आश्रित है या
निमित्त कारणके आश्रित है अथवा अनाश्रित है? अणु बिखरे हुए थ
अब उनका सयोग हुआ वे द्व्यणुक बन गए, स्कध बन गए तो इस प्रकार
बना उस कार्यका रचने वाला है सयोग तो वह सयो। किसके आश्रयमे
क्या इन परमाणुओके आश्रयमे रह रहा या अन्य आकाश अदृष्ट आदि

परमाणु भी उत्पन्न होता है या परमाणुवोमे भी कुछ अतिशय उत्पन्न होता है तब तो परमाणु भी कार्य कहलाने लगे। परमाणुको आप कार्य मानते नही, उन्हे नित्य मानते हो। यदि कहो कि सयोगकी उत्पत्तिके समय आश्रयभूत परमाणु उत्पन्न नही होते तब तो सयोग परमाणुके आश्रित नही कहलाये, क्योकि वहा तो उन परमाणुवोमे तो कारकपना कुछ भी नही आया? सयोग भी कैसे उत्पन्न हो गया? और, वे सब परमाणु अब अकारक रहे, कारण नही रहे, क्योकि कोई अतिशय ही न बने। यदि कहो कि सयोगको उत्पन्न करनेके स्वभावका अतिशय तो परमाणुवोमे नही होता फिर भी वे कार्यको उत्पन्न करते हैं तब तो सदा काल कार्य उत्पन्न करनेके प्रसग आयगा क्योकि अब निरतिशयपना तो सदाकाल रह रहा है यदि उसमे अन्य अतिशयकी कल्पना करोगे तो अनवस्था है। उस अतिशयको करनेके लिए अन्य अतिशयोकी कल्पना करनी पडेगी। इससे परमाणुको सर्वथा नित्य माननेपर कार्य होनेसे स्कध बननेकी व्यवस्था नही हो सकती, इस कारण ऐसा ही मानो कि वे परमाणु जब कि बिखरे हुए थे तब तो असयोग रूप थे, अब उन परमाणुमे असयोगताका तो किया त्याग और सयोग रूपसे बनाया तब स्कध कार्य बना और ऐसा माननेपर यह सिद्ध होगा कि परमाणु भी कथचित् अनित्य हैं। द्रव्य दृष्टिसे तो वे नित्य हैं। कोई द्रव्य मिटता नही हैं पर परमाणुवोमे भी नाना प्रकारकी परिणतिया होती हैं उस दृष्टिसे वे कथचित् अनित्य हैं। यदि कहो कि संयोग अन्याश्रित है। निमित्त कारणोके आश्रित है तो जितने दोष अभी बताये गए थे वे सब दोष इसमे भी लगेगे। यदि अनाश्रित मानते हो कि सयोग किसीके आश्रय ही नही रहता तो इसका अर्थ यह हुआ कि निर्हेतुक उत्पत्ति हो गयी। कुछ कारण ही न था और उत्पत्ति हो जाती। जब निर्हेतुक उत्पत्ति होने लगी तो कार्योंका सदा सत्त्व होना चाहिए, क्योकि सयोग सदा काल है, और समवायि कारण परमाणु सदाकाल है। और निमित्त कारण सदा रहा ही करता है तो समवायि कारण असमवायि कारण और निमित्त कारण सदा ही जुटे हुए रहे तो कार्य सदा होना चाहिए। और फिर यह बतलावो कि सयोगको यदि अनाश्रित मानते हो तो वह गुण कैसे कहलायगा? गुण तो वह कहलाता जो द्रव्यके आश्रय हो। द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः। यह स्वरूप वैशेषिकोने भी माना। गुण उन्हे कहते हैं जो द्रव्यके आश्रय हो और स्वय गुण रहे हो। तो सयोग यदि अनाश्रित है तो वह गुण नही कहला सकता--आकाश आदिककी तरह। जैसे --आकाश किसीका गुण है क्या? वह तो स्वतन्त्र है, ऐसे ही अनाश्रित होनेसे सयोगमे गुणत्व ही नही रहा।

असमवायि कारणरूप सयोगकी सर्वदेशसे तथा एक देशसे परमाणुवोमे रहनेकी असिद्धि—अच्छा अब यह बताओ कि यह सयोग अणुवोमे सर्वरूपसे है अथवा एक देशसे है? शकाकारका यह सिद्धान्त है कि भिन्न-भिन्न परमाणुवोसे जो स्कध बन जाता है तो उस स्कध बननेमे तीन कारण पडते हैं। समवायि कारण असमवायि कारण और निमित्त कारण वे परमाणु स्वय समवायी कारण कहलाते हैं जिन

परमाणुवोंमे द्वयणुक आदिक स्कंध बनते हैं और उनका जो सयोग होता है वह है असमवायि कारण। फिर बाहरका जो वातावरण है वह कहलाता है निमित्त कारण। तो परमाणु परमाणुवोंमे जो सयोग बना है तो क्या सर्वरूपसे उनका सयोग होता है या एक देशरूपसे होता है ? अगर कहो कि सर्वरूपसे सयोग होता है, दो अणु हैं भिन्न-भिन्न और उनका सयोग ऐसा हुआ कि सर्वरूपसे हो गया वह पिण्ड एक अणु ही तो कहलायेगा। अर्थात् सर्वात्मना अणुवोंमे सयोग होनेसे पिण्ड भी अणु मात्र हो जायगा। और फिर उसमे अवयव न बन सकेंगे। जैसे दो अणु सर्वरूपसे सयुक्त हो गए फिर अवयव क्या रहा ? कोई पदार्थ इतना बडा है और उसके ये हिस्से हैं यह अवयव कैसे बनेगा ? यदि कहो कि उन परमाणुवोंका सयोग एकदेशत होता है तो परमाणुवोंमे भी अंशपना आ गया। परमाणु परमाणुवोंमे एक देशसे सयोग होता है, तो इसका अर्थ है कि एक परमाणुके एक देशमे तो सयोग हुआ और शेष बचे रहे तब परमाणु निरश कहाँ रहा ? उसके तो अनेक अश हो ही बैठे। तो इस तरह जब विचार करते हैं सयोगके बारेमे तो द्वयणुक आदिक कार्योंमे सयोगकी सिद्धि नही बनती। तो जब सयोग ही सिद्ध नहीं हो पारहा तो फिर सयोगको परमाणुवोंका अतिशय क्या कहा जाय ? और निरतिशय होकर वे परमाणु यदि कार्यको उत्पन्न करदें याने परमाणुवोंमे कोई अतिशय प्रभाव कुछ भी न हो और वह स्कंध कार्यको उत्पन्न करदे तो फिर एक ही साथ समस्त कार्योंकी उत्पत्ति हो जाना चाहिए परन्तु ऐसा होता तो नही, इस कारण परमाणुवोंमे यह बात पाई गई कि पहिले तो अजनक स्वभाव है अर्थात् जब परमाणु बिखरे हुए थे तो उस हालतमे इनमे स्कंधका उत्पन्न करनेका स्वभाव न था। यह पर्यायस्वभावकी बात कह रहे हैं। और, विशिष्ट सयोग परिणामसे परिणत हो रहे तो परमाणुवोंमे अब जनक स्वभाव आया। वहा स्कंधको उत्पन्न करदे ऐसा स्वभाव सम्भव हो गया। इससे परमाणुवोंमे कथचित् अनित्यपना सिद्ध होता है। अब परमाणु सर्वथा नित्य न रहे जैसे कि मान रहा था शकाकार कि पृथ्वी, जल, अग्नि वायु ये दो दो प्रकारके हैं नित्य और अनित्य। जो कारणभूत परमाणु हैं वे तो हैं नित्य और जो कार्यभूत द्रव्य हैं वे हैं अनित्य। ऐसी स्वतत्र-स्वतत्र परमाणुवोंमें सर्वथा नित्यत्व और अनित्यत्वकी व्यवस्था नही है। पदार्थ तो वह एक है, परमाणु परमाणु सब प्रत्येक एक एक हैं और वे हो कथचित् नित्य और कथचित् अनित्य हैं। वे परमाणु कथचित् अनित्य कैसे बने ? यह तो अनुमानसे भी सिद्ध होता है। जो क्रम वाले कार्योंके हेतुभूत होते हैं वे अनित्य होते हैं। जैसे क्रम वाले अकुर आदिककी रचना वाले बीज आदिक देखा ना ! अनित्य हैं। जैसे वहा पहिले थोडा फुलाव हुआ, उसमे फिर फँसा फूटा, फिर अकुर हुआ, फिर बडा बना। तो ये कार्य जब क्रमसे देखे जा रहे हैं तो सिद्ध होता है कि इनकी रचना वाला जो भी कारण है वह भी अनित्य है। इसी तरह परमाणुकी बात है। ये परमाणु क्रम वाले कार्यके हेतुभूत हैं, इस कारण ये भी अनित्य हैं। तब यह सिद्ध हुआ कि प्रत्येक पदार्थ

नित्यानित्यात्मक होते हैं। अब उसीको ही इस निगाहसे देखलो ! जो सामान्यस्वरूप है वह तो नित्य है और जो विशेषस्वरूप है वह अनित्य है। तो परमाणु कथंचित् अनित्य सिद्ध होता है।

परमाणुके नित्यत्वकी सिद्धिके लिये सद्कारणवत्व हेतुका शङ्काकार का प्रस्ताव—अब यहाँ शकाकार कहता है कि परमाणु तो नित्य ही होता है क्योंकि सत् है अकारणवान है। उसका कोई कारण नही है, आकाशकी तरह। जैसे कि आकाश सत् है और उसका कोई कारण नही है, इसी प्रकार परमाणु भी सत् है और अकारणवान है, इस कारण नित्य है। देखो ! यह बात असत्य नही है। इतनी बात तो जैन भी मानते हैं कि परमाणु है कुछ। परमाणुके सत्त्वमे तो किसीको भी विवाद नही है, न इस शकाकारको, न अन्य दार्शनिकोको। अब रही अकारणत्वकी बात, सो देखिये ! परमाणुमे अकारणपना है, अर्थात् वह किसी कारणसे उत्पन्न नही होता, क्योंकि परमाणुका जो परिमाण है उसम छोटा परिमाण वाला कुछ पदार्थ ही नही। किसी भी कार्यका कारण जो कुछ भी होता है वह अल्प परिमाण वाला हुआ करता है। कार्य होता है बडा और कारण होता है छोटा परिणाम वाला। और, जब परमाणुमे छोटा परमाणु कुछ है ही नही तब यह सिद्ध होता है कि परमाणु अकारणवान है। कारण जितने भी होते हैं वे कार्यसे अल्प परिणाम सहित ही होते हैं। द्वयणुक अवयवी द्रव्य कैसे उत्पन्न होता है ? अपने परिणामसे अल्प परिणाम वाले अणुवोसे उत्पन्न होता है। जो भी कार्य हुआ करते हैं वे अपने परिमाणसे अल्प परिमाण वाले कारणोसे रचे जाते हैं। जैसे कपडा कार्य अपने परिमाणसे अल्प परिमाण वाले तंतुवोसे बनाया गया है। कपडेका कारण क्या ? सूत ! तो सूतका परिमाण बडा होता है कि कपडेका ? कपडेका परिमाण बडा होता है। तो कार्य जितने भी होते हैं वे कारणके परिमाणसे बडे होते हैं। कार्यके जितने भी कारण होते हैं वे कार्यके परिमाणसे छोटे परिमाण वाले होते हैं। तो जब परमाणुसे और छोटे परिणाम वाला जगतमे कुछ भी नही है तो इससे सिद्ध है कि परमाणु अकारणवान है। तो यो जब परमाणु सत् है और अकारणवान है तो उससे यह सिद्ध है कि वह नित्य ही होता है। जैसे कि आकाश सत् है और कारणवान है, इस कारण नित्य होता है।

शकाकारद्वारा कहे गये परमाणुके अकारणतत्त्वकी असिद्धि—अब इसका समाधान करते हैं कि परमाणुका सत्त्व तो सिद्ध है। याने परमाणु तो सत् है कुछ किन्तु वह अकारणवान है यह सिद्ध नही ? याने जैसे स्कध हैं बहुतसे और उन स्कधोसे टूटकर परमाणु कोई रह गए तो वे परमाणु कार्य रूप रहे। स्कधोकेविच्छेद से परमाणुकी उत्पत्ति हुई। जैसे—कहते हैं ना—भेदादणुः। परमाणु भेदसे उत्पन्न होता है। तो स्कन्धके भेदसे उत्पन्न परमाणुकी जो परमाणुरूपता है वह कार्य कहलाती है। और, कार्य कारणसे बना। परमाणु स्कधका याने अवयवी द्रव्यका भेद अथवा विनाश

होनेसे उत्पन्न हुआ करता है। अवयवी द्रव्य बिखरे तब परमाणु हुआ करते हैं। इससे परमाणु कार्यभूत हो गए, अकारणवान न रहे। देखो–ना। जैसे घटका विनाश होनेसे खपरियोंकी उत्पत्ति होती है। तो खपरियाँ भी अकारणवान हुआ करती हैं कि सहेतुक ? खपरियाँ अकारणवान नहीं क्योंकि वे घट पिण्डके विनाशसे उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार स्कधके अवयवी द्रव्यके विनाशके कारणसे जब परमाणु उत्पन्न हुए हैं तो परमाणुवोंको अकारणवान नहीं कह सकते। यह साधन असिद्ध भी नहीं है। देखो जब द्व्यणुक आदिक अवयवी द्रव्यका विनाश होता है तब ही परमाणुका सद्भाव जाना गया है। अत परमाणु अकारणवान नहीं हैं, और जब सहेतुक है परमाणु तो वह सर्वथा नित्य नहीं रहा। अतः परमाणु द्रव्य कथचित् नित्य है कथचित् अनित्य यहाँ यह विभाग नहीं कर सकते कि नित्य परमाणु अलग हुआ करता है और अनित्य परमाणु कोई दूसरा हुआ करता है।

द्रव्यपर्यायात्मक परमाणु द्रव्यमे नित्यानित्यात्मकताका कथन—वैशेषिक सिद्धान्तमे परमाणु दो प्रकारके माने गए हैं—एक परमाणु और एक कार्य परमाणु अर्थात् कार्य द्रव्य। कारण परमाणुको तो नित्य कहा है और कार्य परमाणुको याने अनित्य कहा है। इसपर यह कहा गया है कि जब परमाणु किसी स्कधसे बिखर करके उत्पन्न होते हैं तो परमाणु बिखर गए ना और जो कार्य होता है वह अनित्य होता है। तो जब दो अणु वाले स्कधमेसे टूटकर परमाणु निकला तो वह परमाणु अनित्य हो गया। जो जो स्कध द्रव्यके विनाशके कारण उत्पन्न हुआ है उसको आप अकारणवान कैसे कह सकते ? वह तो कारणसे उत्पन्न हुआ। जैसे कि घटका विनाश होनेपर खपरियाँ उत्पन्न होती हैं तो खपरियाँ अकारण तो न कहलाती, इसी प्रकार जब परमाणु स्कधके अवयवीके विनाश पूर्वक होते हैं तो उन्हे अकारण नहीं कह सकते। वे सकारणरूप हैं और इसी कारण अनित्य हैं। हाँ द्रव्य स्वरूपकी अपेक्षा वे नित्य हैं। जब स्कध अवस्थामे थे परमाणु तब भी वे अपना वही स्वरूप सत्त्व बनाये रखे थे और वही अनन्तकाल तक रहेगा, तो द्रव्य दृष्टिसे परमाणु नित्य है और पर्याय दृष्टिसे परमाणु अनित्य है।

परमाणुके कार्यरूपत्वके साधक स्कन्धावयवभेद पूर्वकत्व साधनमे भागासिद्ध दोषका अभाव—अब यहाँ अवयवी द्रव्यके विनाश पूर्वक उत्पन्न होनेसे परमाणुको अनित्य सिद्ध करनेके प्रसगमे शकाकार कह रहा है कि कुछ परमाणु तो ऐसे होते हैं जो सर्वथा स्वतत्र हैं याने स्कधसे टूटकर नहीं फिके, किन्तु पहिलेसे ही परमाणुरूप हैं। तो ऐसे परमाणु जो कि कभी भी पहिले अवयवी द्रव्यरूप नहीं बने हैं वे परमाणु तो विनाशके विना ही सम्भव है। हाँ जो परमाणु स्कध रूपमे आ गए उन्हें तो आप कह सकते हो कि स्कधके, अवयवीके विनाश होनेपर परमाणु उत्पन्न हुए पर जो परमाणु सदासे ही स्वतत्र हैं, कभी अवयवी रूप बने ही नहीं उन परमाणु-

वोका तो स्कधके विनाशके विना ही सत्त्व है। तव तुम्हारा भागासिद्ध नामक दोषसे दूषित हो गया, अर्थात् यह साधन बनाना कि रपमाणु हेतु स्कधसे अवयवी द्रव्यके विनाश पूर्वक होते हैं यह सिद्ध न हो सका। देखो कहाँ हेतु सब परमाणुवोमे गया ? कुछ परमाणु स्वतत्र भी हैं और कभी स्कध रूप हुए ही नही। अब उक्त शकाका उत्तर देते हैं कि ऐसा दोष देना युक्त नही है क्योकि सर्वथा ही स्वतत्र रहे हो ऐसे परमाणु असिद्ध हैं। दुनियामे ऐसा परमाणु है ही नही जो अनादि कालसे अब तक परमाणु ही परमाणु रहा हो। कभी स्कधरूपमे अवयवी द्रव्यमे न आया हो। अनुमान प्रयोग बना लीजिए कि स्वतत्र रूपसे विवादापन्न परमाणु अर्थात् जिसकी स्वतत्रताके सम्बन्धमे कुछ विवाद कर रहे हो ऐसे सब परमाणु भी स्कधके विनाश पूर्वक ही होते हैं। अर्थात् सभी परमाणु स्कध विनाश पूर्वक हैं क्योकि परमाणु होनेसे। जैसे द्वयणुक आदिक अवयवोके भेद पूर्वक परमाणु परमाणु हैं अतएव स्कधके भेद पूर्वक हैं। अर्थात् सभी परमाणु स्कधके विशाशपूर्वक हुए है ऐसा परमाणु स्कधके विनाशपूर्वक हुए हैं, ऐसा परमाणु कोई नही है जो अनादि कालसे लेकर अब तक अनन्त काल व्यतीत हो चुका ना, उसमे स्वतन्त्र ही रहा आया हो।

परमाणुके कार्यरूपत्वके साधक स्कन्धावयवभेदपूर्वकत्व हेतुमे अनैकान्तिक दोपका अभाव—अब शकाकार कहता है कि तुम्हारा यह हेतु अनैकान्तिक दोपसे दूषित है। कैसे ? सो देखिये ! आपने यह कहा है कि स्कधके अवयवीके भेद पूर्वक होनेसे खपरियाँ अथवा ततुकी तरह परमाणु भी कार्यरूप है और अनित्य है। तो देखो ! कपडा बन चुकनेके बाद ततुवोको बखेरा जाता है तो एक एक सूत अलग हुए वे तो पटके भेदपूर्वक है, कपडेके फाडनेपर या उस सूतके निकालनेपर सूत हुए हैं, लेकिन ऐसे भी तो सूत हैं जो कपडा बुना जाय उससे पहिले सूत ही थे, वे सूत तो कपडाके विनाशपूर्वक नही हुए। यह कहना कि सभी परमाणु अवयवीके विनाशपूर्वक हुए और उसमे दृष्टान्त खपरियोका और ततुवोका दिया सो सून तो अनेक ऐसे हैं कि जिनका अभी तक कपडा नही बनाया गया और पहिलेसे ही स्वतत्र हैं। तव यह तो नियम न रहा कि ततु सारे कपडेके बननेके बाद ही भेदन करनेसे हुआ करते हैं। तब तो तुम्हारा हेतु अनैकान्तिक दोषसे दूषित हो गया। तो जैसे ततु पटभेदपूर्वक नही भी होते इसी प्रकार अनेको परमाणु भी स्कधके भेदपूर्वक नही भी होते। इस शकाका उत्तर देते हैं कि ततु अब तक पटरूप नही बने हैं। खाली सूत ही सूत हैं वे भी अवयवोके भेदपूर्वक हुए हैं। पहिले पौनीके रूपमे थे और पौनीका अभाव होकर ततु निकला तो पौनी तो एक मोटी चीज है, अवयवीरूप है और उसमेसे थोडा थोडा कातनेसे सूत बना है तो वह कहना कैसे सही है कि सूत अवयवीके भेदपूर्वक नही हुए अवयवी मायने कोई पिण्ड, बडी चीज। लेकिन यहाँ देखो ना ! सूत भी पौनीके भेदपूर्वक हुए हैं। तो वह भी स्कधके भेदपूर्वक कहलाया।

परमाणुमें स्कंधविनाशपूर्वकत्व असिद्ध करनेके लिये संयोगविनाशसे अर्थविनाश माननेकी शंका व समाधान—शङ्काकार कहता है कि देखो बलवान पुरुषसे प्रेरित जो मुद्गर आदिकका घात है अर्थात् किसी बलवान पुरुषने बड़े मुद्गर मार दिया तो उस मुद्गरका प्रहार होनेसे अवयवोंमें कायकी उत्पत्ति हुई और फिर अवयवोंके बिखर जानेसे संयोगका विनाश हुआ और संयोगका विनाश होनेसे पदार्थों का विनाश हुआ। तो मतलब यह हुआ कि वह जो पदार्थ विनाश हुआ वह अवयवके भेदसे नहीं हुआ किन्तु संयोगके विनाशसे हुआ इसी तरह उस सूतके बननमें बात क्या हुई कि वहाँ जो पौनीके अवयवोंका विनाश हुआ, भेद हुआ वह इस तरह हुआ कि किसी बलवान पुरुषने या महिलाने हस्तादिक क्रियावोंका अभिघात किया, उसे खींचा, ताना। उसमें हुआ क्या? उस पौनीके अवयवमें क्रिया बनी। उससे हुआ अवयवका विभाग और उससे हुआ पौनीसे अवयवोंके संयोगका विनाश और संयोगके विनाशसे पौनीका नाश हुआ और वहाँ जो ततु उत्पन्न हुए वे पौनीके भेदके कारण नहीं हुए, किन्तु तन्तुके जो आरम्भिक अवयव हैं, जिससे ततुका आरम्भ होता है उन अवयवोंसे तन्तु उत्पन्न होते हैं। तो यों कपड़ा बननेसे पहिले रहने वाला ततु जो ततु है वह पानीके भेदपूर्वक नहीं होता। इसी तरहसे परमाणु भी अवयवीके भेदपूर्वक नहीं होता। इसी तरहसे परमाणु भी अवयवीके भेदपूर्वक नहीं होता। उत्तरमें कहते हैं कि इस तरहके विनाशकी प्रक्रिया बताना और उत्पादकी प्रक्रिया बताना यह तो केवल वचनजाल है, तुम कहते हो कि पौनीके ततु पौनीसे नहीं बने किन्तु ततु तो अपने अवयवोंसे बने हैं और वहाँ जो पौनीका नाश हुआ है सो नाश होनेसे पौनीका नाश हुआ है न कि भेदकरनेसे। और संयोगका नाश हुआ है अवयवके विभागसे और अवयवका विभाग हुआ है अवयवोंमें क्रिया होनेसे तो यह तो केवल एक वचनजाल है और इसका तो निषेध पहिले ही कर दिया था। सीधा जो प्रत्यक्ष सिद्ध है उसको टालकर और वचनजाल करके उसका निषेध करना तो यह बकवाद है जड़ता है।

परमाणुमें नित्यानित्यात्मकताकी प्रतीति—भैया! यही मानना सही है कि परमाणु ही पहिले कार्यके अजनक स्वभावको लिए हुए थे और संयोग दशामें परमाणु ही कार्यजनकत्व स्वभाव वाले हो गये। तो अजनक स्वभावका परित्याग करके जनक स्वभावमें आया है परमाणु। यों परमाणु कथंचित् नित्य है। नहीं तो, अगर सर्वथा ही नित्य है परमाणु और उनमें एकत्वका स्वभाव पड़ा हुआ है तो कार्यको उत्पन्न करनेका स्वभाव कह ही नहीं सकते उनमें, क्योंकि नित्य कहते ही हैं उसे कि जिसमें जरा भी बदल न हो। तो जब नित्य एकत्व स्वभाव वाले परमाणुवोंमें बदल जरा भी नहीं होती और उनमें जनकपना नहीं मानते तो उन परमाणुवोंके द्वारा रचा गया द्व्यणुक आदिक द्रव्य अनित्य है यह कहना अयुक्त है, क्योंकि जैसे ततु आदिक अवयवोंसे भिन्न पट आदिक अवयव द्रव्य कोई भिन्न नजर नहीं आते और नजर आरहा है कपड़ा क्योंकि वह उपलब्धि लक्षण प्राप्त है। परन्तु ततु आदिक अवयवोंसे निराला

कहीं कपड़ा नजर तो नहीं आ रहा। तो इसी तरह परमाणुवोंसे निराला कोई द्वयणुक आदिक अवयवी द्रव्य नहीं होता जिससे कि यह कहलें कि परमाणु तो नित्य ही होते हैं और उनसे बने हुए जो अवयवी पिण्ड हैं वे अनित्य होते हैं यह बात नहीं बन सकती। देखो ! कपड़ा बिल्कुल दिख रहा है, परन्तु पर ततुवोंसे न्यारा होकर दिख रहा हो सो नहीं। जैसे यह कपडा ततुमय है ऐसे ही द्वयणुक आदिक द्रव्य हैं, वे परमाणुमय हैं। जब द्वयणुक अनित्य है तो परमाणु भी अनित्य है।

समानदेशत्व होनेसे अवयवोंसे भिन्न अवयवी नजर न आनेके कथनकी असिद्धि— शंकाकार कहता है कि अवयवोंसे भिन्न अवयवी जो नजर नहीं आरहा है वह समानदेशी होनेसे नजर नहीं आ रहा। यहाँ जो अविशेषवादोंमें यह बात कही जा रही है कि जब अवयवोंसे भिन्न अवयवी नजर नहीं आते तो जो बात अवयवीमें है वही बात अवयवमें है जैसे कि ततु आदिक अवयवोंसे कपड़ा भिन्न नजर नहीं आरहा तो जो बात कपड़ामें है वही बात ततुवोंमें है। शंकाकार कहता है कि यह कहना यों ठीक नहीं कि अवयव और अवयवी एक ही देशमें रह रहे हैं, इस कारण अवयवोंसे निराला अवयवी प्राप्त नहीं होता। अब उक्त उत्तरमें कहते हैं कि समान देशमें रहनेके कारण यदि भिन्न-भिन्न रूपसे पदार्थ न जाना जाय तो देखो ! एक ही जगहमें वायु और गर्मी है। मगर, वायु भिन्न समझमें आती है और गर्मी भिन्न समझमें आती है तो यह बात तो न रही कि एक ही देशमें रहनेके कारण भिन्न रूपसे पदार्थ नजर नहीं आते। अवयवोंके देशमें अवयवी रह रहा है, इस कारण अवयवी अवयवसे भिन्न नजर नहीं आता, यह कहना अयुक्त है। अथवा किसी फलमें रूप और रस तो बिल्कुल एक ही जगह रह रहे हैं और फिर भी रूप और रस न्यारे-न्यारे समझमें आते हैं। तो यह कहना ठीक नहीं है कि समानदेशपना होनेके कारण भेदरूपसे अवयव और अवयवी नजर नहीं आरहे। समानदेशमें भी है रूप रस तथा समानदेशमें भी है वायु और गर्मी, मगर उनका स्वरूप निराला बराबर समझमें आता है। तो यों ही यदि अवयव अवयवी कुछ न्यारे ही न्यारे होते तो समानदेशमें रहनेपर भी ये भिन्न-भिन्न समझमें आते पर न्यारे तो हैं ही नहीं। मिट्टीके जितने कण हैं, जिनसे घडा बना है, क्या घडा मिट्टीके उन सब अवयवरूप कणोंसे निराला है ? फिर घडा ही क्या रहा? तो द्वयणुक आदिक जो अवयवी द्रव्य होते हैं वे परमाणुसे निराले ही हैं। परमाणु उनका उपादान है और उनका कार्यद्रव्य उनसे अत्यन्त जुदा नहीं है प्रतिभासभेद भर है। सब परमाणु कथंचित् नित्य हैं और कथंचित् अनित्य हैं। द्रव्यदृष्टिसे नित्य है पर्यायदृष्टिमें अनित्य है। उनमें यह विभाग करना कि पृथ्वी आदिकमें परमाणु तो नित्य कहलाते हैं और उनका जो कार्य द्रव्य है, पिण्ड है, अवयवी है वह अनित्य कहलाता, यह कहना अयुक्त है।

अवयव और अवयवीको अभिन्न माननेको भ्रान्त ज्ञान सिद्ध करनेमें

कारणरूपसे बताये गये समान देशपना हेतुकी शास्त्रीय देश व लौकिकदेश दोनो विकल्पोमे असिद्धि—शकाकार कह रहा है कि अवयव और अवयवी भिन्न भिन्न हैं, किन्तु समान देशपना होनेके कारण ऐसा लगता है कि अवयवोसे भिन्न अवयवी नही है, हैं दोनो न्यारे-न्यारे। शकाकारको अवयवोसे भिन्न अवयवी क्यो मानना पडा ? यो मानना पडा कि अवयव व अवयवीको अभिन्न कर देनेमे अवयवीके नष्ट होनेपर अवयवको भी नष्ट हुआ मानना पडेगा। यदि अवयव अवयवी भिन्न न माने जायें और ऐसा माननेपर अवयव हुए परमाणु, वे भी अनित्य बन बैठेंगे। तो शकाकारका सिद्धान्त है कि कारण द्रव्य तो है नित्य और कार्य द्रव्य है अनित्य इस कारण अवयव अवयवीको भिन्न-भिन्न मानना पडेगा। और विशेषवादमे तो कुछ ज्यादह सोचना ही नही है। हर जगह भेदकी बात तो बोल ही देना चाहिए। क्योकि विशेषवाद (भेदवाद) ने तो विशेष (भेद) का व्रत ले रखा है। तो अवयव और अवयवी को शकाकारने बताया कि समान देश होनेके कारण ये भिन्न-भिन्न ज्ञात नही होते, तो उनसे पूछा जा रहा है कि यह बतावो कि अवयव और अवयवीमें समान देशपना क्या शास्त्रीय देशकी अपेक्षासे है या लौकिक देशकी अपेक्षासे है ? इसका भाव यह है कि अवयव और अवयवी समान देशमे रह रहे है तो समान देशका अर्थ क्या अवयव अवयवीके खुदके प्रदेश ? उन प्रदेशोकी बात कही जा रही है कि वे प्रदेश दोनोके एक समान हैं अथवा लोक, देश, आकाश, स्थान किसी चीजको घेरे, इसकी अपेक्षा समान देश कहते हो। उक्त दो विकल्पोमे से यदि कहोगे कि शास्त्रीय देशकी अपेक्षा हम अवयव अवयवीमे समान देश कह रहे अर्थात् अवयवके खुदके प्रदेश अर्थात् अवयवीके खुद के प्रदेश उनमे समान देशपना है तो यह हेतु असिद्ध है, क्योकि पट अवयवीके आरम्भक ततु आदिक देश हैं वे जुदे हैं और ततु आदिकके देश पौनी सम्बन्धी अश माने गए हैं वे जुदे हैं तो शास्त्रीय देशसे समान कैसे हुए ? वैशेषिक सिद्धान्तमे अवयवके देश और अवयवीके प्रदेश ये न्यारे-न्यारे माने गए हैं। तब समान देशपना तो न रहा यदि कहो कि हम लौकिक देशकी अपेक्षासे अवयवी और अवयवियोका समान देशपना मानते हैं तो इसमे अनैकान्तिक दोष आता है, क्योकि लोकमें दिखता है कि एक घडे मे बहुतसे बेर भरे हैं तो सब बेरोका स्थान तो एक घडा ही है सभी बेर एक घडेमे रह रहे हैं मगर इन बेरोकी उपलब्धि भेदके साथ हो रही है। वैशेषिकने तो यह कहा था कि समान देशमे रहनेके कारण अवयव अवयवी अभिन्न माने हुए हैं लेकिन यहाँ तो देखो कि एक ही घडेमें रहने वाले उन बेरोकी उपलब्धि एक नही हो रही है, भिन्न भिन्न हो रही है तब लौकिक देशकी अपेक्षासे भी समान देशपना अवयव अवयवीमे नही बनता।

कतिपय अवयवो या समस्त अवयवोके प्रतिभास समान होनेपर अवयवीके प्रतिभासकी दोनो विकल्पोमे असिद्धि - अब और बतलावो क्या कुछ थोडेसे अवयवोके प्रतिभास होनेपर अवयवीका प्रतिभास होता है या समस्त अवयवो

का प्रतिभास होनेपर अवयवीका प्रतिभास होता है ? इसके पूछनेका तात्पर्य यह है कि कोई एक अवयवीको जाना, जैसे घडेको ही जाना तो घडेमे जितने अवयव है, जितने उस' अश हैं जितने मिट्टीके कण हैं उनमेसे कुछ अवयवोके ज्ञान करनेपर ही घड़ेका ज्ञान हो जाता है या उसके सारे कणोका ज्ञान करें तब घडेका ज्ञान होता है ? उनमें से प्रथम विकल्प तो अयुक्त है। अर्थात् कुछ अवयवोके प्रतिभास होनेपर ही अवयवी का प्रतिभास हो जाता है, यह कहना अयुक्त है क्योंकि जैसे जलमे डूबा हुआ महान काय वाला हाथी, जिसकी ऊपर केवल जरा सी सूढ निकली है। तो थोडेसे अवयवो का प्रतिभास होनेपर भी समस्त अवयवोमे रहने वाले उस अवयवी हाथीका प्रतिभास कहाँ हो रहा है ? मनसे विचार लें, युक्तिसे समझले वह बात दूसरी है मगर थोडेसे अवयव प्रत्यक्षसे ज्ञात होनेपर पूरा अवयवी प्रत्यक्ष हो जायें, यह कैसे सम्भव है ? यदि कहो कि समस्त अवयवोके प्रतिभास होनेपर अवयवीका प्रतिभास होता है तो वह बात अयुक्त है। किसी भी अवयवीको हम प्रत्यक्षसे जानते हैं तो वहाँ समस्त अवयवोका प्रतिभास कभी भी नही होता है। सारे अवयवोका प्रतिभास किसीका नही हुआ है। एक इस भीटको देख रहे हैं तो भीटके बीचके अवयव भीटके वे परभागके अवयव, उनका प्रतिभास तो हो ही नही सकता तब अवयवीका भी प्रतिभास न होना चाहिए क्योकि इस ओरके भागमे रहने वाले अवयवोको ग्रहण करने वाले प्रत्यक्षके द्वारा उस भागमे या मध्य भागमे रहने वाले अवयवोका ग्रहण नही हो सकता और इसी कारण इस भागमे समझे गए अवयवोकी व्याप्ति पूरे अवयवोको ग्रहण करनेमे समर्थ नही हो सकती, कारण कि व्याप्यके अग्रहणमे व्यापकका भी ग्रहण नही हो सकता। अनुमान प्रयोगसे भी समझलें कि जो वस्तु जिस रूपसे प्रतिभास होती है वह वस्तु उस ही प्रकारसे उसके व्यवहारका विषय हुआ करती है। जैसे—नील पदार्थ नील रूपसे प्रतिभासमान होता है तो वह नीलरूपसे ही नील ज्ञानका, व्यवहारका विषय होगा। तब इस ओरके भागमे रहने वाले अवयवोके सम्बन्धी रूपसे जब हमने इस अवयवका प्रतिभास किया तो बस इसही रूपसे व्यवहार होना पडेगा, समस्त अवयोके सम्बन्धसे हुए अवयवीका व्यवहार नही हो सकता।

विरूद्ध धर्माध्यास होनेपर भी अभेद माननेपर समस्त पदार्थोंमें अभेद का अनुषङ्ग—भीटके दूसरे भागमे रहने वाले अवयवोसे व्यवहित अवयवोका प्रतिभास हो नही रहा और अव्यवहित अप्रतिभासमे आ जाय यह नही हो सकता। अर्थात् भीट के उस भागकी चीज प्रत्यक्षमे नही आ रही और हम उस सारी भीटको पूरा व्यवहित निरन्तर जैसी खडी तैसी प्रत्यक्षसे जानलें यह नही हो सकता, क्योकि जब दूसरे भागके अवयवोका प्रतिभास ही नही हो रहा तो उन अवयवोमे रहने वाले अवयवीका प्रतिभास कैसे हो सकता है ? देखिये ! जिसके प्रतिभासमात्र होनेपर जो स्वरूप नही होता वह उससे भिन्न माना गया है। जैसे—घटके प्रतिभासमान होनेपर पटका स्वरूप प्रतिभासमान नही होता, तब मानना ही पडेगा कि जो प्रतिभासमान घट हो रहा

है उसके जरिये पटका व्यवहार न किया जा सकेगा। इसी तरह भींटके इस भागमें रहने वाले अवयवोमे जो अवयवी कहला रहा है उस स्वरूपका प्रतिभास होनेपर भी दूसरे भागमे रहने वाले अवयवो से सम्बन्धित अवयवीका स्वरूप प्रतिभासमे नही आ रहा। फिर जब दो भाग हो गए तो निरश एक अवयवीकी सिद्धि कैसे हो सकती है ? यह भीट एक नही है किन्तु इस ओरकी भीट यह है. उस ओरकी भींट वह है। एक अवयवी नही कहा जा सकता। देखो ! इस ओरके भागमें और दूसरी ओरके भागमे जो अवयव रह रहे हैं उनसे सम्बन्ध रखने वाली बातें दो हैं ना ! तो विरुद्ध धर्म आ गए अब यहाँ। अर्थात् एक तो है व्यवहित धर्म वाला और एक है अव्यवहित [समक्ष] धर्म वाला, तो दो धर्म वाले वे भाग हैं दो, फिर भी उनमें अभेद मान लोगे तो सब जगह भेद खतम करदो। घट पटमे भी कहदो—एक ही चीज है। जब इस भागके अवयवोंसे सम्बन्धित अवयवीमे और भीटके दूसरे भागसे सम्बन्धित अवयवीमें एकता मानकर एक अवयवी कह देते हो तो भिन्न-भिन्न जैसे अनेक पदार्थ रखे हैं, उनको भी एक मान बैठो, क्योंकि विरुद्ध धर्मका परिचय होना यही भेदका कारण हुआ करता है अब विरुद्ध धर्मके होनेपर भी तुम मान रहे हो एक और उसे भी निरश। देखो ! यह चीज इससे भिन्न है, ऐसा समझनेका उपाय क्या है ? विरुद्ध धर्मका परिचय होजाना, यह गधा ऊँटसे विरुद्ध है यह कैसे जाना ? ऊँटके धर्म जिस तरहके हैं उससे विरुद्ध हैं गधेके, तो विरुद्ध धर्मका परिचय हो जाना यही भेदका कारण हुआ करता है। इसके सिवाय और कुछ भी बात भेदका कारण नही होती। यदि कहा कि प्रतिभास भेदका कारण बन जाता है तो यह भी बात गलत है। केवल इतना कहनेसे बात न बनेगी, क्योंकि भेद करने वाला है विरुद्ध धर्मका परिचय। वह यदि नही है तो प्रतिभास भेद करने वाला नही बन सकता। इस कारण विरुद्ध धर्मका होना ही भेदका कारण बनता है।

सस्मरण प्रत्यक्षसे भी समस्त अवयवोमे व्यापी अवयवीकी अप्रसिद्धि

यहाँ यह भी नही कह सकते कि दूसरे भागमे रहने वाले अवयवो और अवयवीका जो ग्रहण करे ऐसे प्रत्यक्षसे अवयवीका इस भागमे रहने वाले अवयवोमे सम्बन्धीपना ग्रहणमें आ जायगा। याने उस भीटके उस भागको छोडकर इस ओर आना और फिर इस ओर आकर स भागको देख लिया और उनका सम्बन्ध बना लिया लो एक भींटका प्रत्यक्ष हो गया। कहते हैं कि यह भी बात नही कही जा सकती। इसमें भी दोष है। जब जिसका प्रत्यक्ष कर रहे तब उसका ही ज्ञान है। व्याप्यके ग्रहण न होने पर व्यापकका भी ग्रहण नही बन सकता। यह भी नही कह सकते कि स्मरणके द्वारा इस भाग-और परभागमे रहने वाले अवयवोसे सम्बन्धित अवयवीके स्वरूपका ग्रहण हो जायगा। जैसे—भीटको रोज-रोज तो देखते रहते हैं, दोनो तरफसे जब समझ लिया है तो स्मरण तो रहेगा उस स्मरणके द्वारा उस पूरे अवयवीके स्वरूपका ग्रहण हो जायगा यह बात नही कह सकते, क्योंकि स्मरणकी प्रवृत्ति प्रत्यक्षके अनुसार ही

होती है। और, प्रत्यक्ष परभागका ग्रहण करने वाला होता नही। यदि भीटकी दूसरी ओर आकर देखेंगे तो वही दीखेगा, इस ओर आकर देखेंगे तो यही दीखेगा और प्रत्यक्षसे जो देखा गया उस हीमे स्मरणकी प्रवृत्ति होती है। इस कारण अवयव और अवयवीको भिन्न-भिन्न मान लेनेपर अवयवीका प्रतिभास करना कठिन हो जायगा। तो इस अवयवीका ज्ञान करने वाला ज्ञान तो बन नही पा रहा। याने ज्ञान द्वारा अवयवीका ज्ञान न हो सका।

आत्मा द्वारा भी सकलावयवव्यापी अवयवीकी विशेषवादमें असिद्धि

यदि कहो कि उसे आत्मा जान लेगा, प्रत्यक्षसे न जान सके, स्मरणसे न जान सके तो आत्माके द्वारा इस भाग और परभागके अवयवोंमें रहने वाले अवयवीको समझ लिया जायगा। कहते हैं कि अवयवीके इस धर्मको कि यह अवयवी दोनो भागोके अवयवोमे रह रहा, यह ग्रहण आत्मा नही कर सकता। क्योंकि आत्मा तो जड है। वैशेषिक सिद्धान्तमे आत्माको जड माना गया है। ज्ञान गुणका समवाय सम्बन्ध होनेसे आत्मा ज्ञानी बनता है। तो स्वय अपने आपके सत्त्वसे आत्मा ज्ञानरहित रहा। तो जो ज्ञान-रहित है सो जड है। भले ही आत्माका चैतन्य स्वरूप माना गया है लेकिन वह चैत-न्य ज्ञानसे रहित है। वह चैतन्य कथनमात्र है। अथवा ज्ञानका समवाय आत्मासे ही क्यों हो, आकाशादिसे क्यों न हो उसका उत्तर बनानेके लिये चैतन्य कहना पडा। उस चेतनमे ज्ञानका जब समवाय सम्बन्ध होता है तब वह ज्ञान करता है। तो ज्ञान बिना आत्मा जड है, सो जड होनेके कारण आत्मा यह नही जान सकता कि यह अवयवी दोनों भागोंके अवयवोमे रहने वाला है। यदि जड होनेपर भी आत्मा कुछ जानने लगे तो जब नीद आ रही हो, नशा चढ रहा हो, मूर्छा आ गई हो ऐसी अवस्थामे भी अवयवियोंका ग्रहण करनेका प्रसङ्ग आ जायगा। यदि कहो कि प्रत्यक्ष आदिक ज्ञानो की सहायता लेकर आत्मा अवयवोंके स्वरूपको ग्रहण कर लेगा तो यह बात नही बन सकती, क्योंकि प्रत्यक्ष आदिक ज्ञानोमे यह सामर्थ्य नही है कि किसी अवयवीको इस ढङ्गसे जान सके कि वह अवयवी अपने समस्त अवयवोमे व्यापकर रह रहा है, क्योंकि प्रत्यक्षसे तो सामनेके अवयव दीखेंगे और अवयवी है समस्त अवयवोमे रहने वाला तो अवयव और अवयवीको सर्वथा भिन्न माननेपर अवयवीके ज्ञानका अभाव हो जायगा।

किसी भी प्रकार प्रत्यक्षसे (सांव्यवहारिक प्रत्यक्षसे) सकलावयव व्यापी अवयवीका अप्रतिभास

शकाकार कहता है कि भीटका एक भाग दीखने के बाद उत्तरकालमे परभाग दीखनेके अनन्तर उत्पन्न हुए स्मरणकी सहायता पाकर जो इन्द्रियजनित ज्ञान हुआ,—"यह वही है" इस तरह जो प्रत्यभिज्ञान हुआ वह प्रत्यभिज्ञा ज्ञानरूप प्रत्यक्ष अवयवीको जो पूर्व पर अवयवोंमें व्याप्त है, इसे ग्रहण कर लेगा। अर्थात् एक बार देख लिया, बादमें दूसरी ओर भी देखा, अब स्मरण रहा,

उस तरफ भी यह भींट है, इस तरफ यह भींट है, फिर यह वही एक भींट है, इस तरहका ज्ञान होता है और वह पूरे एक अवयवीका ज्ञान बन जाता है। उत्तर देते हैं कि यह बात असिद्ध है। प्रत्यभिज्ञान प्रत्यक्ष नहीं कहलाता, वह तो परोक्षज्ञान है। जो इन्द्रियाश्रित है और विशद बोध करनेका स्वभाव रखता है प्रत्यक्ष उसे कहते हैं। जैसे कि सिद्धान्तमे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा जाता है, पर यह तो पूर्व भाग और अपर भागके देखने और स्मरणके प्रसङ्गमे ज्ञान बनाया है उसमे प्रत्यक्षका लक्षण तो घटित नही होता, वह तो क्रमसे जाना गया, प्रत्यक्षसे कोई अवयवी पूरा जान लिया जाय यह बात तो नही बनी। और यदि उस सारे ज्ञानका जो देखा दोनो और स्मरण भी किया उसके अनन्तर एक प्रत्यभिज्ञा ज्ञान बनाया। यदि उसे प्रत्यक्ष मान लेते हो तो उन सब ज्ञानोसे फिर इन समस्त अवयवोमे व्यापकर रहने वाले अवयवोके स्वरूप को ग्रहण करनेकी बात असम्भव हो जायगी, क्योकि इन्द्रियाँ समस्त अवयवोके ग्रहण करनेमे समर्थ नही हैं। जो सामने हो अभिमुख हो उसको ही तो जान सकता है प्रत्यक्ष। यह भी नही कह सकते कि स्मरणकी सहायता लेने वाले इन्द्रियका उसमे व्यापार बन जायगा क्योकि जिस इन्द्रियका जो विषय नही है उसमे व्यापार उसका अनेक स्मरण व अन्य इन्द्रियोकी सहायता लेनेपर भी नही हो सकता, क्योकि जो जिसका विषय नही है वह उसमें स्मरण आदिकी सहायता लेनेपर भी प्रवृत्ति नही कर सकता। जैसे—नेत्रका विषय गधका ग्रहण करना नही है। तो इत्रादिक पदार्थोंका कितना ही स्मरण करें, उस स्मरणकी सहायता लेकर भी नेत्र गधको ग्रहण नही कर सकता है इसी प्रकार जो व्यवहित अवयव हैं मध्यके या उस भागके, वे इन्द्रियके विषय नही हैं। तो जब परभागका या मध्य भागका अवयव इन्द्रियका विषय नही है तो प्रत्यक्षसे जाना नही जा सकता और फिर अवयवीका ज्ञान अध्यक्षसे कहा नही जा सकता है।

निरंश अनेक अवयवोमे निरंश एक अवयवीकी वृत्तिकी अयुक्तता—यहा एक अन्य बात यह भी है कि एकस्वभावी अवयव अवयवोमें व्यापकर रहे यह बात घटित नही होती है। शकाकारके यहां अवयव भी निरंश हैं और अवयवी भी निरंश हैं। अवयवोंसे अवयवी भिन्न है तो जब अवयवी भी एकस्वभाव है, निरंश है, तब अनेक अवयवोमें अवयवीका रहना घटित नही होता। उनका प्रयोग है कि जो निरंश एकस्वभावी द्रव्य है वह एक साथ अनेक द्रव्योके आश्रित नही रह सकता। जैसे कि परमाणु। परमाणु निरंश और एकस्वभाव द्रव्य है, तो वह अनेक द्रव्योके आश्रित नही रह सकता। इसी प्रकार अवयवी द्रव्य भी शकाकारने निरंश एकस्वभाव रूप माना है, तो वह अवयवी द्रव्य भी अनेक द्रव्योके आश्रित नही रह सकता। तो जब अनेक अवयवोमे व्यापकर अवयवीका रहना घटित नही होता, तो प्रत्यक्षसे अवयवीका ज्ञान कैसे बन सकता है? अथवा दूसरा प्रयोग यह है कि जो अनेक द्रव्य हैं वे एक साथ निरंश एक द्रव्यसे अन्वित नही हो सकते। जैसे घट पट आदिक पदार्थ

और अनेक द्रव्य है अवयव, तो जो अवतवं हैं अनेक द्रव्य वे एकसाथ निरंश एक अवयवीसे अन्वित कैसे बन सकेंगे ? इससे अवयव निरंश है, अवयवी निरंश है और अवयवोसे अवयवी भिन्न है या अभिन्न कल्पित है, यह बात घटित नही होती।

सर्वात्मकरूपसे अवयववोमे अवयवीकी वृत्तिकी मीमासा—अथवा मान भी लें कि अवयवीकी वृत्ति अनेक अवयवोमे हो जाती है अर्थात् अवयव अनेक अवयवो मे हो जाती है अर्थात् अवयव अनेक अवयवोंको व्यापकर रह सकते है, तो यह बतलावो कि यह वृत्ति अर्थात् अवयवीका अवयवोमे रहना सर्वात्मकरूपसे हैं या एक देशरूपसे है ? यदि कहो कि अनेक अवयवोमे अवयवीका रहना सर्वात्मकरूपसे होरहा है तो उसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक अणुवोमे एक एक अवयवीका रहना कहलाया, फिर तो जितने अवयव हैं उतने ही अवयवी बन जायेंगे और ऐसा मान लेनेपर कि जितने अवयवी होते हैं अवयवी भी उतने होते हैं, तब तो जैसे अनेक घडोमें रखे हुए वेर आदिककी तरह अवयवी भी अनेक दिखना चाहिए, पर इस तरह अनेक अवयवी कहाँ प्रत्यक्षमे आते ? इससे अवयवीका अनेक अवयवोमे रहना सर्वात्मकरूपसे तो बनता नही।

एकावयवक्रोडीकृत स्वभावसे एकदेशसे अनेकावयवोमे अवयवीके रहनेकी असिद्धि—यदि कहो कि अवयवीके अनेक अवयवोमे रहना एकदेशसे होता है, तो यहा भी यह बात बतलावो कि अवयवीका जो अनेक अवयवोमे रहना है सो क्या एक अवयवके द्वारा क्रोडीकृत स्वभावसे रहना है या स्वभावान्तरसे रहना है ? इन विकल्पोका खुलासा यह है कि एक अवयवीका जो अनेक अवयवोमे रहना है तो क्यो इस तरहसे रहना है कि एक अवयवने अवयवीको अपनेमे घेर रखा अपने उदरस्थ कर लिया, अपनेमे समा लिया, क्या इस स्वभावसे अवयवीका अवयवोमे रहना होता है या कोई अन्य स्वभावसे ? यदि कहो कि एक अवयवके द्वारा अपनेम गर्भस्थ कर लिए गए स्वभावसे रहना होता है अवयवीको, तब तो उस ही अवयवके द्वारा जब अवयवीको क्रोडीकृत कर लिया, अपनेमें घेर लिया, समा दिया, तब अवयवीका ऐसा अवयवोमे रहना नही बन सकता। जो एकके द्वारा क्रोडीकृत वस्तुस्वरूप है याने जो बात एकमे घिर चुकी है वह अन्य जगह नही रहती। जैसे एक पात्रमे घिरा हुआ आम आदिक फल दूसरे बर्तनके मध्यमे नही आ रहा, जैसे एक आम एक डिब्बेमे रखा है तो वही आम दूसरे डिब्बेके मध्यमे तो नही पहुचा ? इसी प्रकार एक अवयव अवयवीका गर्भस्थ करले, तब वह अवयवी अन्य अवयवोमे तो न पहुँचेगा ? अन्य अवयवोके मध्यमे तो न ठहर सकेगा ? और, यदि एक अवयवके द्वारा अवयवी स्वरूप क्रोडीकृत होनेपर भी अन्य जगह रहे तब फिर इस विवक्षित अवयवमे उस अवयवीकी वृत्ति नही रह सकती, क्योकि किसी एक अवयवमे जब अवयव रह चुका तो उसमे अन्य स्वभाव अब नही पाया जा रहा। एक अवयवसे सम्बन्धित स्वभाव वाले अवयव

का यदि अन्य देशके अन्य अवयवसे सम्बन्ध मान लिया जाय तो सब अवयवोमे एक देशताकी आपत्ति आ जायगी, अर्थात् सारे अवयव एक अशमात्र अणुमात्र रह जायेंगे, और जब एकदेशमात्र ही रह जायेंगे सारे अवयव, तो वह एकात्मक रह गया, एक अणु मात्र रह गया, क्योंकि अब अवयवोका रूप भिन्न-भिन्न तो न रहा, वे सब एकदेशमें आ गए। और, एकात्मक हो गए। यदि उन अवयवोका विभक्त रूप माना जाय, जुदे जुदे रूपमे हैं वे सारे अवयव तो फिर एकदेशता न रहेगी। या तो एकदेशपना मान लीजिए या अलग अलग रहना मान लीजिए। यह नही हो सकता कि एक देशमे ही सारे क्रोडीकृत हो जायें और फिर उनका स्वरूप विभक्त जुदा-जुदा रह जाय। इससे यह बात तो सिद्ध नही हुई कि अवयवीके अनेक अवयवोमें वृत्ति एक अवयवके द्वारा क्रोडीकृत स्वभावसे हुई है।

स्वभावान्तरसे एकदेशतः अवयवोमे अवयवीकी वृत्तिकी असिद्धि—अब यदि कहोगे कि स्वभावान्तरसे अवयवीकी अवयवो मे वृत्ति होती है तब फिर अवयवी निरश न रहा। साश हो गया क्योकि अन्य अन्य स्वभावसे अन्य अन्य अवयवोमे अवयवोंकि वृत्ति होना मान लिया है फिर यो कथचित् अनेक हो जायेंगे क्योकि अब अवयवीके स्वभावभेद बन गये ना। एक स्वभावसे एक स्वभावमे रह रहा अवयवी दूसरे स्वभावसे दूसरे अवयवमें रह रहा अवयवी तो जितने स्वभाव हैं उतने ही अवयवीके भेद हो गये। स्वभावभेद से ही तो पदार्थों कि सख्या जाना जाती है। जहाँ जहाँ स्वभावभेद मिलता है वहाँ वहाँ भिन्नता परखी है। और फिर वे स्वभाव अर्थात् अवयवों का अवयवो रहना जिन जिन स्वभावोसे हुआ करता है वे स्वभाव, यदि अवयवीकी वृत्तिसे भिन्न हैं तो उनमे भी यह स्वभावान्तरसे रहेगा तब यो चलाते चलाते अनवस्था दोष होगा। यदि वे स्वभाव अवयवीसे अभिन्न हैं तो अवयवोंने क्या अपराध किया? जो ऐसा नही मान लेते कि अवयवी अवयवोसे कथचित् अभिन्न और ऐसा अगर मान लोगे तो यह बात माननी ही पडेगी कि अवयवी अनेक होते हैं और अनित्य होते हैं क्योकि वे अवयवोसे अभिन्न होते हैं अवयवस्वरूपकी तरह। चाहे फिर पीटो अथवा रुदन करो यह तो मानना ही पडेगा अपने हठ किये गये मन्तव्यके खिलाफ कि अवयवी साश याने अनेक हैं और वे सब अनित्य हैं। प्रयोग भी बन जायगा कि अवयवी साश तथा अनेक होते हैं, क्योकि अवयवोसे अभिन्न स्वभाव होनेके कारण। अब अवयवअवयवोंसे अभिन्न हो गए और अवयव हैं अनेक तो इसका अर्थ हुआ कि अवयवी भी अनेक हो गए और अवयवोका समूह है अवयवी तो अवयवी साश हो गये।

प्रत्येक वस्तुकी द्रव्यपर्यायात्मकताका यथार्थ विधान—इस प्रसगमे बात तो सीधी इतनी है कि अनेक परमाणु तो हुए तो अनेक अवयव और उनका जो विशिष्ट सयोग सम्बन्ध हुआ और एक सकध पिण्ड बन गया वह हुआ एक अवयवी। तो वह अवयवी अवयवात्मक है, अवयवो से भिन्न नही है। अवयवीका उपादान वे अव-

यव ही तो है। तो वह अवयव स्वय नित्यानित्यपरात्मक है और इसी कारण अवयवी भी अनित्य वन गया पर उनमे द्रव्य वाले द्रव्यकी दृष्टिसे नित्य कहा जायगा और नित्यपना आता है सामान्य अश द्वारा और अनित्यपना आता है विशेष अश द्वारा तब पदार्थ सामान्यविशेषात्मक ही तो हुआ वहाँ यह विभाग करना कि जो अवयव है वह कारणरूप है इस कारण नित्य ही कहलाता है और जो अवयवी है वह कार्य द्रव्य है, इस कारण अनित्य ही कहलाता है। यो स्वतत्र स्वतत्र नित्य–अनित्य मानना युक्त नही है। किन्तु प्रत्येक पदार्थ प्रत्येक अणु द्रव्य दृष्टिसे नित्य है और पर्याय दृष्टिसे अनित्य है। नित्य नित्यात्मक माननेपर ही लोकसृष्टिकी व्यवस्था वन सकती है। किसी भी पदार्थको सर्वथा नित्य माननेपर अथवा सर्वथा अनित्य माननेपर लोकसृष्टिकी व्यवस्था नही वन सकती। कारणभूत परमाणु यदि सर्वथा नित्य ही हैं तो उनमे कार्यभूत द्रव्य वन ही नही सकता अगर बने तो कारणभूत परमाणुवोमे अनेक स्वभावता आ ही गयी और इस कारण कारणभूत परमाणु भी कथचित् अनित्य वन जाते है यो पदार्थ नित्यानित्यात्मक है सामान्यविशेषात्मक है और वही प्रमाणका विषयभूत होता है। उसके विरुद्ध स्वतत्र किसीको नित्य मानना और किसीको सर्वथा अनित्य मानना, यह वस्तु स्वरूपसे वाहरकी वात है।

अवयवीको अविभागी माननेपर रग आवरण आदिका उसमे सर्वत्र प्रसङ्ग— जो लोग अवयवको निरश और अवयवीको भी निरश मानते है उनसे कहा जा रहा है कि यदि अवयवीका विभाग नही है तब अवयवीके एक देशमे कोई आवरण पड जाय अथवा कोई रग लग जाय तो समस्त अवयवीमे आवरण और रङ्ग लग जाना चाहिए क्योकि उस अवयवीमे तो अश ही नही। सो जो निरश एक वस्तु हो, उसमे जो भी परिणमन हो वह उसमे सर्वत्र हुआ करता है। अविभागी अवयवी माननेपर यही तो अर्थ हुआ कि रग और गैर रगसे युक्त आवृत और अनावृतका अवयवी मे एकत्व माना गया है और इसी कारण उस अवयवीके एक हिस्सेमे रग लग जाय तो सर्वत्र रग और आवरण होना चाहिए, किन्तु ऐसी प्रतीति किसको है? प्रत्यक्ष विरुद्ध भी वात है। एक घडा है एक जगह छन्ना रख दिया तो सर्वत्र आवरण कहाँ होता? या एक जगह कोई रग गिर गया तो सर्वत्र कहाँ रँगा? जो परस्परमे विरुद्ध धर्मसे युक्त है उसका फिर एक बताना युक्त नही है। देखो ना! अवयवीमे आवृत और अनावृत दो धर्म हो गए ना! उनमे एक जगह थोडा लाल रग पोत दिया तो रगा और गैर रगा ऐसा परस्पर विरुद्ध धर्म हो गया ना! और फिर भी उसे एक कहे, निरश कहे, यह कैसे युक्त हो सकता है? जो विरुद्ध धर्मसे युक्त हो वह एक नही हो सकता। जैसे घट पट आदिक पदार्थ। और, यहा अवयवीका स्वरूप देखो! कुछ तो उपलभ्य हो रहा, कुछ अनुपलभ्य हो रहा, एक ही भीट है, एक भाग उपलभ्य है, दूसरा भाग अनुपलभ्य है। किसी एक वस्तुपर आधेपर आवरण पडा है, तो आधा भाग आवृत है, दूसरा भाग अनावृत है, तो ऐसे विरुद्ध धर्मसे युक्त अवयवीका स्वरूप

है फिर भी उसे एक मानो तो सारे विश्वको फिर एक द्रव्य मानलो, चाहे वे कितनी ही दूर-दूर हो, कितना ही भिन्न-भिन्न हो, विरुद्ध धर्म होनेपर भी जब अभेद मानने की बात करने लगे तो सारे विश्वकी एक द्रव्यरूपता हो जायगी।

संयोगको अव्याप्यवृत्तित्व लक्षण माननेपर भी अनिष्ठापत्तिका अपरिहार—शंकाकार कहता है कि देखो ! वस्त्रका एक छोर यदि रग दिया तो वस्त्रादिकमे जो राग लगा है उसके मायने क्या है कि कुकुम आदिक द्रव्यके साथ वस्त्र का संयोग किया, यही तो अर्थ हुआ। कपडेका रग, इसके मायने यह है कि रगके साथ कपडेका संयोग किया। और संयोगका लक्षण है अव्याप्य वृत्तिपना अर्थात् जिन पदार्थों में संयोग होता है उन पदार्थोंमे संयोग पूरेमे व्यापकर नही होता। जैसे दो हाथोंका किया, तो एक हाथ दूसरे हाथमे व्यापकर न रहा। तो बिना व्यापे वृत्ति होनेका नाम है संयोग। सो वस्त्र आदिकके साथ उस रगका संयोग होना है। चूकि संयोगका लक्षण है यह कि जिसमे सर्वत्र न व्याप करके वृत्ति रहनेका गुण हो सो संयोग है। सो संयोगका लक्षण ही यह कह रहा है कि अगर एक जगह रङ्ग लगा है तो सब जगह रग न लगेगा। एक देशपर अगर आवरण है तो सब जगह आवरण न होगा, क्योकि आवरण अथवा रग संयोगरूप है। और, संयोगका लक्षण है कि जो सर्वत्र न व्याप करके रहा करे सो संयोग है। समाधानमे कहते हैं यह भी बात सारहीन है। तुम अवयवीको तो निरंश मानते—जैसे कपडा हुआ कोई और उसे माना तुमने निरंश एक द्रव्य तो अब उसमे जब कुकुम आदिक रगीन पदार्थोंका संयोग हुआ तो एक निरंश पटमे अब कौनसा हिस्सा रह गया जो रगसे व्याप्त न हो। और, जिससे फिर अव्याप्यवृत्ति वाला संयोग मान लिया जाय। जब अवयवी निरंश है, उसमे हिस्से नहीं हैं तो कोई चीज वहाँ रहेगी तो बिना व्यापकर रहेगी यह कैसे हो सकता है ? अगर कहो कि बिना व्यापकर रहेगा संयोग उस पदार्थमे, रग पूरेमे नही व्याप पाता है जिससे संयोग किया जाय। अथवा संयोग भी नही व्यापता तो इसके मायने हैं कि अवयवीमे भेद हो गए। कुछ अवयवीका हिस्सा रहा व्याप्तस्वरूप, कुछ अवयवीका हिस्सा रहा अव्याप्तस्वरूप। जब अवयवीमे दो विरुद्ध धर्मोंका सम्बन्ध हुआ तो उसमे एकत्व कैसे आयगा ?

विशेषवादमे संयोगके अव्याप्यवृत्तित्व लक्षणकी असिद्धि—और भी सुनो ! यह जो कहा कि संयोगका लक्षण है अव्याप्य वृत्तित्व अर्थात् व्याप करके न रहना, निकट रहना, तो अव्याप्य वृत्तित्वका अर्थ क्या है ? क्या यह अर्थ है कि सब द्रव्योमे न व्याप सकना ? या इसका यह मतलब है कि एक देशमे रहना। संयोग किसी पदार्थमे लगता है और बिना व्यापकर रहता है तो इसके मायने क्या है ? क्या सब द्रव्योमे न व्याप सकना या द्रव्यके एक देशमे ही रह सकना ? इन दो विकल्पोमे पहला विकल्प तो युक्त नही है। यह कहना कि संयोगकी वृत्ति सर्वत्र नही हो पाती।

तो जिसमे सयोगकी वृत्ति कर रहे हों वह अवयवी हो या कोई अवयव हो, वह सब निरश माना है तो अवयवी निरश एकमे सर्व शब्द कह ही नही सकते। सर्व शब्दकी प्रवृत्ति वहा होती है जहा अनेक हुआ करते हैं। निरश एक अवयवीमे यो कहना कि उसका सर्व देशमे सयोग नही व्याप रहा, लो युक्त नही है, क्योंकि वहा सर्वदेश है कहा? वह तो एक निरश है। यह कहना कि अव्याप्य वृत्तित्वका अर्थ यह है कि एक देशमे रहना तो भला निरश एक अवयवीका एक देश है ही कहाँ? अगर एक देश मान लोगे तो अवयवी सावयव हो गया, विभाग वाला हो गया। उसमे नाप तौल विस्तार हिस्से विभाग ये सब बन बैठेंगे। तो इस कारण आप शकाकारके यहा जिस तरहसे कल्पना करते हैं उस तरह कोई अवयवी नही है, क्योंकि उसमे वृत्तिके विकल्प नही बन पाते हैं अर्थात् अवयवोमे अवयवी रहता है तो किस तरह रहता है? क्या सर्वात्मकरूपसे रहता है या एकदेशसे रहता है आदिक जो वृत्तिके सम्बन्धमे विकल्प किए वे विकल्प सब निराकृत हो जाते हैं, वे ठहर नही पाते। इससे अवयवी नही है।

निरश अवयवीके निराकरणमे दिए गए साधनमे शङ्काकार द्वारा स्वतन्त्र साधन न बननेरूप आपत्तिका प्रदर्शन—अब शङ्काकार कहता है कि अवयवीके निराकरण करनेमे जो साधन दिया है, जो हेतु दिया है कि अवयवी नही है क्योंकि वृत्तिके विकल्पादिककी अनुत्पत्ति है तो आपका यह साधन क्या स्वतत्र है प्रसङ्ग साधनरूप है? स्वतन्त्र साधनके मायने यह है कि वास्तवमे साध्य है, साधन है, दृष्टान्त है, पक्ष है, ये सब चीजें सही–सही तौरमे हैं इस तरहसे अनुमान बनाओ तो उसे कहते हैं स्वतन्त्र साधन। और, प्रसङ्ग साधन कहते है उसे कि प्रतिवादी जो कुछ मान रहा है उसमे अनिष्टता ला देना, इस तरहसे जो कुछ कहा जाय उसे कहते हैं प्रसङ्ग साधन। याने प्रसग साधनमे कुछ करना नही है, किन्तु प्रतिवादीकी जीभ चुप करना है। वह जो मान रहा है उसमे अनिष्टको उत्पन्न कर देना है। क्या अवयवीके निराकरणमें जो साधन दिया जा रहा है वह स्वतत्र है या प्रसग साधन है? अनुमानका रूप तो यह बनाया कि अवयवी नही है, क्योंकि वृत्ति विकल्पात्मककी वृत्तिकी अनुपपत्ति होनेसे। अर्थात् जब पूछते है कि अवयव अवयवीमे किस तरह रहता है? तो इसका कोई उत्तर भी नही बनता। तो इस अनुमानका यह हेतु स्वतन्त्रसाधन है तो इसमे धर्मी और साध्य पदका विघात है। धर्मी क्या बनाया? अवयवी। और साध्य क्या बनाया? नही है। शकाकार कहता जा रहा है कि पहिले तो यह कहा कि अवयवी, तो इसके कहनेके मायने है कि है अवयवी, और फिर कहते हो—नही है तो यह कैसी उल्टी बात है? यह और नही, ये दो परस्पर विरोधी वचन किस तरह लगेंगे? शकाकारका यह एक ऐसा चतुराईपूर्ण सुझाव है, एक युक्ति है कि किसी चीजको मना कर ही न सके कोई। जैसे कोई कहे कि सर्वज्ञ नही है अरे भाई पहिले तो मुखसे कह दिया सर्वज्ञ, तो 'है' बन गया ना सब कुछ। फिर कहते हो नहीं है। कोई कहे गधेके सीग नही है, अरे! कैसी बात कर रहे। पहिले तो बोल दिया

गधेके सींग, तो वे तो तैयार हो ही गए, और फिर कहते हो नही हैं, तो इसी तरह यहापर पहिले तो अवयवी शब्द कहकर स्वीकार कर लिया और फिर कहते हैं नास्ति, तो तुम्हारे स्वतन्त्र साधनमे धर्मी और साध्य पदोंका विघात होता है और फिर अवयव तो लोकप्रसिद्ध है। सब कुछ आखो दीख रहा है और फिर उसे कहते हो नही है दूसरा दोष यह है कि तुम्हारा हेतु आश्रयासिद्ध है आश्रयके मायने पक्ष है वह है यहा अवयवी, वह जैनोके यहा कहाँ प्रसिद्ध है ? वैशेषिक शकाकारने अपनी कल्पनामे जैसा अवयवी मान रखा उसके लिए तो वही अवयवी है, उससे भिन्न कुछ लक्षण होता तो नही है। तो आश्रयसिद्ध दोष हो गया, सो आश्रय याने अवयवी ही प्रसिद्ध नही है। उसमे यह भी नही कह सकते कि समवायसे उसका सत्त्व व्याप्त है क्योंकि समवाय वृत्ति माना ही नही है। और बिना समवाय माने ही जैन लोगोने रूपादिक का सत्त्व मान लिया है। बात तो थी यों कि रूप रस, अग्नि और पृथ्वी आदिक द्रव्य हैं, द्रव्यमे रूप गुणका समवाय होता है तब उसमे रूप पदा होता है यह कह सकते हैं। और, जैन लोग तो स्वरूपसे ही मानते कि पृथ्वी है तो सहज ही रूपवान है, तो समवाय कहा मानते ?

अवयवीका विशेषरूपसे वृत्तिके निषेधसे सामान्यवृत्तिका शकाकार द्वारा समर्थन—और भी बात सुनो। जो यह कहा पहिले जैनादिकने कि अवयवी अवयवोमे एकदेशसे रहते हैं या सर्वदेशसे रहते हैं ? तो उन्होंने एक देशसे रहने का भी निराकरण किया और सवदेशसे रहने का भी निराकरण किया। याने विशेषका प्रतिषेध कर दिया तो उससे यह भी और साथमे सिद्ध हो गया कि एक देशसे नही है और सर्वदेशसे वृत्ति नही है किन्तु किसी सामान्यरूपसे वृत्ति है। जब विशेष रूपसे अवयवोंमें अवयवीके रहने का निषेध किया तो उसका अर्थ है कि विशेषरूपसे तो अवयवीकी वृत्ति नही है अवयवोमे किन्तु सामान्यरूपसे है, तो प्रकारान्तरसे देखिये तुमने समवाय वृत्ति मान ही ली। कोई सम्बन्ध मान हो लिया। अगर अन्य कोई सम्बन्ध न मानते होते तो यही कहते कि अवयवी है ही नही। उसके सम्बन्धमे विशेष का खण्डन न करना चाहिए। और देखिये वृत्ति नाम है समवायका। अवयवमे अवयवीका रहना मायने समवाय और वह रहना अथवा समवाय समस्त अवयवोमे एक रूपसे है और निरवयव है स्वय समवाय, इसलिए उन निरवयव वृत्तिके लिए यह प्रश्न उठाना कि एक सर्वदेशसे अवयवी अवयवोमे रहता है या एकदेशसे अवयवी अवयवोमे रहता है। यह कथन अयुक्त है, क्योंकि समवायका यह विषय ही नही है।

निरश अवयवीके निराकरणमे दिये गये साधनमे प्रसगसाधक न बनने रूप आपत्तिका शकाकार द्वारा प्रदर्शन शकाकार ही पुन कह रहा कि यदि जैनादिक यह कहे कि अवयवी नही है वृत्ति विकल्पादिककी अनुपपत्ति होनेसे तो इसमे जो यह साधन है वह प्रसग साधन है। प्रसग साधन क्यों है कि दूसरोको जो

इष्ट है उसमें अनिष्टका अपादान किया है, उसमें अनिष्टत्वको जोड दिया है, जो नही मानते हैं शकाकार लोग, प्रतिवादी पर लोग, उसको सिद्ध कर दिया है, वही प्रसंग साधन कहलाता है। तो शंकाकार कह रहा है कि तुम परेष्टिमें याने जो परको इष्ट है उसमें अनिष्ट बोल रहे हो तो यह बतलावो कि वह परेष्टि अर्थात् परलोगके द्वारा माना गया तत्त्व प्रमाण है या अप्रमाण है ? जिसको तुम मना कर रहे हो, जो अवयवी नही है यह अवयवी तो परलोग मान रहे हैं और वह नही है यह अनिष्ट बात कह रहे हैं तो परेष्ट प्रमाण है या अप्रमाण ? यदि प्रमाणरूप है तो परेष्टी तो प्रमाण ही हो गया। जो प्रमाणरूपसे तो अब प्रमाणता ही आयगी। उसको तुम विपरीत बाधा तो कह नही सकते, फिर विपरीत अनुमान नही उठा सकते हैं। परेष्टि प्रमाण है और उस हीमें उन हीको बाधा दें यह बात नही बन सकती। यदि कहो कि यह परमतव्य अप्रमाण है तो प्रमाणके बिना प्रमेयकी प्रसिद्धि है यह कहना चाहिए। फिर तो अनुमान बनाकर किसमें साध्य सिद्ध करोगे ? इस अनुमानमें तो पक्ष अप्रमेय (असत्) है तो अपक्ष धर्म है, फिर तो अनुमान बनाकर जो भी हेतु दोगे वह अप्रमाण हो गया। उसे पक्ष धर्म मिलेगा नही। परेष्टि तो असत् है, तुम प्रमाण देकर फिर खण्डन किसका करते हो ? इस तरह अवयव अवयवीको निरंश पद्धतिका जो निराकरण अन्य लोगोंने किया उसके भी खण्डनमें शंकाकार यह बात रख रहा है कि अवयव निरंश है और अवयवी निरंश है और अवयवोंमें अवयवी तादात्म्य सम्बन्धसे रहता है।

निरंश अवयवीके निराकरणमें दिये गये साधनमें प्रसङ्गसाधनत्व — अब उक्त शङ्काका समाधान करते हैं। अवयवीके निराकरणमें दिए हुए साधनोंमें यह विकल्प उठाकर कि वह स्वतन्त्र साधन है या प्रसंग साधन है हेतुको उखाड देनेका प्रयास करना व्यर्थ है क्योंकि यह हेतु प्रसंग साधन ही है। प्रसंग साधनका लक्षण है कि साध्य और साधनके व्याप्य-व्यापक भावकी सिद्धि होनेपर व्याप्यका मानना व्यापकके माननेका अविनाभूत है और व्यापकका अभाव व्याप्यका अविनाभूत है। इतना ही मात्र [illegible] जिसमें प्रयोजन हो उस हेतुको प्रसंग साधन कहते हैं। तो देखो ! सर्वदेशसे वृत्ति और एकदेशसे वृत्ति इस सम्बन्धमें व्याप्य व्यापक भाव लोकप्रसिद्ध है ही। जैसे कि किसीका किसी जगह सर्वदेशवृत्ति होती है और किसीका किसी जगह एकदेशसे भी वृत्ति होती है। देखो ना ! किसी घडेमें बेर रखे हैं तो बेरोंकी वृत्ति उस घडेमें सर्वदेशसे है ना ! क्योंकि वे बेर घडेमें पूरे समाये हुए हैं और कोई पुरुष [illegible] बैठा है तो वहाँ [illegible] एकदेशसे वृत्ति है, कोई [illegible] समाया हुआ तो नहीं है। तो कहीं सर्वदेशसे वृत्ति होती है कहीं एकदेशसे। अरे भाई ! [illegible] दोनों ही प्रकारसे [illegible] गया, सर्वात्मक रूपसे रहता भी न हो और एकदेशसे भी रहता न हो [illegible] कि वृत्ति है ही नहीं। तो वृत्ति दो ही प्रकारसे हो सकती है सर्वात्मक रूपसे हो या एकदेश रूपसे हो। जब दोनों ही वृत्ति प्रसिद्ध हैं

फिर यह व्याप्ति हेतुकी क्यो नही ठीक रही ? इस कारण प्रसङ्ग साधनका अवकाश यहाँ कैसे नही है ? अर्थात् प्रसङ्ग साधकरूप यह हेतु है। और जो शङ्काकारने कहा था—परेष्टि प्रमाण है वा अप्रमाण ? प्रसङ्ग साधनका यह अर्थ करना कि दूसरेने जो माना है उसमे अनिष्ट बातको ही ला देना, इसके ही मायने प्रसङ्ग साधन है और ऐसा कहकर जो यह विकल्प किया कि परेष्टि अर्थात् परने जो माना है वह प्रमाण है या अप्रमाण ? प्रमाण है तब तो विरोध क्या, खण्डन क्या और अप्रमाण है तो इसके मायने कुछ प्रमेय ही नही, फिर भी खण्डन किसका ? यह बात कहना अयुक्त है, क्योंकि प्रमाण और अप्रमाणका विचार सम्वाद और विसम्वादके आधीन हुआ करता है। केवल परने माना है इस आधारपर नही। जैसे कि यहाँ शकाकारके द्वारा माना गया है जैसा अवयवी तो उन अवयवीमे यदि सम्वादक प्रमाणका अभाव है तो अप्रमाण स्वय ही हो जायगा। सो जहाँ सम्वाद हो वह तो प्रमाण है और जिस ज्ञानमें विसम्वाद हो वह ज्ञान अप्रमाण है। परके माननेसे एकदम प्रमाण और अप्रमाण कहना यह युक्त नही होता।

इहेद प्रत्ययसे समवायवृत्तिकी शका व शकाका समाधान—शकाकार का कहना है कि देखो अवयवोमे अवयवी है यहाँ इसमे यह है" इस प्रकारके ज्ञानकी प्रतीति होनेसे प्रत्यक्षसे अवयवीकी सिद्धि हो जाती तो है सम्वादक प्रमाणका अभाव कैसे रहा ? अर्थात् "इसमे यह है" इस प्रकारका प्रत्यय जहाँ हो, जिस कारण सा उस ही का नाम तो सम्बन्ध है, समवाय है और इस ही सम्बन्धके कारण अवयवोमे अवयवी की प्रतीति होती है, कहते हैं कि यह भी कहना असगत है क्योकि जैसे कि सूत आदिक अवयवोसे भिन्न कोई पट आदिक अवयवी सूत आदिक अवयवोमें समवायसे रहते हुए रहते हैं यह बात स्वप्नमे भी विदित नही होती। एक निरश अवयवी अनेक अवयवोमे रह जायगा यह बात सिद्ध नही होती। जो भेदसे प्रतिभासमान नही है उसका इसमे यह है यह प्रतीति तो युक्त नही, बल्कि जो भेदसे प्रतिभासमान होते हैं उनमे इसमे यह है यह प्रतीति अधिक होती है। सर्वथा भिन्नकी बात नही कह रहे किन्तु कथचित् भिन्नकी बात कह रहे हैं। सर्वथा अभिन्नको इसमे "यह इद" की प्रतीति न होगी, और सर्वथा भिन्न हो तो उसमे भी "इह इद" यह प्रतीति न होगी। देखो—जब यह ज्ञान होता है कि इस घडेमे बेर है तो देखो—बेर घडेसे कथचित् भिन्न और अभिन्न हो रहे हैं। तब इसमे "इहेद" यहकी प्रतीति होती है। तो इसमे यह है ऐसी प्रतीति न सर्वथा भिन्नमें होती न सर्वथा अभिन्नमें होती, तब एकान्तवादमें वृत्ति सिद्ध करना युक्त नही है। और, भी जो कहा शकाकारने कि वृत्तिका अर्थ है समवाय सब जगह एकरूप है, निरवयव है तो समवायके सम्बन्धमे अथवा वृत्तिके सम्बन्धमे यह सर्वदेशमे रहता है या एक देशमे रहता है, इन शब्दोंका यहा काम ही नही हो सकता। अब उत्तर देते हैं कि ऐसा कहना भी केवल अपनी कल्पना मात्र है। प्रथम तो समवाय सम्बन्ध कोई सिद्ध ही नही है, या तो होता है तादात्म्य सम्बन्ध अथवा होता सयोग सम्बन्ध।

तादात्म्यमे भी इतना अन्तर तो हो सकता है कि कोई होता है कथचित् तादात्म्य, किसी समय तादात्म्यरूपसे रह रहा है और फिर नही रहता है, और कुछ चीजें होती हैं शाश्वत् तादात्म्य, जैसे कि आत्मामे ज्ञान स्वभाव शाश्वत तादात्म्यरूपसे है और आत्मामे क्रोधादिक भाव कादाचित्य तादात्म्य रूपसे है और, जो भिन्न-भिन्न पदार्थ होते हैं, द्रव्य होते हैं उनका सयोग सम्बन्ध है पर समवाय नामका कोई सम्बन्ध ही नही है।

वृत्तिसम्बन्धमे सर्वदेश व एकदेशवृत्तिताकी सिद्धि—शकाकार कहता है कि समवाय सम्बन्ध है या नही ? इसकी सिद्धिका यहाँ प्रसग नही है। किन्तु यहाँ प्रश्न यह है कि एक ही अवयवीमे यह सर्वात्मक रूपसे रहता है या एकदेशरूपसे रहता है। एक निरश अवयवीमे सर्वात्मकता और एक देशता ये शब्द फिट बैठते ही नही हैं, इसलिए यह प्रश्न करना अयुक्त है कि अवयवीको वृत्ति अवयवमे एक देशसे होती है अथवा सर्वदेशसे होती है। सर्वदेशसे कहो यह तो एकके ही समस्त स्वभावोका कह देना है और एक देश कहना, देशको अनेकता होनेपर किसी एक देशके कहनेकी बात है, पर ये दोनोके दोनो अर्थात् सर्व देश और एक शब्द एक निरश अवयवीमे युक्त नही होते। समाधान करते हैं कि शकाकारका यह कथन भी अयुक्त है. क्योकि अवयवोमें, एकत्वरूपसे अवयवी प्रतिभासमान होता ही नहीं, और अन्य कोई प्रकारान्तर है नहीं कि जिस प्रकारसे अवयवीके अवयवोमे वृत्ति बतायी जा सके। देखो—कही तो सर्वदेश से वृत्ति हुआ करती है और कही एक देशसे वृत्ति हुआ करती है। जैसे घडेमे वेर हैं, यहाँ वेरकी वृत्ति सर्वदेशस है और स्तम्भसे बाँस है, जैसे बहुतसे बाँसोको गोल खडा करके देखे कि इस खम्बेमें बाँस है तो उन बाँसोकी वृत्ति एक देशसे हुई। तो कही सवदेशसे वृत्ति होती है, कही एक देशसे वृत्ति होती है, इन दो प्रकारोसे वृत्ति होनेको छोडकर अन्य प्रकारसे वृत्ति हुआ ही नही करती। तब अवयवोसे भिन्न कोई अवयवी है ऐसा कहना विचार करनेपर सिद्ध नही होता। तब अवयव भिन्न है, अवयवी भिन्न है फिर भी दोनो निरश हैं और अवयवोमे अवयवी रहता है, ये सारी बातें मान सकना योग्य नही है। तब फिर क्या माना जाना चाहिए ? तन्तु आदिक अवयवोकी ही अवस्था विशेष पट आदिक अवयवी हैं अर्थात् अनेक ततुवोका वितान करके जो एक पिण्ड बनता है वह पट जो अवयवी है, एक बन रहा है वह ततुवोका ही अवस्था विशेष है। जो कि ततुवोसे ही कथचित भिन्न हैं और ठठ मिटाना आदिक अर्थ क्रियावोको कर सकने वाला है ऐसा प्रमाणसे समझा गया, अर्थात् सुप्रसिद्ध निर्णय मानना चाहिए।

रूपक्षणादिसे व्यक्तिरिक्त अवयवीकी असिद्धिकी आशका—अब यहाँ क्षणिकवादी शकाकार कह रहा है कि रूपादिकको छोडकर और कुछ अवयवी रूप पदार्थ जगतमे है ही नही, जो कुछ दिख रहा है वह रूप पदार्थ है। जो स्वादमे आ रहा है वह रस पदार्थ है, गध पदार्थ भी होते, स्पर्श पदार्थ भी होते। इनको छोडकर

और कोई अवयवी कुछ होता ही नही है और न कोई ऐसा भिन्न अवयवी है कुछ उन रूपादिक पदार्थोके अतिरिक्त कि जो शीत निवारण आदिक अर्थ क्रिया को करनेम समर्थ हैं फिर आप अवयवी किसको सिद्ध कर रहे हैं। देखो–नेत्रेन्द्रिय ज्ञानमे रूप ही प्रतिभासमान होता है और कुछ तो नही, अथवा रूपवान पदार्थ तो नही। चक्षुइन्द्रिय से रूप जाना गया, रूपी नही जाना गया। तो रूपी जगत्मे कुछ होता ही नही है। लोग भ्रमसे कह देते हैं जहाँ रूप घनरूपसे रह रहा है उसमे लोग रूपीका व्यवहार कर देते हैं, पर रूपी कुछ नही। इस प्रकार रसना इन्द्रियके द्वारा जो बोध हो रहा है वह रस पदार्थ है। रसको छोडकर अन्य कुछ चीज नही है। तब रूपादिकके अतिरिक्त जब कोई पिण्ड ही, अवयवी रूप पदार्थ ही सिद्ध नही है तो अवयवीरूपकी चर्चा करना और उसके बारेमे यो मीमासा करना कि अवयवोमे अवयवी किस तरह रहता है, ये सारी बातें अयुक्त हैं।

रूपादिकोमय अवयवीकी सिद्धि– अब उक्त शकाका समाधान करते हैं कि आप जो एकरूपी पदार्थका अभाव कह रहे हो सो किस कारणसे कह रहे हो? क्या विरुद्धधर्म सहित होनेके कारण एक पदार्थमे एकत्व और अनेकत्वका तादात्म्य नही हो सकता, इस हेतुसे आप एक रूपी अवयवीका निषेध कर रहे हो या एक रूपी पदार्थ को ग्रहण करनेका उपाय ही कुछ नही हो सकता, इस कारण रूपीका निषेध कर रहे हो। यदि प्रथम पक्षकी बात कहो कि विरुद्ध धर्मके होनेसे एक वस्तुमे अवयवीके एकत्व और अनेकत्वके तादात्म्यका विरोध होनेसे रूपीका अभाव है तो आपसे हम यह पूछना चाहते हैं कि तादात्म्यका जो आप विरोध बता रहे हो कि एक पदार्थमें एकत्व और अनेकत्वका तादात्म्यका जो विरोध बतलाते हो सो कथचित् तादात्म्यका विरोध है या सर्वथा तादात्म्यका विरोध है? यदि कहो कि सर्वथा तादात्म्यका विरोध है तो यह बात युक्त ही है। रूप, रस, गध, स्पर्श आदि का एक अवयवीमे सर्वथा तादात्म्य नही है, यह बात ठीक है। अगर सर्वथा तादात्म्य होवे तो गुण गुणीका भेद ही नही किया जा सकता, मगर कथचित् एकत्वका, कथञ्चित् तादात्म्यका तो विरोध नही है क्योकि रूप रस आदिक विरुद्ध धर्मके रहनेपर भी एक अवयवमें एकत्व होना, यह विरुद्ध नही है।

रूप और रूपी पदार्थके तादात्म्यके सम्बन्धमे दिये गये शङ्का-समाधान का स्पष्टीकरण–शकाकार यहा यह समझ रहा था कि रूपका अर्थ और है रस चीज और है, गध, स्पर्श और और हैं। तो इतने भिन्न–भिन्न रूप, रस आदिक एक वस्तुमें कैसे तादात्म्य रूपसे रह सकते हैं? याने रूप, रस आदिकका तादात्म्यभूत कोई पदार्थ हो सकता है यह कैसे सम्भव है? लेकिन ऐसी कल्पना और शका करना युक्त नही है देखो! शकाकारके द्वारा माना गया यह चित्रज्ञान नीलादिक अनेक आकारोसे सहित है कि नही? और नीलादिक अनेक विरुद्ध आकारोसे सहित होनेपर भी चित्रज्ञान

एक माना गया है । वे ज्ञान कहीं अनेक तो नहीं हो गए ? और भी देखो, शकाकार के यहा विकल्पाकार व निर्विकल्पाकार दोनो आकारोको लिये हुए विकल्पज्ञान है तो दृष्टान्त सिद्ध हो गया ना अनेका तात्मक एक कुछ होता है । यहा प्रकरणमे सर्वत्र देख लीजिये ! जो कुछ दृश्य है, भौतिक है, पुद्गल है वह सब रूपरसगंधस्पर्शात्मक है मूर्तिक कोई पदार्थ होता है उसके स्वभावभूत गुण है — रूप रस गध स्पर्श । रूपादिक पृथक पृथक पदार्थ नहीं है । इस कारण अनेक धर्मोंसे युक्त अनेक परमाणुओंका पिण्ड अवयवी एक होता है ।

मूर्तिक पदार्थसे व्यतिरिक्त स्वतन्त्र रूप रस आदिककी अनुपलब्धि— शकाकार रूप, रस, गध, स्पर्शको तो पदार्थ मानता है पर रूप रसादिकसे व्यतिरिक्त अन्य कोई अवयवी है, पिण्डात्मक है ऐसा नहीं मानता । ऐसा न माननेका कारण उसका यह हो सकता है कि रूपरस आदिसे रहित कोई एक द्रव्य प्रत्यक्षमे प्रतिभासमान नहीं होता । तो जैसे रूपादिकरहित कोई पदार्थ प्रत्यक्ष प्रतिभासमान नहीं होता इसी प्रकार द्रव्य रहित पिण्डरहित केवल रूपादिक भी तो प्रतिभासमान नहीं होते । जैसे कि आम के द्रव्य बिना केवल रूपादिक है । किसी को विदित होते हो सो तो नहीं । द्रव्यरहित रूपादिक स्वप्नमें भी प्रतिभासमान नहीं होते । और प्रत्यक्ष माना गया है इस तथ्यको शकाकारके यहाँ भी और एक स्थूल दृष्टिसे भी कि पदार्थ अपने स्वरूपका त्याग किए बिना ज्ञानमे अपना स्वरूप सर्पित करदे उस ही का नाम प्रत्यक्ष है, प्रत्यक्षमे स्थूलतया ऐसा होता है कि पदार्थ तो अपने आपमे मस्त रहता ही है और वह अपना स्वरूप ज्ञान को सौंप देता है, अर्थात् ज्ञानमे वे समस्त पदार्थ प्रतिभात हो जाते हैं । तो वस्तुकी प्रत्यक्षता यही है कि अपने स्वरूपका परिहार किए बिना बुद्धिमे अपने स्वरूपका समर्पण करदे पर यहाँ देखो तो सही, द्रव्यरहित रूपादिक बुद्धिमे स्वरूपका कहाँ समर्पण कर पाता है । यह पदार्थ पिण्डात्मक रूपसे ही बुद्धिमें आता है । द्रव्यरहित रूप केवल अपना स्वरूप ज्ञानमे सौंप दे ऐसा तो नहीं होता । और फिर भी क्षणिकवादी उसे प्रत्यक्ष स्वीकार करते जाते हैं तो यह तो इस तरह हुआ कि बिना मूल्य दिये कोई चीज खरीदे । इसी तरह स्वरूप भी सौंप नहीं पाया इन रूपादिकने । द्रव्यरहित होकर और प्रत्यक्ष भी हो लिया गया । सो किसी को भी स्वप्नमे केवल रूपादिक भी द्रव्य सम्बन्ध बिना प्रतिभात होते हो ऐसा नहीं है ।

रूपरसात्मक मूर्तिक द्रव्य माने बिना ज्ञान और ज्ञेयकी असिद्धि— अच्छा अब यह बतावो वे, जो लोग केवल रूप रस आदिका पदार्थ मानते हैं, रूपी मूर्तिक पिण्डभूत नहीं मानते उनको जो भीटमे या भींट नामका रूप जो नजर आया, भीट कोई पदार्थ तो है नहीं उनकी दृष्टिमे, क्योंकि वे पिण्डरूप कुछ नहीं मानते । रूप, रस, गध, स्पर्श ये ही पूरेके पूरे पदार्थ हैं उनके यहाँ । तो भींट नामसे कहा जाने वाले जो रूप हैं, यह रूप क्या प्रत्येक एक है अथवा अनेक निरशरूप अणुवों का सचयमात्र

है ? यदि कहो की यह भींट नामसे कहा जाने वाला रूप एक है प्रत्येक तो ऊपर बीचमें नीचे तादात्मक जैसा एक रूप हो गया वह सारा का सारा, इसके बाद भींट जब एक रूप भींट हो गया तो इसमे रस भी है तो सारा ही का सारा एक रस भींट भी हो गया तो क्या ये वो अलग अलग भीट है, रूप भीट, रस भीट, गध भीट, स्पर्श भीट। यदि कहो कि यह जो भीट नामसे कहा जाने वाला रूप है यह अनेक निरश परमाणुवोका सचयमात्र इस भीटको जिस ज्ञानने ग्रहण किया वह एक ज्ञान अनेक परमाणुवोंके आकार रूप होकर उस अनेक परमाणुकारूप भीटको ग्रहण करता है या एक एक परमाणुके आकाररूप बनकर अनेक ज्ञान इसको ग्रहण करते हैं ? जब भीटको अनेक परमाणुवोका सचयमात्र मान लिया तो वहाँ हैं परमाणु अनेक तो उनको जाननेवाला ज्ञान एक है या अनेक ? अर्थात् एक ज्ञानने ही उन अनेक परमाणुवोंके सचयमात्र भीट को जाना या उसमे जितने परमाणु हैं उतने ही आकार रूप बन हो उतने ही ज्ञानोंने उसको जाना। यदि कहो कि एक ही ज्ञानने अनेक परमाण्वाकारका जान लिया तो बस यही बात है, एक द्रव्यक सम्बन्धमे जब एक ज्ञान अनेकाकार रूप बन सकता है तब रूप, रस, गध, स्पर्श आदिक सर्वात्मक एक द्रव्य बने इसमें क्यो सन्देह करते ? यदि कहो कि एक–एक परमाणुके आकार रहने वाले जो अनेक ज्ञान हैं वे ज्ञान इस भींटको जान पाते हैं तो देखिये। जैसे कि उस भीटमे भिन्न–भिन्न अनेक परमाणु माने हैं ऐसे ही वहाँपर परस्पर भिन्न ज्ञान परमाणु भी बहुत मान लो ! मगर ऐसा तो किसीको प्रतिभासमें आता नही। एक वस्तुके सम्बन्धमे अनेक ज्ञान होते हों और अनेक ज्ञानोसे भी एक-एक परमाणु जाना जाता हो, ऐसा तो किसीको भी विदित नहीं हो रहा। और ऐसा जब ज्ञात नही होता, और तरह तुम मानते नही तो ज्ञेयको ग्रहण करने वाला ज्ञान न बन सका, तो ज्ञेय भी कुछ न रहा। जब एक-एक ज्ञान परमाणुका प्रतिभास लागोको न हो सका तो जब ग्राहक ज्ञान ही अपने सम्वेदनमे नही आ रहा तो ज्ञेय कैसे सम्वेदनमे आयगा ? और, यो फिर जगत शून्य हो जायगा। इस कारण यह नही कह सकते कि विरुद्ध धर्मोंस सहित होनेके कारण एक पदार्थमे रूप, रस आदिक अनेक धर्मोंका तादात्म्य नही रह सकता। रहता है तादात्म्य। एक अणु है और वह चारो गुणात्मक है।

मूर्तिक द्रव्यकी ज्ञापक प्रमाणोसे सिद्धि—शकाकार कहता है अब, कि रूपी द्रव्यका इस कारण अभाव है कि रूपी द्रव्यका जाननेका कोई उपाय ही नही बन सक रहा। इन्द्रियसे रूपको जान लिया, रसको जान लिया, गध स्पर्शको जान लिया पर चतुष्टात्मक कोई पिण्डभूत द्रव्य है, इसके जाननेका कोई उपाय नही है। उत्तर देते है कि यह कहना युक्त नहीं है क्योंकि आँखोंमे जो एक प्रत्यभिज्ञान बना रहता है कि जिस चीजको मैंने देखा था उस ही चीजको अब छू रहा हूं। इस प्रकार जो प्रत्यभिज्ञान बनता है वह प्रत्यभिज्ञान उन रूपी पदार्थका उन पिण्डभूत पदार्थ का ग्रहण कर रहा है। जब यह जाना था कि जिस आमको मैंने देखा था उस ही

आमको मैं छू रहा हूँ तो इसका अर्थ यह हुआ ना कि रूप, रसात्मक वह एक पिण्ड है दो इन्द्रियोसे जो कहा जाना गया, चक्षुरिन्द्रियसे रूप जाना, स्पर्शन इन्द्रियसे स्पर्श जाना तो दोनो इन्द्रियोके विषयभूत रूप और स्पर्शके आधारभूत एक पदार्थका ग्रहण किए विना प्रत्यभिज्ञान बन ही नही सकता। रूपका भी आधार वही है, स्पर्शका भी आधार वही है ऐसे आधारभूत एक पदार्थका ग्रहण जब तक नही होता तब तक यह प्रत्यभिज्ञान नही बन सकता। जिस ही पदार्थको मैंने देखा था उस ही पदार्थको मैं छू रहा हूँ और, रूप, रस तथा स्पर्श ये प्रतिनियत इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य हैं, रूपको जानता है चक्षु और, रसको जानती है रसना स्पर्शको जानती है स्पर्शन इन्द्रिय। तो इन्द्रियसे यह नही जाना जा सकता कि जिसको मैंने छुवा था उसीको मैं देख रहा हूँ। प्रत्यभिज्ञानरूपसे ज्ञान करना इन्द्रियका विषय नही है। इन्द्रियके विषय तो न्यारे-न्यारे रूप रस आदिक है। यह ज्ञान तो स्मरण आदिक परिणमनोकी सहायता लेकर चेतन आत्माके बन सकता है, जानना बन सकता है, उस अवयवी द्रव्यका कि जिसमे रूप, रस आदिका समावेश है तादात्म्य है। तथा स्मरण आदिक परिणतिकी सहायता लेकर आत्मा ही यह समझ सकता है कि यह भीट इस भाग और परभागके अवयवोमे व्यापी है। इसे न केवल प्रत्यक्ष समझ सकता न केवल स्मरण समझ सकता। स्मरणकी सहायता लेकर प्रत्यक्ष ज्ञानसे यह आत्मा जान सकता है। तो प्रत्यभिज्ञान भी जीवनमे कितना उपयोगी बन रहा है। पद-पदपर जिसको देखते हैं, समझते हैं कि देखो! यह वही पुरुष है जिससे एक वर्ष पहिले परिचय हुआ था। तो प्रत्यक्षज्ञान प्रमाणभूत है यह बात भली प्रकार पहिले ही सिद्ध कर दी गई थी। इस कारण रूप रसगधस्पर्शात्मक पुद्गल द्रव्य होता है इसमे सन्देह नही।

मूलभूत परमाणुको नित्यानित्यात्मक न माननेपर पृथ्व्यादिक पदार्थोंकी असिद्धि—जब अवयवोमे अभिन्न अवयवी बराबर प्रमाणसिद्ध है तो अब अवयवीके वर्णनकी मीमासा कर लेना चाहिये। इस प्रसङ्गमे जो यह कहा विशेषवादमे कि द्रव्य ६ होते हैं—पृथ्वी, जल अग्नि, वायु, आकाश काल दिशा, आत्मा और मन। उनमे जो पहिले चार द्रव्य बताये -पृथ्वी, जल, अग्नि वायु ये चार सख्यामे रहना घटित नही होता। प्रथम तो यह बात है कि उनका कारणभूत है नित्य स्वभाव वाले परमाणु और नित्य स्वभाव वाले परमाणुवोमे अर्थक्रिया हो नही सकती। जब उन्हे नित्य अपरिणामी मान लिया तो उन परमाणुवोसे अब द्वयणुक आदिक अवयवी द्रव्य नही बन सकते। जब द्वयणुक आदिक अवयवी द्रव्य न बन सके तब फिर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु कहाँसे आ जायें? ये कोई एक-एक परमाणु तो नही हैं, ये तो स्कध ही हैं और स्कधोकी उत्पत्ति माना है कारण परमाणुवोसे। और, कारण परमाणु हैं नित्य स्वभाव वाले। तो नित्य स्वभाव वाले परमाणुवोमे अर्थक्रिया न होनेसे जब द्वयणुक आदिक अवयवी द्रव्य नही बन सकते तो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन पिण्डोकी उत्पत्ति नही हो सकती। यदि कारणोंके अभावमे कार्य बनने लगें तो कारणकी

तो कुछ जरूरत रही नहीं । जो चाहे चीज बन जाय । चनेके सींग भी बन जायें । कारणकी क्या आवश्यकता ? तो अपने अवयवोंसे भिन्न अवयवी अलगसे कोई हो यह सिद्ध नहीं होता । अवयवसे अत्यन्त भिन्न अवयवीको ग्रहण करने वाला कोई प्रमाण ही नहीं है । इससे जो अवयवों एक रूपरसादिका अभिन्न समुदाय है उसीका नाम अवयवी है और फिर वह अवयवी सामान्य-विशेषात्मक है वे बिखर जायें और अत्यन्त बिखर जाये उनका कोई निरंश अवयवी हो जाय, जिसे परमाणु कहते हैं वह भी सामान्यविशेषात्मक है । प्रमाणके विषयभूत प्रमेय सामान्यविशेषात्मक होते हैं, न कि द्रव्य गुण कर्म, सामान्य, विशेष समवाय आदिक इन ६ जातियोंमे ही विभक्त पदार्थ प्रमाणके प्रमेय होते हैं ।

पृथ्वी आदिकको भिन्न-भिन्न द्रव्य माननेपर परस्पर उपादानोपादेय भावकी असिद्धि यहाँ द्रव्यकी चर्चामें चल रहे हैं । जो चार द्रव्य बतलाये-पृथ्वी-जल, अग्नि वायु इन चार जातियोमे चार भेदो रूपमे वर्णन किया, वह बिल्कुल अयुक्त है । स्वरूप ही जो माना है शंकाकारने वह असिद्ध है । स्वरूपकी असिद्धि होनेपर फिर भेदका वर्णन कैसे सम्भव हो सकता है ? पहिले पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, इन चार प्रकार की हो तो सिद्धि करो । कैसे हैं ये चार ? यदि इनमे जातिभेद करके परस्परमें अत्यन्त भेद कर डालोगे तो जैसे कि आत्मा और पृथ्वी इनमे कभी मेल मिलाप हो ही नही सकता । अत्यन्त भिन्न है, इसी तरह हो गये ये पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, तो इनमे कोई भी एक दूसरे का उपादान उपादेय नही बन सकता । जिनमें जाति भेद से आत्यंतिक भेद है उनमें उपादान उपादेय भाव नही बन सकता । जैसे कि आत्मा और पृथ्वीका चूंकि अत्यन्त भेद है तो कभी उपादान उपादेयपना नही बन सकता कि पृथिवीसे आत्मा बन जाय या आत्मासे पृथवी बन जाय । लेकिन पृथवी आदिक चारमें तो उपादान उपादेयभाव बराबर नजर आता है । पृथवीसे जल बन जाय, जल से वायु बन जाय यो एक दूसरेमे परस्पर उपादान उपादेय भाव है । तो जातिभेद अगर होता तो त्रिकाल भी इसमे उपादान उपादेयपना नही बन सकता था । जाति तो उस तरह मानी जाती है कि जो परस्परमे एक दूसरेरूप त्रिकाल न हो सके । जैसे स्याद्वादमे ६ प्रकारके पदार्थ माने हैं -जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल, इनमेंसे कोई एक द्रव्य किसी दूसरे रूप नहीं हो सकता । सो पृथवी, जल, अग्नि, वायु ये चारोंके चारो एक जातिमे शामिल हैं, इनकी जाति एक है और इसी कारण इन चारोमे परस्पर उपादान उपादेय भाव बन जाया करता है । तो जो चार प्रकारके द्रव्य कहे हैं पहिले वे ही भिन्न-भिन्न जातिके सिद्ध नहीं होते । वे चारों एक प्रकारके द्रव्य हैं । इनको पुद्गल शब्दसे कहलो क्योंकि ये पूरते हैं और गलते हैं । कभी पिण्ड रूप बनते हैं कभी बिखर जाते हैं । इस कारण इनकी सत्ता अलगसे नही है । इस सबका निष्कर्ष यह है कि विशेषवादियोंने जो द्रव्यके भेदोंमें पृथवी, जल, अग्नि, वायु इन चारोंको भिन्न-भिन्न बताया है, उनके यहां फिर पृथवी जल आदिकमें उपादान

उपादेय भाव नही बन सकता अर्थात् पृथवीसे जल बन जाय, जलसे पृथवी बन जाय आदिक परस्पर उपादान उपादेय भाव नही बन सकता क्योकि जिनमे जातिभेदसे सर्वथा भेद होता है उनमे उपादान उपादेयभाव नही बनता जैसे कि आत्मा और पृथ्वी आदिक। इनका परस्पर उपादान उपादेय भाव नही है, क्यो नही है कि जातिभेदसे इनमे आत्यतिक भेद है। और, विशेषवादियोने पृथवी आदिकमे आत्यतिक भेद माना है। तो वह ही आपत्ति है जो कि लोकप्रसिद्ध है। फिर कैसे पृथवी आदिक ये चार भेद स्वतन्त्र हो सकते हैं ?

जातिभेदसे आत्यन्तिक भेदरूप हेतुपर विचार—शकाकार कहता है कि तुम्हारा यह हेतु तो व्यभिचारी है कि जिसमे जाति भेदसे यह आत्यतिक भेद हो उनमे उपादान उपादेय भाव नही बनता कारण कि ततु और पट। देखिये—इनमे भेद है, ततु अलग चीज है, पट अलग चीज है, लेकिन इनमे उपादान उपादेय भाव बन गया। ततु तो उपादान है और पट उपादेय है। तो यह हेतु सही तो न रहा कि जिनमे जाति भेदसे आत्यतिक भेद हो उनमे उपादान उपादेय भाव नही हुआ करते ? उत्तर देते हैं कि इस हेतुको तुम सदोष नही कह सकते क्योकि ततु और पटमे आत्यतिक भेद नही है। वैसे तत्काल पर्यायगत जातिभेद तो है। सो जाति तो अपनी दृष्टिके अनुसार बन जाती है। ततुमे ततुत्व है, पटमे पटत्व है इस तरहसे न्यारा भेद मान लिया, पर जब निरखते हैं कि ततु भी भौतिक चीज है और पट भी भौतिक चीज है तो उसमे जातिभेद भी नही। खैर जातिभेद अपने प्रयोजनवश मान लिया लेकिन आत्यतिकभेद यो नही है कि ततु भी पृथ्वी है और पट भी। तो पृथ्वीत्व सामान्य ततुमे और पटमे बराबर पाया जाता है। तो जातिभेद कहाँ आत्यतिक रहा, इस कारण इस हेतुको सदोष नही कह सकते।

पृथ्वी आदिको द्रव्यत्व जातिरूपसे पृथक् पृथक् माननेपर उपादानोपादेयभावकी सर्वथा असिद्धि—शकाकार कहता है कि इस तरहसे यदि अभेद मान लिया जाता कि ततु भी पृथ्वी है और कपडा भी पृथ्वी है सो पृथ्वीत्व जाति एक होनेसे इनमे जातिभेद आत्यतिक न रहा, तब तो देखिये कि पृथ्वी भी द्रव्यत्व जाति वाली है और जल अग्नि, वायु भी द्रव्यत्व जातिमे है। तो द्रव्यत्व जातिकी अपेक्षा पृथ्वी आदिक चारोमे भी अभेद रह जायगा। यहाँ भी आत्यतिक भेद न बनेगा। और, जब द्रव्यत्वकी अपेक्षा पृथ्वी आदिक चारोके आत्यतिकभेद न रहे तो इनका परस्परमे उपादान उपादेय भाव बन जायगा। उत्तर देते हैं कि इस तरह यदि पृथ्वी आदिकमे जाति भेद नही बनता और द्रव्यत्व जातिकी अपेक्षा वे चारो एक बन जाते हैं तो द्रव्यत्व जातिकी अपेक्षा तो ९ के ९ ही एक हो गए। केवल पृथ्वी आदिक चारोमे ही एकपना क्यो कहते ? द्रव्यत्व तो समस्त नवो ही द्रव्योमे पाया जा रहा, फिर ९ वोका ही एक मान लीजिए। और, फिर जैसे पृथ्वी और जल ये परस्परमे उपादान उपादेय भाव

वाले हैं इनमे उपादान उपादेय भाव बन जाता है तो इसी तरह आत्मा और पृथ्वी आदिकमे भी परस्पर उपादान उपादेय भाव बन जाना चाहिये क्योंकि अब इसमे द्रव्यत्व जातिकी अपेक्षा भेद न रहा। सो जैसे पृथ्वी आदिक चारोमे द्रव्यत्वकी अपेक्षा अभेद बता देनेसे उपादान उपादेय भाव मान लेते हो यो ही इन ६ के ६ वोमे ही द्रव्यत्व जातिकी अपेक्षासे भेद न होनेके कारण उपादान उपादेय भाव मान लीजिए। और, फिर यदि उपादान उपादेय भाव मान लेते हो ६ के ६ वो ह द्रव्योमे तो इनके मायने यह है कि उनमेंसे कुछ भी एक रह गया। और वह एक क्या रह गया सो उ मे छटनीकी जाय तो खोजते खोजते प्राय. आत्मापर दृष्टि टिकेगी और यो आत्मा द्वैत रह गया फिर पृथ्वी आदिकमे ६ भेद कैसे बन जायेंगे ? तो इस कारण पृथ्वी आदिक जब तुमने जातभेद डाल दिया और ६ भेद स्वतन्त्र स्वतन्त्र मान लिया तो फिर इनमे परस्पर उपादान उपादेय भाव नही घटित हो सकता।

पृथ्वी जल अग्नि वायुके परस्पर उपदानोपादेय भावका विवरण—शंकाकार यह भी नही कह सकते कि उपादान उपादेय भाव पृथ्वी आदिमे परस्पर है नही, उपादान उपादेय भाव मत घटित हो उपादान नही कह सकते, देखो—सब जानते हैं। चन्द्रकान्तमणिसे जलकी उत्पत्ति होती है तो चन्द्रकान्तमणि तो पृथ्वी है और उस पृथ्वीसे जल उत्पन्न हो जाय तो उपादान उपादेय भाव पृथ्वी और जलमे हो गया, इसी तरह जलसे मुक्ताफलकी उत्पत्ति होती है। किसी योग्य समयमे सीपमे कोई योग्य बूँद आनेपर वह मुक्ताफल रूप परिणम जाती है, तो कौन परिणमा ? जल ही तो परिणमा। तो देखो—जलसे अब पृथ्वीकी उत्पत्ति हो गयी ना। तो जल और पृथ्वी मे भी परस्पर उपादान उपादेय भाव हो गया और देखो—काठसे अग्निको उत्पत्ति होती है। जगलमे खडे हुए बाँस आपसकी रगडसे अग्नि उत्पन्न कर देते हैं तो भला बतलावो उस अग्निका उस समय वहाँ उपादान क्या रहा ? वह तो हुआ ? तो पृथ्वी और अग्निमे उपादान उपादेय भाव बन गया, इसी तरह देखलो पखा चलानेसे वायु की उत्पत्ति होती है। उस वायुकी उत्पत्तिका साधन क्या है उस समय ? वह पखा, और पखा है पृथ्वी तो पृथ्वी और हवामें भी देखो—उपादान उपादेय भाव बन गया ना ! इस कारण इन चारोमे उपादान उपादेय भाव नही है यह नही कह सकते।

एक और उपदानोपादेयभावका स्पष्टीकरण—शंकाकार कह रहा है कि चन्द्रकान्त पृथ्वीमें जो जल द्रव्य हैं उस जल द्रव्यसे जलकी उत्पत्ति हुई। चन्द्रकान्त में जो पृथ्वीतत्त्व है उससे जलकी उत्पत्ति नही हुई है। इससे यह सिद्ध होता है कि पृथ्वी और जलमें परस्पर उपादान उपादेय भाव नही है किन्तु जल जो उत्पन्न हुआ है वह चन्द्रकान्तमें रहनेवाले जल द्रव्यसे उत्पन्न हुआ है। समाधान करते हैं कि यह बात युक्त नही बैठती, क्योंकि उस चन्द्रकान्त मणिमें जल भरा हुआ है, उसमे जल ि्मित है, इसको सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नही है, एक बम स्पष्ट प्रसिद्ध है कि

ठीक यह पृथ्वी ही पृथ्वी है। और इससे अतिरिक्त चन्द्रकान्तमें जल न होनेपर भी या जलके सद्भावको सिद्ध करने वाला प्रमाण न होनेपर भी चन्द्रकान्तमें जलका सद्भाव मान लेते हो तो क्या यह न कह सकेंगे कि मृत् पिण्डमें घटका सद्भाव है ? मृत पिण्ड उपादान है घट उपादेय, यह भी बात नहीं, अर्थात् मृत पिण्डसे घटकी उत्पत्ति हुई है यह बात नहीं है किन्तु उस मृतपिण्डमें घट मौजूद है जो मौजूद घट है वही मृतपिण्ड से निकल आया और इस तरह सत्कार्यवाद दर्शनका प्रसग आ जायगा। फिर तो कारण कार्य व्यवस्था ही कहीं नहीं बन सकती। प्रत्येक कार्य जैसा है कारण उसमें मौजूद है, लेकिन कारण कार्य व्यवस्था केवल कारण मात्रसे तो नहीं नष्ट हो जाती, तब यह बात सुप्रसिद्ध हो गयी कि मृतपिण्डमें जैसे घट मौजूद नहीं है किन्तु कारण कलापसे विधि पूर्वक उस मृतपिण्डसे घटकी उत्पत्ति होती है इसी तरह चन्द्रकान्तमें भी जल भरा हुआ नहीं है किन्तु यहाँ निमित्त पाकर चन्द्रकान्तसे जलकी उत्पत्ति हो जाती है। ऐसा नहीं है कि मृतपिण्डमें घट भरा हो। इसी तरह ऐसा नहीं है कि चन्द्रकान्त में जल भरा हो। तब यो तो ऐसा भेद सिद्ध हो गया ना, और माना भी है विशेष-वादियोंने कि द्रव्य ९ प्रकारके होते हैं तो जातियाँ जो बनायी जाती हैं वे उतनी बनाई जाती हैं कि एकमें दूसरा त्रिकाल भी शामिल न होगा, किन्तु विशेषवादमें तो आत्य-न्तिक भेद माना। सो आत्यन्तिक भेद होनेपर फिर इनमें परस्पर उपादान उपादेय भाव बन नहीं सकता।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु चारोंकी परसगंध स्पर्शमयता—शंकाकार कहता है कि पृथ्वी आदिक ये चार चीजें एक कैसे हो सकती हैं ? जब गंध पृथ्वीमें ही पायी जाती अन्यमें पायी नहीं जाती रस जलमें ही पाया जाता है अन्यमें नहीं पाया जाता है, जहाँ ऐसी व्यवस्था बनी हो तो फिर रूप, रस गंध स्पर्श इन चारोंका सामा-न्यतया एक रूपसे एक आधार पाया जाय और किसी पदार्थका रूपरसात्मक मान लिया जाय यह बात कैसे बन सकेगी ? समाधानमें कहते हैं कि पृथ्वी आदिक चारों सब एक ही चीज हैं, और चारोंके चारों रूपरसाद्यात्मक हैं, इनमें वर्तमान परिणमन के भेदसे भेद है। इनमें उपादान जाति पुद्गल है। जिस समय ये पुद्गल परमाणु पृथ्वीरूप परिणाममें हुए हैं उस समय तक यह पृथ्वी पर्यायमें है। वह ही परमाणु जब जलरूप परिणमने लगता है तो पृथ्वीरूप परिणत परमाणुओंमें ही जल पर्याय उत्पन्न हो जाती है। तो पर्यायके भेदसे ही पृथ्वी आदिकमें परस्पर भेद है किन्तु पुद्गल द्रव्यकी दृष्टिसे द्रव्य दृष्टिसे इनमें भेद नहीं है। ये चारोंके चारों रूप, रस, गंध, स्पर्शात्मक हैं। ये चारों पुद्गलकी अभिन्न शक्तियाँ हैं तथा ये परस्पर अविनाभावी भी हैं। जहाँ [illegible] कोई एक [illegible] वहाँ ये चारों ही नहीं ठहर सकते। तो इस कारण इन एक जातिमें ही माना जायगा। ये भिन्न-भिन्न चार जातियाँ नहीं हैं। तब [illegible] स्याद्वादमें ६ जातिके पदार्थोंकी व्यवस्था बनायी गई है जैसा पदार्थका स्वरूप है वैसा ही [illegible] आता है और दिव्यध्वनिसे वैसा ही प्रकट होता है,

आगममें वैसा ही लिखा हुआ है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल ये ६ प्रकारसे ही द्रव्य बनते हैं।

द्रव्योके ६ संख्याकी असिद्धि यहाँ वैशेषिक सिद्धान्तमे माने गए ६ द्रव्यो मे से पहिले चार द्रव्यो की चर्चा चल रही है, सो इन चारोके प्रकरणमे यह बताया जा रहा है कि पृथ्वी आदिक चारो ये भिन्न–भिन्न चीजें नही हैं किन्तु ये सब मूर्तिक पुद्गल ही हैं और एक जाति होनेके कारण फिर इनमे यह बात सम्भव हो जाती है कि इनमे परस्पर उपादान उपादेय भाव बन जाता है। शेष रहे विशेषवादियोके ५ द्रव्य आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन। इनका आगे विचार करेंगे प्रथक् प्रथक् सब का स्वतन्त्र रूपसे लेकिन संक्षेपमे इतना समझ लेना चाहिए कि आकाश तो द्रव्य है और काल भी द्रव्य है। लेकिन आकाशको जिस ढगमे विशेषवादियोने माना है कि वह शब्द गुण वाला है और आकाशसे शब्दकी उत्पत्ति होती है इस रूपसे तो आकाश नही है। लेकिन समस्त द्रव्योको अवगाह देने में जो निमित्तभूत है, यह जिसमे असाधारण गुण है ऐसा आकाश द्रव्य है। कालके सम्बन्धमें भी जो लोग ऐसी दृष्टि करते हैं कि घडी, घटा, दिन, महीना ये स्वय काल द्रव्य हैं सो ये तो द्रव्य नही हैं। ये तो काल द्रव्यकी आपेक्षिक परिणतियाँ हैं। काल द्रव्य तो स्वतत्र एक प्रदेशपर एक एक प्रदेश वाला मात्र है, और उसका परिणमन साक्षात् एक समय है। किन्तु दिशा नामक कोई द्रव्य नही है। दिशा तो एक कल्पना की हुई चीज है। जिस ओरसे सूर्यका उदय हुआ उसे पूर्व कहने लगे, जिस ओर सूर्य अस्त हुआ उसे पश्चिम कहने लगे। अब कोई पूर्व दिशाकी ओर मुह करके खडो हो तो उसका दाहिना हाथ जिस तरफ है उसे दक्षिण कहने लगे और बाँया हाथ जिस तरफ है उसे उत्तर कहने लगे। तो ये तो कल्पनामे दिशायें बनी हुई हैं। दिशा कोई अलग द्रव्य हो सो बात नही है। हाँ आत्मा द्रव्य है, किन्तु वह ज्ञानादिक गुणोसे रहित अचेतन हो सो नही। मन प्रथक कुछ द्रव्य नही। पुद्गलभूत मन तो पुद्गलमे सामिल है और विचारभूत मन जीवकी परिणति मे सामिल है। प्रयोजन यह है कि ६ प्रकारके द्रव्योमे इस प्रकारकी व्यवस्था नही बनती। तो इस समय चार द्रव्योका प्रसग चल रहा। ये चारो पुद्गल हैं और रूप, रस, गध, स्पर्शमय हैं इनमे नित्य स्वभाव वाले और आत्यतिक भिन्न–भिन्न पृथ्वी आदिक द्रव्य नही घटित होते हैं।

नित्य निरंश शब्दलिङ्ग आकाशकी प्रतीति—पदार्थ सामान्यविशेपात्मक होते हैं इसके विरोधमे विशेषवादीका कहना है कि पदार्थ सामान्य विशेषात्मक नही होते, किन्तु सामान्य स्वय एक पदार्थ है और विशेष भी स्वय एक पदार्थ है, और यों पदार्थ ४ और होते हैं सो पदार्थ सब ६ प्रकारके होते हैं, उनमेसे पाने द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय इन ६ पदार्थोंमेंसे द्रव्यका वर्णन चल रहा है। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु इन चार पदार्थोंको तो जिस प्रकार वैशेषिक मानता है उसका

निराकरण किया। अब कहा जा रहा है कि आकाश भी कोई विशेषवादियो द्वारा कल्पित जैसा द्रव्य नही है, क्योकि आकाशको मानते हैं विशेषवादी नित्य निरंश और शब्दका कारणभूत, उसकी प्रतीति नही होती। सर्वथा नित्य भी आकाश नही है। लोक मे ऐसा कोई पदार्थ नही होता जो सर्वथा नित्य हो। जैन सिद्धान्त तो इसी स्याद्वादपर आश्रित है कि पदार्थ सब नित्यानित्यात्मक होते हैं। जैसे आत्मा है, सदा रहता है, यह तो हुआ उसका नित्यपना और क्षण-क्षणमे पर्याय बदलना यह हुआ उसका अनित्यपना। तो पदार्थ सभी नित्यानित्यात्मक होते है। आकाश भी एक द्रव्य है, सर्वव्यापक है, अखण्ड है, सदा रहता है तिसपर भी आकाशमे भी सूक्ष्म परिणमन चलता रहता है चाहे उनका बोध न भी हो जितने भी शुद्ध द्रव्य होते हैं उनका परिणमन छद्मस्थोको ज्ञात नही हो पाता, क्योकि शुद्ध परिणमन वाले पदार्थका परिणमन स्वभावमे लीन हो जाता है। इसलिए यद्यपि आकाशका परिणमन कोई व्यक्त जुदा नही मालूम होता, किन्तु आकाश जुदा है इस कारणसे वह सर्वथा नित्य नही है। साथ ही आकाशको सर्वथा निरंश नही कह सकते। यद्यपि वह अखण्ड है और अंश-अंश रूपमे कभी अलग नहीं हो सकता लेकिन जब हम आकाशका परिमाण बना लेते—यह एक इंच आकाश है, यह एक सूत है, आधा सूत है, इस तरहसे जो परिमाण बना है उस परिमाणके द्वारा आकाशके अंशोका कुछ ज्ञान तो रहता ही है। और, तभी कहते हैं कि आकाश अनन्त प्रदेशी है। तो सर्वथा निरंश और शब्द गुणके कारणभूत आकाश की प्रतीति नही होती।

शङ्काकार द्वारा शब्दलिंग आकाश पदार्थकी सिद्धि—अब यहा शङ्काकार कहता है कि आकाश नित्य और निरंश धर्मसे सहित वास्तविक पदार्थ है, क्योकि उसका कार्य शब्द है। शब्दकी उत्पत्ति आकाशसे होती है. इस कारण शब्दका आधारभूत कोई आकाश है। जैन लोग तो शब्दकी उत्पत्ति आकाशसे नही मानते। किन्तु भाषावर्गणा जातिके कोई पुद्गल होते हैं द्रव्य, उन स्कधोसे उनकी उत्पत्ति होती है, किन्तु जब लोगोको वे स्कध दीखते ही नही कि जिनसे शब्द वर्गणा बनती है और आकाशमे वे प्रतीत होते हैं। शब्द आकाशमे ही सुनाई देते हैं, आकाशसे ही आये हुए मालूम देते हैं तो शब्द आकाशका गुण है। यह सब शंकाकार कह रहा है और उस आकाशको सिद्ध करनेके लिए वे अनुमान प्रयोग बतलाते हैं कि शब्द किसी न किसी जगह आश्रित है, क्योकि विनाशीक और उत्पत्तिमान आदिक धर्मोंसे सहित है। चूंकि शब्द नष्ट होते हैं, उत्पन्न होते हैं इस कारण शब्द किसी न किसीके आश्रयमे रहते हैं। जो-जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं वे किसी न किसी आश्रयमे रहते ही हैं, जैसे कि घड़े फूटते हैं, नष्ट होते हैं, तो वे अपने अवयवोमे रह रहे हैं। इसी प्रकार शब्द भी नष्ट होते हैं और उत्पन्न हुआ करते हैं। इस कारण शब्द किसी न किसी आधारमे है और वह जो आधार है सो आकाश है। दूसरा भी प्रयोग सुनो! चू कि शब्द गुण है इसलिये शब्द किसी न किसीके आश्रयमे रहता है। जैसे—रूप, रस ये

गुण हैं तो किसी न किसीके आश्रयमे रहते हैं। फलमें रूप है सो रूपका आधार फल हुआ ना। रूप गुण हुआ। गुण किसी द्रव्यके आश्रय रहा करता है। तो शब्द भी गुण है अत. शब्द किसीके आश्रय रहेगा ही। और वह शब्द जिसके आश्रय रहेगा, उस हीका नाम है आकाश !

शङ्काकार द्वारा शब्दके गुणत्वकी सिद्धि—कोई कहे कि शब्द तो गुण नही है, तो शकाकार कहता कि उसका कहना असत्य है। शब्द गुण है। देखो ! शब्दके गुणपनाको सिद्ध करने वाला अनुमान है, शब्द गुण है, क्योंकि द्रव्यत्व और कर्मत्व तो शब्दमें हैं ही नही और सत्ता, इसका सम्बन्ध है, तो जो–जो पदार्थ द्रव्य और कर्मभावरूप न होकर फिर सत्तासे सम्बंधित हो उसे गुण कहा करते हैं—जैसे रूप रस आदिक ! ये द्रव्य नही हैं, कर्म नही हैं और इनका सत्तासे सम्बन्ध होता है। ये हैं इस कारण गुण कहलाते हैं। इसी प्रकार शब्द भी द्रव्य नही, कर्म नही और सत्तासे शब्दका सम्बन्ध होता है, इस कारण शब्द गुण है। यह साधन असिद्ध नही है, इसको भी साधने वाला अनुमान है। शब्द द्रव्य नही होता क्योंकि एक द्रव्य वाला होनेसे रूप आदिककी तरह। शब्द एक द्रव्यका गुण है, इस कारण शब्द द्रव्य नही कहलाता। जो–जो एक द्रव्य वाले होते हैं वे द्रव्य नही हैं। जैसे—रूपादिक ये एक द्रव्यके आश्रय हैं इस कारण ये द्रव्य नही कहलाते। यह हेतु असिद्ध नही है क्योंकि शब्द एक द्रव्य है, ऐसा सिद्ध करने वाला अनुमान है। शब्द एक द्रव्य वाला है अर्थात् वह एक आकाश द्रव्याश्रय वाला है। वह द्रव्यके आश्रित है, क्योंकि शब्द सामान्य विशेषवान होनेपर फिर बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत होता है। जो जो सामान्य विशेषवान होकर बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत हो वह एक द्रव्य ही तो होगा। इस हेतुमें सामान्य विशेषवत्त्व, इतना ही कहनेपर परमाणुके साथ अनेकान्त दोष आता किन्तु एकेन्द्रिय प्रत्यक्षत्व भी साथमे कहा गया है इससे अनेकान्त दोष नही। अगर यदि हेतुमे सामान्यविशेषवत्त्व ही कहते और एकेन्द्रिय प्रत्यक्षत्व यह नही कहते तो देखो ! परमाणु सामान्य विशेष वाला है तब वह भी एक द्रव्य कहलाता है अर्थात् वह भी स्वतन्त्र एक द्रव्य है, परमाणु तो स्वय द्रव्य है। तो अब उसके साथ इन्द्रिय प्रत्यक्षत्व यह कहा गया तब परमाणुके साथ अनेकान्त दोष न हो सका। परमाणु इन्द्रियप्रत्यक्ष कहाँ है ? इस कारण वह एक द्रव्य नही है। और, सामान्य विशेषवत्त्व भी कहते और इन्द्रिय प्रत्यक्षत्व भी कहते और बड़ा एक शब्द न लगाते तो घट आदिकके साथ भी अनेकान्त दोष होता ! किस तरह कि घट आदिक एकेन्द्रिय होके द्वारा हेतुभूत नही है, क्योंकि घटको चक्षुसे भी जानते रसनासे भी जानते, घ्राणसे भी जानते, स्पर्शनसे भी जानते। यह तो अनेक इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्षभूत है। इससे घटको भी एक द्रव्य वाला नही कह सकते। हेतुमे इतने सारे विशेषण देकर भी एक बाह्य शब्द यदि न देते तो आत्माके साथ अनेकान्त दोष होता क्योंकि आत्मा सामान्यविशेषवान है और एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष है याने मनके द्वारा जान लिया जाता है। मन

भी एक इन्द्रिय है, मन है भीतरकी इन्द्रिय और ५ हैं बाहरी इन्द्रिया । तो जब बाह्य विशेषण दिया कि जो बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष हो वह एक द्रव्य वाला है तो आत्मा तो बाह्य इन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष वाला नही है । इस हेतुमे अन्य सब शब्द देते और सामान्यविशेषवान ये शब्द न देते तो रूपत्वके साथ भी अनेकान्त दोष होता । रूपत्व बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत है, फिर भी वह एक द्रव्य वाला नही है । सो हेतुके साथ सामान्य विशेषवान पद भी लगा है । जो सामान्य विशेषवान हुआ करे, फिर बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत हो वह है एक द्रव्य वाला । तो यह रूपत्व सामान्य विशेषवान नही है क्योकि ये स्वय सामान्यस्वरूप हैं । तो इस तरह शब्द एक द्रव्य वाला है, स्वय द्रव्य है नही, सो शब्द गुण है ।

कर्मरूप भी न होनेसे शब्दके गुणत्वकी असिद्धि और आकाशमे शब्द आश्रयत्वका उपसहार– शब्द कर्म भी नही है । शब्द कर्मरूप नही होता, क्योकि सयोग विभागका यह कारण नही है । जितने भी कर्म होते है, वे सयोग विभागके कारणभूत होते हैं अथवा सयोग विभागसे कर्म होते हैं । कुछ भी क्रिया करें, हाथ चलायें तो इसमे भी कुछ सयोग हुए कुछ वियोग हुए । जिस जगहसे हाथ हटा उस जगहसे वियोग हुआ, जिस जगह हाथ आया उस जगह सयोग हुआ । तो सयोग वियोग हुए बिना क्रिया नही हुआ करती । कोई आदमी एक गावसे दूसरे गाव गया तो एक गावका वियोग हुआ और दूसरे गांवका सयोग हुआ । कोई बालक वही खडा खडा गोल-गोल फिर रहा है तो गोल फिरनेमे भी अनेक स्थानोका वियोग होता जाता है और अनेक स्थानोका सयोग होता जाता है, तो क्रिया सयोग-विभाग बिना नही होती । लेकिन शब्द न सयोगका कारण है न विभागका कारण है । इस कारण से शब्द कर्मरूप भी नही कहलाता रूप आदिककी तरह । जैसे रूप न तो सयोगका कारण है न विभागका कारण है, अतएव कर्मरूप नही कहलाता है । तो इस तरह यह सिद्ध है कि शब्द न तो द्रव्यभाव रूप है और न कर्मभावरूप है । तब शब्द न द्रव्यमे आया न कर्ममे आया और शब्दके साथ सत्ताका सम्बन्ध है और तब वह गुण ही कहलाया करता है ।

शब्दका गुणत्व सिद्ध करनेके लिये दिये गये हेतुके विशेषणोंकी सार्थकताका शङ्काकार द्वारा कथन—शब्दका गुणपना सिद्ध करनेके लिए हेतु दिया है कि प्रतिविध्यमान द्रव्य सामान्य भावरूप होनेपर सत्ताके साथ सम्बन्धित है अर्थात् जो न द्रव्य है, न कर्म है फिर भी सत्तासे सम्बन्धित है उसे गुण कहते हैं । तो इस हेतुमें सत्ता सम्बन्धित इतना ही कहते तो द्रव्य और कर्मके साथ अनैकान्तिक दोष होता । कैसे ? कि देखो ! द्रव्यमें तो सत्ताका सम्बन्ध है और कर्ममे भी सत्ताका सम्बन्ध है, परन्तु वे गुण नही कहलाते है । उस अनैकान्तिकताको दूर करनेके लिए एक विशेषण दिया है कि जो द्रव्य कर्मरूप तो न हो और फिर सत्तासे सम्बन्धित हो तो शब्द न तो

स्वय द्रव्य है, न स्वय कर्म है, इस कारणसे शब्द गुण कहलाते हैं। यदि इस हेतुमे केवल प्रतिपिध्यमान द्रव्यकर्मभावरूपत्व इतने ही शब्द देते तो सामान्य विशेष समवायके साथ अनैकान्तिक दोष होता, क्योकि सामान्य, विशेष, समवाय भी न द्रव्य है और न कर्म। तो सामान्य, विशेष, समवाय भी गुण कहलाने लगते। और, जब सत्ता सम्बन्धित्व यह भी शब्द हेतुमे पडा हुआ है तो द्रव्य और कर्मके साथ अनैकान्तिक दोष नही हो सकता, क्योकि सामान्य, विशेष और समवायमें सत्ताका सम्बन्ध नही माना गया है। सत्ताका सम्बन्ध द्रव्य गुण कर्मपर्यायोके साथ है और सामान्य, विशेष समवाय ये तो कोई धर्मरूप हैं, इनमे सत्ताका सम्बन्ध नही है। और, ये तीनो स्वतन्त्र-स्वतन्त्र पदार्थ हैं। तो सत्ता सम्बन्धित्व यह शब्द देनेसे सामान्य विशेष समवाय इनका गुणपना सिद्ध हो जाय ऐसा दोष नही आता। तब इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि शब्द है गुण इस कारण ये शब्द किसी न किसीके आश्रयमे रहते हैं। अब जिसके आश्रयमे ये शब्द रहते हैं वह आश्रय है आकाश!

द्रव्यके पृथ्व्यादि विशेषगुणत्वका निषेध करके आकाशगुणत्वकी सिद्धिकी आशङ्का—आकाशको छोडकर शब्द और किसी अन्यका गुण नही है। स्पर्शवान परमाणुवोका अर्थात् पृथ्वी जल, अग्नि, वायु इनका भी विशेष गुण शब्द नही है, क्योकि हम जैसे अल्पज्ञोके द्वारा वह प्रत्यक्ष हुआ करता है, जैसे कि रूपादिक कार्य द्रव्य स्पर्शवान परमाणुवोके विशेष गुण नही हैं और न शब्द कार्य द्रव्योका याने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुका विशेष गुण भी नही है क्योकि कार्य द्रव्यान्तरसे उत्पन्न न होनेपर भी ये शब्द उत्पन्न हुआ करते हैं, जैसे कि सुख आदिक। ये कार्य द्रव्यान्तर से उत्पन्न नही होते, द्वचणुक आदिकसे उत्पन्न तो नही होते और फिर भी विशेषगुण है, लेकिन पृथ्वी आदिकके विशेष गुण नही है। यहा शब्दको न तो कारण परमाणुवो का गुण बताया गया और न कार्य द्रव्योका गुण बताया गया। इस कारण परमाणु जो हैं स्पर्श परमाणु रस परमाणु रूप परमाणु, गध परमाणु इनका भी गुण नही हैं और इन परमाणुवोके सम्बन्धसे जो कार्य द्रव्य बनता है, पृथ्वी आदिक पिण्ड होते हैं उनका भी गुण नही है, क्योकि ये शब्द कार्य द्रव्यान्तरसे तो उत्पन्न होते नही, याने द्वचणुक आदिकसे शब्द उत्पन्न नही होते और फिर भी शब्द उत्पन्न हुआ करते है, तब पारिशेष्य न्यायसे आकाशका ही गुण कहलाया। दूसरा हेतु यह है कि यह कारण पूर्वक नही है। कारण कहलाता है परमाणु और रूप आदि परमाणुका जैसा कार्य होता है इस तरह यह शब्द कारणगुणपूर्वक नही है। शब्द कारण गुण वाला नही है। जैसे इच्छा। इच्छा कारणगुणपूर्वक नही होती तो वह पृथ्वी आदिकका विशेष गुण नही कहलाया। तीसरा हेतु है कि यह समस्त द्रव्योमे नही होता। जैसे कि इच्छा सम्पूर्ण आत्मामे नही होती इसी प्रकार यह शब्द भी समस्त आकाशमे नही होता। किस जगह हुआ, किस जगह यह शब्द न हुआ। अथवा हम जैसे अन्य पुरुषोके द्वारा भी प्रत्यक्ष होनेपर भी अन्य पुरुषान्तरसे जो अत्यन्त दूरीपर खडा है प्रत्यक्ष नही होता

यह शब्द इस कारण यह पृथ्वी आदिकका विशेष गुण नही है तथा भेरी आदिक जो वाजे हैं वे आश्रयभूत हैं, उनकी जगहसे भी अन्य जगहमे शब्दोकी उपलब्धि होती है, इस कारण ये पृथ्वी आदिकके विशेष गुण नही हैं। यदि शब्द पृथ्वीका विशेष गुण होता तो वाजे तो पृथ्वी तत्त्व हैं। तो जैसे रूप पृथ्वीका विशेष गुण है तो रूप पृथवी मे ही तो पाया जा रहा, पृथवीको छोडकर अन्यत्र तो नही पाया जाता। बाजा कही बज रहा है, शब्द है कही अन्यत्र। शब्द यदि पृथवीका विशेष गुण होता तो जैसे पृथवीके विशेष गुण, उन्हें जो कोई देखे सभीको दीख जायेंगे। दूरसे देखें तो दूरसे भी दीखते हैं। जब वह जिस अन्य पुरुषोके द्वारा दिख सकने वाली चीज है और फिर वह दूसरेको दिखे ना, तो इसके मायने है कि वह उसका गुण नही है। पृथवीमे रूप दिखता है, दूरसे देखें तो दिखता है, पाससे देखें तो दिखता है। स्पष्ट देखें तो दिखता है, अस्पष्ट देखें तो दिखता है, लेकिन शब्दकी बात ऐसी नही है। शब्द यदि पृथवीका गुण होता तो जो भी पास होता अथवा दूर होता, जिसके सामने वह पृथवी है तो उसे भी शब्दका ज्ञान हो जाना चाहिए, पर होता नही। शब्द यदि पृथवीका गुण होता तो जितनी पृथवी है, सारी पृथवीके वे गुण आ जाने चाहिएँ, सबमे शब्द समाना चाहिए, पर पूरे द्रव्यमे तो वे शब्द आते नही। इस कारणसे सिद्ध है कि स्पर्श आदि परमाणुओंका अथवा कार्यद्रव्योका यह गुण नही है। पृथवी आदिकमे जैसे गुण पाये जाते हैं उनसे शब्द गुण विपरीत ही है।

आत्माका गुण भी न होनेसे शब्दके आकाशगुणत्वके समर्थनकी शंका

शब्द आत्माका भी विशेष गुण नही है, क्योंकि आत्मा तो अहं शब्दवान है। मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हू इस प्रकार जिसमे अहं प्रत्यय हुआ करता है उसीसे तो जाना जाता है कि यह मैं आत्मा हूँ पर अहंकारसे रहित है शब्द। जैसे मैं सुखी हू, दुखी हू, यह ज्ञान होता है, तो इससे सिद्ध है कि आत्माका गुण सुख–दुःख है, लेकिन मैं शब्दवान हूँ, ऐसा तो कभी भी ज्ञात नही होता। इस तरह यह शब्द भी आत्माका विशेष गुण नही कहला सकता। दूसरे आत्माका गुण होता तो वाह्य इन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष न हो सकता था शब्द। देखो ! वाह्य इन्द्रिय कर्ण है और उसके द्वारा शब्दका प्रत्यक्ष होता है, आत्माका विशेष गुण होता तो वाह्य इन्द्रियोके द्वारा प्रत्यक्ष न हो सकता था क्योंकि आत्मा तो अन्तस्तत्त्व है। सुख–दुःखादिक किसी भी गुणका वाह्य इन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष नही हुआ करता। दूसरी बात यह है कि आत्माका गुण होता शब्द तो उस ही आत्माको शब्दका ज्ञान होता जिस आत्माका गुण होता। अन्य आत्माओके द्वारा तो यह ग्राह्य नही होता, लेकिन शब्दको सभी आत्मा, सभी जीव सुनते हैं, जानते है, एक ही शब्दको सभी आत्मा जानते हैं। तो जब आत्मामें सुख पैदा हो तो उस सुखको दूसरा तो नही जानता, तो आत्मान्तरके द्वारा शब्द ग्राह्य है इस कारण भी शब्द आत्माका विशेष गुण नही है, क्योंकि जो आत्माके गुण होते हैं—बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष आदिक ये सब इन हेतुवोसे उल्टे हैं॥ ये आत्मान्तरके द्वारा

ग्राह्य नहीं हैं बाह्य इन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत नहीं हैं। अहङ्कार भावसे ये जाने जाते हैं इस कारण शब्द आत्माका विशेषगुण नहीं, आकाशका गुण जचता है।

मन, दिशा, काल आदिका भी गुण न होनेसे शब्दके आकाश गुणत्व के समर्थनकी शंका—शब्द मनका गुण भी नहीं है, क्योंकि हम जैसे मनुष्योंके द्वारा प्रत्यक्ष हुआ करता है शब्द यदि मन आत्माका गुण होता तो हम लोगोंके द्वारा वह प्रत्यक्षमें न आ सकता था रूपादिककी तरह। जैसे रूपादिक मनके गुण नहीं हैं तो हम लोगोंको प्रत्यक्ष हो जाता है तो शब्द मनका भी गुण नहीं है। इसी प्रकार शब्द दिशा और कालका भी विशेष गुण नहीं है क्योंकि दिशाओंका काम और है, कालका काम और है। दिशायें पूर्व पश्चिम आदिक ज्ञानका कारण हैं और काल पदार्थके परिणमनका कारण है, ये शब्दके गुण नहीं हो सकते। तो जब शब्द पृथ्वी जल, अग्नि, वायु, दिशा, काल, आत्मा, मन इन ८ द्रव्योंका गुण न हो सका और है यह गुण तो पारिशेष्य न्यायसे यह सिद्ध हुआ कि इस गुणका आश्रयभूत आकाश है और यह आकाशका ही गुण है। अब वह आकाश एक है क्योंकि शब्द लिङ्गकी अविशेषता है अर्थात् शब्द ही इस आकाशका लिङ्ग है, पहिचान है, अन्य कोई इसकी पहिचान नहीं है। आकाश द्रव्यका परिचय हमको किस तरह प्राप्त हो तो उसका कारण है केवल शब्द लिङ्ग। तो शब्द लिङ्गकी अविशेषता होनेसे और विशेष लिङ्गका अभाव होनेसे वह आकाश एक है। तथा वह आकाश व्यापक है क्योंकि आकाश सब जगह उपलभ्यमान गुण वाला है अर्थात् जहाँ देखो तहाँ ही शब्द लिङ्ग आकाश पाया जाता है तथा इसका दूसरा हेतु है नित्यपना होनेपर हम जैसे पुरुषोंके द्वारा उपलभ्यमान गुण अधिष्ठान है, आश्रय है इससे सिद्ध है कि वह आकाश व्यापक एक ही है। तो यों आकाश नित्य हुआ, एक हुआ, व्यापक हुआ और शब्द गुण वाला हुआ। शब्दका आधारभूत यह आकाश द्रव्य नित्य है, क्योंकि सामान्य विशेषवान होनेपर भी यह अनाश्रित है, अर्थात् आकाश किसीके आश्रयभूत नहीं है, जैसे कि आत्मा। वह सामान्यविशेषवान है और फिर भी अनाश्रित है, किसीके आधारमें नहीं है। तो जैसे आत्मा नित्य है इसी प्रकार आकाश भी नित्य है। यह आकाश अनाश्रित है। शब्दका आधारभूत जो भी द्रव्य है वह है आकाश वह शब्दाधिकरण आकाश द्रव्य अनाश्रित है, क्योंकि गुणवान होनेपर भी स्पर्शवान नहीं है। गुणवान हो, और जिसमें स्पर्श न पाया जाय वह अनाश्रित ही कहलाता। जैसे—आत्मा गुणवान तो है पर स्पर्शवान नहीं है तो वह अनाश्रित हुआ इसी प्रकार आकाश भी गुणवान तो है पर स्पर्शवान नहीं है इस कारण वह भी अनाश्रित हुआ और, आकाशमें द्रव्यत्व है अर्थात् आकाश कोई वास्तविक द्रव्य सत् है क्योंकि समवायवत्त्व न होनेपर यह अनाश्रित है, इस कारण इसमें द्रव्यपना है। इस तरह शंकाकारने आकाश द्रव्यकी सिद्धि की है।

शब्दके आकाश गुणत्वका निराकरण—अब उसके उत्तरमें कहते हैं कि

तुम आकाशको जो शब्दोंका आश्रय बताते हो और उसमे गुणत्व हेतु देते हो अर्थात् शब्द आकाशके आश्रय हैं, क्योंकि शब्द गुण है और शब्द गुणका कोई आश्रय होना चाहिए। तो शब्द गुणका कोई आश्रय सिद्ध कर रहे हो सो सामान्यसे आश्रयपना बताते हो कि शब्द किसी न किसीके आश्रय है या नित्य एक अमूर्त विभु द्रव्यके आश्रयपना बताते हो याने शब्द किसी न किसीके आश्रय है, मूल चर्चा तो यह है। अब किसीके आश्रय है, तो किसीके आश्रय है इतना ही सिद्ध करना चाहते या शब्द नित्य एक अमूर्त व्यापक द्रव्यके आश्रय है ऐसा सिद्ध करना चाहते। यदि शब्दोंका सामान्यसे किसीके आश्रित है ऐसा सिद्ध करना चाहते हो तो यह बात सिद्ध साध्य है। शब्द है ही किसीके आश्रय। लेकिन वह है पुद्गलके आश्रय। क्योंकि, शब्द पुद्गलकी क्रिया है। तो अनुमानसे यह सिद्ध न हो पायगा कि शब्द आकाशके आश्रय है किन्तु यह सिद्ध होगा कि शब्द किसीके आश्रय है, और, फिर युक्ति अनुमान आदिकसे वहाँ यह समझा जायगा कि यह शब्द पुद्गलके आश्रित है। दूसरा पक्ष लोगे कि यह शब्द नित्य एक अमूर्त व्यापक द्रव्यके आश्रय है तो तुम्हारे हेतुमें सदिग्ध दोष, विपक्ष दोष, अनैकान्तिक दोष होगा, क्योंकि आकाश द्रव्यके आश्रय है यह शब्द, ऐसा सिद्ध करने के लिए तुम्हे कोई दृष्टान्त न मिलेगा। तो आपका हेतु साध्यविकल बन गया, अर्थात् उसकी उपमा देनेके लिए तुम्हे लोकमे कोई पदार्थ नही मिल सकता इससे शब्द आकाश का गुण नही है किन्तु यह पुद्गल द्रव्यका कार्य है।

शब्दके पुद्गल द्रव्यकार्यत्वकी सिद्धि—मोटेरूपसे भी परखलो–शब्द किसी दूसरे पदार्थके द्वारा छिड जाता है, शब्द कोई कमरेमे बोल रहा हो, किवाड सब बद हो तो बाहर वाला व्यक्ति सुन भी नही सकता। इससे सिद्ध है कि शब्द पौद्गलिक है। यदि आकाशके गुण होते शब्द तो आकाश अमूर्त है तो शब्द भी अमूर्त होते और, अमूर्त होनेके नाते फिर वे शब्द किसी भी पदार्थसे भिड नही सकते थे। तो चूँकि शब्द पदार्थोंसे छिड भिड जाते हैं इस कारणसे शब्द आकाशके गुण नही हैं। वे मूर्तिक पुद्गलके ही गुण हैं। शब्द हमेशा या तो किसी पुद्गलके सयोगसे उत्पन्न होता या पुद्गलके वियोगसे उत्पन्न होता है। जैसे मुखसे जो वचन निकलते हैं वे जिह्वा, तालु आदिकके सयोगसे और कभी वियोगसे भी होते हैं इसी तरह कभी पृथ्वीके सयोग से और कभी वियोगसे शब्द उत्पन्न होते हैं तो वे जो शब्द उत्पन्न हुए सो पृथ्वी आदिक के सयोग वियोगसे हुए। एक तो यह बात है साथ ही उस सयोग वियोगके समयमें आकाशमे सर्वत्र भरे हुए एक भाषा वर्गणा जातिके ही स्कध हैं। उन स्कधोमे शब्दत्व की उत्पत्ति होती है इस कारण शब्द रूप, रस, गध, स्पर्शवान पुद्गलके ही कार्य हैं और शब्द स्वय पर्याय है। शब्द गुण जो होते हैं वे शाश्वत हुआ करते हैं, किन्तु शब्द उत्पन्न होते और नष्ट होते। उत्पन्न हो जाना, नष्ट हो जाना यह तो स्वय शकाकार ने स्वीकार किया है। तो जो जो भी पदार्थ उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते वे गुण नही हैं, किन्तु वे किसीके कार्य हैं। तो शब्द भाषावर्गणा जातिके स्कधोके कार्य हैं और

पुद्गलके भी गुण नही हैं। तो जब शब्द आकाशका गुण सिद्ध नही हो सकता तो शब्द लिङ्गवाले आकाशका अस्तित्व नही है।

स्पर्श आदिका आश्रय होनेसे शब्दके द्रव्यत्वकी सिद्धि—शंकाकारने यह कहा था कि शब्द गुण है क्योंकि 'प्रतिसाध्यमान द्रव्यकर्म भाव होनेपर सत्तासे सम्बंधित होनेसे। इस अनुमानके हेतुमे प्रतिषिध्यमान कर्मता तो है अर्थात् शब्द कर्म नही है परन्तु प्रतिषिध्यमान द्रव्यत्व नही है, क्योंकि शब्द द्रव्य है। उसका अनुमान है, शब्द द्रव्य है क्योंकि स्पर्शका आश्रय होनेसे अल्पत्व और महत्व परिमाणका आश्रय होनेसे, सख्या और सयोग गुणका आश्रय होनेसे। जो जो पदार्थ स्पर्शके आश्रय हैं, अल्पत्व, महत्व परिमाणके आश्रय हैं सख्या सयोगके आश्रय हैं, वे द्रव्य होते हैं जैसे बेर, आँवला, बेल आदिक। इसमे स्पर्श भी है, अल्प महत्वका परिमाण भी है, इनकी सख्यायें भी होती हैं और इनका सयोग भी होता है। तो इसी तरह शब्द भी स्पर्शवान है, शब्दमे अल्पत्व महत्वका परिमाण है। शब्दोंमें सख्या भी है और शब्द सयोग गुणका आश्रय भी करता है, इस कारण शब्द द्रव्य है। शब्दकी स्पर्शाश्रयता असिद्ध नही है अर्थात् शब्द स्पर्शवान है उसका अनुमान प्रयोग भी है। शब्द स्पर्शवान है क्योंकि अपने से सम्बद्ध पदार्थान्तरके अवगाहका हेतु होनेसे, मुद्गर आदिककी तरह। जैसे—मुद्गर डडे आदिक ये स्पर्शवान हैं और अपनेसे सम्बद्ध अन्य पदार्थके अभिघातका कारण भी बनता है तो शब्दमे सम्बद्ध पदार्थान्तरके अभिघातका कारणपना है यह बात भली भाँति विदित है। जब घटा आदिकके शब्द होते हैं तो उन ध्वनियोंके सम्बधसे कान आदिकमे अभिघात पहुचता है, और, कभी तेज अभिघात हो जाय तो उसके कार्यभूत बहिरापन आदिक भी बन जाते हैं। या जिस समय घटा आदिककी तेज ध्वनियाँ कानोको बाधितकर रही हो तो उस समय अन्य बातोके सुननेमे कान बहिरे हो जाते हैं। शब्द अगर अस्पर्शवान होता तो यह कुछ हो नही सकता था। अस्पर्शवान काल आदिकसे शब्दका सम्बन्ध नही देखा गया है। यह अस्पर्शवान शब्द काल आदिकसे बिल्कुल प्रथक् हैं।

शब्द द्वारा अभिघात व शब्दका निषेध होनेसे शब्दके स्पर्शवत्त्वकी सिद्धि—शङ्काकार कहता है कि घण्टा आदिकके शब्दोके होनेपर जो श्रोत्रको अभिघात पहुचा, वह शब्दकी वजहसे नहीं, किन्तु शब्दके साथ रहने वाली जो वायु है उस वायुके कारण अभिघात हुआ है। उत्तर देते हैं कि यह न कहना चाहिए, क्योंकि वायु का तो शब्दके अभिसम्बन्धके साथ अन्वय व्यतिरेकपना है अर्थात् शब्द होता है, वहाँ वायु बनती है। अभिघात जो होता है वह वायुसे नही हुआ किन्तु शब्दसे हुआ। शब्द के साथ वायु भी है इस कारण उस अभिघातमे कुछ भले ही सहयोग हो पर वायुका अभिघात और तरहका होता शब्दका अभिघात और तरह का होता। तो शब्दका अभिसबधित है वायु तो भी यदि वायुका अभिघात मानते हो, हो तो रहा है शब्दका अभि-

घात मगर मानते हो वायुमे याने अन्यसे अभिघात यहाँ और अन्य कोई हेतुकी कल्पना करे तो हम कहते हैं कि वायुमे भी क्या विश्वास रहा ? हम कैसे दृढता से कह सकते है कि वह अभिघात वायुके द्वारा हुआ? हम ऐसा कह सकते हैं कि वायु आदिकके सम्बन्धसे भी अभिघात नही हुआ, किन्तु कोई अन्य ही अनिर्वचनीय तत्त्व है जिसके कारण अभिघात हुआ । और यो कह देनेपर तो किसी भी अनुमानमे हेतुका कोई अवस्थान न रहेगा । यदि कहोगे कि शब्द तो गुण है और गुण होनेसे चूकि गुण निर्गुण हुआ करता है अत: शब्दमे फिर कोई गुण न रहा तब स्पर्शका अभाव होनेसे वह शब्द दूसरे के अभिघात का कारण नही हो सकता । ऐसा मानने पर चक्रक प्रसग हो गया । किस प्रकार कि गुणत्व तो तब सिद्ध हो जब शब्दमे द्रव्यत्व सिद्ध न हो । और शब्दमे अद्रव्यत्व सिद्ध तब हो जब शब्द अस्पर्शवान सिद्ध हो और शब्द अस्पर्शवान तब सिद्ध हो जब शब्दमे गुणपना सिद्ध हो, तो इस तरहसे चक्रक दोष हो गया । इतरेतरा दोषमे तो दो से सम्बन्ध रहता है किन्तु चक्रक मे तीन से सम्बन्ध रहता है अथवा कही और अधिकसे भी सम्बन्ध रहता है, शब्द स्पर्शवान है यह भली भाँति अनुभवसे भी सिद्ध है क्योकि स्पर्शवान पदार्थसे ही अभिघात हुआ करता है, जब शब्द जोरसे बोले जाते हैं तो कानमे ही क्या बल्कि किसी अगमे उसका स्पर्श और अभिघात प्रतीत हुआ करता है । स्पर्शवान पदार्थवान पदार्थ भी दूसरे का अभिघात करता है और दूसरे पदार्थ के द्वारा शब्दका भी अभिघात होता है । जिस ओर से शब्द आ रहा हो उस की खिलाफ दिशा कि ओरसे यदि वायु चल रही है तो शब्द फिर सुनाई नही देता । शब्दकी गति रुक जाती है अथवा लौट जाती है । तो शब्द अभिघातके योग्य है और शब्द अभिघात करता है ये दोनो बाते सिद्ध होती हैं । प्रतिघात करने वाली भीट आदिकका अभिघात बराबर देखा जा रहा है । मूर्त पदार्थसे अमूर्तका अभिघात नही हुआ करता । मूर्तसे मूर्तका ही अभिघात होता है । तो भीट आदिकसे जो शब्द रोके गए या बड़े तीव्र शब्दोसे कानोमे या अन्य स्थानपर जो अभिघात हुआ उससे सिद्ध है कि शब्द मूर्त पदार्थ है और जब शब्द मूर्त द्रव्य सिद्ध हो जाता है तब उसे आकाशका गुण नही कह सकते । तो यह शब्द स्पर्शका आश्रयभूत है यह बात सिद्ध है ।

अल्पत्व महत्त्व परिमाणका आश्रय होनेसे शब्दके द्रव्यत्वकी सिद्धि— शब्दमे अल्पत्व और महत्त्वका परिमाण भी पाया जाता है क्योकि बेर, बेल आदिक की तरह शब्दमे भी यह शब्द अल्प है, यह शब्द महान है इस प्रकारकी प्रतीति पाई जाती है । शकाकार कहता है कि अल्प शब्द मद है आदिक प्रतीतिसे मन्दत्व ही धर्म ग्रहणमे आता है । और महान शब्द तीव्र है । वहाँ उस प्रतीतिमे तीव्रत्व ही ग्रहणमे आता है, पर परिमाण नही आता । परिमाणमे तो यह इतना है, ऐसी इयत्ता रहती है, पर शब्दमे इयत्ता तो नही होती । ऐसी तो कोई प्रमाणकी इयत्ता नही करता जैसी कि बेल आदिक पदार्थोंमे परिमाणकी इयत्ता हो जाती है । यह इतना लम्बा चौड़ा फल है आदिक प्रमाण जैसे बनता है इस तरह शब्दके भेद होनेपर और तीव्रता

होनेपर परिमाण नही बनता। मदता और तीव्रता यह तो आवान्तर जाति विशेष है क्योंकि यह स्वय गुण मे रहा करता है शब्दत्वकी तरह। २४ प्रकारके गुणोंमे एक परिमाण नामका भी गुण है और तीव्र होना, मद होना, महान होना यह परिमाण गुणमें आता है। तो परिमाण होनेसे यह गुणरूप ही बना इसको द्रव्य कैसे कह सकते ? उत्तर देते है कि यह बात युक्त नही है। शब्दमे गुणपना किसी भी प्रकार सिद्ध नही है और न उस शब्द गुणमें मदत्व जाति मात्र रहती है ऐसी सिद्धि कर सकेंगे। यदि कहो कि हाँ, शब्दमे मदत्व आदिक जाति है अर्थात् शब्द स्वय गुण है और गुण होनेके कारण उसमे आवान्तर यह मदत्व तीव्रत्व जाति पडी है क्योंकि शब्दत्व होनेसे अर्थात् शब्द जो है वह द्रव्य नही है। तो पूछा जायगा वहाँ कि शब्दमें गुणत्व कैसे सिद्ध है ? जिससे कि शब्द गुणमे रहने वाली मदता आदिकी जाति सिद्ध करो। यदि कहोगे कि शब्द द्रव्य नही है इससे गुणत्व ही सिद्ध होगा तो बताओ शब्द द्रव्य नही है यह कैसे समझा ? तो यदि उत्तर देंगे कि वह अल्पत्व और महत्वका आधार नही है। तो यह पूछा जायगा कि यह कैसे जाना कि शब्द अल्पत्व और महत्व परिमाणका आधारभूत नही है ? यदि उत्तर देंगे कि गुण होनेसे। तब इसमे चक्रक दोष होगया अर्थात् आवान्तर भागके साथ प्रश्नोत्तरमे वह ही प्रश्न और वही उत्तर आता जायगा। तो इससे शब्द गुण नही है किन्तु शब्द द्रव्य है।

परिमाणाश्रयत्व होनेसे शब्दको द्रव्य सिद्ध करनेके प्रसङ्गमे कुछ प्रश्नोत्तर—शकाकार कहता है कि शब्दमे इयत्ताका निश्चय तो नही हो पाता, जैसा कि अन्य द्रव्यमे होता। पृथ्वी, चौकी आदिक जो पदार्थ हैं उनमे परिमाणका अवधारण होता है। वह कितना लम्बा चौडा है पर शब्दमे तो नही होता इससे सिद्ध है कि शब्द द्रव्य नही है, गुण है। उत्तरमें कहते हैं कि यह शका युक्त नही है इस हेतुमें तो वायुके साथ अनैकान्तिक दोष होगा। वायुका क्या परिणमन करोगे ? जैसे बेर बेल आदिकका परिमाण किया जाता इसी तरह वायुमे भी इयत्ता तो निश्चित् नही की जाती। यदि कहो कि वायु तो प्रत्यक्षभूत नही है इस कारणसे उसकी इयत्ता होनेपर भी निश्चित् नही की जा सकती। पर शब्द तो प्रत्यक्षभूत है और फिर भी उसकी इयत्ता नही बन रही है तो इससे सिद्ध है कि शब्दमें परिमाण नही है। और, परिमाण नही है तो शब्द द्रव्य न रहा। शब्द गुण ही कहलायेगा। उत्तर देते हैं कि यह भी बात तुम्हारी अयुक्त है, गुण और गुणीमे कथचित् एकत्व होने पर गुणके प्रतिभास होनेपर गुणीका भी प्रतिभास सम्भव है। यदि कहो कि वायुमें रहने वाला स्पर्श विशेष ही प्रत्यक्ष है, वायु प्रत्यक्ष नही है तो फिर यहाँ शीतस्पर्श है अथवा उष्णता है यह प्रतीति ही हो, वायुकी प्रतीति नही हो। याने जब वायुमे स्पर्श विशेषका प्रत्यक्ष होता है तो लोग वहा यही अनुभव करें कि यहाँ शीतस्पर्श है और यहाँ उष्ण स्पर्श है, पर वायुकी प्रतीति नही करें, जैसे कि रूपका अवभासमान करने वाले ज्ञानमे रूपी वायु प्रतिभासमान होती हो सो तो बात नही। कथचित् एकत्व होनेके कारण स्पर्श

विशेष परिणामका ही काम वायु होनेसे फिर इसको प्रत्यक्षपना कैसे नही सिद्ध है ? अर्थात् वायु स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा गम्य है। देखो ! शब्दके साथ जो परिमाण लगा हुआ है यह इतना तीव्र शब्द है, यह इतना मद शब्द है सो परिमाण भी लोगोकी समझमे आता। कोई जब धीरेसे बोलता है तो कहते हैं कि जरा तेज बोलो ! और रेडियो आदिकमे भी शब्दकी मंदता और तीव्रताके यत्र भी होते हैं। तो इससे सिद्ध है कि शब्दमे परिमाण पडा हुआ है और जिसमे परिमाण हुआ करता है वह द्रव्य हुआ करता है। तो शब्द स्पर्शका भी आश्रयभूत है और अल्पत्व महत्व परिमाणका भी आश्रयभूत है, इस कारणसे शब्द द्रव्य है।

मूर्त शब्द कार्यकी मूर्त उपादानसे निष्पत्ति होनेसे शब्द लिंग आकाश द्रव्यकी असिद्धि—यह शब्द जिस उपादानसे प्रकट होता है वह उपादान यद्यपि सूक्ष्म है, आँखोसे दिखता नही है, पर उनका जो परिणमन है शब्द रूप कार्य है वह कार्य कर्ण इन्द्रियसे जाना जाता है। तो जिसका कार्य कर्ण इन्द्रियसे जाना गया, शब्द की स्थूलता समझी गई तो उसका कारणभूत जो भाषावर्गणा जातिका स्कध है वह भी मूर्तिक है। तो भाषावर्गणा जातिके पुद्गलकी शब्दनामक द्रव्य पर्यायकी उत्पत्ति होती है। शब्द आकाशका गुण नही है जिससे कि आकाशको नित्य एक व्यापो निरश सिद्ध किया जाय। आकाश द्रव्य जो है वह समस्त पदार्थोंके अवगाहन देनेका कारण भूत है तथा आकाशमे प्रतिसमय षड्गुण हानि वृद्धि रूप परिणमन भी चलता रहता है, लेकिन वह शब्द गुण वाला नही है। आकाश अमूर्त है, मूर्तिक शब्दका उपादान मूर्तिक पदार्थ ही हो सकेगा। अमूर्त आकाश नही हो सकता। तो वैशेषिक सिद्धान्तमे जिस प्रकारके स्वरूपका आकाश माना गया है उस स्वरूपका आकाश सिद्ध नही होता वह आकाश शब्द गुणसे रहित है इस कारण द्रव्योके मतव्यमे जैसे—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चारो स्वतत्र जातिके पदार्थ सिद्ध नही होते इसी प्रकार आकाश नामक द्रव्य भी सिद्ध नही होता।

परिमाणाश्रयत्व होनेसे शब्दके द्रव्यत्वकी सिद्धिका प्रकरण—यहाँ प्रकरण यह चल रहा है कि वैशेषिक सिद्धान्तमे पदार्थ ६ प्रकारके माने गए हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय। जिनमेसे द्रव्यका प्रसग चल रहा है। शकाकार ने द्रव्य ९ प्रकारके माने हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश काल, दिशा आत्मा और मन, जिनमे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चार द्रव्योके सम्बन्धमे वर्णन किया गया कि ये चरो एक पुद्गल जातिमे आते हैं, इनकी भिन्न जातिया नही बनती। अब आकाश द्रव्यका प्रसग चल रहा है। विशेषवादमें आकाशको नित्य निरश और शब्दलिङ्ग माना है। तो इस समय आकाशकी नित्यताके सम्बन्धमें अधिक नही कहा जा रहा क्योंकि आकाश द्रव्य नित्यानित्यात्मक है, पर उसमे समझनेकी मुख्यता नित्य रूपसे ही है और, निरशका अर्थ अखण्ड किया जाय तो आकाश अखण्ड है, हाँ आकाशका

शब्दलिङ्गत्व अवश्यव मीमांस्य है। सो शब्दलिङ्गके सम्बन्धमें चर्चा चल रही है। शंकाकारका कहना यह है कि आकाशका अस्तित्व शब्दलिङ्गसे ही जाना गया है। अर्थात् शब्द गुण है और उसका आश्रयभूत जो द्रव्य है वह आकाश द्रव्य है। उसके निराकरणमें यहां यह सिद्ध किया जा रहा है कि शब्द स्वतन्त्र द्रव्य है, गुण नहीं है। शब्दके द्रव्यत्वकी सिद्धिमें यह हेतु कहा गया है कि शब्द चूंकि स्पर्शका आश्रय है इस कारणसे शब्द द्रव्य है। दूसरा हेतु कहा जा रहा है कि शब्द चूंकि अल्पत्व महत्त्व परिमाणका आश्रयभूत है इस कारण शब्द द्रव्य है। अन्य भी हेतु दिया जायगा, पर इस समय इस हेतुपर विचार चल रहा है। शब्द अल्प और महान हुआ करते हैं। तो जो परिमाणका आश्रयभूत है वह द्रव्य होता जैसे बेर, आंवला, केला वगैरह। ये परिमाणके आश्रयभूत हैं। छोटा बड़ा इस तरहसे उनमें परिमाणका व्यवहार होता है तो वे द्रव्य हैं इसी प्रकार शब्दमें भी परिमाण पाया जाता है। यह महान शब्द है यह अल्प शब्द है। तो जिसमें इयत्ता पायी जाय, परिमाण पाया जाय वह द्रव्य है।

शब्दमें अल्पत्व महत्त्व परिमाणका अवधारण—यहाँ इयत्ताके विरोधमें शंकाकार अपनी चर्चायें रख रहा है, उस सम्बन्धमें शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि इयत्ता परिमाणसे भिन्न है या अभिन्न ? यदि भिन्न है तो यह कहना कैसे युक्त है कि इयत्ताका अनवधारण होनेसे परिमाणका अनवधारण है अर्थात् इयत्ताका पता न चलनेसे, इयत्ताकी सिद्धि न होनेसे परिमाणकी सिद्धि नहीं होती यह बात कही कैसे जा सकती, क्योंकि इयत्ता तो शंकाकार मान रहा है भिन्न, परिमाणको मान रहा है भिन्न, तो भिन्न–भिन्न दो वस्तुवोंमें यह सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता कि इसका निश्चय न हो तो उस दूसरे भिन्नका भी निश्चय न होगा। जैसे—घट और पट ये भिन्न–भिन्न हैं। तो यह तो नहीं कह सकते कि घटका निर्णय न होनेपर पटका अभाव हो जाता है। न घट जाना तो क्या कपड़ेका अभाव हो जायगा ? तो भिन्न–भिन्न पदार्थोंमें यह नहीं कहा जा सकता कि इसका अनवधारण होनेपर दूसरेका अभाव हो गया, सो जब यहाँ इयत्ताको और परमाणुको भिन्न–भिन्न मान लिया तो इयत्ताके अनिश्चयमें परमाणुका अभाव नहीं कह सकते। यदि कहो कि इयत्ता परिमाणरूप है, परिमाणसे भिन्न नहीं है तो जब इयत्ता और परिमाण एक ही बात हो गई तो ऐसा जो कहा कि इयत्ताके अनिश्चयमें परिमाण नहीं रहता तो उसका अर्थ यह बन बैठा कि परिमाणके अनिश्चयमें परिमाण नहीं रहता, क्योंकि अब इयत्ता और परिमाण एक हो जानेसे पर्यायवाची हो शब्द कहलायगा। शंकाकार कहता है कि अल्पत्व और महत्त्वके ज्ञान होनेसे हम शब्दमें परिमाणका अवधारण करते हैं। तो उत्तरमें यही बात है कि स्वरूपकी बात मान ली गयी। फिर यह क्यों कहते हो कि परिमाणका अनिश्चय है ? अरे ! जिनमें अल्पत्व महत्त्वका ज्ञान हो रहा है बस वही तो परिमाणका निश्चय कहलाता है। यदि अल्पत्व महत्त्वका ज्ञान होनेपर भी परिमाणका अनिश्चय मानोगे तो बेर, आंवला आदिकमें भी परिमाणका अनिश्चय हो जायगा,

क्योकि अल्पत्व महत्वका ज्ञान होनेपर भी अब शब्दमे वस्तुन: परिमाण नही मान रहे तो वास्तवमे शब्द अल्प और महान होता है। और, जो अल्प और महान होते, जिन मे परिमाण पाया जाता वे द्रव्य कहलाते हैं।

अल्पत्व महत्त्वके कारण शब्दमें अल्पत्व महत्वका व्यवहार—शङ्काकार कहता है कि शब्द स्वय अल्प और महान नही है, किन्तु शब्दमे मदता और तीव्रता है जैसे—लोग भी बोलते हैं कि यह तेज शब्द है, यह मद शब्द है, तो मदता और तीव्रताके सम्बन्धसे शब्दमे अल्पत्व और महत्त्वका ज्ञान हुआ करता है। फिर यो भी लोग बोल देते कि वह बहुत बडा शब्द था, अजी ! छोटा मामूली शब्द था, तो असल मे उसमे मदता और तीव्रता है। मदता और तीव्रताके सम्बन्धमे शब्दमे अल्पत्व और महत्वका ज्ञान किया जाता है। उत्तरमे कहते हैं कि यदि मदत्व और तीव्रत्वके सबध से ही अल्पत्व और महत्व होता है तो देखिये ! नर्मदा नदीका जल कितना मद बहता है। तो मदताका जहा सम्बन्ध हो उसे मानते हैं आप अल्प और तीव्रताका जहाँ सबध हो उसे मानते हैं आप महान, तो नर्मदा नदीके जलमे यह व्यवहार होना चाहिए कि यह जल अल्प है क्योकि इसमे मदता पाई जा रही। नर्मदा नदीका जल तो बहुत धीरे मन्द गतिसे बहता है, गम्भीर होनेसे। तथा शकाकारने तीव्रताके सम्बन्धसे महान माना। तब फिर उस छोटी नदीके जलमे उसके जलको महान जल बोलना चाहिए कि इसमे जल महान है, क्योकि वह तीव्र गतिसे बह रहा है। पर ऐसा तो नही हैं, महान जल तो नर्मदा नदीमे है और छोटी नदीमे जल अल्प है। इस कारण अल्पत्व और महत्वका जो ज्ञान हो रहा है मदता और तीव्रताके कारणसे नही, किन्तु जो अल्प है वह अल्प है, जो महान है सो महान है। अल्पत्व और महत्व परिमाणके कारण ही अल्प और महानका ज्ञान होता है, मदता और तीव्रताके कारणसे नही। अन्यथा अर्थात् यदि अल्पत्व और महत्वका प्रत्यय मदता और तीव्रताके कारणसे हुआ तो बेर आँवला आदिकमे भी मदता और तीव्रताके कारणसे ही अल्प महान व्यवहार करना चाहिए। शकाकार कहता है कि भाई ! बेर आँवले आदिकमे तो द्रव्यत्व होने के कारण अल्प और महान परिमाण सम्भव है इस कारण बेर और आवलेमे जो अल्पत्व और महत्वका बोध होता है वह परिमाणके कारणसे होता है, अल्पत्व महत्व के कारणसे होता है, पर शब्द तो द्रव्य नही है, इसलिये शब्दमें जो अल्पत्व और महत्वका बोध होता है वह मदता और तीव्रताके कारणसे होता है। उत्तरमे कहते हैं कि शब्दमे भी द्रव्यत्व होनेसे अल्पत्व और महत्वके कारणसे ही अल्प और महानका ज्ञान हुआ करता है क्योकि जैसे बेर आवला द्रव्य है। अतएव अल्प और महानका परिमाण उसमे बनता है। इसी प्रकार शब्द भी द्रव्य है और इस कारण इसमे अल्प और महानका परिमाण बनता है।

शब्दोमे कारणगत अल्पत्व महत्त्वके उपचारकी असिद्धि—अब शका-

कार कहता है कि शब्द स्वयं अल्प और महान नही हुआ करते, किन्तु कारणमें पाया जाने वाला जो अल्पत्व महत्त्व परिणाम है उसको शब्दोमे उपचार किया जाता है याने शब्दका कारण है आकाश और उस अल्पत्व महत्त्वमे आकाश पाया जाता। यह एक हाथका आकाश है, यह १० हाथका आकाश है। तो आकाशमे अल्पत्व और महत्त्वका परिणाम है और आकाशका गुण अथवा कार्य है शब्द, सो आकाशके गुणका उपचार शब्दोमे किया गया है। इस ही कारण शब्दमें अल्पत्व और महत्त्वका ज्ञान हुआ करता है। इस शकाके उत्तरमे कहते हैं कि तब तो आकाशके गुणके ही उपचार स वेर और आवलेमे भी अल्पत्व और महत्त्वका ज्ञान किया जाना चाहिए, क्योकि आकाश सब जगह है और उसीमें वेर आंवले पडे हैं तो आकाशके अल्पत्व महत्त्वके परिणाके ही कारण वेर, आंवले आदिकमे अल्पत्व महत्त्वका उपचार कीजिए फिर ? यदि कहो कि वेर आंवला आकाश द्रव्यसे अलग चीज है और वेर आंवलेमें स्वय परिमाण भरा है उससे उसमे अल्पत्व और महत्त्वका ज्ञान होता है तो यही बात शब्दके सम्बन्धमे है कि शब्द आकाशसे भिन्न द्रव्य है और उस शब्दमे स्वय ही अल्पत्व महत्त्व पडा हुआ है उस परिमाणके कारण शब्दमें भी अल्पत्व और महत्त्वका ज्ञान होता है। तब यह सिद्ध हुआ ना कि शब्द परिमाणका आश्रय है, शब्दमे यह अल्प है यह महान है ऐसा परिमाण पाया जाता है और जो जो परिमाणके आश्रयभूत हो वे द्रव्य होते हैं, इस प्रकार शब्द द्रव्य कहलाते हैं।

संख्याश्रयत्व होनेसे शब्दमे द्रव्यकी सिद्धि—अब शब्दको द्रव्य सिद्ध करने के लिए तीसरा हेतु कहते हैं। शब्द द्रव्य है क्योकि सख्याका आश्रय होनेसे। शब्दमें सख्या पायी जाती है एक शब्द, बहुत शब्द। इस प्रकार शब्दोमें सख्यात्वकी प्रतीति होनेसे ये शब्द द्रव्य कहलाते घट आदिककी तरह। जैसे घटमे एक घट, दो घट, दस घट, यो सख्या पायी जाती है, तो जिस जिसमें सख्या पायी जाय वह द्रव्य कहलाता यो शब्द भी सख्याश्रय होनेके कारण द्रव्य है। शकाकार कहता है कि शब्दमें स्वय सख्या नही पडी है। शब्द सख्यावान नही है किन्तु उपचारसे शब्दमे सख्यात्त्वकी प्रतीति होती है। तो उत्तरमे शकाकारसे पूछा जा रहा है कि शब्दमें जो सख्याका उपचार किया जा रहा है वह कारणगत है या विशेषगत ? यदि कहो कि शब्दके कारणभूत द्रव्यमें रहने वाली सख्याका उपचार शब्दमें किया जाता है तो शब्दके कारण हुए दो प्रकारके। एक समवायि कारण और एक कारण मात्र जिसे सीधे शब्दोमें समझिये कि एक उपादान कारण और एक निमित्त कारण यदि समवायि कारणगत सख्याका उपचार शब्दमे किया जाता है तो शब्दका समवायि कारण तो एक ही माना है शकाकारने। क्या ? आकाश, जिसे नित्य और निरश कहा गया है तो शब्दका कारण तो एक है। तो सब शब्दोमें एक ही शब्द है ऐसा उपचार होना चाहिए और ऐसा व्यवहार होना चाहिए, क्योकि शब्दका कारण माना है शकाकारने आकाश और आकाश है एक, पर शब्दमे एकका व्यपदेश हो ऐसा तो नही है। प्रत्यक्ष सिद्ध है कि शब्द अनेक

होते हैं यदि कहो कि कारण मात्रकी सख्याका उपचार शब्दोंमें किया गया है तो सुनो शब्दोंके निमित्त कारण एक नही है अनेक हैं। जिन–जिन पदार्थोंका संयोग वियोग है, कितनी तरहके बाजे हैं, कितनी तरहके दुनियामें पदार्थ हैं उनके सयोग वियोगसे शब्द उत्पन्न होते हैं, सो शब्दके निमित्त कारणोंकी सख्याका उपचार शब्दमे माना जाय तो हमेशा बहुत हैं शब्द ऐसा व्यपदेश होना चाहिए कभी एक दो शब्दोंका व्यवहार होना ही न चाहिए, क्योंकि अब शब्दके निमित्त कारणोकी सख्यासे शब्दकी सख्या मानी जा रही है। तो यह भी बात ठीक नही बैठती कि शब्दके निमित्त आदिक कारणोंकी सख्याका उपचार शब्दमे है। यदि कहो कि शब्द वाच्य विषयोंकी सख्याका उपचार शब्दमें किया जाता अर्थात् शब्दके विषयभूत, वाच्यभूत जितने पदार्थ हैं जैसे घट पट आदिक उन सब पदार्थोंकी सख्याका उपचार शब्दमे किया जाता, ऐसा माननेपर तो बड़ी विडम्बना बनेगी। देखो–गगन, आकाश, व्योम, नभ आदिक शब्द एक आकाशके वाची हैं, तो एक ही आकाश वाच्य होनेसे फिर ये सारे शब्द एक ही रहने चाहिए बहुत न कहलाना चाहिए, लेकिन गगन आदिक शब्द हैं बहुत। तो यह भी नही कह सकते कि विषय सख्याका उपचार शब्दमे किया गया है। और, भी देखिये–एक गो शब्द है जो पशु आदिक बहुतसे अर्थोंका वाचक है, गौ मायने वाणी, दिशा, पृथ्वी, जल, बाण, कितने ही वाच्य हैं, सो विषय बहुत होनेसे शब्द एक न रहेगा, फिर तो अनेक माने जाने चाहिए। इस कारण विषय सख्याके भेदसे भी आप शब्दोंकी सख्याका उपचार नहीं कर सकते, किन्तु शब्दोंमें स्वयं सख्या है। अतः सख्याका आश्रयभूत होनेसे शब्द द्रव्य है।

शब्दोंमें अनुपचरित सख्यावत्त्वकी सिद्धि—शंकाकार कहता है कि जिस तरह विरोध न आवे उस तरह सख्याका उपचार किया जाता है अर्थात् शब्द स्वयं सख्यावान तो नही है किन्तु शब्दका जैसे विरोध न आये उस तरह उपचार किया जाता है अथवा जैसे गो शब्द अनेक अर्थोंका वाचक है फिर भी वह एक कहलाता है। वैसे गो शब्द एक है, लेकिन वाच्य अनेक हैं और गगन, आकाश, व्योम आदिक शब्द अनेक हैं, लेकिन वाच्य है केवल एक आकाश फिर भी वे शब्द अनेक कहलाते हैं। सो जिस तरह विरोध न आये उस तरहसे सख्याका उपचार करना चाहिए। समाधान में कहते हैं कि यह बात भी युक्त नही है कि पदार्थ स्वयं सख्यावान नही होता तो अविरोधकी भी बात नही कर सकते। वास्तवमें पदार्थ तो सख्यावान होता नही और उनमें उपचारकी बात लगाये तो वहां अविरोध भी नही बन सकता। फिर दूसरी बात यह है कि उपचार कल्पना तो वहां की जाती है जहां साक्षात् बाधा न हो। विपरीत बातकी उपलब्धि करने वाला बाधक यदि मौजूद हो तो वहां उपचारकी कल्पना की जाती है। जैसे किसी पुरुषका नाम अग्नि रख दिया तो उस पुरुषमें अग्निका विरोध है। वह स्वयं अग्नि नही है, तब उसमें अग्निका उपचार किया जाता है। कोई पुरुष बहुत क्रोध करता है तो लोग कहते हैं ना, कि यह देखो आग बन रहा है।

तो पुरुषमे आगका विरोध है, वहाँ अग्नित्व है ही नही, तब उपचारकी बात की है। जो साक्षात् ही हो उसमे उपचार ही क्या ? जैसे अग्निको कोई आग क वहाँ उपचारका क्या प्रसङ्ग ? वह तो सीधा अग्निका वाचक शुद्ध हुआ । जं वैसा न हो और उसका फिर नाम लगावें तो उपचार निमित्त बनता है, पर आदिक संख्यासे रहित शब्दकी उपलब्धि ही नही है फिर शब्दमे संख्याके उप बात क्या ? सीधा ही शब्द संख्यावान है ? एक शब्द, दो शब्द दस शब्द हैं । इस निबन्धमे इतने अक्षर हैं, यो सब संख्या बराबर शब्दोमे साक्षात् पायी जात इसलिये शब्दमे संख्याके उपचारकी बात कहना युक्त नही है। यदि एकत्व आदि से रहित न होनेपर भी याने साक्षात् संख्यावान होनेपर भी उपचारकी कल्पन तो फिर दुनियामें कोई पदार्थ अनुपचरित नही रह सकता, सब उपचरित कहला इस कारण शब्द संख्याका आश्रयभूत है, इसमें किसी भी प्रकारकी बाधा नही अर्थात् शब्द संख्यावान हैं और जो जो संख्यावान होते हैं वे द्रव्य कहलाते हैं। जै घट पट आदिकमे संख्यायें चलती हैं—यह एक घट, ये दो घट, ये १० घट आ तो जिसमे संख्याका आश्रय हो वह द्रव्य कहलाता है । शब्दोंमे संख्यामयता जाती है इस कारण शब्द द्रव्य है । शब्द गुण नही है जिससे कि शब्द गुणका आ आकाशको बताकर शब्दलिंग आकाशकी सिद्धि की जाय ।

संयोगाश्रयत्व होनेसे शब्दमे द्रव्यत्वकी सिद्धि—अब शब्दके द्रव्यत सिद्धिमे चौथा हेतु सुनो। शब्द द्रव्य है क्योंकि वह संयोगका आश्रयभूत है, क्योंकि आदिकके द्वारा शब्द अभिहत हो जाता है । शब्दोंका अभिघात वायु आदिकसे हो ज करता है, इससे सिद्ध है कि शब्द द्रव्य है । संयोगका यही तो फल है कि एक दूस अभिहत हो जाय, रुक जाय । तो शब्द भी देखो वायुसे रुक जाता है आगे नही सकता है । तो शब्द भी द्रव्य हुआ । जैसे कि धूली द्रव्य है क्योंकि वायु आदि द्वारा उसका अभिघात हो जाया करता है । जब धूली आदिक वायुसे संयुक्त होती तभी तो वह अभिहत हो जाती है या अन्य किसीसे भी जब धूलीका अभिघात होता तो भिड जाता है । तो वह मूर्त है और द्रव्य है इसी प्रकार शब्दका अभिघात बरा सिद्ध है । कोई देवदत्तसे शब्द बोल रहा, बात कर रहा और वायु उल्टी चल रही अर्थात् देवदत्तकी ओरसे, बोलने वालेकी ओर तेजीसे बह रही है तो उस समय वे श लौट आते हैं । जैसे कि वायुसे धूलीका अभिघात होनेपर धूली लौट आती है इ प्रकार वे शब्द भी रुक जाते हैं और बल्कि लौट भी आते हैं । इससे यह निश्चित हु कि शब्द संयोगमें आश्रयभूत है, यह बात असिद्ध नही है, क्योंकि कोई शब्द किसी बोल रहा है और वायु उल्टी चल रही है तो पीछे रहने वाले लोग उस शब्दको बराब सुन लेते हैं, इससे जब शब्दमे संयोग गुण आता है तो शब्द स्वयं द्रव्य है तभी त

गंधवान अणुपुञ्जकी भांति शब्दमें भी सयोग, अभिघात और गमनागमन होनेसे द्रव्यत्वकी सिद्धि – शकाकार कहता है कि इस तरह तो गधादिक भी वायु आदिकसे लौट आया करती है, मगर गधके साथ तो वायुका सयोग होता नही क्यो क गध स्वय गुण है और गुणोमे गुण रहा नही करते— निर्गुणा: गुणी: ।' जो गुण रहा करते हैं उनमे अन्य गुण नही रहा करते तो गधको देखो — जब वायु तेज चलती है तो गध भी लौट आया करती है, और गध गुण गध द्रव्य है नही, उसके साथ सयोग हो सकता नही। तब आपका यह हेतु सदोष हो गया ? समाधानमे कहते हैं कि यह बात नही गध स्वतन्त्र कुछ नही वहाँ किसी मनुष्यके प्रति कोई गधवान अणु आ जाया करता है और उल्टी वायु चलनेसे गध भी लौट आया करती है सो वहाँ गधवान सूक्ष्म स्कन्ध द्रव्य है केवल गन्ध तो निष्क्रिय है। क्रिया द्रव्यमे ही पायी जाती है, गुणोमे क्रिया नही होती। सो द्रव्य तो हो नही, मात्र गध ही गन्ध हो तो केवल गन्ध तो निष्क्रिय है, उसमे गमनागमन हो ही नही सकता। उसका गमनागमन कोई लौटा दे यह बात गन्धमे सम्भव नहीं किन्तु गधवान जो स्कध होते हैं उनमे सयोग होता है वायुका और वायुके द्वारा अभिघात होनेसे गधवान परमाणु लोकमे आया करते हैं, इससे सिद्ध है कि शब्द द्रव्य है क्योकि गुणवान होनेसे। जिनमे गुणका सम्बन्ध होता है, जो स्वय गुणवान होते हैं वे द्रव्य कहलाते हैं। तो देखो ना, शब्दमे सयोग गुण लगा, सख्या गुण लगा। वैशेषिक सिद्धान्तमे सख्या, गुण, परिमाण, स्पर्श ये सब गुण माने गए हैं और गुणका जो स्रोतभूत होता है वह द्रव्य कहलाता है। तो शब्दोमे स्पर्शका आश्रयपना है, परिमाणका आश्रयपना है सख्याका आश्रयपना है और सयोगका भी आश्रयपना है। जहाँ गुणका आश्रयत्व मिला है वह शब्द द्रव्य कैसे नही कहलाया ? तो शब्द द्रव्य है, गुण नही है। फिर शब्दके द्वारा आप आकाश को नित्य निरश शब्द गुणकी सिद्धि कैसे कर सकेंगे ?'

क्रियावत्त्व होनेसे शब्दमें द्रव्यत्वकी सिद्धि— और भी देखिये ! शब्द द्रव्य है क्योकि क्रियावान होनेसे। जो जो क्रियावान् होते हैं वे द्रव्य होते हैं। जैसे— बाण, गोली आदि। ये क्रिया करते हैं तो ये द्रव्य कहलाते हैं। यदि शब्दको निष्क्रिय मानोगे तो शब्दका फिर श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्रहण सम्भव नही हो सकता, क्योकि श्रोत्र इन्द्रियमे शब्दका सम्बन्ध ही न हो पायगा ? कही शब्द उत्पन्न हो, बोले जायें और शब्दका जब तक स्रोत्रके साथ सम्बन्ध नही होता तब तक उसका ग्रहण कैसे हो ? यदि निष्क्रिय माना जानेपर भी शब्दका स्रोत्रके साथ ग्रहण मान लिया जाय तो स्रोत्र भी अप्राप्यकारी बन जायगा अर्थात् जैसे चक्षु इन्द्रियके सिवाय बाकी अन्य इन्द्रियाँ अप्राप्यकारी हैं, स्पर्श, रसना, घ्राण जैसे अप्राप्यकारी हैं, चक्षु ही एक अप्राप्यकारी माना है क्योकि चक्षु पदार्थके पास फिरते नही हैं और दूरसे ही ठहरे हुए जान लेते हैं तो अब यहा श्रोत्रको भी ऐसा ही मान लिया गया है कि कि श्रोत्रके पास शब्द आते नही हैं। शब्दका और श्रोत्रका सम्बन्ध नही होता है फिर भी शब्दको

श्रोत्र जान लेता है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि श्रोत्र अप्राप्यकारी हो गया औ श्रोत्र तो अप्राप्यकारी मान लिया गया तो यह हेतु देना कि चक्षु प्राप्यकारी है इन्द्रिय होनेसे, स्पर्शन इन्द्रियकी तरह । तो देखो ! श्रोत्र भी बाह्य इन्द्रिय है श्रोत्र तो प्राप्यकारी न रहा । तो इस हेतुमे अनैकान्तिक दोष आता है ।

श्रोत्रका शब्दोत्पत्तिस्थानमे गमन करके सम्बन्ध माननेकी अनुप कदाचित् मान लो कि श्रोत्रका और शब्दका सम्बन्ध होता है तो यह बतलावो श्रोत्र क्या शब्दकी उत्पत्तिस्थानमें जाकर शब्दसे सम्बन्धित होता है ? या शब्द उत्पत्तिके स्थानमें आकर श्रोत्रके साथ सम्बन्धित होता है ? इन दो विकल्पोमेसे यह कहोगे कि श्रोत्र शब्दकी उत्पत्तिस्थानमे जाया करता है और शब्दसे सम्ब होकर शब्दको जानता है तो यह बात तो प्रत्यक्षविरुद्ध है । किसीके भी कान अ जगहसे हटकर शब्दोत्पत्तिके स्थानमे जाते हुए नही देखे गए । और, यदि जबर मान भी लोगे तो जब श्रोत्र शब्दकी उत्पत्ति स्थानमे जाने लगे तो जिस शब्दके की बात चल रही है उस शब्दके सुननेके लिए श्रोत्र पहुच गए तो रास्तेमें जा शब्द बोले गए वे सब सुननेमे आ जाने चाहिए । जैसे ५० हाथ दूरपर कोई हुआ तेज शब्दोमे भाषण दे रहा है तो अब सुनने वालेके कान यदि भाषण देने के पास पहुँच गए तो रास्तेमे जो लोग धीरे-धीरे बातें कर रहे थे वे सभी बातें सुननेमे आ जानी चाहिएँ ना, क्योंकि जब श्रोत्र शब्दस्थानपर गया तो रास्तेमे वह निकला ही, सम्बन्ध तो होता गया सबके साथ । तो शब्दके साथ श्रोत्रका सम्ब जहाँ जहा हो वहा वहाके सारे शब्द सुननेमे आ जाने चाहियें । दूसरा दोष यह है कभी प्रतिकूल वायु भी चल रही हो तो अब मान भी लिया यह कि श्रोत्र शब्दस्थ के पास जाता है तो श्रोत्र तो चला गया । अब प्रतिकूल वायु चलनेपर भी श सुननेमें आ जाने चाहियें, क्योकि प्रतिकूल वायुके कारण अब श्रोत्रपर कुछ प्रभाव न हो सकता । श्रोत्र तो शब्दस्थानपर चला गया ना, तो सम्बन्ध शब्दके साथ श्रोत्र होगा ही, फिर प्रतिकूल वायुसे शब्दके न सुनाई देनेका क्या सम्बन्ध रहा ? अथ उस समय कोई शब्द थोडा सुनाई दे यह भेद भी न रहना चाहिए । जब श्रोत्र इन्द्रि शब्दस्थानके पास गया तो रास्तेमे और वहाँ भी जहा जहा भी श्रोत्रका शब्दके सा सम्बन्ध हुआ है वे सारे शब्द एक समान सुनाई देना चाहिए । फिर यह भेद न सकेगा कि कोई शब्द स्पष्ट सुनाई दे, कोई कम सुनाई दे, कोई सुनाई ही न दे, क्योंकि श्रोत्र तो चला गया शब्दोके पास अब वायुके द्वारा अभिघातका वहा काम ही क्या रहा ? इस कारण यह बात नही कह सकते कि श्रोत्रइन्द्रिय शब्दकी उत्पत्तिस्थानप जाती है और शब्दसे सम्बन्धित होकर शब्दको सुन लेते हैं ।

स्रोत्रके प्रदेशमे आते हैं तो यह बात कहना वैशेषिक सिद्धान्तके विपरीत है, कारण यह है कि विशेषवादमे शब्दको निष्क्रिय माना है, क्योकि शब्द गुण माना गया है और गुण निष्क्रिय हुआ करते है। जिसमे क्रियाका समवाय हो वह तो द्रव्य कहलाता है। गुण निर्गुण होता है और निष्क्रिय भी होता है। तो जब शब्दको गुण माना और निष्क्रिय माना तो यह कैसे बन सकेगा कि शब्द स्रोत्रके प्रदेशमे आ सकेंगे। और, यदि मान लिया जाय कि शब्द स्रोत्रके प्रदेशमे आ जाते हैं तब फिर शब्द सक्रिय कहलाने लगा। और जब सक्रिय हो गया तो इसके मायने है कि शब्द द्रव्य है यह अपने आप सिद्ध हो गया। शब्द क्रियावान है, क्योकि पूर्व देशका परित्याग करके अन्य देशमे पाया गया। जो जो वस्तु पहिले रहने वाले स्थानका परिहार करके अन्य स्थानोपर पाया जाय तो उसे सक्रिय समझना चाहिए। कोई पुरुष एक गाँवसे दूसरे गाँवमे गया तो हुआ क्या वहाँ ? जो उसका पूर्व स्थान था वह छूट गया और नवीन स्थानपर उसका सयोग बना, तो क्रियावान द्रव्यके प्रदेश ही ऐसे होते हैं कि पूर्व देशका त्याग करके अन्य देशमे पाये जाते हैं। जो जो पूर्व देशका त्याग करते हुए अन्य देशमे पाये जायें वे सब द्रव्य होते हैं जैसे बाण गोली आदिक। ये शब्द भी वक्ताके मुख प्रदेशका त्याग करते हुए स्रोताके स्रोत्र प्रदेशोमे पहुचे। तो शब्द सक्रिय है सो शब्द स्वय द्रव्य बन गया। और जब शब्द द्रव्य सिद्ध हो गया तो आकाशका गुण नही कहला सकता और तब शब्दलिङ्ग याने शब्द गुणवाले आकाशका अस्तित्व नही हो सकता है। तो जो विशेषवादमे ९ प्रकारके द्रव्य बताये गए हैं सो जिस प्रकार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इनका स्वतत्र अस्तित्व जातिरूपमे सिद्ध नही होता इसी प्रकार शब्दलिङ्ग नित्य एक निरश आकाशका अस्तित्व भी सिद्ध नही होता।

वीचीतरङ्गन्याससे शब्दसे शब्दान्तरकी उत्पत्ति मानकर शब्दको निष्क्रिय माननेकी शका—शकाकारका कहता है कि पहिला ही शब्द स्रोत्रके पास आकर सम्बन्धित नही होता जिससे कि यह दोष दिया जाय कि शब्द आये तो सक्रिय हो गए, परन्तु वीचीतरग न्यायसे अर्थात् लहरके बाद लहर ऐसी परम्परा चलकर कोई दूसरे-दूसरे ही शब्द उत्पन्न होत हैं और यो आखिरी जो उत्पन्न हुए शब्द हैं वे स्रोत्रके द्वारा सम्बन्धित होते हैं। प्रथम बोले गए शब्द तो अपने कारणोसे उत्पन्न हुए जिनमे कि समवायी कारण तो है आकाश और असमवायी कारण है शखमुखका सयोग या जिस प्रकार जहाँ जो शब्द होते हैं वहाँका वह सयोग और ईश्वर आदिककी कृपा या आग्रह आदिक ये हुए निमित्त कारण इस समवायी असमवायी और निमित्त कारण से उत्पन्न हुआ जो प्रथम-प्रथम शब्द है वही शब्द नही कर्णके पास आता है किन्तु उस शब्दके पासके आकाशमे शब्दकी व्यक्ति हुई इस तरह वीचीतरग न्यायसे नये-नये ही शब्द बन जाते हैं। और, वहाँ समवायी कारण तो हो रहा है आकाश और असमवायी कारण होता है पूर्व शब्दका सयोग और निमित्त कारण है ईश्वरकी मर्जी वगैरह। तो इन तीन कारणोसे उत्पन्न होकर जो आखिरी शब्द उत्पन्न होता है वह आखिरी शब्द

कर्ण इन्द्रियसे सम्बन्धित होता है'। समाधानमें कहते हैं कि यह भी बात कहना समीचीन नही है। यों कहनेपर तो हम सभी पदार्थोंमे क्रियाका विनाश सिद्ध कर सकते हैं। जैसे कह देंगे कि कोई भी पदार्थ सक्रिय नही होता। बाण आदिक जो बडी तेजीसे गमन करत हुए नजर आये हैं उनके सम्बन्धमे भी हम यह कह देंगे, कि धनुपसे बाण छोडा गया तो जो बाण छोडा गया वही बाण उस वेधे हुए लक्ष्य तक नही गया किन्तु वीचीतरग न्यायसे उस ही बाणमे सजातीय बाण पैदा होते गए और आखिरी जो बाण है उसने लक्ष्यको भेदा है। इस तरह किसी भी कार्यवान पदार्थमे हम कह सकते हैं।

बाणके एकत्व व क्रियावत्त्वकी तरह शब्दमे एकत्व व क्रियावत्त्वका प्रत्यय – शकाकार कहता है कि बाणमे तो प्रत्यभिज्ञानको बात सिद्ध है। जो ही उसने बाण छोडा वही बाण उस लक्ष्यमें लगा तो वहाँ प्रत्यभिज्ञानकी सिद्धि होनेसे बाणमे नित्यपना सिद्ध है। वहाँ यह कल्पना नही कर सकते कि जो बाण छूटा वही बाण नही आया, किन्तु उस बाणसे सजातीय सजातीय बाण नये-नये उत्पन्न हुए वीचीतरग न्याय से और आखिरी बाण जो उत्पन्न हुआ उसने लक्ष्यको वेधा। वहाँ तो बाणमे स्थिरपना है, कल्पना वहाँ नही बन सकती, तो उत्तरमे कहते कि यह बात अर्थात् प्रत्यभिज्ञान तो शब्दमे भी लग रहा है। उपाध्यायने जो शब्द कहा उसी को मैं सुन रहा हूँ, शिष्यने जो कहा उस ही वचनको मैं सुन रहा हूँ ऐसी बराबर प्रतीति होती रहती है। अब शकाकार कहता है कि जैन सिद्धान्तमे तो प्रत्यभिज्ञान दर्शन स्मरण कारणक बताया गया है अर्थात् प्रत्यक्ष और स्मृति दोनो ज्ञानो पूर्वक प्रत्यभिज्ञानकी उत्पत्ति कही गई है, लेकिन शब्दके बारेमे तो दर्शन और स्मरण दोनों होते नही फिर कैसे प्रत्यभिज्ञानकी उत्पत्ति हो जायगी ? उपाध्यायने जो शब्द बोला उस शब्दमे जैसा दर्शन हुआ मानो स्रोत्र इन्द्रियसे जो प्रत्यक्ष हुआ उस प्रत्यक्षकी भांति उपाध्यायके कहे गए शब्दोका स्मरण तो नही देखा गया है क्योंकी स्मरण हुआ करता है उस पदार्थमे जिस पदार्थको पहिलें देखा हो और पूर्व दर्शन आदिके कारण सस्कार बना हो, फिर उस सस्कारका हो प्रबोध, मायने सस्कार जगे तब जाकर स्मरण हुआ करता है, क्योंकि अभावमे कार्य तो नही हो सकता। स्मरणका कारण है सस्कारका जगना। सस्कार जगे तब, जब सस्कार बने, सस्कार बने तब जब इसके पूर्वदर्शन आदिक हो। तो ये बातें सब शब्दमें सम्भव नही हैं। तो शब्दमें स्मरण न हो सकनेके कारण प्रत्यभिज्ञान की बात नही बन सकती। और, जब शब्दका प्रत्यभिज्ञान नही बनता तो नित्यता भी न ठहरी और जब नित्यत्व न ठहरा तो अब यह नही कह सकते कि वक्ताने जो शब्द बोला वही शब्द चलकर श्रोताके कर्ण प्रदेशमें आया। समाधानमे कहते हैं कि यह बात ठीक नही बैठती क्योंकि शब्दमे सम्बन्धिताकी प्रतिपत्ति होनेके कारण वहीं शब्द सुना जा रहा है, वही शब्द जिसको उपाध्यायने कहा, इस प्रकारको सम्बन्धिताकी जानकारी होनेके द्वारसे शब्दमे एकत्वकी प्रतीति हो रही है। प्रत्यभिज्ञान तो एकत्व

की प्रतीतिके सिद्धिमे होता ना ! तो यहां सम्बन्धिताके रूपमे एकत्वकी प्रतीति हो रही है अर्थात् जो शब्द में सुन रहा हूं वही शब्द उपाध्यायने कहा है । तब एकत्वकी प्रतीति होनेसे प्रत्यभिज्ञान बन जाता है। और सम्बन्धितामे दर्शन और स्मरण दोनों का सद्भाव सम्भव है। इस कारण प्रत्यभिज्ञानकी उत्पत्तिमे किसी भी प्रकारका विरोध नहीं है। वह किस प्रकार ? सो सुनो ! पहिले तो अन्वय व्यतिरेकके द्वारा अथवा अनुमानके द्वारा उपाध्यायके कार्यरूपसे सम्बन्धित शब्दको जाना कि यह शब्द उपाध्यायके द्वारा बोला गया है। फिर अब इस समय उपाध्यायके द्वारा बोले गए शब्दका स्मरण करके प्रत्यभिज्ञान उत्पन्न होता है तो उपाध्यायकी सम्बन्धिताके रूपसे जाने गए उस शब्दको अब इस सुनने वालेने एकत्वसे विशिष्ट ही जाना है। यदि इस तरह सम्बन्धिता न हो तो मैं उपाध्यायके द्वारा कहे हुए शब्दको सुन रहा हू ऐसी फिर प्रतीति नही हो सकती, किन्तु यदि एकत्व नही होता तो यो कोई प्रतीति करता कि उपाध्यायके द्वारा कहे गए वचनोसे उत्पन्न हुए जो अन्य वचन हैं, जो कि उन वचनोके समान हैं ऐसे मैं अन्य-अन्य शब्दोको सुन रहा हूं, किन्तु कोई करता भी है क्या इस तरहकी प्रतीति ? यो ही प्रतीति बनती है कि मैं उपाध्यायके द्वारा कहे गए शब्दोको सुनता हूँ और जो यह कहना है कि वीचीतरङ्गन्यायसे शब्दोकी उत्पत्ति होती चली जाती है और यो उत्पन्न हुए शब्दकी परम्परामे जो आखिरी उत्पन्न शब्द है वह श्रोत्र के द्वारा सम्बन्धित होता है, इस बातका अब निषेध किया ।

शब्दके एकत्व प्रत्यभिज्ञानको भ्रान्त सिद्ध करनेकी शङ्का—शङ्काकार कहता है कि शब्दोके सम्बन्धमे जो एकत्वरूपसे प्रत्यभिज्ञान होता है कि मैंने उपाध्याय के कहे हुए शब्दको सुना तो वह प्रत्यभिज्ञान सदृश-सदृश नये-नये शब्दोकी उत्पत्तिके कारण हो रहा है। चूँकि वे समस्त शब्द एकसमान ही उत्पन्न हुए है इसलिए शब्दान्तरके सुने जानेपर भी लोगोको यह प्रतीति होती है कि मैं उस ही शब्दको सुन रहा हू जिसको उपाध्यायने कहा है। जैसे कि नख काटनेके बाद तो नख उत्पन्न हुआ दूसरा, बढता है दूसरा, पर एक समान होनेके कारण उसके सम्बन्धमे लोग यो कहने लगते हैं कि देखो ! जो नख कट गया था वही नख फिर बढ गया, यह वही नख है जिसको २० दिन पहिले काट दिया था। तो जैसे सदृश-सदृश उत्पन्न होने वाले नये-नये नखोमे एकत्व जैसा लोग ज्ञान किया करते हैं अथवा शिरके बाल कटा दिये, एक माहके बाद फिर वे बाल ज्योके त्यो बढ गये, तो उसमे लोग ऐसी प्रतीति करते हैं कि जिन्हें एक माह पहिले कटा दिये थे ये वे ही बाल है। तो जैसे नख और केशमे नये-नये नख-केश होनेपर भी एकत्वका प्रत्यभिज्ञान लोग किया करते है उसी प्रकारसे शब्दके बारेमे नये-नये शब्द उत्पन्न हो होकर अन्तिम शब्दका सम्बन्ध श्रोत्रसे होता है तो वहाँ लोग यो अनुभव करते हैं कि मैंने वही शब्द सुना जो अमुकने बोला। तो यह सदृशताकी वजहसे प्रत्यभिज्ञान बन रहा, कालान्तरमे ठहरे रहनेकी वजहसे शब्द ठहरा रहता है और वही शब्द श्रोत्रमे प्रवेश करता है यो बात नही ! न तो वही शब्द

श्रोत्रमें प्रवेश करता और न वह शब्द कालान्तरमे ठहर सकता है। उत्तरमें कहते हैं कि किसी धनुर्धारीने वाण छोड़ा किसी लक्ष्यको वेंधनेके लिए तो वहाँ भी यह कहा जा सकता कि धनुर्धारीके स्थानसे जो वाण छूटा वह वाण तो उस लक्ष्य तक नही आया किन्तु उससेसजातीय नये-नये पैदा होते जा रहे वीचीतरङ्ग न्यायसे और अन्तिम वाणसे लक्ष्यको वेंधा, किन्तु उसके सम्बन्धमे लोगोको यह प्रतीति होती है कि वाण आया लक्ष्य तक। वह प्रतीति इस कारण होती है कि वे वाण सब सदृश-सदृश थे और उन सदृश-सदृश वाणोकी परम्परामें लोगोको इस प्रकारका प्रत्यभिज्ञान जगता है—वस्तुतः वाण कालान्तरमे ठहरे और वही वाण लक्ष्य तक जाय ऐसी बात नही है। इसके कारण वाणमे प्रत्यभिज्ञान नही बना। प्रतीतिसिद्ध शब्दके एकत्वके निषेधकी भांति वाण आदिक द्रव्योके एकत्वका निषेध किया जा सकता है। यह भी नही कह सकते कि शब्दमे तो वाधक प्रमाणका सद्भाव है अर्थात् शब्दमें एकत्वके माने जानेमें बाधा आती है इसलिए शब्दमे तो उस तरहकी उपचार कल्पना बन जाती है पर वाणमें नही बनती। क्योंकि वाणोंके सम्बन्धमे जो यह ज्ञान हो रहा है कि वह यह ही बाण है, इसमे कोई वाधक प्रमाण नही है।

शब्दकी अक्षणिकतामे प्रत्यक्षसे बाधाका अभाव—अब उक्त शकाके समाधानमे पूछा जा रहा है शकाकारसे कि शब्दोके सम्बन्धमें जो यह ज्ञान चल रहा है की शब्द वही है, क्षणिक नही है, इस ज्ञानमे बाधा देने वाला कौन सा प्रमाण आप बतलावोगे, प्रत्यक्ष अथवा अनुमान ? यदि कहोगे कि प्रत्यक्ष ज्ञानसे शब्दकी अक्षणिकतामे बाधा आती है तो वह प्रत्यक्षज्ञान जो कि शब्दके नित्यत्वमे, अक्षणिकत्वमे बाधा दे रहा है वह क्या एकत्वका विषय करने वाला प्रत्यक्ष है या क्षणिकत्वका विषय करने वाला प्रत्यक्ष है ? यदि कहो कि एकत्वका विषय करने वाले प्रत्यक्षसे शब्दकी अक्षणिकतामे बाधा आती है तो यह तो स्ववचन विरोधकी बात है। प्रत्यक्ष एकत्वका विषय कर रहा और वही प्रत्यक्ष अक्षणिकतामे बाधा दे यह कैसे सम्भव है ? एकत्वका अक्षणिकत्वके साथ तो मैत्रीभाव है, समान विषय है। वह प्रत्यक्ष तो अक्षणिकताके अनुकूल है। यदि कहो कि क्षणिकत्वका विषय करने वाला प्रत्यभिज्ञान शब्दकी अक्षणिकतामें बाधा देता है तो यह बात भी युक्त नही है, क्योकि शब्दमे और इसी प्रकार अन्य पदार्थोंके भी क्षणिकत्व विषयक प्रत्यक्षमें अभी विवाद चल रहा है। उस ही का तो यह प्रसग चल रहा कि शब्द क्षणिक नही है और हम कहें कि क्षणिकका विषय करने वाले प्रत्यक्षसे बाधा आती है तो वही तो विवाद भिन्न है वह कैसे अक्षणिकत्व मे बाधा देगा। क्षणिकत्वको विषय करने वाला प्रत्यक्ष है, यही बात तो असिद्ध है। तो असिद्ध प्रमाणसे किसी बातकी सिद्धि नही की जा सकती। सो प्रत्यक्षके द्वारा तो शब्दकी अक्षणिकतामें बाधा आती नही।

शब्दकी अक्षणिकतामे अनुमानसे बाधाका अभाव—यदि कहो कि अनु-

मानसे शब्दकी अक्षणिकतामें बाधा आ जायगी सो भी बात ठीक नही। देखो–वैशेषिक सिद्धान्तमे प्रत्यभिज्ञानको मानस प्रत्यक्ष माना है। यो अनुमान तो है परोक्ष और प्रत्यभिज्ञान है प्रत्यक्ष तो जिस विषयमे प्रत्यक्ष काम कर रहा हो उस विषयमे उसके विरुद्ध अनुमान बनावें तो वह कैसे सफल हो सकता है। जैसे–अग्नि प्रत्यक्ष की गई तो वह प्रत्यक्ष तो इस अनुमानका बाधक बन सकता है कि अग्नि ठडी है द्रव्य होनेसे जल की तरह। मगर उस प्रत्यक्षमे जिसने कि अग्निको गर्म अनुभव किया है, अनुमानसे बाधा नही दी जा सकती है कि देखो हमारा अनुमान है कि अग्नि ठढी होती है द्रव्य होनेसे। तो अनुमानसे प्रत्यक्षमें बाधा आया नही करती, किन्तु प्रत्यक्षमे अनुमानमे बाधा आया करती है। तो जब प्रत्यभिज्ञान मानसिक प्रत्यक्ष है तो शब्दके सम्बन्धमे एकत्व प्रत्यभिज्ञान बन रहा है तो यह एकत्व प्रत्यभिज्ञान तो आपके अनुमानका बाधक बन जायगा, पर आपका अनुमान शब्दके एकत्व प्रत्यभिज्ञानका बाधक नही बन सकता जैसे कि कोई यह अनुमान बनाये कि इस वृक्षकी इस शाखाके सार फल पके हुए हैं क्योकि एक शाखामे उत्पन्न होनेसे, अनुमान तो बना दिया और प्रत्यक्ष देखा जा रहा है छू करके समझा जा रहा है कि इसमे अनेक फल कच्चे हैं तो प्रत्यक्षसे उस अनुमान मे बाधा आ जायगी पर उस अनुमानसे प्रत्यक्षमे बाधा नही आ सकती। तो शब्दके बारेमे जो एकत्व प्रत्यभिज्ञान हो रहा है वह प्रमाण तो है प्रबल, पर उसके विरोधमें जो अनुमान बनाया जा रहा है वह अनुमान प्रबल नही है इससे शब्दमे एकत्व सिद्ध है और वही शब्द सुना ऐसा जाननेमे क्रिया भी सिद्ध हो गयी। और, जिसमे क्रिया होती है वह द्रव्य कहलाता है।। यो शब्द द्रव्य है गुण नही है जिस बलपर शब्दलिङ्ग से शब्दलिङ्ग वाले आकाशकी सिद्धिकी जा सके।

शब्दकी क्षणिकता सिद्धीके लिये दिये गये अनुमानकी प्रत्यक्षबाधितता—शकाकार यहाँ शब्दको क्षणिक सिद्ध करके शब्दके एकत्व प्रत्यभिज्ञानका निराकरण कर रहा है। तो उस सम्बन्धमे यह पूछा गया कि शब्दके एकत्व प्रत्यभिज्ञान मे प्रत्यक्ष बाधक है या अनुमान बाधक है? प्रत्यक्ष बाधक है इस विकल्पका निराकरण कर ही दिया था और अब अनुमान बाधक है इस विषयका निराकरण चल रहा है। अनुमान शब्दके अक्षणिकत्वके प्रत्यभिज्ञानका बाधक नही हो सकता, क्योकि एकत्व प्रत्यभिज्ञान मानसिक प्रत्यक्ष है और अनुमानसे प्रत्यक्षकी प्रबलता होती है। तो प्रत्यक्ष हो तो अनुमानका बाधक बन जायगा, पर अनुमान प्रत्यक्षका बाधक नही होता। अब यहाँ शकाकार कहता है कि यह प्रत्यक्ष प्रत्यक्षाभास है, सही प्रत्यक्ष नही है किन्तु भ्रमरूप प्रत्यक्ष है इस कारण इस प्रत्यक्षका, शब्दके एकत्व प्रत्यभिज्ञानका बाधक अनुमान बना सकता है। जैसे कि प्रत्यक्षसे यह ज्ञान होता है कि चन्द्र सूर्य स्थिर हैं। तो चन्द्र सूर्य स्थिर है ऐसा जो प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ वह तो प्रत्यक्षाभास है तभी तो उस प्रत्यक्षा भासक' बाधक अनुमान बन जाता है। कैसे ? कि सूर्य चन्द्र स्थिर नही हैं, क्यो कि एक देशसे दूसरे देशको प्राप्त हुए देखे जाते हैं। तो जैसे–यह अनुमान प्रत्यक्षाभासका

बाधक बन गया इसी प्रकार शब्दोंमें जो अक्षणिकत्वका, एकत्वका प्रत्यभिज्ञान होता है वह प्रत्यक्षाभास है इसी कारण उसका बाधक अनुमान हो जाता है। अब इस शंका के समाधानमें पूछते हैं कि शब्दोंके अक्षणिकत्वका प्रत्यभिज्ञान प्रत्यक्षाभास है यह तुमने कैसे समझा ? यदि कहो कि अनुमानसे बाधा आती है इससे जान लिया कि यह प्रत्यक्षाभास है तो वाह, फिर प्रत्यक्षसे इस अनुमानमें भी बाधा आती है, तब फिर तुम्हारा अनुमान अनुमानाभास क्यों नहीं कहलायगा ? शब्दको क्षणिक सिद्ध करनेमें शंकाकार जो अनुमान देगा और उसमें है प्रत्यक्षसे बाधा तब अनुमान अनुमान भास रहा। यदि यह कहो कि तुम्हारा एकत्व प्रत्यभिज्ञान अक्षणिकत्वका प्रतिभास, यह अनुमानसे बाधित विषय वाला है इस कारण प्रत्यक्ष अनुमानका बाधक नहीं बन सकता, तब फिर यह उत्तर क्या कौवोंने खा लिया कि अनुमान प्रत्यक्षसे बाधित विषय वाला है, इस कारण अनुमान का बाधक नहीं बन सकता।

प्रत्यक्षबाधित अनुमानसे शब्दके क्षणिकत्वकी असिद्धि—किन्तु स्पष्ट बात तो यह है कि शब्दोंको क्षणिक सिद्ध करने वाला कोई अनुमान भी नहीं है। शंकाकार कहता है कि शब्दोंको क्षणिक सिद्ध करने वाला यह अनुमान तो है सुनो ! शब्द क्षणिक होता है, क्योंकि हम जैसे साधारण जनोंके प्रत्यक्ष होनेपर भी व्यापक द्रव्यका विशेष गुण है सुख आदिककी तरह। जैसे कि सुख दुःख आदिक हम लोगोंके प्रत्यक्ष भी होते हैं और विभु द्रव्यका यह विशेष गुण है। इसी प्रकार यह शब्द भी हम लोगोंको प्रत्यक्ष होता है अर्थात् कर्णोंसे सुनाई देता है और फिर विभु शब्द है आकाश, उसका यह गुण है इस कारण शब्द क्षणिक है। समाधानमें कहते हैं कि यह अनुमान तुम्हारे ही दिमागमें ठीक लग रहा हो, परन्तु जैसे कोई फलोंके सम्बन्धमें अनुमान बनाये कि ये डालके फल सारे पके हुए हैं, क्योंकि एक शाखामें उत्पन्न हुए हैं तो जैसे एक शाखा प्रभवत्व हेतु प्रत्यक्षबाधित है अर्थात् एक शाखामें उत्पन्न हुए ये फल जो सारे प्रत्यक्षसे दीख रहे हैं, हाथसे टटोले जा सकते हैं, उनमें कुछ कच्चे हैं, कुछ पक्के हैं। तो जैसे एक शाखाप्रभवत्व हेतु प्रत्यक्षसे बाधित है, फिर भी कोई अनुमान बनाये तो वह गलत है। इसी प्रकार शब्दोंकी क्षणिकता अनित्यता प्रत्यभिज्ञान प्रत्यक्षसे बाधित है, फिर उसके बाद तुम अनुमान बना रहे हो तो वह साध्य सिद्धिका कारण नहीं बन सकता।

शब्दक्षणिकत्वसाधक हेतुकी सदोषता—शब्दकी क्षणिकता सिद्ध करनेमें तुम्हारा जो यह अनुमान है उसके हेतुमें जो कहा कि विभु द्रव्य विशेषका गुण है ऐसा कथन असिद्ध है। शब्द आकाशका, द्रव्य विशेषका गुण नहीं है, किन्तु शब्द स्वयं द्रव्य है। शब्दमें द्रव्यरूपताकी अभी सिद्धि ही की गई है। दूसरा दोष यह हुआ कि विभु द्रव्यका विशेष गुण होनेसे याने विभु द्रव्य विशेषका गुण होनेसे। कोई क्षणिक हो जाय यह बात व्यभिचरित है अर्थात् धर्म तो आत्माका विशेष गुण माना गया है।

पुण्य कर्म, धर्ममे आत्माके विशेष गुण माने गए हैं वैशेषिक सिद्धान्तमे, तो देखिये धर्म आत्मा विभु द्रव्यका विशेष गुण है लेकिन क्षणिक तो नही है। यदि कहोगे कि हम धर्मको भी पक्षमे ले लेंगे अर्थात् वह भी क्षणिक है ऐसा मान लेंगे तो इस तरह जैसे जिसमे दोष आता हो उसको ही पक्षमे शामिल करनेकी बात मान ली जाय तब तो कोई भी हेतु व्यभिचारी नही है। जिस किसी भी अनुमानमे हेतु व्यभिचारी होता हो, तो वहाँ यह कह बैठें कि इसको भी हमने पक्षमे सामिल कर लिया है। साथ ही यदि धर्म भी क्षणिक मान लिया जाय तब तो अस्मदादिक प्रत्यक्ष है, ऐसा विशेषण देना अनर्थक हो जायगा। अर्थात् जो कहना कि हम जैसे अल्पज्ञोके द्वारा प्रत्यक्ष होने पर विभुद्रव्यका विशेष गुण है ऐसा जो हेतु बनाया गया उसमें "अस्मदादि प्रत्यक्षत्व" यह अश व्यर्थ हो जायगा। क्योंकि जिस पक्षसे हेतुको बचाने के लिए अस्मदादिप्रत्यक्षत्व विशेषण लगाया गया है उस विपक्षको भी पक्ष कर लिया। धर्मको भी क्षणिक मान लिया तो विशेषणका काम तो है व्यवच्छेद करना। जैसे—कहा नीलकमल। तो नील विशेषणका अर्थ है अन्य श्वेतादिक नही। तो जब इस हेतुमे अस्मदादिप्रत्यक्षत्व विशेषण दिया है तो विशेषणका काम तो था कि हम आप लोगोंके द्वारा जो प्रत्यक्ष नही है ऐसे धर्म आदिकको विपक्ष बना दिया जाय उसे क्षणिक न माना जाय, और अगर अस्मदादि प्रत्यक्षसे विरुद्ध धर्मको जब क्षणिक मान लिया गया तो व्यवच्छेदपना इस विशेषणमे रहा ही नही। इस विशेषणसे किसको मना किया जाय? जिसको मना करते थे उसको तो सामिल करने लगे। यो शंकाकारके हेतुमे तीसरा दोष हुआ। चौथा दोष यह आता है कि धर्म आदिकको जब क्षणिक मान लिया तो क्षणिकका अर्थ है अपनी उत्पत्ति समयके बाद न होना। तो धर्म जब उत्पत्तिके समयके बाद तो रहा नही, नष्ट हो गया, अब जन्म—जन्ममे फल कैसे जीवको मिले? जब धर्म क्षणिक है और तुरन्त नष्ट हो गया तो जब धर्म अधर्म न रहा, पुण्य—पाप न रहा तो जन्मान्तरमे जीवको फल कैसे मिलेगा?

धर्मको भी क्षणिक मानकर धर्मसे धर्मान्तरकी उत्पत्ति मानकर व्यवस्था बनानेमे विडम्बना—शकाकार कहता है कि धर्मसे अन्य धर्मकी उत्पत्ति हो जायगी, अधर्मसे अन्य अधर्मकी उत्पत्ति हो जायगी। जैसे कि शब्दसे शब्दकी उत्पत्ति होती रहती है वीचीतरङ्ग न्यायसे, वक्ताने जो शब्द बोला उस शब्दके कारणसे अन्य शब्दोकी उत्पत्ति हुई। इसी तरह धर्मादिकसे अन्य धर्मादिककी भी उत्पत्ति होजायगी जब क्षणिक होनेपर भी चू कि प्रथमकृत धर्मसे अन्य अन्य अनेक धर्म नये—नये उत्पन्न होते जाते हैं तब उसमे दोष न आयगा। समाधानमे कहते हैं कि पहिली बात तो यह है कि वैशेषिक सिद्धान्त स्वय ऐसा न मानेगा कि धर्म क्षणिक होता और धर्मसे अन्य धर्मोंकी उत्पत्ति होती चली जाय। दूसरी बात यह है कि यदि मान लिया जाय कि धर्मादिकसे धर्मादिककी उत्पत्ति होती है तो धर्ममे धर्मान्तरकी उत्पत्ति होनेकी तरह धर्मके कार्य क्या हैं? स्त्री—पुत्रका सयोग होना आदि। तो फिर वे भी नये—नये कार्य

उत्पन्न होते हैं यो अवक्रममे आ जायगा अर्थात् जैसे वही धर्म नही है जो पूर्व जन्ममें किया था, उसके बाद तो अनेक धर्म हो गए। धर्मोंसे धर्म उत्पन्न होते गए। तो इसी तरह ये स्त्री-पुत्र वही नही हैं जो पहिले मिले थे। स्त्रीसे स्त्री उत्पन्न होती जारही है अर्थात् वही उसी एक प्राणीसे वैसे-वैसे ही प्राणी बनते जा रहे हैं। ऐसे ही अन्य वैभव आदिक जो धर्मके फलमें मिलते हैं उन्हे भी ऐसा कह सकते हैं कि वे भी नये-नये और-और पैदा होते जाते हैं।

धर्मादिसे धर्मादिकी उत्पत्ति माननेपर तृतीय दोष—धर्मादिकसे धर्मादिककी उत्पत्ति माननेपर तीसरा दोष यह है कि वैशेषिक सिद्धान्तमे जो स्वय ऐसा कहा गया है जैसा कि अभी बतावेंगे उसका विरोध हो जाता है। वैशेषिक सिद्धान्तमे कहा गया है कि किसी पुरुषने अनुकूल यज्ञ पूजा आदिकके कार्योंमें जिनसे कि धर्मको उत्पत्ति होती है, उनमे जो अनुकूल अभिमान उत्पन्न हुआ है अर्थात् इस धर्म कार्यके करनेसे धन वैभव आदिकके सुख प्राप्त होते हैं। इस प्रकार जो अनुकूल अभिमान याने सकल्प किया गया उससे जो अभिलाषा उत्पन्न हुई वह अभिलाषा, अभिलाषा करने वाले पुरुषको अगले जन्ममे जो यज्ञ करके चाहा गया उस पदार्थके अभिमुख कर देगा, इससे यह सिद्ध होता कि धर्म आत्माका विशेष गुण है। जैसे कि अनुकूल वर्तमान पदार्थोंमे जब हम अनुकूल अभिमान करते, इच्छा करते, सकल्प बनाते तो उससे जो अभिलाषा बनी वह अभिलाषा जैसे उस पदार्थको मिला देती है। मानो इच्छा हुई कि मैं एक गिलास पानी पी लूँ बस तुरन्त पानी भरा और पी लिया तो देखो अनुकूल पदार्थमें जो अभिलाषा की उसने पदार्थके सम्मुख कर दिया ना ओवको। तो इसी तरह यज्ञ पूजा आदिक करके जो सकल्प होता है, उससे जो अभिज्ञान होता है वह अगले जन्ममे पदार्थके सम्मुख कर देता है जीवको जैसे कि इस जन्ममे जो हम अभिलाषा करते हैं और पुन्य अनुकूल है तो उस अभिमान क्रियामे पदार्थको मिला लेते हैं ना या पदार्थ हमारे अभिमुख हो जाता ना। इसी तरह आजके यज्ञ पूजा आदिक कार्योंमे जो हमने अनुकूल अभिलाषा बनायी है अर्थात् इससे यह फल मिलता यह सुख मिलता, इस तरहका जो एक सकल्प बनाया है, उससे जो अभिलाषा बनेगी वह उन उन पदार्थोंको ला देगा, उन पदार्थोंके हम सम्मुख हो जायेंगे, इसमे सिद्ध है कि धर्म आत्माका विशेष गुण है। सह सिद्धान्तका विरोध आता है यह माननेपर कि धर्मादिक से धर्मादिककी उत्पत्ति होती है क्योंकि इस पुरुषने यज्ञ पूजा आदिक करते हुएमें जो अनुकूल अभिमान करके अभिलाषाकी मुझे इसके फलमे यह चीज प्राप्त होगी इस अभिलाषासे अनुकूल कार्य करते हुए जो इसे पुण्य लगा वही पुण्य तो अभिलाषा करने वाले को पदार्थके सम्मुख नही करता। उस धर्मको किए हुए तो हो जाता है वर्षों और धर्मोंसे धर्मकी उत्पत्ति चल रही है, तो वह धर्म तो अपने समान कार्यको अर्थात् धर्मको उत्पन्न करता रहता है। फिर जब कभी कोई वैभव धन स्त्री पुत्र आदिकके अनुकूल समागम मिल गए तो उसके कारणभूत जो आखिरी धर्म है, जिस धर्मके उदयमे ये

सारे वैभव मिले वह धर्म तो इस जीवने नही किया । इस जीवके द्वारा किया गया तो पहिलेका धर्म था । अब उस धर्मके बाद अनगिनते धर्म धर्मोंसे उत्पन्न होते गए । तब उपर्युक्त बात कि ये सब उस धर्मके फल हैं, जो धर्म किया जीवने, यह बात गलत हो गयी । जीवने जो धर्म किया उसका फल तो मिला नही पर उस धर्मके बाद जो करोड़ो धर्म उत्पन्न होते गए उनमेसे उस अन्तिम धर्मसे वैभव प्राप्त हुआ ।

धर्मसे धर्मकी उत्पत्ति मानकर जन्मान्तरमे फल व्यवस्था बनानेकी असम्भवता—धर्मसे धर्मकी उत्पत्ति माननेपर चौथा दोष यह आता है कि वैशेषिक सिद्धान्तमे एक अनुमान यह बनाया गया है कि प्रवर्तक और निवर्तक धर्म अधर्म इच्छा और द्वेषके कारणसे हुआ करते हैं, अर्थात् धर्मका काम है हितके काममे लगा देना और अहितके कामसे हटा लेना । तथा अधर्मका काम है अहित विषयमे लगा देना व हितसे हटा देना । ऐसा जो धर्म अधर्म है यह इच्छा और द्वेषके निमित्तकारण से उत्पन्न हुआ करता है । यह तो हुई उनके अनुमानमे प्रतिज्ञा और हेतु देते हैं कि अव्यवधानसे हित और अहित पदार्थकी प्राप्ति और परिहारके कारणभूत कर्मका कारण होनेपर आत्माका विशेषगुण होनेसे । अर्थात् धर्म अधर्म आत्माके विशेष गुण हैं और अव्यवधानसे याने साक्षात् हितकी प्राप्ति और अहितके परिहारमे कारणभूत क्रियाका कारण है धर्म । और हित पदार्थके परिहार और अहित परिहारकी प्राप्तिके कारण भूत क्रियाका कारण है अधर्म । तो अव्यवधानसे हितविषयकी प्राप्ति और अहित विषय के परिहारके हेतुभूत क्रियाका कारण होनेपर आत्माका विशेषगुण है धर्म इस कारण धर्म इच्छा द्वेष निमित्तक है, इसी प्रकार अधर्म भी इच्छा द्वेष निमित्तक है । जैसे कि हम लोगोके जो वर्तमान प्रयत्न चलते हैं वे प्रयत्न प्रवर्तक और निवर्तक हुआ करते है और वे इच्छा और द्वेषके कारणसे हुए हैं । इसका किसीसे राग हुआ तो हम उसमे प्रवृत्तिका प्रयत्न करते हैं । हमे किसीसे द्वेष हुआ तो हम उससे हटनेका प्रयत्न करते हैं तो जो प्रवर्तक और निवर्तक होता है वह रागद्वेष निमित्तक होता है तो धर्म और अधर्म पुण्य और पाप ये हित अहितमे प्रवर्तक और निवर्तक हैं इस कारण ये रागद्वेष कारणक हुए । यह अनुमान वैशेषिक सिद्धान्तमें बनाया गया है । तो जब धर्मसे धर्मकी उत्पत्ति मान ली गई तो इस हेतुमे व्यभिचार हो गया, क्योकि जन्म जन्मान्तरमें जो फल देने वाला धर्म अधर्म है वह धर्म अधर्म तो हिताहित पदार्थोंकी प्राप्ति परिहारके कारणभूत क्रियाका कारण भी है, आत्माके विशेष गुण भी हैं लेकिन वे इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न नही हुए हैं पूर्व जन्ममे इच्छा की थी यज्ञ पूजा सत्सग आदिक अनुष्ठान किए थे, उससे हुआ पहिले पुण्य बध । अब उसके बाद पुण्यसे पुण्य होते–होते हजारो वर्ष व्यतीत हो गए और उसके बाद मिले अन्य जन्म, उन, जन्मोमे मिला पूर्वजन्मके यज्ञ का फल, तो अब जिस पुण्यके उदयसे फल मिला है वह फल इच्छाद्वेष निमित्तक तो नही रहा । वह धर्म तो धर्मनिमित्तक रहा, क्योकि धर्मसे धर्मोंकी उत्पत्ति मानी जा रही है । इसमें युक्ति सिद्धान्त सभी पहलुओसे बाधा आती है । इससे यह कहना

कि जैसे शब्दोंसे शब्दोंकी उत्पत्ति होती रहती है इसी प्रकार धर्मसे धर्मोंकी उत्पत्ति होती रहेगी, यह बात सिद्ध नहीं होती। धर्मको क्षणिक माननेके लिए ये सब कल्पनायें की जा रही हैं शकाकार द्वारा। लेकिन, मोटा दोष तो यह है कि धर्म अधर्मको यदि क्षणिक मान लिया गया तो अन्य जन्ममे उसका फल सम्भव ही नहीं हो सकता। जो धर्म किया वह तो उत्पन्न होनेके तुरन्त बाद ही नष्ट हो गया इस कारण धर्मको अक्षणिक मानना चाहिए और प्रकृतमे शब्दको अक्षणिक मान लेना चाहिए। जब शब्द अक्षणिक हो गया, नित्य हो गया तब वह आकाशका गुण न रहा, किन्तु शब्द स्वयं द्रव्य हो गया।

अस्मदादि प्रत्यक्षत्वविशेषणविशिष्ट विभुद्रव्यविशेषगुणत्व हेतुमे निर्दोषताका अभाव— शकाकार कहता है कि शब्दको क्षणिक सिद्ध करनेके लिए जो हेतु दिया है कि हम जैसे लोगोंको प्रत्यक्ष होनेपर भी विभु द्रव्यका विशेष गुण है, इस कारण शब्द क्षणिक है इस हेतुमे केवल विभु द्रव्यका विशेष गुण है, यही तो नहीं कहा जा रहा, किन्तु हम जैसे अल्पज्ञोके द्वारा प्रत्यक्ष होनेपर विभु द्रव्यका विशेष गुण है, यह कहा जा रहा है अर्थात् हेतु है अस्मदादि प्रत्यक्षत्व विशेषणन विशिष्ट विभु द्रव्यका गुणपना। वह हेतु धर्ममे सम्भव नहीं है, क्योंकि धर्म अधर्म हम जैसे अल्पज्ञोके द्वारा प्रत्यक्ष कहाँ है ? जहा ये दोनो बातें हो वहा हेतुको लगाना चाहिए। तो इस कारणसे धर्मादिकके साथ इस हेतुका व्यभिचार नहीं होता। उत्तरमें कहते हैं कि मत हो व्यभिचार ! अर्थात् तुम्हारा हेतु धर्मादिकमे नहीं पहुँचा, उससे व्यभिचार न हुआ ठीक है, तो भी तुम्हारे हेतुमें ऐसी प्रबलता नहीं है कि वह समस्त रूपोसे व्यावृत्त हो जाय। पूर्वरूपसे व्यावृत्तिकी प्रसिद्धि है तुम्हारे हेतुमे। और, विशेषण वही कहलाता जो विपक्षविरुद्ध हो अर्थात् विशेष्यका जो विरोधी है उसमे हेतु न पाया जाय उसे कहते हैं विपक्ष विरुद्ध। विपक्ष विरुद्ध विशेषण ही विपक्षसे हेतुको हटाता है। जैसे किसी भी मनुष्यमे कोई विशेषण लगाया जाय तो क्यो लगाया जाता है ? यों कि साधारण मनुष्योंसे उसको बचा लीजिये, अन्य सबसे इसको भिन्न और विलक्षण सिद्ध कर दीजिये ! तो विपक्षविरुद्ध विशेषण विपक्षसे हेतुको हटाता है। जैसे कि एक अनुमान बनाया कि शब्द अनित्य है कादाचित्क होनेसे अर्थात् कोई शब्द उत्पन्न होता है कोई नहीं होता। तो जो बात कभी हो और कभी न हो वह अनित्य कहलाती है। कादाचित्क इतने भर हेतुमे थोडी कमजोरी आ सकती है मानो कादाचित्क होनेसे यदि अनित्य बात बन जाय तब कभी–कभी आकाश छोटे–बडे पोलोमे पाये जाते हैं। जैसे किसी खानमे छोटा होनेमे छोटा पोल है, उसको खोद देनेसे बडी पोल हो गयी। तो देखो ! वह आकाश कादाचित्क रहा कि नहीं ? पर अनित्य कहाँ है ? तो इस हेतुमे हम विशेषण लगा देंगे कि सहेतुक होनेपर कादाचित्क होनेसे। अर्थात् जिसके बननेका कोई कारण हो और फिर कादाचित्क हो तो इस हेतुसे फिर आकाशमे अनेकान्तिक दोष नहीं आता, क्योंकि आकाश बननेका कोई कारण नहीं

होता। वह तो खान खोदनेका कारण है। आकाशके छोटे-बडे होनेका कारण नही हुआ करता। तो यहा देखो इस हेतुमे जो सहेतुकत्व विशेषण दिया है वह अहेतुकत्व के विरुद्ध रहा ना ? तो अहेतुक जितनी नित्य वस्तुए हैं उनसे हेतुको हटा देगा किन्तु इस तरह अस्मदादि प्रत्यक्षपना अक्षणिकत्वके विरुद्ध नही है, जिससे कि विपक्षसे हेतु को बचा देनेका प्रयत्न हो सके, क्योकि हम लोगोको अनेक प्रत्यक्ष हो रहे, लेकिन उनमे कोई नित्य भी होता है कोई अनित्य भी होता है। जैसे दीपक आदिक हम लोगोंको प्रत्यक्ष है लेकिन वह क्षणिक है। सामान्य आदिक हम लोगोका प्रत्यक्ष है, किन्तु वह नित्य है। तो इसी तरह विभु द्रव्यके विशेष गुण भी कोई क्षणिक हो जायें कोई अक्षणिक हो जायेंगे। इस तरह उनमे व्यतिरेक सन्दिग्ध होता है। अतः तुम्हारा हेतु शब्दकी क्षणिकताको सिद्ध करनेमे समर्थ नही है।

वादीके विपक्षादर्शनमात्रसे विपक्षव्यावृत्तिकी पुष्टताका अभाव—शकाकार कहता है कि तुम्हारे अनुमानमे अस्मदादि प्रत्यक्ष विशेषण सहित विभु द्रव्य का विशेषगुण होने रूप हेतुमे हम जैसे लोगोके द्वारा प्रत्यक्ष होना यह विशेषण दिया गया है, इस कारणसे नित्य धर्मादिकमे हेतुका व्यभिचार नही पाया जाता अर्थात् धर्म पुण्य पाप ये हम लोगोके द्वारा प्रत्यक्षभूत नही हैं। यदि हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्षभूत होते तब तो विभु द्रव्यका विशेषगुण होनेके कारण अर्थात् आत्म द्रव्यका विशेषगुण होनेके कारण धर्मको क्षणकत्व सिद्ध करनेका दोष दिया जाता और शब्दकी क्षणकत्व को सिद्ध करनेमे दिए गए इस हेतुसे अनेकान्तिक दोषसे सहित बताया जाता, लेकिन धर्म आदिक हम जैसे अल्पज्ञोके प्रत्यक्ष हैं ही नही इस कारण इस हेतुको विपक्षसे व्यावृत्ति बराबर सिद्ध है। समाधानमें कहते हैं कि यह बात युक्त नही है। आपको अगर धर्मादिक प्रत्यक्ष नही हो रहे तो आपके न दिखनेसे कहीं सर्व रूपसे सद्भाव और अभावकी सिद्धि न हो जायगी। आपके न दिखनेसे यदि अभावकी सिद्धि मान ली जाय तो आपको तो परलोक भी नही दिख रहा। तब परलोकका भी अभाव बन बैठेगा, इसलिए आपके न दिखनेसे कोई नियम व्यवस्था बना ली जाय सो ठीक नही है। यदि कहो कि सभीको नही दिखता है तो सबको न दिखना यह बात जिस किसीमे भी कहो वह सब असिद्ध है, क्योकि सब लोगोको हेतुका विपक्षमे अदर्शन हो रहा है, यह बात यो निश्चय नही कर सकते कि सर्व प्राणियोंका निश्चय ही करना तो अशक्य है और यदि कहोगे कि हाँ हमने समझ लिया कि सभी प्राणियोका विपक्षमे हेतुका अदर्शन हो रहा है तब फिर तुम सर्वज्ञ हो गए। यदि सब दिख गया तो तुम सर्वज्ञ हो और सब न दिखे तब फिर हेतुमे यह बल नही दे सकते कि यह सबको नही दिख रहा है विपक्षमें हेतु।

विपक्षमें हेतुके अदर्शनमात्रसे विपक्षव्यावृत्ति माननेपर शंकाकारको अनिष्टप्रसग—तथा हेतुके विपक्षमे न दिखने मात्रसे विपक्षमे हेतुकी व्यावृत्तिकी

सिद्धि करोगे अर्थात् हेतु विपक्षमे नही दिख रहा है, अलौकिक जो पुण्य पाप हैं उनमें अस्मदादिके प्रत्यक्ष होनेपर विभु द्रव्यका विशेषगुण है, यह हेतु नही दिख रहा है तो अदर्शन सामान्य मात्रसे अगर विपक्षसे व्यावृत्ति सिद्ध करने लगोगे तो आपको फिर इस हेतुको भी गमक मानना पडेगा। कौनसे हेतुको कि जो वेदका कुछ भी अध्ययन है वह वेदके अध्ययन पूर्वक है, क्योंकि वेदके अध्ययन शब्दके द्वारा वाच्य होनेसे। जैसे—इस समयका अध्ययन देखो—वेदाध्ययन पूर्वक ही है ना तो जितने जो कुछ भी वेदाध्ययन थे वे सब वेदाध्ययन पूर्वक ही सिद्ध होंगे। और जब यह अनुमान तुम सही मान लोगे अर्थात् इस हेतुको साध्यका गमक मान लोगे तब फिर हुआ क्या कि वेदाध्ययन अनादिसिद्ध हो गया। फिर ईश्वर कर्तृत्व होनेसे प्रामाण्य है यह बात न बनी। वैशेषिक सिद्धान्तमे तो सबको ईश्वरके द्वारा किया गया माना गया है और ईश्वरकृत वेद है तब वेदमें प्रमाणता है ऐसा समझा गया है लेकिन अदर्शन मात्रसे यदि विपक्षसे व्यावृत्ति मान लेते हो तो जब वेदाध्ययन वेदाध्ययन—पूर्वकताके बिना नही देखा गया तो विपक्षमें अदर्शन मात्रसे साध्यकी सिद्धि मानते हो व यो हेतुको प्रमाण मानते हो तो वहाँ भी अब वेदमे ईश्वर कर्तृत्व न रहा। और, जब ईश्वर कर्तृत्व न रहा वेद, तो प्रमाण भी न रह सकेगा। शकाकार कहता हैं कि यह दोष तो कर्तृत्व आदिक हेतुवों मे भी दिया जा सकता है अर्थात् विपक्षमे न दिखने मात्रसे यदि विपक्षम व्यावृत्ति हेतु की मान ली जाती है तो कृतकृत्व हेतुका विपक्ष है आकाश आदिक। आकाश आदिकमें कृतकृत्व नही देखा गया है तो इतने मात्रसे प्रमाण अगर मान लेते हो हेतुको तो उसमें भी असदिग्धता न रहेगी। उत्तर देते हैं कि यह उलाहना देना ठीक नहीं है, क्योंकि विपक्ष आकाश आदिकमें कृतकृत्व हेतुके सद्भावका बाधक प्रमाण मौजूद है अतएव विपक्षमें हेतुका सद्भाव है ही नही, ऐसा पुष्ट प्रमाण मिल गया, न कि विपक्षमे अदर्शनमात्रसे हम इस हेतुको पुष्ट कर रहे हैं।

धर्मादिकमे अस्मदादि प्रत्यक्षत्वाभावकी असिद्धि—धर्मादिकके सम्बन्धमे अन्य बात एक यह है कि वह हम जैसे लोगो द्वारा प्रत्यक्ष नही है यह बात भी प्रसिद्ध नही होती, क्योंकि हम जैसे लोगोंके द्वारा अप्रत्यक्ष मान लिया जाय धर्मादिकको तो शकाकारके यहाँ जो यह अनुमान बनाया गया है कि पशु आदिक देवदत्तके प्रति जो दौड रहे हैं वे देवदत्तके गुणोंसे आकृष्ट हैं क्योंकि देवदत्तके प्रति जा रहे हैं। तो यह अनुमान फिर न बन सकेगा, क्योंकि यहा व्याप्तिका अग्रहण है। अर्थात् जो जो उसके प्रति आकर्षित हुआ वह वह देवदत्तके गुणसे आकृष्ट है। ऐसी बात यो नही कह सकते कि धर्म आदिक तो प्रत्यक्षभूत होते नही फिर कैसे देवदत्तके गुणोंसे आकृष्ट हो रहे हैं, यह सिद्ध किया जायगा? यदि कहो कि मानस प्रत्यक्षके द्वारा व्याप्तिका ग्रहण कर लिया जायगा तब फिर यह सिद्ध हो चुका कि पुण्य—पाप आदिक हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्ष हैं। तब शब्दको क्षणिकत्व सिद्ध करनेके लिए जो हेतु दिया गया था कि जैसे हम लोगोंके द्वारा अप्रत्यक्ष न होनेपर भी विभु द्रव्यके विशेष गुण हैं इस हेतुमें अने-

कान्तिक दोष बराबर पहिलेकी तरह बना हुआ ही है। अब शंकाकार कहता है कि हम उस हेतुके साथ एक विशेषण और लगा देंगे, क्या? कि बाह्य इन्द्रियोके द्वारा अस्मदादि प्रत्यक्ष होनेपर विभु द्रव्यका विशेष गुण होनेसे। इसमे बाह्य इन्द्रिय शब्द और जोड दें तब तो धर्म आदिकके साथ अनेकान्तिक दोष न आयगा। उत्तर देते हैं कि इस हेतुमे थोडी यह विशेषता और जोड देनेपर तो दृष्टान्त साधनविकल होजायगा दृष्टान्त दिया है सुख आदिक का। तो सुख आदिकमे फिर यह साधन पाया ही न जायगा। बाह्येन्द्रियके द्वारा कहाँ है प्रत्यक्ष सुख आदिक? इसलिए भी हेतुमें विशेषता देनेसे दोष नही मिटाया जा सकता।

प्रथम वक्तृव्यापारसे उत्पन्न एक शब्दसे नानादिक नानाशब्दान्तरोंकी निष्पत्तिकी असिद्धि—अब शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि जो शंकाकारने यह कहा था कि वीचीतरङ्ग न्यायसे शब्दकी उत्पत्ति मानी जाती है तो यह बतलावो कि वक्ता का जो प्रथम व्यापार हुआ है, बोलने वालेने जो अपना प्रथम प्रयत्न किया है क्या उस प्रथम व्यापारसे एक शब्द उत्पन्न होता है या अनेक? यहाँ यह पूछा जा रहा है कि वीचीतरङ्ग न्यायसे जिन शब्दोकी उत्पत्ति कह रहे हो वे शब्द जिस प्रथम शब्दसे बने, वह प्रथम शब्द वक्ताके प्रथम व्यापारसे एक हुआ है या अनेक हुआ है? यदि कहो कि वह शब्द एक ही उत्पन्न हुआ है तब उस एक शब्दसे नाना देशोमे अनेक शब्दोकी उत्पत्ति एक साथ कैसे हो जायगी? एक शब्दसे एक शब्द उत्पन्न हो ले, पर देखा यो जाता है कि कोई वक्ता बोल रहा है तो चारो दिशाओमे अनेक शब्द उत्पन्न हो गये। तो जब वक्ताके प्रथम व्यापारसे एक शब्द उत्पन्न हुआ तो नाना देशोमे अनेक शब्दोकी उत्पत्ति एक साथ सम्भव नही है। शंकाकार कहता है कि एक साथ सर्वदेशोमे नाना शब्दोकी उत्पत्तिमें कोई विरोध नही है क्योकि नाना शब्दोंकी उत्पत्तिके कारण सदा मौजूद हैं शब्दका समवायी कारण तो आकाश है। सो देखो—आकाश तो सर्वव्यापक है ही और शब्दके असमवायी कारण है सर्वदेशोमे रहने वाले तालु आदिक व्यापारसे उत्पन्न हुए वायु और आकाशके संयोग तो ये असमवायी कारण भी सदा काल हैं इस कारणसे एक ही साथ सर्वदेशोमे नाना शब्दोकी उत्पत्ति हो जाय इसमे कोई विरोध नही। उत्तरमे कहते हैं कि तब तो यह भी कह दीजिये कि प्रथम शब्द नाना शब्दान्तर का आरम्भक भी नही है, क्योकि जैसे प्रथम शब्द शब्दके द्वारा आरब्ध नही है अर्थात् प्रथम शब्दकी उत्पत्ति तो शब्दसे नही मानी, उसकी उत्पत्ति तो वक्ताके व्यापारसे मानी है। तो जो प्रथम शब्द हुआ वह तो शब्दके द्वारा अनारब्ध है क्योंकि तालु आदिक और आकाशके संयोग आदिक असमवायी कारणसे ही उत्पन्न हो बैठे फिर उनको शब्दोसे उत्पन्न हुआ माननेकी क्या आवश्यकता है? और जिस तरह प्रथम शब्दकी बिना शब्दोंके उत्पत्ति हुई है वक्ताके व्यापारमात्रसे इसी प्रकार जिन शब्दोसे कह रहे हो वे भी शब्द सर्व देशोमे रहने वाले असमवायी कारणोसे उत्पन्न हो जाय समवायी कारण तो सदा मौजूद है और इस तरह जब शब्दान्तरकी उत्पत्ति भी प्रथम शब्दकी तरह

समवायी कारण और असमवायी कारणसे मान ली जायगी तब यह सिद्धान्त तो न रहा जो सूत्रोंमें बतलाते हो कि शब्दकी उत्पत्ति सयोगसे होती है, विभागसे होती है। और शब्दसे भी होती है। इससे वीचीतरग न्यायसे शब्दोकी उत्पत्ति बताना सिद्ध नही होता।

प्रथम शब्दमे शब्दान्तरोकी असमवायिकारणताकी असिद्धि—अब शङ्काकार कहता है कि शब्दान्तरका असमवायी कारण प्रथम शब्द ही है, क्योकि वे अन्य शब्द प्रथम शब्दके समान ही हैं। यदि प्रथम शब्दको शब्दान्तरका असमवायी कारण न माना जाय तब फिर शब्दसे विसदृश शब्दान्तरकी उत्पत्ति होनेका प्रसङ्ग आ जायगा, क्योकि अब नियामक तो कुछ रहा नही। वक्ताने यहाँ कुछ कहा तो समस्त विद्यार्थियोंके कानोंमें वे शब्द पहुचे। वक्ताने जो प्रथम शब्द बोला उसीके समान ही शब्द सब विद्यार्थियोके कानोंमें पहुचे, तो वैसे ही शब्द क्यों पहुँचे सब विद्यार्थियोंके कानोमें ? इसका कारण यह है कि उन समस्त शब्दोका असमवायी कारण यह प्रथम शब्द है जो कि मुखसे बोला गया। तभी उसके अनुरूप ही सदृश ही अन्य अन्य शब्द पैदा होते गए और उन सब विद्यार्थियोंके कानोमे सदृश ही शब्द पहुँचे, इससे सिद्ध होता है कि शब्दान्तरका असमवायी कारण प्रथम शब्द है, न कि प्रथम शब्दकी तरह उन शब्दान्तरोंका असमवायी कारण वायु आकाश आदिकका सयोग है। इससे शब्दसे शब्दान्तरकी उत्पत्ति बराबर सिद्ध है। समाधानमें कहते हैं कि 'ऐसा माननेपर तो हम यह भी कह सकते हैं कि जो प्रथम शब्द है उस शब्दकी उत्पत्ति अन्य शब्दसे मान ली जानी चाहिये अर्थात् प्रथम शब्द भी अन्य शब्दरूप असमवायी कारणसे उत्पन्न हुआ है, वह भी शब्दान्तरके सदृश है। फिर जिन शब्दोंसे इस प्रथम शब्दकी उत्पत्ति हुई है वे शब्द भी अन्य शब्दोंसे असमवायी कारणोंसे उत्पन्न हुए थे'। इस तरह माना जानेपर तो कारणभूत पूर्व-पूर्व शब्द सिद्ध हो गए। सभी शब्द अपने पूर्व शब्दसे उत्पन्न हुए सिद्ध हो गए, तब फिर शब्द अनादि हो जायेंगे, शब्द सतान अनादि हो जायेगी। जब शब्दको परम्परामें अनादिपना आ गया तो इसका कारण यह सिद्ध हो गया कि शब्दकी संतान है। जब शब्दोकी सतान अनादि बन गई तब शब्दको क्षणिक सिद्ध करना यह तो बहुत कठिन बात हो जायगी। हो ही नही सकता फिर शब्द क्षणिक सिद्ध ! इस कारण शब्दसे शब्दान्तरकी उत्पत्ति होती है यह विकल्प प्रस्तुत करना योग्य नही है, किन्तु शब्द जो बोले जाते हैं वे शब्द हो इतने महान विस्तार वाला परिमाण लिए हुए हैं कि ये शब्द कर्ण प्रदेशमे जाते हैं और उन शब्दो को सुन लेते हैं इससे शब्द क्षणिक नही है और न शब्द आकाशका गुण है जिससे आकाश पदार्थकी शब्दलिंग रूपमे सिद्धि की जा सके।

शब्दान्तरोकी उत्पत्तिमें असमवायी कारणरूपसे कल्पित वक्तृव्यापारज अनेक शब्दको एक प्रयत्नसे अनिष्पत्ति—शंकाकार कहता है कि प्रथम शब्द

ही जो कि प्रतिनियत स्वरूप वाला है और प्रतिनियत वक्ताके व्यापारसे ही उत्पन्न हुआ है ऐसा प्रथम शब्द ही अपने सदृश शब्दान्तरको उत्पन्न कर दे इसमें क्या आपत्ति है ? समाधानमे कहते हैं कि तब तो फिर असमवायी कारण रूपसे प्रथम शब्दको भी माननेकी क्या आवश्यकता है ? प्रतिनियत वक्ताके व्यापारसे और उस वक्ताके प्रयत्न से हुए प्रतिनियत वायु आकाशके सयोगसे सदृश नये-नये शब्दोकी उत्पत्ति सम्भव हो जायगी इस कारण एक शब्द शब्दान्तरको उत्पन्न करने वाला है यह बात तो सिद्ध होती नही है। यह बात पूछी गई थी वीचीतरग न्यायके कहनेपर कि यदि वीचीतरग न्यायसे शब्दोकी उत्पत्ति मानी जाय तो यह बतलावो कि वक्ताके प्रथम व्यापारसे जो शब्द उत्पन्न होना मान रहे हो वह एक है या अनेक ? इन दो विकल्पोमेसे प्रथम विकल्पकी तो सिद्धि हुई नही, अब यदि द्वितीय विकल्प मानोगे कि वक्ताके व्यापारसे अनेक शब्द उत्पन्न होते हैं जिससे कि शब्दान्तरकी उत्पत्ति होती है तो यह बात यो युक्त नही बैठती कि एक तालु आदि व आकाशके सयोगसे अनेक शब्दोकी उत्पत्ति सम्भव नही होती। ऐसा भी नही है कि एक वक्ताके एक ही बारमे तालुक आदिकके व्यापारसे जनित वायु व आकाशके सयोग अनेक सम्भव हो जाये। इसका कारण यह है कि वक्ताका प्रयत्न तो एक है ना ! एक प्रयत्न होनेपर तालु आदिकका प्रयत्न एक हुआ तब वायु आकाशका सयोग भी प्रतिनियत एक होगा। यह भी नही कह सकते कि प्रयत्नके बिना ही तालु वायु आदिका व आकाशका सयोग बन जाय, क्योकि वह तो तालु आदिकी क्रियापूर्वक ही होता है। उन सब तालु आदि स्थानोमेसे किसी भी स्थानकी क्रियासे यह असमवायी कारणका योग मिलता है। इस कारण अनेक शब्द उत्पन्न हो ही नही सकते।

आद्य शब्द द्वारा स्वदेशमे शब्दान्तरोंके रचे जानेमे आपत्तियां—अथवा जिस किसी भी प्रकार मान लो कि वक्ताके प्रथम व्यापारसे जो शब्द उत्पन्न होते हैं वे अनेक हैं और वे अनेक शब्द शब्दान्तरको उत्पन्न करते हैं, तो यहाँ यह बतलावो कि यह शब्द अपने ही देशमे अर्थात् शब्दकी जहा उत्पत्ति हुई है उसी प्रदेशमें शब्दान्तरोको उत्पन्न करता है या देशान्तरमे शब्दको उत्पन्न करता है ? यहाँ यह पूछा गया है कि वक्ताके व्यापारसे उत्पन्न हुए वे अनेक शब्द जो शब्दान्तरको उत्पन्न करते हैं तो उन शब्दोको कहाँ उत्पन्न करते हैं ? अपने ही स्थानमें, अर्थात् तालु आदिककी जगहमे ही शब्दातरको रचता है या अन्य देशमे, अपनी उत्पत्तिके स्थानसे भिन्न दूर अन्य देशमे शब्दातरको रचता है ? यदि कहो कि वक्ताके प्रथम व्यापारसे उत्पन्न हुआ वह शब्द अपने ही देशमे, तालु आदिक स्थानमे ही शब्दान्तरको रचता है, तब तो अन्य देशमे शब्दोकी उपलब्धिका अभाव हो जायगा। जब इन शब्दोने अपने ही स्थान मे शब्दान्तरोको रचा तो तो अन्य देशमे जो शब्दकी उपलब्धि होती है, दूरके मनुष्य भी शब्द सुन लिया करते हैं तो उन शब्दोकी उपलब्धिका अभाव हो जायगा, फिर अन्य देशमे शब्द न पाये जाने चाहियें।

स्वस्थानस्थ आद्य शब्द द्वारा देशान्तरमें शब्दान्तरोंको रचे जानेसे आपत्तियाँ—यदि कहो कि वक्ताके प्रथम व्यापारसे उत्पन्न हुआ शब्द देशान्तरमें शब्दान्तरको रचता है तो यहाँ दो विकल्प उत्पन्न होते हैं कि वह प्रथम शब्द क्या देशान्तरमें जा करके उन शब्दान्तरोंको रचता है या अपने ही स्थानमें ठहरा हुआ ही शब्द अन्य देशमें शब्दान्तरको रचता है ? यहाँ प्रकरणकी बात यह चल रही है कि शब्दको आकाशका गुण मानने वाले वैशेषिक लोग शब्दको क्षणिक मानते हैं और क्षणिक माननेपर जब यह आपत्ति सामने आती है कि फिर तो शब्द दूसरोंको सुनाई न देने चाहिए, क्योंकि एक तो शब्द क्षणिक माने गए, दूसरे—शब्दोंको गुण माना गया है। गुण हुआ करते हैं निष्क्रिय। तो शब्द जब क्षणिक माना और निष्क्रिय माना तो शब्द कानोंके पास कैसे सम्बन्धित होते हैं ? उस आपत्तिके निवारणार्थ शंकाकार अपने विचार रखता चला जा रहा है। शब्दोंसे शब्दान्तरकी उत्पत्ति माननेका शंकाकारका प्रस्ताव चल रहा है और उस ही के विरोधमें विकल्पोंके रूपमें पूछा जा रहा है कि यह बतलावो की वक्ताके व्यापारसे उत्पन्न हुए शब्द दूर देशमें जा जाकर श्रोताओंके कानोंमें पहुंच-पहुंचकर शब्दान्तरको उत्पन्न करते हैं या अपने ही तालु आदिक प्रदेशोंमें ठहर कर अन्य देशमें शब्दान्तरको उत्पन्न करते हैं ? यदि कहो कि वक्ताके व्यापारसे उत्पन्न हुआ वह प्रथम शब्द अपने ही स्थानमें ठहरा हुआ रहकर ही अन्य देशमें शब्दान्तरोंको उत्पन्न करता है तब तो यह बतलावो कि जब शब्द अपनी उत्पत्ति के स्थानोंमें रहकर ही दूर देशमें शब्दान्तरोंको उत्पन्न करता है तो लोकके अन्तमें भी बहुत दूर तक लोक के आखिरी हिस्से तक क्यों नहीं शब्दान्तरोंको उत्पन्न कर देता ? फिर तो शब्दोंमें लोकान्तरमें भी शब्दको उत्पन्न करनेकी बात आ जायगी और, जब शब्द अपने ही देश में रहकर अन्य देश देशमें शब्दान्तरोंको उत्पन्न करने लगे तो अदृष्ट भी सर्व देशमें रहता हुआ ही अन्य देशमें रहने वाले मणिमुक्ता आदिक वैभवोंको उत्पन्न करदे, इसमें क्यों आपत्ति करते हो ? वैशेषिक सिद्धान्तने यह माना है कि आत्माका अदृष्ट चारों ओर घूमकर रहकर अथवा आत्मा व्यापक है तो अदृष्ट भी व्यापक है, तब तो अदृष्ट सारे लोकमें है। तो जिस जगह भी मणिमुक्त सम्पदा वैभव होंगे वहाँसे खींच कर जिन्होंने धर्म किया है उन जीवोंके पास ला देता है। तो अदृष्टको भी बाहरसे इन पदार्थोंके आकर्षण करनेकी क्या जरूरत रही ? अदृष्ट भी सर्व देशोंमें रहते हुए ही बाहरसे मणिमुक्ता आदिक वैभवोंका आकर्षण करके जीवोंको सौंप दें। जबकि अपने तालु आदिक स्थानोंमें रहते हुए ही शब्दोंके अन्य देशमें शब्दान्तरोंका उत्पादक मान लिया है। यदि अदृष्टको भी ऐसा मान बैठोगे कि अदृष्ट अपने शरीर देशमें रहता हुआ ही अन्य देशोंमें रहने वाले मणि मुक्ता आदिक फलोंका आकर्षण करता है तब तो शङ्काकारके सिद्धान्तमें, सूत्ररूपमें जो बात कही है कि "पुण्य पाप अपने आश्रयसे संयुक्त अन्य आश्रयमें अपनी क्रियाको करते हैं" इसका विरोध हो जायगा।

देशान्तरमें जाकर आद्य शब्द द्वारा देशान्तरमें शब्दान्तरोंको रचे जाने

के मन्तव्यकी मीमासा—तथा इस प्रसगमे यह विचार करनेकी बात है कि वीची तरग न्यायके कर देनेपर भी कार्यदेशमें प्राप्त हुए बिना देशान्तरकी आरम्भकता नही देखी जा सकती। जैसे समुद्रकी तरगें भी कुछ तो आगे बढ़ती हैं तब वे अन्य तरगो को पैदा कर करके कार्यदेश तक पहुचती हैं अथवा वही एक तरग अन्य अन्य तरग रूपसे परिणत होता हुआ कार्य देश तक पहुच जाता है। तो वीची तरङ्ग आदिकमे भी यह नही देखा गया कि उत्तर तरङ्गके देशमे पहुँचे बिना उत्तर तरङ्गोका आरमक बन गया हो। समुद्रकी लहर भी जिस जगह उठी ठीक उसी जगह ही रहकर तो अगली लहरको उत्पन्न नही करती, वह भी थोडी दूर जाकर नवीन लहरको उत्पन्न करती है। तो और अधिक नही तो दूसरी लहरके स्थान तक पहुँचकर टक्कर लेती तो प्रथम लहरसे आवश्यक हुआ ना, तो इस तरह शब्दसे शब्दान्तरकी उत्पत्ति भी मानो वीची तरङ्गसे तो इतना वहा भी मानना पडेगा कि शब्दान्तरोके स्थान तक पूर्व शब्दका पहुचना आवश्यक है और उनसे सयोग करके शब्दातरोका उत्पादक बनेगा। इतनेपर भी तो शब्दको सक्रिय मानना पडा ना, और जो क्रियावान होता है वह गुण नही होता, द्रव्य होता है। तब शब्द जब गुण न रहा तो शब्द गुणके माध्यमसे जो आकाश पदार्थसे सिद्ध कर रहे थे वह भी कैसे सिद्ध हो सकता है? यदि यह कहो कि वह पूर्व शब्द देशातरमे जाकर शब्दातरको उत्पन्न करता है तो ठीक है, सिद्ध हो गया ना, कि शब्द क्रियावान है। शब्द अन्य देशमे गया और जाकर उसने शब्दातरको उत्पन्न किया तो जानेकी क्रिया तो बनी और जो क्रियावान होता है वह द्रव्य होता है, गुण नही होता। तो शब्दमे क्रियावत्व सिद्ध हो गया और क्रियावत्व सिद्ध होनेसे शब्दमें द्रव्यत्व सिद्ध हो गया। शब्द द्रव्य है, क्रियावान होनेसे।

शब्दको आकाशगुण माननेपर शब्दकी प्रत्यक्षताके अभावका प्रसङ्ग—और भी सुनो! शब्दको यदि आकाशका गुण मान लिया जाता है तब फिर हम जैसे लोगोको उसका प्रत्यक्षपना न होना चाहिये। क्योकि जिसका गुण माना गया है शब्द वह तो अत्यन्त परोक्ष है। फिर परोक्ष आकाशके गुणरूप शब्दकी प्रत्यक्षता कैसे बन सकेगी? जो जो अत्यन्त परोक्ष गुणीके गुण होते हैं वे हम लोगोको प्रत्यक्ष नही हो सकते। जैसे परमाणुके रूप, रस आदिक। परमाणु जो निरश है एक प्रदेशी है, उसके रूप, रस आदिकको कौन समझता है? किसी भी इन्द्रियसे परमाणुका रूप रस आदिक नही जाना जा सकता। यहाँ जो भी रूप नजर आते हैं वे अनन्त परमाणुवो के स्कन्धोमे नजर आते हैं। परमाणु तो अत्यन्त परोक्ष है। तो उसमे रहने वाले रूप आदिक गुण हम लोगोको कहाँ प्रत्यक्ष हो जायेंगे? तो जो अनन्त परोक्ष द्रव्यके गुण होते हैं वे हम लोगोंको प्रत्यक्ष नही हो सकते। ऐसी ही आकाशकी बात है। आकाश तो परोक्ष द्रव्य है। आकाश किसी भी इन्द्रियसे नही जाना जाता। तो ऐसे परोक्ष आकाशके गुण हम लोगोको प्रत्यक्ष नही हो सकते। और शब्दको आकाशका गुण माना है विशेषवादमे, अतः शब्द हम लोगोको कभी भी प्रत्यक्षमें न आना चाहिये।

शंकाकार कहता है कि यह जो अनुमान बनाया कि जो अत्यन्त परोक्ष गुणीके गुण होते हैं वे हम लोगोंको प्रत्यक्ष नही हो सकते । तो इसका वायुके स्पर्शके साथ व्यभिचार होता है अर्थात् स्पर्श तो गुण है किन्तु हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्ष होता है । उत्तर देते हैं कि वायु कहो अथवा वायुस्पर्श कहो ये परोक्ष द्रव्य नही हैं किन्तु प्रत्यक्ष हैं । यहाँ तो परोक्ष गुणीके गुणोंकी बात कही जा रही है । जो परोक्ष गुणीके गुण होते हैं वे हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्षमें नही आ सकते । वायुस्पर्श तो प्रत्यक्ष है, उसके साथ इस हेतुका व्यभिचार नही हो सकता ।

प्रत्यक्षभूत होनेके कारण शब्दके आकाशगुणत्वका अभाव—और भी देखिये कि शब्दको यदि गुण मान लिया जाता है और शब्दको हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्ष भी माना जाता है तब तो यह विचार करना चाहिए रंच छोड़कर कि जब शब्द हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञानमें आता है तो शब्द परोक्षभूत आकाश द्रव्य विशेषका गुण नही बन सकता । जो चीज हम लोगोंके प्रत्यक्षभूत हो वह कभी भी अत्यन्त परोक्ष गुणीका गुण नही हो सकता । जैसे घटके रूपादिक ये हम लोगोंको प्रत्यक्ष हो रहे हैं तो ये रूप परोक्ष गुणीके गुण नही हो सकते । घटका रूप घटका गुण है ना, तो घट परोक्ष है और गुण प्रत्यक्षमें आ रहा है । वह गुण परोक्ष गुणीका गुण नही हो सकता ऐसा कभी भी नही हो सकता कि गुणी तो परोक्ष रहे और उसका गुण प्रत्यक्षमें आ जाय । गुणी और गुणमें स्वरूप प्रयोजन आदिकका भेद तो है पर पार्थक्य नही है । बल्कि जितना जो कुछ भी ज्ञानमें आता है वह गुण नही आता किन्तु पदार्थ ज्ञानमें आया करता है । हाँ पदार्थ ही रूपमुखेन ज्ञानमें आया रसमुखेन ज्ञानमें आया । जिस किसी भी प्रकार ज्ञानमें आये तो वह विशेषता तो न्यारी हुई समझनेके लिए, पर रूप रस आदिक स्वतन्त्र कुछ पदार्थ हो और घट आदिक स्वतन्त्र पदार्थ हो ऐसी बात नही हो सकती । शब्द भी जब हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्षमें आ रहा है तो वह अत्यन्त परोक्ष गुणीका गुण नही हो सकता इसी प्रकार शब्द परोक्षभूत आकाशका गुण नही बनता और शब्दलिङ्गसे ही किसीके विशेषवादकी सिद्धि की जाती है । तो जब शब्द आकाशका लिङ्ग न रहा तो नित्य निरंश शब्दलिङ्ग आकाशनामक पदार्थकी सिद्धि नही हो सकती है । जब इस एकान्त पदार्थकी सिद्धि नही है तो समझना चाहिये कि जगतमें जो भी पदार्थ होते हैं वे सामान्य विशेषात्मक होते हैं । केवल सामान्य सामान्य, केवल विशेष विशेष ऐसभूत पदार्थ नही होता ।

शब्दको आकाशगुणत्व सिद्ध करनेके लिये कहे गये हेतुकी असिद्धि और व्यभिचारिता—शंकाकार कहता है कि शब्द तो आकाशका ही गुण है क्योंकि शब्द द्रव्यरूप तो है नही, कर्मरूप है नही फिर भी सत्तासे सम्बन्धित है । जिसमें सत्ताका सम्बन्ध होता है वे तीन प्रकारके पदार्थ हैं—द्रव्य, कर्म और गुण, सो शब्दमें सत्ताका सम्बन्ध तो है । सभी लोग जानते हैं कि शब्द सत्त्व विशिष्ट हैं और वह द्रव्य कर्म

नही तो पारिशेष्य न्यायसे यह सिद्ध हो गया कि शब्द गुण है । इस सम्बन्धमे समाधान करते हुए शकाकारसे पूछा जा रहा है कि शब्दमे जो सत्ताका सम्बन्धित्व है वह क्या स्वरूपभूत सत्तासे सम्बन्धिपना है या भिन्न सत्तासे सम्बन्धिपना है ? यदि कहो कि स्वरूपभूत सत्तासे सम्बन्धित्व है शब्दका तो ऐसा माननेमे सामान्य आदिक पदार्थोंके साथ व्यभिचार हो जाता है । शकाकारके अनुमानमे यह हेतु दिया गया कि के 'जो द्रव्य और कर्मरूप तो हो नही फिर भी सत्तासे सम्बन्धित हो" सो यहाँ सत्ता माना है स्वरूपभूत तो सामान्य, विशेष, समवाय ये तीन पदार्थ भी द्रव्य नही, कर्म नही, साथ ही स्वरूपभूत सत्तारूप है । सामान्य, विशेष, समवायमे भिन्न सत्व गुणका सम्बन्ध होता हो सो तो नही माना, किन्तु यह स्वय स्वरूपभूत सत्रूप है तो ये भी गुण कहलाने लगे, लेकिन द्रव्यकर्म, भाव न होनेपर भी और स्वरूपभूत सत्तासे सम्बन्धित होनेपर भी सामान्य, विशेष, समवायको गुण नही माना गया है । यदि कहो कि भिन्न सत्तासे सम्बन्धित है, जैसे कि द्रव्यमे भिन्न सत्ताका सम्बन्ध होता है तो यह द्रव्यसत् कहलाता है इसी प्रकार कर्म और गुण भी भिन्न सत्तासे समवेत होते हैं तब ये सत् कहलाते है इसी प्रकार शब्दोमे भी भिन्न सत्ताका सम्बन्ध है यह कहना तो बिल्कुल अयुक्त है । कारण यह है कि यह बतलावो कि सत्ताका सम्बन्ध जिन शब्दोमे किया गया है वे शब्द स्वय असत् हैं या स्वय सत् हैं, सत्ताका सम्बन्ध होनेसे पहिले इन शब्दोका स्वरूप क्या है ये सद्रूप हैं या असद्रूप ? स्वयं असत् होकर फिर ये अर्थान्तरभूत सत्तासे सम्बन्धित हो और फिर ये शब्द सत् कहलायें तो ऐसा माना जानेपर कि जब असत्से भी सत्ताका सम्बन्ध माना गया है तो अश्वविषाण, गगन कुसुम आदिक असत् पदार्थोंमे भी सत्ताका सम्बन्ध हो बैठे और सत् बन जायें । इससे ऐसा सोचना बिल्कुल विपरीत है कि ये द्रव्य गुण, कर्म जब अर्थान्तरभूत सत्तासे सम्बन्धित होते हैं तो सत् कहलाते हैं । यदि कहो कि सत्ता सम्बन्धसे पहिले ही शब्द सत् हैं तो अब सत्मे सत्ताके सम्बन्धकी आवश्यकता ही क्या है । शब्द ही क्या कोई भी सत्भूत पदार्थ भिन्न सत्तासे सम्बन्धित होकर सत् नही कहलाता जो भी है वह स्वरूपत. है । है इसी के मायने सत् है, उसमे सत्ताके सम्बन्ध करने की कल्पना क्यो की जाती है ?

शब्दके एकद्रव्यत्वकी असिद्धि—शकाकार कहता है कि शब्द तो द्रव्य नही कहला सकता, क्योकि वह एक द्रव्य वाला है । देखो ! जो किसी एक द्रव्यका आश्रय रखता है वह द्रव्य नही कहलाता । जो द्रव्यके आश्रित हुआ करता है वह गुण ही कहलाता है । तो एक द्रव्य वाला होनेसे शब्द द्रव्य नही हो सकता । जैसे रूप, रस, गध, स्पर्श एक द्रव्य वाले हैं तो वे द्रव्य तो न कहलायेंगे, गुण है । तो यो शब्द भी द्रव्य नही है । समाधानमे कहते हैं कि इस अनुमानमे जो हेतु दिया गया है, एक द्रव्यपना वह हेतु असिद्ध है । शब्द एक द्रव्य वाला है, यह बात कब सिद्ध हुई ? कि जब यह विदित हो जाय कि शब्दमें गुणपना है और वह शब्द गुण आकाशमे ही एक द्रव्यमें ही समवाय सम्बन्धसे रहता है । ये दो बातें जब सिद्ध हो लें तब आप यह

सिद्ध कर सकते हो कि शब्द एक द्रव्य वाला है, लेकिन न तो यही सिद्ध होता कि शब्द गुण है और न यही सिद्ध हो सकता कि शब्द आकाशमें ही समवेत रहता है। इस कारण एक द्रव्यत्व हेतु देकर शब्दको सिद्ध करना बिल्कुल अयुक्त बात है।

शब्दको एकद्रव्यत्व सिद्ध करने वाले अनुमानमे प्रत्यनुमानसे बाधा— शङ्काकार कहता है कि शब्द एक द्रव्य वाला है, यह बात हेतुसे सिद्ध है। शब्द एक द्रव्य वाला है, क्योंकि सामान्यविशेषवान होकर भी शब्द बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष होता है। जैसे कि रूप आदिक हैं। वे सामान्यविशेषवान होकर चक्षु इन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष होते हैं, अन्य इन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष होते हैं तो वे एक द्रव्यवाले हैं इससे शब्द भी एक द्रव्य वाला है। समाधानमे कहते हैं कि तुम्हारा यह अनुमान पुष्ट प्रत्यनुमानसे बाधित है। शब्द अनेक द्रव्य वाले हैं अथवा शब्द स्वय अनेक द्रव्य हैं, क्योंकि हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्षभूत होनेपर भी स्पर्शवान हैं शब्द। जैसे घट पट आदिक हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्षभूत हैं और स्पर्शवान हैं इस कारण घट पट आदिक अनेक द्रव्य हैं, अनेक परमाणुवोंके पिण्ड हैं और वे सब कार्य द्रव्य कहलाते हैं। तो तुम्हारा अनुमान प्रत्यनुमानसे बाधित है।

शब्दको एकद्रव्यत्व सिद्ध करनेके लिये शंकाकार द्वारा कहे गये हेतुमें व्यभिचार— साथ ही तुम्हारे अनुमानमे दिया गया सामान्यविशेषवान होकर भी बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष है यह हेतु वायुके साथ व्यभिचरित होता है। देखो वायु सामान्य विशेषवान है और बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत है फिर भी वह एक द्रव्य वान नहीं है। साथ ही आपका हेतु चन्द्र सूर्य आदिकके साथ भी व्यभिचरित है अर्थात् ये चन्द्र सूर्य आदिक हम लोगोंके द्वारा एक चक्षु इन्द्रियसे ही तो जाने जा रहे हैं और सामान्यविशेषवान भी हैं लेकिन ये एक द्रव्यवान नहीं हैं। ये चन्द्र सूर्य स्वय द्रव्य हैं अथवा अनेक द्रव्य हैं, अनेक परमाणुवोंके पुञ्ज हैं तो इस प्रकार शब्दसे एक द्रव्यत्व सिद्ध करनेमे शकाकारने जो हेतु दिया है वह अनैकान्तिक हेतु है। यदि यह कहो कि वायु अथवा चन्द्र सूर्य ये हम लोगोंसे विलक्षण उत्तम जो योगीजन हैं उनके द्वारा अन्य बाह्य इन्द्रियोंसे भी ये सब जान लिए जाते हैं। वायु चन्द्र सूर्य इनको यद्यपि हम लोग बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा परख पाते हैं। जैसे वायुसे स्पर्शनइन्द्रियको जाना, चन्द्र सूर्यको चक्षुइन्द्रियसे जाना, लेकिन योगीजन तो अन्य इन्द्रियोंके द्वारा भी उन्हें जान लेते हैं, इस कारण हेतु व्यभिचरित नहीं हुआ। अर्थात् शब्दको एक द्रव्यत्व सिद्ध करनेमें जो हेतु दिया गया है कि बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष है सो अब ये चन्द्र सूर्य वायु एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष तो न रहे, किन्तु अन्य इन्द्रियके द्वारा भी वे प्रत्यक्ष हो गए। समाधानमे कहते हैं कि फिर तो यही बात शब्दमें भी घटा लीजिये। शब्द हम लोगोंके द्वारा कर्णइन्द्रियसे ही प्रत्यक्षभूत है, लेकिन हम जैसे अल्पज्ञोंसे विलक्षण उत्तम योगियोंके द्वारा अन्य बाह्य इन्द्रियके द्वारा भी प्रत्यक्षभूत हो जाता है। यदि कहो कि शब्दमें

तो यह बात नही पायी जाती तो एसे ही हम चन्द्र सूर्य वायुके सम्बन्धमें भी कह सकते कि उनका भी किसीके द्वारा भी अन्य बाह्य इन्द्रियसे प्रत्यक्ष नही हुआ करता है।

शब्दके गुणत्व और आकाशाश्रयत्वकी असिद्धि—शकाकार कहता है कि शब्दका गुणपना इस हेतुसे भी सिद्ध है कि शब्द गुण है, क्योकि सामान्य विशेषवान होकर भी बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत है जैसे कि रूप आदिक। रूप आदिक सामान्य विशेषवान है। और, फिर देखो! बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा ही प्रत्यक्षभूत होता है इस कारण गुण माना गया है ना, तो यही बात शब्दमे है इस कारण शब्द भी गुण है। समाधानमे कहते हैं कि तुम्हारे इस हेतुका वायु आदिकके साथ व्यभिचार आता है अर्थात् वायु भी देखो, सामान्य विशेषवान है और बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत है, लेकिन गुण नही है। यदि वायु भी गुण बन बैठे अथवा आप मान लें कि वायु भी गुण सही, उसे भी हम पक्षमे लेते हैं तो इस तरह द्रव्य सख्याका विघात हो जायगा अर्थात् गुण माने गये हैं वैशेषिक सिद्धान्तमे २४, लेकिन अब यह गुण उनसे अतिरिक्त हो गया। अथवा ६ द्रव्योमेसे एक वायु नामके द्रव्यको हटा दिया और उसे गुणमे सामिल कर दिया। ८ द्रव्य रह गए तब पृथ्वी, जल, अग्नि ये भी तो वायुकी ही तरह सामान्य विशेषवान होकर एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत होते रहते हैं, ये भी गुण बन बैठेंगे तब तो द्रव्य ५ ही रहे। तो यो अनेक तरहसे पदार्थोंकी सख्या का विघात हो जायगा। इससे शब्द गुण नही है और फिर जब शब्द गुण न रहे तो यो कहना कि जो शब्द गुणका आश्रयभूत है वह पारिशेष्य न्यायसे आकाश कहलाता है यह कैसे गुण हो सकता है। अर्थात् शब्द न तो गुण है और न यह आकाशसे सम्बन्धित है। शब्दका न तो आकाश उपादान है और न निमित्त है। कार्योंमे जो तीन कारण माने हैं—समवायी कारण, असमवायी कारण, निमित्त कारण, ये तीन ही कारण शब्दके ठीक नही बैठते आकाशका गुण माननेपर अर्थात् शब्दका आकाश समवायी कारण नही है। वायु और आकाशका सयोग शब्दका असमवायी कारण नही। इसी प्रकार अन्य अन्य पदार्थ जो शब्दको आकाशका गुण माननेकी स्थितिमे निमित्त कारण माने इस तरहसे वे पदार्थ निमित्त कारण भी सिद्ध नही होते। तब यह सिद्ध हुआ कि शब्द गुण नही है और न शब्दलिङ्गसे आकाश पदार्थकी सिद्धि होती है।

शब्दकी स्पर्शवद् द्रव्य पर्यायरूपता - शकाकारने जो यह कहा कि शब्द स्पर्शवान परमाणुवोका गुण नही है, यो शकाकारने शब्दको अन्य द्रव्योके गुणत्वके निराकरण प्रसगमे सर्व प्रथम यह कहा है कि शब्द स्पर्शवान परमाणुवोका गुण है, सो समाधान इसका यह है कि यह तो सिद्ध साधन है। हम भी मानते हैं कि शब्द स्पर्शवान परमाणुवोका गुण नही है, किन्तु शब्द तो स्वय पर्याय है। शब्द तो गुण ही नही जिससे कि यह खोजा जाय कि शब्द इसका गुण है इसका नही। वह तो द्रव्य पर्याय है, विशिष्ट जातिके परमाणु पुञ्ज स्कंधकी यह द्रव्य पर्याय है, पर्यायको भी

गुण शब्दसे कभी कभी कहा जाता है यों गुण यहाँ तो शब्द परमाणुवोंका गुण नहीं है शब्द तो स्कन्धोंका गुण है याने पनिणमन है। और भी देखिये जैसे शब्द हम लोगों के प्रत्यक्षमें आ रहे हैं तो शब्द तो प्रत्यक्षमें आ रहे और उसका परमाणु विशेषगुणत्व के साथ विरोध है, अर्थात् जो प्रत्यक्षमें हमारे आ रहा है वह परमाणुका विशेषगुण नहीं हो सकता। सो जिस तरह हम लोगोंके प्रत्यक्षमें शब्द आ रहा और वह परमाणु का विशेष गुण नहीं है प्रत्यक्ष होनेमें और परमाणुके विशेषगुण होनेमें परस्परमें विरोध है इसी प्रकार हम लोगोंके प्रत्यक्षमें आ रहे हैं शब्द इस कारण आकाशके विशेष गुणपनाका भी विरोध है। अर्थात् चूंकि शब्द भी प्रत्यक्षमें आ रहा इस कारण आकाशका विशेषगुण नहीं हो सकता। उसका अनुमान प्रयोग है कि शब्द अत्यन्त परोक्षभूत आकाशका विशेषगुण नहीं होता, क्योंकि हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्षमें आ रहा है। जैसे कि कार्य द्रव्यके रूपादिक हम लोगोंके प्रत्यक्षमें आ रहे हैं तो वे रूप आदिक आकाशके विशेष गुण नहीं है और न किसी अन्य परोक्ष पदार्थके गुण हैं। ऐसा भी नहीं हो सकता कि हम लोगोंके प्रत्यक्षमें आये इस कारण परमाणुका विशेष गुण तो न रहे और शब्दका आकाशका विशेषगुण बन जाय। जब परोक्षका गुण, परमाणुका गुण प्रत्यक्षमें नहीं आ सकता तो परोक्ष आकाशका गुण कभी प्रत्यक्षमें नहीं आ सकता और, जो प्रत्यक्षमें आ रहा वह परोक्षभूत आकाशका विशेष गुण हो ही नहीं सकता। जैसे कि परमाणुका गुण रूप आदिक हम लोगोंके प्रत्यक्षमें नहीं आता इसी प्रकार आकाशका गुण महत्त्व आदिक भी प्रत्यक्षमें नहीं आता। शब्द यदि आकाशका गुण होता तो वह भी प्रत्यक्षमें न आ सकता था लेकिन आ रहा है सब उस प्रत्यक्षमें कर्ण-इन्द्रियके द्वारा समझा जा रहा है शब्द, तो वह किसी भी परोक्ष द्रव्यका गुण नहीं बन सकता।

शब्दमें स्पर्शवद्द्रव्यगुणत्वके निषेधके लिए शङ्काकार द्वारा कहे गए प्रथम हेतुकी सदोषता—शंकाकार कहता है कि यदि स्पर्शवान परमाणुवोंका शब्द गुण नहीं है, इसे सिद्धसाधन मानकर इसका निराकरण किया सो ठीक है, साथ ही वह भी मानना पडेगा कि शब्द कार्य द्रव्योंका भी गुण नहीं है, क्योंकि कार्य द्रव्यांतर से शब्दकी उत्पत्ति नहीं होती है। और, उत्पन्न होता ही है शब्द, सो आकाशका गुण मानना होगा। समाधानमें कहते हैं कि यह बात भी अयुक्त है। शब्द आकाशका गुण तो हो नहीं सकता, इसका निराकरण तो अभी अभी किया है और मानते हो यह कि कार्यद्रव्यांतरसे शब्दकी उत्पत्ति न होगी और शब्द है भी जरूर, उसकी उत्पत्ति है है अवश्य। इसे शंकाकार भी मान रहा तो इसका निष्कर्ष यह निकल बैठेगा कि शब्द निराधार गुण है। शब्द उत्पन्न तो हुआ है और गुण भी माना जा रहा है, आकाशका गुण है नहीं, कार्य द्रव्यसे उत्पन्न होता नहीं। तब यह निष्कर्ष मानना पड़ेगा कि शब्द निराधार गुण होता है, और ऐसा माननेपर कि शब्द निराधार गुण है तो निराधार गुण जब होने लगे तब तुम्हारे इस सिद्धान्तमें दोष आयगा कि "बुद्धि

आदिक गुण किसी न किसी द्रव्यमे रहते हैं, गुण होनेसे ।" देखो ! शब्द गुण है और किसीमे नही रह रहा है तो तुम्हारे सिद्धान्तका ही घात हो जायगा । इससे मानना चाहिए कि शब्दकी उत्पत्ति कार्यद्रव्यान्तरोसे है । और वह कार्यद्रव्यान्तर क्या है ? परमाणुवोका पुञ्जरूप भाषावर्गणा जातिके पुद्गल स्कध, उनसे शब्द पर्यायकी उत्पत्ति होती है, उसे तुम गुण मान रहे, मानो, गुण भेदको भी कहते हैं, पर इतना मानना ही होगा कि शब्दकी उत्पत्ति परमाणुवोके पुञ्जरूप किसी कार्य द्रव्यान्तरसे हुआ करती है ।

शब्दमे स्पर्शवान द्रव्यके गुणत्वका निषेध करनेके लिए शङ्काकार द्वारा कहे गए द्वितीय हेतुकी सदोषता—पृथ्वी आदिक कार्य द्रव्योका गुण शब्द नही है, इसकी सिद्धिमे दूसरा हेतु शङ्काकारने यह दिया था कि शब्द अकारण गुणपूर्वक है, इस कारण शब्द कार्यद्रव्य पृथ्वी आदकके विशेष गुण नही हैं, अकारण गुणपूर्वकका अर्थ बताया था कि अकारण हुआ आकाश और उसके गुण हुए महत्त्व आदिक, तत्पूर्वक शब्दकी उत्पत्ति हुई है । दूसरा अर्थ बताया गया कि कारण है आकाश, उसका गुण कहलाया कारणगुण । कारणगुण जिस शब्दमे नही है उसे कहते हैं अकारण गुणपूर्वक । तो शब्द यो अकारण गुणपूर्वक है । जैसे कि पृथ्वी आदिक कार्य द्रव्योमे परमाणुरूप कारणके गुण आया करते हैं रूप रस आदिक इस तरह शब्दकी बात नही है । तो यो अकारण गुणपूर्वक होनेसे शब्द कार्यद्रव्योके गुण नही हैं । कार्यद्रव्योके जो गुण हुआ करते हैं वे कारण गुणपूर्वक होते हैं । जैसे घट पट आदिकमे जो रूप रस आदिक पाये जारहे है ये सब कारण गुणपूर्वक हैं, इसके कारण मे जो गुण है सो ही कार्यमे आया पर शब्दमे ऐसा नही है । शब्दके कारणोका गुण शब्दमें नही आता, इस कारण मानना होगा कि शब्द कार्यद्रव्योका विशेष गुण नही, किन्तु आकाश द्रव्यका विशेष गुण है । समाधानमे कहते हैं कि शकाकारका अकारण गुणपूर्वकत्व हेतु असिद्ध है । शब्द अकारणगुणपूर्वक नही होता, क्योकि वह हम लोगो के बाह्येन्द्रियके द्वारा ग्राह्य होनेपर गुणस्वरूप है । जो जो पदार्थ हम लोगोके बाह्य इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य है और फिर गुणरूप है, वे अकारण गुणपूर्वक नही होते अर्थात् कारणगुणपूर्वक होते हैं । जैसे कि कपडेका रूप रस आदिक, कपडेका रूप रस हम आप लोगोके बाह्य इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य है । रूप चक्षु इन्द्रियसे जाना जाता है, रसको रसनेन्द्रियसे जानते हैं । साथ ही रूप गुण है तो देखो, पटका रूप कारण गुणपूर्वक है ना अर्थात् पट रूप कार्यद्रव्यके कारण है परमाणु, परमाणुमे रूप रस आदि गुण होते हैं, तत्पूर्वक कपडेमे भी रूप रस उत्पन्न हुए हैं । इसी प्रकार शब्द भी हम आप लोगोके बाह्य इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य है, कर्ण इन्द्रियसे उसका ज्ञान होता है और गुण माना गया है तो वह भी अकारण गुणपूर्वक नही है, कारण गुणपूर्वक है । शब्दके कारणभूत पदार्थ है स्कध, उसमे जो गुण है सो शब्दमे भी आया, इस हेतुका परमाणु के रूपसे अथवा सुखका व्यभिचार नही दे सकते, क्योकि हेतुमे विशेषण दिया गया है

कि 'बाह्येन्द्रियके द्वारा ग्राह्य होनेपर', परमाणुका बाह्य इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य नही है, इसी कारण परमाणुका भी रूप उत्पन्न होनेके लिए अन्य कारण गुणकी जरूरत नही है। हाँ, दिखने वाले स्कंध पृथ्वी आदिक कार्यद्रव्य इनके रूपको उत्पत्तिके लिए कारण गुणकी आवश्यकता है। इसी प्रकार सुख दुःख आदिक भी बाह्य इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य नही हैं इस कारण सुखके लिए भी यह नही कह सकते कि वह भी कारण गुण पूर्वक होना चाहिए। इसी प्रकार इस हेतुका योगियोंके बाह्येन्द्रिय द्वारा ग्राह्य अणुके रूपसे व्यभिचार नही दे सकते, कारण कि विशेषणमें अस्मदादि शब्द भी पड़ा हुआ है अर्थात् हम लोगोंके बाह्येन्द्रिय द्वारा जो ग्राह्य हो सो अकारण गुणपूर्वक नही है।

शब्दमे स्पर्शवान द्रव्यके गुणत्वका निषेध करनेके लिये दिये गये शंकाकारके तृतीय हेतुकी सदोषता—पर परमाणु ।का रूप हम लोगोंके बाह्येन्द्रियके द्वारा ग्राह्य कहाँ है। इस हेतुका सामान्य आदिकके साथ भी व्यभिचार नहीं बता सकते, क्योंकि हेतुका मुख्य पद है 'गुण होनेसे'। सामान्य विशेष आदिक गुण नही हैं। तो इस प्रकार अकारण गुणपूर्वकत्व सिद्ध नही होता शब्दमें, पर अकारणगुणपूर्वक कहकर पृथ्वी आदिक कार्य द्रव्योंका विशेष गुण नही है, यों कहना अयुक्त है, बल्कि आपका यह हेतु प्रसङ्ग साधन है अर्थात् जिस हेतुको आप सिद्ध करना चाहते हैं कि शब्द पृथ्वी आदिक कार्यद्रव्योंका गुण नही है पर हो जाता है इससे उल्टा सिद्ध याने अकारणपूर्वकत्व आपसे अन्य दिए गए हेतुवोंसे असिद्ध हो जाता है। शंकाकारने शब्दको पृथ्वी आदिक कार्यद्रव्योंका विशेषगुण न सिद्ध करनेके लिए तीसरा हेतु दिया था कि अयावद् द्रव्यभावी है अर्थात् जितना भर द्रव्य है कारणरूपसे सारे द्रव्य शब्द नही होते। शंकाकारकी दृष्टि यह है कि कार्यद्रव्यके जो गुण होते हैं वे कार्य द्रव्योंमें पूरेमें पाये जाते हैं। जैसे घटका रूप पूरेमें मिलेगा, पर शब्द आकाशका गुण है और आकाशमें शब्द नही पाया जाता। यह बात यों समझ है कि आकाश कार्यद्रव्य नही है यदि शब्द कार्यद्रव्योंका गुण होता तो शब्द पूरे कार्यद्रव्यमें पाया जाता। ऐसी युक्ति देकर शंकाकारने शब्दको पृथ्वी आदिक कार्यद्रव्योंके गुणत्वका निराकरण किया। किन्तु शंकाकारका उक्त सुझाव सही नही है, क्योंकि अयावद् द्रव्यभावित्व हेतु विरुद्ध है अर्थात् इस हेतुसे सिद्ध तो करना चाहते हो कि स्पर्शवान पृथ्वी आदिकका कार्य नही है लेकिन इस ही हेतुसे यह सिद्ध हो जाता है कि शब्द स्पर्शवान पृथ्वी आदिक कार्य द्रव्यका गुण है। यहाँ कुछ विशेषता होनेके कारण पृथ्वी न सही, किन्तु उसके समान भाषा वर्गणा जातिके पुद्गल स्कंध सही, उन स्कंधोंका गुण है अर्थात् पर्याय है शब्द। इसको अनुमान प्रयोगमें भी कहते हैं कि शब्द स्पर्शवान द्रव्यका गुण है, क्योंकि शब्द हम लोगोंके बाह्य इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्षभूत होनेपर अयावद् द्रव्यभावी है अर्थात् समस्त द्रव्योंमें नही पाया जाता है। जैसे पटका रूप। कपड़ेका रूप स्पर्शवान द्रव्यका गुण है। किसका गुण है पट रूप ? जिसका है उसको हम स्पर्शन इन्द्रियसे भी जान सकते हैं, ऐसे स्पर्शवान द्रव्यका याने पटका गुण है रूप। ऐसे ही शब्द भी

चूँकि हम लोगोंके बाह्य इन्द्रियसे प्रत्यक्षभूत है और अयावद्द्रव्याभावी है इस कारण वह भी स्पर्शवान द्रव्यका गुण होता है।

शब्दमे स्पर्शवान द्रव्यके गुणत्वका निषेध करनेके लिये दिये गये शकाकारके चतुर्थ हेतुकी सदोषता शकाकारने शब्दको स्पर्शवान पृथ्वी आदिकके गुणत्वका निराकरण करनेके लिए चौथा हेतु दिया था कि हम लोगोंके प्रत्यक्षभूत होने पर भी अन्य पुरुषोंके प्रत्यक्षमे नही आता। जो चीज हम सब लोगोंके प्रत्यक्षमें आ सकती है और वह केवल हमारे ही प्रत्यक्षमे आया जो कुछ, वही दूसरे पुरुषके प्रत्यक्ष में न आये ऐसा होनेसे शब्द पृथ्वी आदिक कार्य द्रव्योका गुण नही है। शकाकारका यह आशय है कि जैसे पृथ्वीका गुण रूप है तो चाहे कोई पासमे खडा हो चाहे कितना ही दूर हो, सबको उस पृथ्वीका रूप प्रत्यक्षमे आ जायगा, लेकिन शब्दके बारेमे इससे कुछ विपरीत बात है। पासमे खडा हुआ पुरुष तो शब्दको प्रत्यक्ष भी सुन लेगा और दूरमे रहने वाले पुरुष उस शब्दको प्रत्यक्ष न कर पायेंगे। तो देखो! यदि शब्द कार्यद्रव्योका गुण होता तो जैसे पृथ्वीके रूपका पास रहने वाले व दूर रहने वाले सभी लोग उसका प्रत्यक्ष कर लेते हैं यो ही शब्दका भी सब लोग प्रत्यक्ष कर लेते हैं। यदि शब्द कार्यद्रव्यका गुण होता तो शङ्काकारका यह कथन अनेकान्तिक दोषसे दूषित है। कार्यद्रव्योके भी गुण होते हैं कि जिस गुणका हमको प्रत्यक्ष हो रहा है उसका प्रत्यक्ष दूसरेको नही होता। एक रूपका तो उलाहना दे दिया कि देखो! रूप पासमे खडा हो उसको भी प्रत्यक्ष हो रहा, दूर खडा हो उसको भी प्रत्यक्ष हो रहा, लेकिन यह न सोचा कि पृथ्वी आदिक कार्य द्रव्योका गुण रस भी तो है। देखो! जिस रसका हम स्वाद ले रहे हैं वह केवल हमारे ही प्रत्यक्षमे तो है, दूसरेके प्रत्यक्षमे तो नही आ रहा, तो यह नियम न बनेगा कि जो जो गुण कार्यद्रव्यमे हो वे गुण सभी पुरुषोको प्रत्यक्ष में आना ही चाहिए। तो इस प्रकार यह हेतु ही जब अनेकान्तिक दोषसे दूषित होगया तो इस हेतुके द्वारा शब्दको स्पर्शवान स्कन्धके गुणत्वका निराकरण, कैसे किया जा सकता है? तो शब्द मूर्तिक है, बन्धनमें आता है, भीटसे भिडता है, कभी पैदा होता, कभी नही पैदा होता, उसमें अल्प महान मद तीव्र भेद हुआ करता है। इन सब बातों से भली भाँति सिद्ध हो जाता है कि शब्द आकाशका गुण नही है, किन्तु किसी मूर्तिक पदार्थका ही गुण है।

शब्दमें स्पर्श व द्रव्यके गुणत्वका निषेध करनेके लिये शङ्काकार द्वारा कहे गये पञ्चम हेतुकी सदोषता—शकाकार कहता है कि शब्द पृथ्वी आदिक कार्य द्रव्योका गुण नही है क्योकि शब्दका आश्रयभूत भेरी आदिक बाजोके स्थानसे भिन्न स्थानोमे शब्दकी प्राप्ति होती है। यदि शब्द कार्यप्रत्यका गुण होता याने भेरी आदिक बाजे पृथ्वी तत्त्व हैं, उनका गुण होता, यदि भेरी आदिकका गुण होता तो शब्द भेरी आदिमे ही पाये जाने चाहियें थे? भेरी आदिसे अन्यत्र शब्दकी प्राप्ति न

होनी चाहिये। जैसे रूप भेरीका गुण है तो रूप भेरीसे अन्यत्र तो नही पाया जाता। शब्द यदि कार्यद्रव्यका गुण होता तो बाजे आदिक पदार्थोंसे भिन्न जगहमें शब्द न पाए जाने चाहिएँ। और, पाये जाते हैं बाहर ही शब्द, इससे सिद्ध है कि शब्द बाजेका, कार्यद्रव्यका गुण नही है, किंतु आकाशका गुण है। इसके समाधानमे कहते हैं कि शब्द आकाशका गुण तो है ही नही, क्योकि शब्द है मूर्तिक, आकाश है अमूर्त, आकाश है नित्य और शब्द है क्षणिक। और, जो यह कहा कि पृथ्वी आदिकके विशेष गुण नही है, भेरी, ढोल आदिक बाजेके ये गुण नही हैं सो ठीक ही है। भेरी आदिक बाजे शब्दके आश्रयभूत नही हैं, किन्तु शब्दके निमित्तकारण हैं। शब्दका आश्रय तो भाषा वर्गणा जातिका पुद्गल स्कध है। उन स्कधोमे ही शब्दोकी उत्पत्ति होती है। शब्दके वास्तविक आश्रय तो वे ही स्कध है, बाजे आदिक जिनका सयोग-वियोग होता है, वे तो निमित्त कारणमात्र है और कार्य निमित्त कारणसे अन्यत्र पाया जाता है। जैसे मिट्टीसे घडा बना तो घडेका आश्रय तो मिट्टी है—कुम्हार, दण्ड चक्र आदिक निमित्त कारण हैं, तब देखो ना ! कुम्हार, दण्ड, चक्र आदिक साधनसे भिन्न स्थानमे घटकी प्राप्ति हो रही है। ऐसे ही शब्दकी बात है। शब्द कार्य है, भाषावर्गणा जातिके पुद्गल स्कन्धोका और उसकी निष्पत्तिके कारण हैं भेरी, दण्ड आदिकका सयोग, तभी तो भेरी दण्डके साधनसे अन्यत्र शब्दकी उत्पत्ति देखी जाती है।

शब्दके आत्मादिक्कालमनोगुणत्वके निषेधका समर्थन -शकाकारने जो यह कहा था कि शब्द आत्माका गुण नही, दिशाका गुण नही, कालका गुण नही, मनका गुण नही, सो ये सब युक्त ही बातें हैं। कौन मानता है—शब्द आत्मा, दिशा काल या मनके गुण हैं ? शब्द वैसे तो गुण ही नही है, किन्तु पर्याय है। इसलिए शब्द किसका गुण है, किसका नही है, ऐसा खोजनेका श्रम ही व्यर्थ है और फिर आत्मा अमूर्त, शब्द मूर्तिक। शब्द आत्माका गुण कैसे हो सकता है ? दिशा केवल कल्पनाकी चीज और शब्द वास्तविक परिणमन ! शब्दकी चोट होती है, शब्द विषय मे आता है, शब्दके आश्रयका ध्रौव्य है, शब्दका स्वयका उत्पादव्यय है। तो शब्द जैसी वस्तुगत परिणति कल्पित दिशाओंकी कैसे बन सकती है ? काल अमूर्त है, उस का परिणमन तो समय आदिक है, शब्द नही हो सकता। मनका परिणमन द्रव्य मन का द्रव्य मनमे है, भावमनके रूपसे जीवका परिणमन जीवमे है। तो शब्द आत्मा आदिकके गुण नही हैं। इस प्रकार जो शकाकारने कहा वह तो सिद्ध साधन है। जिस तरह कहा वह उनके उद्देश्यका समाधान थोडे ही है। इससे शब्द किसी भी द्रव्यका गुण नही है, आकाशका भी गुण नही है, किन्तु भाषावर्गणा जातिके पुद्गल स्कधोका एक द्रव्य परिणमन है।

शब्दकी कार्यद्रव्य परिणमन रूपताका विवेचन—शब्द परिणमन रूप यो है कि यदि शब्द गुण होता तो शाश्वत रहता। द्रव्यकी भाँति गुण भी शाश्वत

हुआ करता है, क्योंकि द्रव्य और गुण पृथकभूत नही हैं, द्रव्य ही सत् है और उस द्रव्यको जब हम कुछ विशेषताओसे समझना चाहते है तो द्रव्यके अन्तः ही हम गुणको समझते हैं। अर्थात् द्रव्यको ही समझनेके लिए हम द्रव्योका जब भेद करते हैं, कुछ विशेषताओमे समझते है तो उन विशेषताओका नाम गुण है । सो जैसे द्रव्य ध्रुव है इसी प्रकार गुण भी ध्रुव है। तो यो शब्द गुण नही है। शब्द पर्याय है। जैसे कि काले पीले नीले आदि रूप, ये रूप गुण नही हैं किन्तु पर्याय हैं। इन रूप पर्यायोका जो आश्रयभूत शक्ति है उसका नाम रूप गुण है, सो शब्दोमे शब्दरूप पर्यायोका आश्रय भूत कोइ एसी शाश्वत शक्ति नही हैं जिसे शब्दका आश्रयभूत गुण मान लिया जाय। किन्तु यह पर्याय है पदार्थोंके सयोग विभागोके कारण शब्द वर्गणाओसे शब्दकी उत्पत्ति होती है। तो जब शब्द आकाशका गुण नही रहा तो यो कहना कि शब्द लिङ्गकी अविशेषता होनेसे अर्थात् कोई भेद न होनेसे आकाश एक है ऐसा कहना इस तरहके उन्मत्तकी तरह है अथवा अज्ञानीकी तरह है कि जो बन्ध्याके पुत्रके सौभाग्यका, विशेषताओका वर्णन करने चले। अरे जब बन्ध्याका कोई, पुत्र ही नही है तो उसके बारेमे उसकी विशेषताओका वर्णन करना तो बाधित है। यो ही जब शब्द आकाशका लिङ्ग नही, गुण नही, तो शब्दलिङ्गकी बात कहकर आकाशको एक सिद्ध करना यह बिल्कुल अयुक्त बात है। शब्द तो कार्य द्रव्य है। कार्य द्रव्यमे व्यापित्व आदिक धर्म सम्भव नही होते। कालापेक्षया भी कार्य द्रव्य व्यापक नही होते, और किसी एक अमूर्तका कोई शब्द गुण माना जाय तो स्वय ही कर रहे शकाकार कि शब्द आकाशमे सर्वत्र व्यापक नही है। यो शब्द आकाशका गुण नही है और इस कारण शब्दलिङ्ग वाले नित्य निरश निवयव आकाश द्रव्यकी सिद्धि नही होती सामान्य विशेषात्मक पदार्थ प्रमाणका विषय है इसके विरोधमे जो एकान्तरूप द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय नामक ६ पदार्थोंकी व्यवस्था विशेषवादमे बताई गई है, वह व्यवस्था युक्त नही होती। मूलमे पदार्थको सामान्य विशेषात्मक स्वीकार करके फिर आगे जातियो व्यक्तियोकी खोजमे चलें तो वह युक्तिसगत खोज बन सकेगी। फिर विदित होगा कि शब्द आकाशका विशेष गुण न रहा, कार्यद्रव्यका विशेष गुण सिद्ध हुआ।

शब्द शब्दान्तरोके समवायी असमवायी कारणका शकाकार द्वारा समर्थन अब शकाकार बहुत बडी विवेचनामे अनुमानपूर्वक यह सिद्धान्त रख रहा है कि स्वर्गमें, पृथ्वीमें, पातालमे आकाशमे जितने भी शब्द हैं वे सब शब्द श्रूयमाण शब्दके साथ एकार्थ समवायी हैं, क्योंकि शब्द होनेसे। जैसे कि श्रूयमाण प्रथम शब्द। इस अनुमानमें यह भाव है कि वक्ताके प्रथम व्यापारमे जो शब्द उत्पन्न होते हैं उन शब्दोका समवायी कारण है आकाश। वह शब्द आकाशमें समवेत है और उन शब्दो से वीचीतरङ्ग न्यायमे जो अन्य-अन्य शब्द उत्पन्न होते रहते हैं वे सब शब्द भी आकाशमें समवेत हैं उनका भी समवायी कारण आकाश है। तो ये सारे शब्द भी उस ही एक अर्थमें समवेत हैं क्योंकि शब्द होनेसे। जैसे कि घडेमे रूप समवेत है और

रस भी है, तो यह कहा जायगा कि रसरूपके साथ एक अर्थमें स
इसी प्रकार यहाँ भी समझें कि श्रूयमाण सारे शब्द जा असमवायी कार
उत्पन्न हुए हैं वे सारे शब्द प्रथम शब्दके साथ एक अर्थमें समवायी हैं। स
भी बात है कि श्रूयमाण शब्द समान जातीय असमवायी कारण वाला है,
सामान्य विशेषवान होनेपर नियमसे हम लोगोंके बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा
होता है जैसे कि कार्यद्रव्यके रूपादिक। कार्यद्रव्य हुए जैसे घट पट। ग
जाने वाला रूप रस आदिक समान जातीय असमवाय कारण वाला है ना,
सब कार्य द्रव्य कारणसे उत्पन्न हुए हैं। कारण भी रूपवान हैं, सो उनमें
रूपकी उत्पत्ति हुई। अब यहाँ यह देखो कि घटमें रहने वाला रूप घटमें
रसके साथ समवेत है और साथ ही वह घट जिन समवायी कारणोंसे निष्पन्न
उसके रूप भी उसीसे निष्पन्न हुए हैं और रस आदिक भी उसीसे निष्पन्न हु
इसी तरह शब्दका समवायी कारण आकाश है और सब शब्दोंका असमवायी
जिन शब्दोंसे वे शब्द उत्पन्न हुए हैं वे प्रथम शब्द है। यों यह सिद्धान्त ब
जाता है कि शब्द आकाशके गुण हैं, आकाश शब्दोंका समवायी कारण है अ
जो शब्द उत्पन्न हुआ है उसका असमवायी कारण है तालु आदिकसे उत्पन्न
और आकाशका संयोग। निमित्त कारण हैं तालु आदिक। फिर उन शब्दों
तरङ्ग न्यायसे जो अन्य शब्द उत्पन्न हुए हैं उनका समवायी कारण तो एक
जैसे—प्रथम शब्दका समवायी कारण आकाश है तो इस शब्दान्तरका भी
कारण आकाश है, किंतु असमवायी कारण शब्दान्तरोंका शब्द है प्रथम,
शब्दान्तरोंकी उत्पत्ति हुई है, इससे शब्दकी व्यवस्था बनती है और आकाश
सिद्ध होता है।

शब्दके समवायीकारणकी मीमांसा—उक्त शङ्काके समाधानमें
कि समवायीकारण शब्दोंका है तो सही किन्तु मूर्तिक शब्दोंका समवायीकारण
नहीं हो सकता। प्रति शब्द पृथक् पृथक समवायी कारण आकाश शब्दवर्गणा
पुद्गल स्कन्ध हैं इनसे शब्द उत्पन्न हुआ है अर्थात् प्रत्येक शब्दोंके उपादान
आश्रयभूत कारण शब्द वर्गणायें हैं और उन शब्द वर्गणाओं से शब्दको उत्पत्ति
और, ये अनेक हैं सावयव हैं अब रही असमवायी कारणकी बात सो शब्दके
त्वका जब निषेध कर दिया गया तो फिर वहाँ असमवायी कारण कोई
सकता है? जब उनका निमित्त कारण वगैरह खोजा जाय अथवा जब शब्दको
मान लिया सर्वथा तब भी उनके असमवायी कारण निमित्त कारण आदिक
सकते। कथंचित् नित्यानित्यात्मक माननेपर कारणोंकी व्यावस्था बनती है
द्रव्यदृष्टिसे नित्य है अर्थात् शब्दोंका आश्रयभूत जो शब्दवर्गणा जातिके पुद्गल
हैं वे नित्य हैं और संयोग विभागपूर्वक निमित्त कारणके सन्निधानपूर्वक जो
निष्पत्ति हुई है वे शब्द पर्यायें क्षणिक हैं। उत्पन्न हुईं, नष्ट हुईं। तो उन

निमित्त कारण तो संयोग विभाग है पृथ्वी आदिकका, और समवायी कारण अथवा उपादान कारण हैं वे स्वय वर्गणायें जिनका कि द्रव्य परिणमन शब्द बन गया है। तो यो शब्दका असमवायी कारण प्रथम शब्दोको कहना और शब्दोका असमवायी कारण आकाशको कहना युक्तिमे नही उतरता है और मोटे रूपसे यह भी परख सकते हैं कि शब्दका समवायीकारण यदि निरवयव आकाश होता जैसे कि शकाकारने माना है कि आकाश नित्य है, सर्वगत है, निरश है, तो शब्द भी नित्य बन बैठता। सर्वव्यापी बनता, निरश बनता क्योंकि वह आकाशका गुण है। जो गुण जिस द्रव्यका होता है वह गुण उस द्रव्यमें पाये जाने वाली विशेषताकी समता रखता है। जैसे— आकाशका गुण महत्त्व है तो वह आकाशके साथ ही है, नित्य निरश सर्वगत है यो ही शब्द आकाशका गुण होता तो वह नित्य निरश सर्वव्यापक रहता। इससे शब्दका समवायी कारण आकाश नही है किन्तु भाषावर्गणा जातिका पुद्गल स्कध है।

शब्दसे आकाशगुणत्व एकदेशवृत्तित्व व क्षणिकत्वके प्रतिषेध विना आकाशके सावयवत्वका प्रसग – शकाकारने शब्दको क्षणिक, आकाशके एक देशमे वृत्ति वाला, आकाशका विशेष गुण माना है, लेकिन ये तीनो ही बातें प्रमाणसे प्रति सिद्ध हो जाती हैं। शब्द तो क्षणिक नही है, इस विषयमे बहुत विस्तारसे वर्णन कर ही दिया गया। शब्द आकाशके एक देशमे वृत्ति वाला नही है, जब शब्द आकाशका गुण नहीं, परिणमन नही कोई सम्बन्ध ही नही तो आकाशके एक देशमे रहता है ऐसी वृत्ति होनेका काम ही क्या है? आकाश अमूर्त है, शब्द मूर्तिक है अतः शब्द आकाश के गुण हो ही नही सकते। तो शब्दमे क्षणिकपनेका आकाशके एक देश वृत्ति पनेका और आकाशके विशेष गुणत्वका प्रमाणबलसे निषेध कर दिया गया है। यदि न बातो को निषिद्ध नही मानते, शब्दको क्षणिक आकाशके एक देशमे रहने वाला तथा आकाशका विशेष गुण मानोगे ही तब तो शब्दका आधार जो आकाश है वैशेषिक सिद्धान्त मे वह आकाश निरवयव न रह सकेगा जब शब्द, कभी हुआ कभी न हुआ तो आकाश मे अवयव सिद्ध हो गया ना। जब आकाशके एक देशमे शब्द रहते हैं तो आकाशके एक जगह रहा आकाशके दूसरी जगह न रहा तो इससे शब्दका आधारभूत आकाश निरवयव कैसे रह सकेगा? आकाशके अनन्त अवयव हैं और उनमेसे किन्ही अवयवोमे कभी शब्द रहते हैं कभी शब्द नही भी रहते हैं, यो आकाश सावयव सिद्ध होगा। शब्दको आकाशका विशेषगुण माना जाय तो कही शब्दकी निवृत्ति है, कहीं नही है। कहीं तीव्र शब्द है, कही मद शब्द है, आदिक शब्दोकी विभिन्नता होनेके कारण शब्दके आधारभूत आकाशमे सावयवपना आ जायगा। यदि आकाश निरवयव होता तो आकाशके एक देशमे ही शब्द रहे सब जगह न रहे, यह भेदविभाग नही बन सकता। इससे आकाश सावयव सिद्ध हो जाता है।

आकाशके सावयवत्वकी सिद्धि—और भी सुनो! आकाश तो सावयव

ही है, प्रमाणसे समझिये ! इसका अनुमान प्रयोग है। आकाश सावयव है क्योंकि हिमवान व पर्वत विन्ध्याचल पर्वतसे रुका हुआ विभिन्न देशवाला होनेसे पृथ्वीकी तरह। जैसे हिमवान भिन्न देशकी पृष्ठीमें है और विन्ध्याचल भिन्न देशमें है तो पृथ्वी सावयवी हो गई ना ! पृथ्वीके एक हिस्सेमे हिमवान है दूसरे हिस्सेमें विन्ध्याचल है, इसी प्रकार आकाशकी भी यही बात है। आकाशका एक देश हिमवान पर्वतसे रुका है और आकाशका दूसरा क्षेत्र विन्ध्याचल पर्वतसे रुका है। इससे सिद्ध होता है कि आकाश सावयव है। यदि आकाश सावयव न माना जाय तो रूप रसकी तरह हिमवान विन्ध्याचल सारी ही चीजें एक देशमें एकत्र आकाशमे ही पायी जाय यह प्रसङ्ग आता है और तब फिर हिमवान और विन्ध्याचल एक ही जगह उपस्थित हो जाने चाहियें, सहचर बन जाने चाहियें। जैसे कि रूप और रस एक आधारमें समवेत हैं, उनका आधारभूत पदार्थ एक है, तो जहाँ ही रूप है वहाँ ही रस है ना ! भिन्न-भिन्न क्षेत्रमें तो है नही, किसी एक फलमें जहाँ हो रूप है वहाँ ही रस है, भिन्न-भिन्न स्थान मे नही है। इसी प्रकार यदि आकाश ही एक माना जाय, निरवयव, निरंश माना जाय तो एक ही स्थानमे सर्व पदार्थोंका अवस्थान होना चाहिए और सारे पदार्थ एक ही जगह मिलने चाहिए। पर ऐसा तो देखा नही गया और न ऐसा किसीको इष्ट भी है, न ख्याल भी है कि ऐसा कभी हो भी सकता है ! इससे आकाश सावयव ही है। हाँ यह बात आकाशकी अलौकिक है कि सावयव होकर भी आकाश एक पदार्थ है। आकाशमे जो कुछ भी परिणमन होता है आगमगम्य, अगुरुलघु षड्गुण हानिवृद्धिरूप वह सर्व अवयवोमे ही एक साथ होता है। अतः आकाश अखण्ड है किन्तु व्यापक होने से उसमे अवयव है, प्रदेश है और यों आकाश अनन्त प्रदेशी है।

आश्रयके विनाशसे शब्दविनाश माननेके विकल्पका निराकरण— और भी इसपर विचार करिये ! यदि आकाश निरवयव नित्य हो और उसका गुण शब्द हो तो शब्द तो हुआ आधेय, आकाश हुआ आधार तो यह बतलावो कि आकाश का आधेय जो शब्द है उसका विनाश कैसे होगा ? विनाश होनेके कारणमें आप तीन ही कल्पनायें उठा सकते हैं—एक तो यह कि आश्रयके विनाशसे आश्रेय शब्दका विनाश हो जाता है। दूसरा यह है कि विरोधी गुणके सद्भावसे तो उनका विनाश होजायगा तीसरा यह कि शब्दोपलब्धि कराने वाले अदृष्टके अभावसे शब्दका विनाश हो जायगा। सो प्रथम कल्पना तो युक्त है नही, अर्थात् आश्रयके विनाशसे शब्दका विनाश घटित हो जाय यह बात सम्भव नही, क्योंकि आकाश नित्य है और नित्य आकाशका कभी विनाश नहीं, तो फिर शब्दका विनाश कैसे हो सकेगा ?

विरोधी गुणके सद्भावसे शब्दविनाश माननेके विकल्पका निराकरण— यदि कहो कि विरोधी गुणके सद्भावसे शब्दका विनाश हो जायगा अर्थात् शब्दका आधार है आकाश, आकाशमें शब्दका विरोधी गुण है कोई जिसके होनेसे

शब्दका विनाश हो जाता है। तो यह बात कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि आकाशमें अन्य गुण क्या है? जैसे महत्त्व। आकाश महान है। तो महत्त्वादिका शब्दके साथ एकार्थ समवाय है जिस समवायी कारणमे महत्व माना उस में शब्द माना है तो एकार्थ समवे में जो गुण होते हैं उनमे परस्पर विरोध नही होता, जैसे पृथिवीमे रूप रस गध एकार्थ समवाय समवेत है। रूपका जो समवायी कारण है, वही रसका समवायी कारण है। तो एक समवायी कारणमें रूप, रस, गध, शब्द सब समवेत हैं पर इनका विरोध हुआ क्या? रूपके रहनेसे रस नष्ट हो जाय, रसके होनेसे रूप नष्ट हो जाय, क्या ऐसा कभी विरोध देखा गया है? तो जैसे पृथ्वी आदिक कार्यद्रव्यमे एकार्थ समवेत होनेके नाते रूप रसका कभी विरोध नही होता, इसी प्रकार यदि शब्दको आकाशका गुण मानते हो तो आकाशमे जितनेभी गुण समवेत हुये उनमेसे किसी भी गुणके द्वारा शब्दका विनाश नही किया जा सकता। और, यदि मान लोगे कि महत्त्वादिक गुण शब्दके विरुद्ध हैं और महत्त्वादिक गुण आनेसे शब्दका विनाश होजाता है तब तो आकाशमे महत्त्वादिक शाश्वत हैं ना, फिर तो कभी भी शब्दकी निष्पत्ति न हो। शब्दके सुननेके समयमे भी शब्दका अभाव मान लेना पड़ेगा, क्योंकि अब तो यह मान लिया कि एकार्थ समवेत गुण परस्पर एक दूसरेके विरोधी भी हो जाते हैं। तब तो आकाशमे महत्त्व सदा है शब्दका विरोधी शब्दका विनाशक जब महत्व सदा रहता तो इसका निष्कर्ष यह निकला कि फिर शब्दका कभी सद्भाव भी नही बन सकता। सुननेके समयमें भी शब्दके अभावका प्रसङ्ग आ जायगा। यदि कहो कि महत्त्व यदि शब्दका विरोधी गुण नही है, किंतु सयोग आदिक शब्दके विरोधी गुण हैं तो यह बात भी युक्त नही है। सयोग आदिक तो शब्दके कारण माने गये हैं, वे विरोधी कैसे हो जायेंगे? कहा भी है विशेषवादमे कि सयोग आदिक शब्दके कारण होते हैं। तो जो शब्दका कारण है वह शब्दका विनाशक कैसे हो जायगा? यदि कहो कि आकाशमे सस्कार नामका गुण है, जिसके कारण शब्दका विनाश हो जाता है। सस्कार शब्दका विरोधी गुण है तो यह भी बात बेतुकी है। आकाशमे सस्कार सम्भव ही नही है, और मान लो कि आकाशमें सस्कार सम्भव है तो यह बतलायो कि यह सस्कार आकाशमे अभिन्न रूपसे रहता है या भिन्न रूपसे? यदि कहो कि वह सस्कार आकाश से अभिन्न है तो सस्कार नष्ट हुआ तो शब्द नष्ट हो गया, सस्कार न रहा तो शब्द चलता रहे। सस्कार कभी रहा कभी न रहा, तो शब्द चलता रहे। सस्कार कभी रहा कभी न रहा, यह स्थिति तो माननी ही पड़ेगी, और सस्कारको मान लिया आकाशसे अभिन्न तो इसका निष्कर्ष यह निकला कि सस्कारका अभाव होनेपर आकाशका भी अभाव बन बैठा, क्योंकि सस्कार आकाशसे अभिन्न मान लिया है। यदि कहो कि वह सस्कार जो शब्दका विनाशक है आकाशमे भिन्न है तो जब सस्कार और आकाश ये जुदे-जुदे हो गए फिर यह सस्कार आकाशका है यह सम्बन्ध नही बन सकता। तो इस तरह सस्कार भी शब्दके विनाशका कारण नही बना।

शब्दोपलब्धिप्रापक अदृष्टके अभावसे शब्द विनाश होना माननेके विकल्पका निराकरण—यदि कहो कि शब्दकी उपलब्धिको प्राप्त कराने वाला अदृष्ट हुआ करता है, उस अदृष्टका अभाव होनेसे शब्दका भी अभाव हो जाता है तो यह भी बात समीचीन नही है, क्योंकि विशेषवादमे अभावको तुच्छाभाव माना है। अभाव किसी अन्य वस्तुके सद्भावरूप नहीं माना है, तो अदृष्टका अभाव क्या हुआ ? तुच्छाभाव। उस अभावके एवजमे कुछ है सो बाक नही मानी गयी है। तो तुच्छाभावमे किसीको विनष्ट करनेका सामर्थ्य नहीं है। जब उसका सत्त्व ही नही तब वह तुच्छाभाव किसीको नष्ट कर का कारण कैसे बन जायगा ? तो तुच्छाभावका सामर्थ्य न होनेसे वह शब्दके विनाशका कारण नही बन सकता यदि तुच्छाभाव किसीके विनाशके कारण बनने लगे तो गधेके सींग भी किसीके विनाशका कारण बन जाय आकाशका क्या समस्तजगतके ही विनाशका कारण बन जाय। तो यह भी नही कह सकते कि शब्दको उपलब्धि प्राप्त कराने वाले अदृष्टका अभाव होनेसे शब्दका विनाश होजाया करता है।

शब्दके आकाशगुणत्वकी असिद्धि एवं सामान्य विशेषात्मक प्रमेयकी सिद्धि—इस तरह प्रमाण कसौटीपर कसनेसे यह बात जरा भी सिद्ध नही हो सकती कि शब्द आकाशसे उत्पन्न होता है। तब फिर प्रमाणका विषय सामान्य विशेषात्मक पदार्थ है, इसका निराकरण करनेके लिये जो एकान्त वर्मस्तसे द्रव्य गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय ऐसी छे पदार्थोंकी व्यवस्था बनायी गयी है वह तथ्यभूत नही है। देखो ! द्रव्यके ९ भेदोंमे पृथ्वी, जल अग्नि, वायु ये चार जातियाँ तो सिद्ध हो नही सकी। अब यहाँ आकाश तत्त्वकी सिद्धि करनेका शंकाकारका प्रयास चल रहा है। तो शब्द लिङ्ग नित्य निरश आकाशकी भी सिद्धि नही हो सकी। आकाश नामक पदार्थ तो है स्वतंत्र, पर वह निरवयव हो, और शब्द गुण वाला हो सो ऐसी बात आकाशमे नही है। तो आकाश पदार्थका सत्त्व सिद्ध न हो सका।

शब्दको पौद्गलिक माननेमे शंकाकारकी आपत्ति व उसका समाधान—शंकाकार कहता है कि तुम शब्दको पौद्गलिक सिद्ध करने जा रहे हो, पर यह पौद्गलिक शब्द तो उस शब्दके आधारभूत, कारणभूत, पदार्थका रूप भी तो दिखना चाहिये था। अतः शब्दसे पौद्गलिक होने पर हम लोगोके द्वारा अनुपलभ्यमान रूपादिका आश्रयपना नही हो सकता है अर्थात् शब्द रूपी पदार्थके आश्रय रहने वाला सिद्ध नही हो सकता। जैसे घट पट आदिक पदार्थ ये पौद्गलिक हैं पर इनका स्पर्श, इनका रूप यह सब कुछ हम लोगोके द्वारा उपलभ्यमान है। तो पौद्गलिक शब्द नही मालूम होता है। कारण यह है कि शब्द यदि पौद्गलिक होता तो उसका हमे रूप भी दिखना चाहिये था। समाधानमें कहते हैं कि यह बात समीचीन नहीं है, क्योंकि तुम्हारे हेतुका द्व्यणुक आदिक कर्यद्रव्योंके साथ व्यभिचार आता है अर्थात् जैसे द्व्यणुक स्कधका रूप किसीने देखा तो नही, पर न दिखनेपर क्या वह रूपवान न कहलायेगा ? तो ऐसे

ही शब्दवर्गणा जातिके पुद्गलसे उत्पन्न हुये शब्द कर्णसे तो ज्ञात हो गए, पर वे इतनी सूक्ष्म वर्गणायें है अथवा इस जातिकी हैं कि उनमे रहने वाले रूपका हमें बोध न हो सका, रूपकी उपलब्धि हम लोगोको न हो सकी। ऐसे कितने ही पदार्थ हैं कि जिनके अन्य गुण तो प्रत्यक्ष होते हैं और कुछ गुण प्रत्यक्ष नही होते। जैसे वैशेषिक सिद्धातमें नेत्रकी किरण मानी गई है और गर्म जलमे अग्नि तत्त्व माना गया है। मगर तैजसका अग्नि तत्वका स्वरूप तो भासुररूप है। सो देखो! न तो नेत्रकी किरणोमे भासुररूप ज्ञात होता है और न गर्म जलमे भासुररूप ज्ञात होता है। तो भासुर रूपके न होनेपर भी उसमे स्पर्श आदिक अनेक गुण माने हैं। तो इसी तरह शब्दका आश्रयभूत जो द्रव्य है उसमे हम लोगोको यद्यपि रूप आदिक अनुपलम्यमान हैं तो रहो, फिर भी शब्दोके आधारभूत उन कार्य द्रव्योमे रूपादिकके रहनेका विरोध नही है। जैसे घ्राण इन्द्रियके द्वारा गध द्रव्यकी उपलब्धि होती है, पर उसमे अनुभूत रूपादिक भी तो हैं और नेत्रकी किरणोमे गर्म जलमे गध द्रव्यमे रूपादिक उद्भूत नही हो रहे हैं। लेकिन वे तैजस हैं, पार्थिव हैं इससे रूपके अस्तित्वकी सम्भावना बराबर है। इसलिये इनमे रूप है और इसी तरह शब्दमे भी रूप है। अतः शब्द पौद्गलिक है।

शब्दके पौद्गलिकत्त्वकी सिद्धि—शब्द आकाशका गुण नही है, किन्तु भाषा वर्गणा जातिके पुद्गल स्कधोका द्रव्य पर्याय होनेसे पौद्गलिक है। अब शब्दकी पौद्गलिकता सिद्ध कर रहे हैं। शब्द पौद्गलिक है, क्योकि हम लोगोके द्वारा प्रत्यक्ष होनेपर और अचेतन होनेपर क्रियावान है। जो जो पदार्थ हम लोगोके द्वारा प्रत्यक्ष हो रहे हैं, अचेतन हैं और क्रियावान हैं, वे सब पौद्गलिक ही हैं। जैसे बाण आदिक। बाण हम लोगोको प्रत्यक्ष होता है। अचेतन भी है और क्रियावान भी है। तो जो इस साधनसे युक्त हैं वे सब पौद्गलिक होते हैं। इसमें हेतु दिया गया है हम लोगोके द्वारा प्रत्यक्ष और अचेतन होकर क्रियावान होनेसे। इस हेतुमे मनके साथ व्यभिचार नही दे सकते। कोई यो कहे कि मन क्रियावान भी है और अचेतन भी माना गया है पर पौद्गलिक नही कहा गया। अथवा जो मन अचेतन भी न हो, भावमन जैसे वह क्रियावान तो है मगर पौद्गलिक नही है, यो व्यभिचार नही दिया जा सकता, क्योकि हेतु केवल इतना नही है "क्रियावत्व होनेसे" उसके साथ विशेषण लगा है हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्ष होनेपर और अचेतन होनेपर जो क्रियावान हो। तो हम लोगोके द्वारा प्रत्यक्षभूत है नही इस कारण इस हेतुका मनके साथ भी व्यभिचार दोष नही आता। कोई कहे कि इस हेतुका आत्माके साथ व्यभिचार हो जायगा हम लोगोके द्वारा प्रत्यक्षभूत भी है आत्मा, क्योकि आत्मा स्वयं स्वरूप होनेसे जैसे सुख दुःखका सम्वेदन होता है ऐसे ही स्वसम्वेदन प्रत्यक्षसे आत्मा जाना जाता है तो हम लोगोके द्वारा प्रत्यक्ष है, और क्रियावान भी है, परिणतियाँ करता है, देशसे देशान्तर जाता है लेकिन वह तो पौद्गलिक नही है, ऐसा आत्माके साथ भी व्यभिचार दोप नही दे सकते, क्योकि हेतु में दूसरा विशेषण पड़ा हुआ है अचेतन होनेपर। आत्मा अचेतन है नही, इससे इसमे

साधन नही लगता। यह विपक्षमें ही है। कोई कहते कि सामान्यके साथ इस हेतुका व्यभिचार हो जायगा। देखो! सामान्य कुछ लोगोके द्वारा प्रत्यक्षभूत भी है एक समान अनेक पदार्थोंमें जो सदृशताका बोध होता है वह सामान्य धर्मके कारण ही तो होता है। तब है प्रत्यक्ष और अचेतन है पर पौद्गलिक तो नही माना गया। समाधानमें कहते हैं कि सामान्यके साथ हेतु इस कारण व्यभिचरित नही है कि सामान्य क्रियावान नही है. हेतुमें तीन बातें कही गई हैं। हम लोगोके द्वारा प्रत्यक्षभूत हो, अचेतन हो और क्रियावान हो, ये तीन बातें जिस पदार्थमें पायी जायें वह पदार्थ नियम से पौद्गलिक ही होता है।

हेतुवोसे शब्दके आकाश लिङ्गत्वकी असिद्धि होनेसे शब्दलिङ्गत्वके कारण आकाश द्रव्यकी सिद्धिकी अनुपपत्ति – वैशेषिक सिद्धान्तवादी, जो भी लोग जितने ही हेतु देते हैं शब्दको द्रव्य न सिद्ध करनेके लिए, शब्दको आकाशका गुण सिद्ध करनेके लिए जो जो भी हेतु दिये गए हैं जैसे कि हम लोगोके द्वारा प्रत्यक्षभूत होकर अचेतन होनेसे इत्यादिक वे सब हेतु आकाश गुणत्वको सिद्ध नही करते, किन्तु किसी कार्यद्रव्यके गुणको सिद्ध करते हैं आकाश गुणत्वके निराकरणमें आकाश गुणके निषेधके लिए भी जो हेतु दिये गये हैं वे हेतु शब्द आकाशका गुण नही है यह भी सिद्ध करते हैं और वह पौद्गलिक है यह भी सिद्ध करते हैं। तो शब्द जब आकाशका गुण सिद्ध न हुआ तब आकाशको शब्द लिङ्ग कहना और शब्दलिङ्गसे ही साधनसे आकाशकी सिद्धि करना यह बात अयुक्त हो गई। शब्द आकाशका गुण नही है, शब्द गुण वाला आकाश नही है, किन्तु आकाश अनन्त प्रदेशी अवयव अमूर्त एक स्वतन्त्र द्रव्य है, किन्तु विशेषवादमें तो इस प्रकार आकाशका स्वरूप नही माना अतएव आकाश द्रव्य जिस स्वरूपसे माना है वह असिद्ध होनेसे आकाश तत्त्वकी सिद्धि नही होती।

अवगाहनहेतुत्वरूप असाधारण गुणसे आकाश द्रव्यकी सिद्धि— अब शंकाकार कहता है कि आकाश पदार्थकी सिद्धि शब्दलिंगके नातेसे नही होती तब फिर कैसे सिद्धि होती है? कैसे जाना जाय कि आकाश नामका पदार्थ कोई वस्तु भूत सत् है? समाधानमें कहते हैं कि आकाशकी सिद्धि इस हेतुसे होगी—आकाश द्रव्य है, क्योंकि वह एक साथ समस्त द्रव्योंके अवगाह करनेका काय करता है, जितना जो कुछ एक साथ समस्त द्रव्योका अवगाहका काम है वह किसी एक साधारण कारण की अपेक्षा रखकर होता है। कारणकी अपेक्षा रखे बिना समस्त द्रव्योका अवगाह हो यह युक्तिमें आ ही नही सकता एक साथ समस्त द्रव्योंका अवगाह साधारण कारणके बिना हो ही नही सकता। तो चूकि समस्त पदार्थोंका एक साथ अवगाह देखा जारहा है इससे सिद्ध होता है कि इस प्रकारके अवगाहका कारणभूत कोई साधारण कारण अवश्य है और समस्त द्रव्योके अवगाहका जो भी साधारण कारण है वह है आकाश।

तो आकाशका लक्षण है अवगाह न कि शब्द। शकाकार कहता है कि अवगाहका कारण आकाश कैसे सिद्ध हो सकता है ? देखो ! घीका शहदमे अवगाह होता है। शहदमें जितनी मात्रा हो उससे बढेगा नही और उसमें घीका प्रवेश हो जायगा। तो देखो ! मधुमे घीका अवगाह होता है और राखमे जलका अवगाह होता है। किसी बर्तनमे राख पड़ी हुई है और उसीमे बहुतसा पानी आ जाता है, तो राखमे जलका अवगाह हो गया। पानीमे घोडा आदिकका अवगाह हो जाता है। तालाबमे घोडे, भैस वगैरह नहानेके लिये भेज दिये जाते और वे तालाबमे निमग्न हो जाते हैं। तो देखो ! पानीमे अश्व आदिकका अवगाह हो गया। इसी प्रकार समझ लीजिये प्रकाश और अन्धकारमे समस्त पदार्थोंका अवगाह है। इस कारणसे आकाश पदार्थकी सिद्धि नही है। देखो ! सारे ही पदार्थ या तो प्रकाशमे पडे है या अधकार मे पडे हैं। तो आकाशमे अवगाह नही है इन सबका। प्रकाशमें और अधकारमे अवगाह है। आकाश नामका कोई पदार्थ नही है। समाधानमे कहते हैं कि यह बात यो युक्त नही है कि प्रकाश और अधकारका भी आकाशके अभावमे अवगाह नही बन सकता। बताओ ! प्रकाशका कहाँ अवगाह है ? और अधकारका भी किसमें अवगाह है ? यदि आकाश न होता तो प्रकाश भी ठहर नही सकता था, न अधकार भी ठहर सकता था। और भी जितने दृष्टात दिये हैं—जैसे मधुमे घीका ठहरना, जलमे अश्व आदिकका ठहरना, राखमे जलका ठहरना, जलमे अश्व आदिकका ठहरना, ये सारेके सार आकाशमे ही तो अवगाहित हैं। मधु कहाँ पडा है ? उसी आकाशमे ! राख कहाँ पड़ी है ? आकाश मे ! जल कहाँ है ? आकाशमे ! इसमे दूसरे पदार्थोंका भी प्रकाश है तो वे भी सब कहाँ हैं ? आकाशमे ! तो आकाशका अभाव होनेपर इन सबका भी अवगाह नही बन सकता।

आकाशके स्वावगाहित्वकी सिद्धि एव अन्य पदार्थोंके आकाशमे अवगाहकी सिद्धि—शकाकार कहता है कि समस्त पदार्थोंका जैसे आकाशमे अवगाह बताया है इसी प्रकार आकाशका भी तो किसी अन्य आधारमे अवगाह होना चाहिये। यदि सब पदार्थ आकाशमे रहें तो आकाश किसमे रहता है सो बताओ ? आकाशका भी कोई आधार होना चाहिये। और, आकाशका जो कुछ भी आधार मानोगे कि इसमे रहता है आकाश तो वह भी कहाँ रहता है ? उसका भी अधिकरण कोई दूसरा होना चाहिए ! इस तरहसे अनवस्था दोष आता है। कही भी बात खतम नही हो सकती, फिर वह कहाँ रहता है ? जो कुछ भी बताओगे, फिर वह कहाँ रहता है ? यदि कहो कि आकाश अपने स्वरूपमे रहता है। सब पदार्थोंका अवगाह तो आकाशमें है और आकाशका अवगाह अपने स्वरूपमे है। तो ऐसा माननेपर फिर तो सीधा ही मान लो कि समस्त पदार्थोंका अवगाह अपने-अपने स्वरूपमे है। आकाश माननेकी आवश्यकता ही क्या रही ? और, जब यह प्रसङ्ग आ गया कि सर्व पदार्थ अपने आप के स्वरूपमे हैं, आकाश माननेकी आवश्यकता ही क्या रही ? और जब यह प्रसङ्ग

आ गया कि सर्व पदार्थ अहने आपके स्वरूपमें ही अवस्थित हैं, तब फिर आकाशकी सिद्धि कहांसे हो सकती है ? समाधानमें कहते हैं कि यह बात कहना अयुक्त है क्योंकि आकाश तो है सर्वव्यापक, परिपूर्ण व्यापक। अतः आकाशके व्यापी होनेके कारण आकाशका तो अपनेमें अवगाह होता है और ऐसा मान लेनेपर अनवस्था दोष भी नहीं आ सकता। समस्त पदार्थ आकाशमें अवस्थित हैं और आकाश चूंकि व्यापी है, इस कारण अपने आपमें ही अवस्थित है। इससे अनवस्था दोषकी गुञ्जाइश ही नहीं है, पर अन्य जो द्रव्य हैं आकाशको छोड़कर शेष द्रव्य हैं अव्यापी, थोड़े-थोड़े देशमें रहने वाले, उनकी सीमा है। जैसे चौकी है तो तीन फिटकी या १॥ फिटकी है, ऐसे ही जितने भी पदार्थ हैं वे सब अव्यापी हैं, सबकी सीमा है। तो शेष पदार्थ अव्यापी होनेके कारण अपने आपमें अवगाही नहीं हो सकते अर्थात् यह उत्तर ठीक नहीं बैठता कि जैसे आकाश अपनेमें अपना अवगाह बनाये हुए है ऐसे ही सारे पदार्थ अपनेमें अपना अवगाह बनाये हुए हैं। अल्प परिमाण वाली वस्तु अपने आपके आधारमें रहती हुई नहीं देखी गई है। जैसे कि देखो ना ! घोड़ेका अवगाह जलमें है तो जलका परिमाण ज्यादह हुआ कि घोड़ेका ? अल्प परिमाण वाली चीज महान परिमाण वाली चीजमें अवगाहित होती है। तो इसी प्रकार ये समस्त द्रव्य अल्प परिमाणवाले हैं, अव्यापी है। इस कारण इनके अपने आपमें अवगाह नहीं, किन्तु आकाशमें अवगाह हैं।

निश्चयसे सर्वपदार्थोंका स्वस्वस्वरूपमें अवस्थान एवं अपने असाधारण गुणके स्वप्रयोगमें परानपेक्षा—यहाँ एक बात विशेषतया समझ लेना कि यह वर्णन व्यवहार दृष्टिका चल रहा है, निश्चय दृष्टिसे तो सभी पदार्थोंका अवस्थान अपने आपके स्वरूपमें है। निश्चय दृष्टि केवल एक पदार्थको उस ही के गुणपर्यायमें देखती है। तो इस दृष्टिसे जब भी किसी पदार्थको निरखा तो वह अपने प्रदेश मात्र है और सदासे उसका अपने आपके क्षेत्रमें ही अवस्थान रहा आया है, ऐसी उस वस्तुके अन्तर्गत स्वरूपकी बात नहीं कही जा रही है, किंतु बाह्य आधार आधेयकी बात कही जा रही है। ये सब पदार्थ किस जगह ठहरे हुए हैं इस बाह्य क्षेत्र आकाशमें, सबका अवगाह आकाश में है। एक बात इस प्रसङ्गमें और भी जान लीजिये ! जिस पदार्थका जो भी असाधारण गुण है उसका जो कार्य है उसे अपने कार्यका स्वरूप बनानेके लिये अन्य तादृश गुणकी अपेक्षा नहीं करनी पड़ती। जैसे कि काल द्रव्यका असाधारण गुण है परिणमन हेतुत्व, तो काल द्रव्य अन्य द्रव्योंके परिणमनका कारण है। लेकिन काल द्रव्यके परिणमनके लिये वही स्वयं कारण है, कालके परिणमनके लिये अन्य गुणकी अपेक्षा नहीं है। इसी प्रकार आकाश द्रव्यका असाधारण गुण है अवगाहन-हेतुत्व, सो आकाश सब द्रव्योंके अवगाहका कारण है, लेकिन आकाशके अवगाहके लिये आकाश स्वयं कारण है। जीव पुद्गलके असाधारण गुणकी भी यही बात है। चेतनमें सचेतन आनेके लिये अन्य चेतन गुणकी अपेक्षा नहीं, पुद्गलके रूपमें रूपक

आनेके लिये अन्य गुणरूपकी अपेक्षा नहीं। धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य निष्क्रिय हैं। अतः उनके गुणके अनुरूप आवर्तनकी वहाँ आवश्यकता है।

दिशा काल आत्माके अवगाहके अधिकरणकी शंका व उसका समाधान —शंकाकार कहता है कि ऐसा माननेपर कि अल्प परिमाण वाली वस्तु महा परिमाण वाली वस्तुमे आधेय होती है अर्थात् अल्प परिमाण वाली चीज अपने आपके ही अधिकरणमे रह जाय, सो बात नही। ऐसा कहनेपर एक प्रश्न उठता है कि तब फिर दिशा, काल और आत्मा इन तीन पदार्थोंका आकाशमे अवगाह कैसे हो सकता है? क्योंकि इस प्रसङ्गमें यह कहा जा रहा है कि अल्प परिमाण वाली वस्तु महा परिमाण वाली वस्तुमे अवगाहित होती है। तो दिशा तो व्यापी है, अल्प परिमाण नही है। जितना परिमाण आकाशका है, उतना ही परिमाण दिशाका है, उतना ही परिमाण कालका है और उतना ही परिमाण आत्माका है। फिर यह अव्यापी नही है, अल्प परिमाण वाला नही है, आकाशकी भाँति व्यापी है, तब यह आकाशमे कैसे ठहर सकता है? समाधानमे कहते हैं कि यह बात कहना अयुक्त है, क्योकि तुम्हारा हेतु असिद्ध है। तुम्हारा हेतु है दिशा, काल, आत्मा ये व्यापी हैं इस कारण इनका आकाशमे अवगाह कैसे रह सकेगा? इस प्रश्नमे व्यापित्व हेतु असिद्ध है, क्योकि दिशा तो कोई द्रव्य ही नही है, उसे व्यापी कहनेका तो साहस ही न हो सकेगा। रहे काल और आत्मा सो काल व्यापी नही है, अव्यापी है, लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर एक एक काल द्रव्य अवस्थित है और आत्मा भी व्यापी नही है किन्तु असख्यात प्रदेशी है और अपने-अपने देहके परिमाण आकारमे रहा करते हैं। इन सब बातोका आगे समर्थन किया जायगा। उससे और विवरणके साथ सिद्ध हो जायगा। इस कारण यह प्रश्न नही उठ सकता कि दिशा, काल और आत्मा इनका फिर अवगाह आकाशमे कैसे हो जायगा व्यापी होनेसे? उत्तरका निष्कर्ष यह है कि ये पदार्थ व्यापी नही हैं, दिशा द्रव्य ही नही, इस कारण उसमे व्यापी अव्यापी अवगाह आदिकी चर्चा ही असम्भव है। काल और आत्मा अव्यापी हैं इस कारण उनका आकाशमे अवगाह होता है।

अमूर्त अमूर्तोंमे भी आधाराधेय भावकी उत्पत्ति —शङ्काकार कहता है कि काल और आत्माको अव्यापी भी मानलें तो भी आखिर हैं तो दोनो द्रव्य अमूर्त, रूप, रस, गंध, स्पर्श रहित। तो अमूर्त होनेके कारण काल और आत्मामें कभी आकाशमे अथवा आकाशसे गिर तो सकते नही। जैसे कि चौकी, तखत, ईंट, पत्थर आदिक गिर जाया करते हैं। वैसे काल और आत्मा आकाशसे नीचे गिर जायें, ऐसा तो होता नही, फिर वे आकाशके आधेय कैसे कहला सकते हैं? समाधानमें कहते हैं कि यह बात कहना अयुक्त है। अमूर्त होनेपर भी आधेयता हुआ करती है। ज्ञान सुख आदिक गुण अमूर्त है कि नही? अमूर्त! लेकिन वे आत्माके आधेय हैं, इनका आधार

प्रात्मा है। देखो ! अमूर्त तत्व भी आधेय हो सकता है इस कारण यह भी बात न बन सकेगी। कोई कहे कि अमूर्त होनेके कारण आकाश किसीका भी अधिकरण नहीं हो सकता। और अमूर्त होने पर भी देखो आत्मा ज्ञानादिकका अधिकरण है कि नहीं। अमूर्त आधेय भी हो सकता है। और अमूर्त अधिकरण भी हो सकता है जो जैसे आत्मा ज्ञानादिकका अधिकरण है इसी प्रकार आकाश काल, आत्मा आदिक अमूर्त पदार्थोंका भी अधिकरण है। तथा जैसे ज्ञान सुख आदिक अमूर्त होकर भी आत्माके आधेय है इसी प्रकार काल, आत्मा भी अमूर्त होकर भी आकाशके आधेय है। इन दोनों प्रकारके आधार और आधेय बतानेमें थोड़ा अन्तरङ्ग और बहिरङ्गकी विलक्षणता समझना चाहिए जैसे ज्ञान आदिकका अधिकरण अमूर्त आत्मा है, वह अभिन्न अधिकरण है पर काल व आत्माका अधिकरण आकाश है वह अभिन्न अधिकरण नहीं है, पर अमूर्त अमूर्तमें भी आधार आधेयभाव बन सकता है, इसके लिए ये दृष्टान्त दिये हैं।

समानसमयवर्ती पदार्थोंमें भी आधाराधेयभावकी उत्पत्ति—अब शंकाकार कहता है कि समान समयमें रहनेके कारण समस्त पदार्थोंका आकाशके साथ आधार आधेयभाव नहीं बन सकता अर्थात् आकाश भी उसी समय है और विश्वके समस्त पदार्थ भी उसी समय हैं। एक ही समयमें रहने वालेमें हम क्या विभाग बनायें कि यह तो आधार है और यह आधेय है। यदि समान समय रहने वाले पदार्थोंमें आधार और आधेय विभाग बना दिया जाय तो आधार आधेयमें तो ऐसी पद्धति होती है कि आधार होता है पहिले और आधेय होता है, बादमें जैसे घडा है, उसमें पानी भर दिया तो घडा तो आधार है पानी आधेय है। अब इन दोनोंमें निरख लीजिये कि घडा तो पहिले है, पानी बादमें आया तो आकाश आधार है और ये समस्त पदार्थ आधेय हैं ऐसा मानने पर आकाशके बादमें समस्त पदार्थोंका सद्भाव बनना चाहिये। समाधान में कहते हैं कि यह कहना भी अयुक्त है क्योंकि समान समयमें रहने वाले आत्मा और अमूर्तपना इन दोनोंका अधार आधेयभाव है कि नहीं, इसी तरह समान समयमें रह रहे हैं आकाश और विश्वके समस्त पदार्थ तो भी इनमें अधार आधेयभाव बन जाता है, अन्यथा बतलावो कि आत्मा पहिले है कि अमूर्तपना पहिले है? यदि कहोगे कि आत्मा पहिले है अमूर्तपना बादमें आया, क्योंकि आत्मा आधार है और अमूर्तपना आधेय है तो अमूर्तपनाके बिना आत्माका ढंग क्या होगा? तो यह कोई कल्पना नहीं कर सकता कि आत्मा और अमूर्तपनामें कोई एक चीज पहिले है और एक बात बादमें आयी। तो आत्मा और अमूर्तपना ये दोनों समान समयसे हैं फिर भी आधार आधेय भाव इसमें प्रतीत होता ही है। शङ्काकारने भी विशेषवादियोंने भी आत्मा और अमूर्तपना पूर्वापर नहीं माना, अर्थात् पहिले आत्मा है बादमें अमूर्तपना आया इस तरह नहीं माना, क्योंकि ऐसा यदि मान लिया जाय तो आत्मामें नित्यत्वका विरोध हो जायगा। देखो ! पहिले आत्मा अमूर्तत्वरहित अवस्थामें था और अब अमूर्तसहित अवस्थामें

आत्मा आया। अनित्य तो उसको ही कहते हैं कि जिसकी पहिले कुछ और अवस्था थीपश्चात् कुछ दूसरी अवस्था हुई है। तो यो आत्मा और अमूर्ततत्त्वके पूर्वापर माननेसे आत्मामे नित्यत्व नही ठहर सकता।

नित्यानित्यात्मक पदार्थोंमे आधाराधेय भावकी उपपत्ति—अब यह क्षणिकवादी शङ्काकार कह रहा है कि सारे पदार्थ क्षणिक हैं, ये प्रथम क्षणमे उत्पन्न होते हैं द्वितीय क्षणमे नष्ट हो जाते हैं। तो ऐसे क्षणिक समस्त पदार्थोंमें आधार और आधेयभावकी कल्पना सोचना यह तो व्यर्थमे समय गवाना है। अरे आकाश भी क्षणिक है, पदार्थ भी क्षणिक है, सारे पदार्थ एक क्षणवर्ती हैं फिर उनमे आधार और आधेय भावकी कल्पना ही क्या ? समाधानमे कहते हैं कि यह तो तुम्हारे मनोरथमे उड़ान करनेकी ही बात है। अर्थात् यह कथन सत्य नही है। पदार्थ क्षण भरमे ही रहता है, दूसरे क्षण नष्ट हो जाता है यह सिद्ध नही होता। सर्व पदार्थ द्रव्य दृष्टिसे नित्य हैं और पर्याय दृष्टिसे अनित्य हैं। केवल क्षणिक ही रहे पदार्थ तो इसका निष्कर्ष यह होगा कि अगले क्षणमे असत् सत् बन गया, प्रति क्षणमे असत् सत् बन जाया करता है यह बात बिल्कुल बेतुकी है। असत् सत् बन जाया करे तो फिर जो आज तक कभी भी नही हुए—जैसे आकाशके फूल, खरगोशके सीग, गधेके सीग, जो बात अत्यन्त असत् है उसका क्यो नही प्रादुर्भाव हो गया। क्षणिक माननेका अर्थ तो यही है कि जो कुछ भी न हो उससे कुछ बन जाय। ऐसा न विज्ञानमे सगत है, न युक्तिमे सङ्गत बनता है और न प्रत्यक्षसे ही निरखा जाता है। चीज वही की वही वर्षों तक दिखती है। वहाँ अवस्थाओमे थोडा बहुत अन्तर आता रहता है। यो प्रत्येक पदार्थ नित्यानित्यात्मक है, न कोई सर्वथा नित्य है, न कोई सर्वथा अनित्य है, इस कारण समस्त अर्थोंमे क्षणिकपना ही है, ऐसी हठ करना अयुक्त बात है। और, जब अत्यन्त क्षणिकता नही है तो उनमे आधार आधेय भावकी भी बात सोचना बिल्कुल सही है।

आकाशके आधारत्व व अन्य निखिल अर्थोंके आधेयत्वकी लोकप्रतीति—आकाश आधार है और समस्त अन्य द्रव्य आधेय हैं, ऐसा निर्बाध ज्ञान प्रायः सभीको हो रहा है। कहते हैं ना, कि आकाशमे पक्षी उड़ रहे हैं, आकाशसे अमुक चीज उतरी है आदिक जो ज्ञान होते हैं उन अबाधित ज्ञानोसे भी आकाशका आधारपना सिद्ध हो जाता है। तो यो आकाश वस्तुभूत द्रव्य तो है परन्तु वह सर्वथा नित्य निरश और शब्द लिङ्ग हो यह बात नही है। जैसा कि विशेषवादमे माना गया है। सामान्य विशेषात्मक पदार्थके विरोध करते समय जो कहा गया है कि प्रमाणका प्रमेय सामान्यविशेषात्मक नही होता किन्तु द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष समवाय रूप हुआ करता है यह बात युक्त नही बैठती। आकाश द्रव्य है, पर वह शब्द लिङ्ग नही है, निरवयव नही है, कूटस्थ नित्य नही है। नित्यानित्यात्मक सावयव अमूर्त समस्त पदार्थोंके अवगाहनका कारणभूत आकाशका द्रव्य है। विशेषवादमे माने गए शब्दलिंग

नित्य निरवयव आकाश द्रव्यकी सिद्धि नहीं होती।

सामान्य विशेषात्मकताके विरोधमें शंकाकार द्वारा कथित नित्य निरंश शब्दलिङ्ग आकाशकी असिद्धि—प्रकरण यह चल रहा कि प्रमाणका विषय प्रमेय सामान्यविशेषात्मक होता है। केवल सामान्य कुछ नहीं है, केवल विशेष कुछ नहीं है, सामान्य और विशेष कोई सत् नहीं, द्रव्य नहीं, पदार्थ नहीं, किन्तु पदार्थका ही धर्म सामान्य है पदार्थका ही धर्म विशेष है। सामान्यविशेषात्मक पदार्थ होते हैं, ऐसा माननेके बाद फिर उनकी जातियाँ निरखिये! उनके भेद प्रभेद निरखिये! तब तो मार्ग सही मिल सकता है, पर वस्तुका स्वरूप ही सही न माना जाय, उसके विपरीत कुछ भी कहा जाय तो वहाँ फिर यथार्थ व्यवस्था नहीं बन सकती। सामान्य विशेषात्मक पदार्थ है, इसके विरोधमें विशेषवादियोंमें द्रव्य गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय इन ६ पदार्थोंकी व्यवस्था रखनेका प्रस्ताव किया था, लेकिन ये सब कुछ सिद्ध नहीं हो पा रहे। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चार जुदे-जुदे पदार्थ सिद्ध नहीं हो सकते, क्योंकि ये चारों परस्परमें उपादान उपादेयसे रहा करते हैं। तो ये चार जातिके ही पदार्थ हैं जिन्हें पुद्गल द्रव्यसे कहा जायगा। आकाश नामक ५ वें पदार्थके सम्बन्धमें अभी बहुत विस्तारसे विश्लेषण विवेचन चला ही है। नित्य निरवयव शब्दलिंग आकाश भी द्रव्य नहीं है।

नित्य एक व्यापी काल द्रव्यकी सिद्धिके लिये शंकाकारका कथन—अब छठवाँ द्रव्य विशेषवादमें काल नामक माना है, उस काल द्रव्यकी भी सिद्धि नहीं है। विशेषवादमें कालद्रव्यको माना कि वह व्यापक है, नित्य है और एक है। हो कोई नित्य व्यापक एक कालनामक द्रव्य ऐसी बात युक्तिमें सिद्ध नहीं होती। शंकाकार कहता है कि काल द्रव्य तो सर्वजनोंके ज्ञानसे प्रसिद्ध है। यह छोटा है यह बड़ा है, यह एक साथ हुआ है। यह क्रमसे हुआ है, यह देरमें हुआ है, यह जल्दी हुआ है, इस प्रकारके जो ज्ञान हो रहे हैं ये ज्ञान कालद्रव्यको ही सिद्ध कर रहे हैं। छोटे बड़े आदिक जो ज्ञान हो रहे हैं इन ज्ञानोंका कारण कोई पदार्थ अवश्य है। और जो भी पदार्थ है उसका नाम कुछ भी रखिये यहाँ काल द्रव्य नाम रखा गया है। यह काल द्रव्य शेष ८ द्रव्योंसे भिन्न है और काल है काल है इस प्रकारका जो व्यवहार चल रहा है वह भी यथार्थ है। इन दोनों बातोंकी सिद्धि करनेमें साधन है परापरयौगपद्यायौगपद्यादिप्रत्यय छोटा बड़ा युगपत् अयुगपत् आदिक जो ज्ञान चलते हैं उन ज्ञानोंसे सिद्ध है कि इन प्रत्ययोंका कारणभूत कालनामक द्रव्य है उसका अनुमान प्रयोग कर लीजिये। काल इतर पदार्थोंसे भिन्न पदार्थ है और काल ऐसा व्यवहार किया ही जाना चाहिए, क्योंकि छोटे बड़ेका भेद एक साथ अथवा क्रमसे होनेका भेद देरमें हुए जल्दी हुएका भेद जो ज्ञात होता है। इन विज्ञानोंसे ही यह जाना जाता है कि इसका आश्रयभूत काल नामक द्रव्य है और यह बात अन्य द्रव्योंमें नहीं पायी जाती है। इससे काल अन्य द्रव्यों

क्रिया हो या कोई द्रव्य हो अथवा घडी आदिक हो वृद्धादिक अवस्थायें हों ये पर अपर आदिक प्रत्ययके निमित्तभूत हो जावेंगे, ऐसा भी नही कह सकते क्योंकि पर अपर आदिक जो प्रत्यय हो रहे हैं वे इन ज्ञानोसे विलक्षण हैं। सूर्यकी क्रिया होनेसे जो ज्ञान होता है उस ज्ञानकी मुद्रा और है और ये सीधे काल निमित्तक हैं, ये कालके चिन्ह ही हैं, चिर काल तक होना जल्दी होना एक साथ होना, क्रमसे होना आदिक ये सब कालके चिन्ह कहलाते हैं। और वह काल आकाशकी ही तरह सर्वव्यापक है, नित्य है, एक है, इस तरह विशेषवादी अपना पूर्वपक्ष रख रहा है कि काल द्रव्य भी पृथ्वी आदिककी तरह स्वतन्त्र द्रव्य है और इससे द्रव्यकी व्यवस्था है, न कि सामान्य विशेषात्मक पदार्थ हो और फिर उस पद्धतिसे वहाँ निरखा जाय। सामान्य विशेष जब स्वय स्वतन्त्र पदार्थ हैं तब तो पदार्थोंके माननेकी पद्धति विशेषवादकी ही सही उतर सकती है।

कालकी अनेकद्रव्यरूपताका प्रतिपादन - अब उक्त शकाओंका समाधान करते हैं। जो शकाकारने यह कहा है कि पर अपर युगपत् अयुगपत् आदिक ज्ञानोंसे कालका अनुमान होता है सो इस पर अपर आदिक प्रत्ययरूपलिङ्गका जो ज्ञान अनुमेय होता है वह काल एक द्रव्यरूप है या अनेक द्रव्यरूप। इन दो विकल्पोमेसे कोन सा विकल्प युक्त मानते हो? वह काल एक द्रव्य है ऐसा तो कह नही सकते क्योंकि मुख्य काल और व्यवहार काल इन भेदोसे ही इनके दो भेद सर्वप्रथम हो जाते हैं। देखो! समय, आवली, घडी, मुहूर्त दिन आदिक जो व्यवहार काल चल रहा है, जिससे लोक व्यवहार किया जाता है तो यह व्यवहार काल मुख्य काल द्रव्यके बिना नही हो सकता। जैसे कि मुख्य सत्त्वके बिना किसी भी पदार्थमें उपचरित सत्त्व नही कहा जा सकता। जैसे किसी बालकको अग्नि, सिंह कहे, तो कोई वास्तविक सत् अग्नि हो और सिंह हो तब तो बालकमे अग्नि सिंहका उपचार किया जा सकता है। कोई बालक वीर है तो कहते कि यह शेर है तो वह उपचार ही तो किया गया। कही चार पैर बडे नख लम्बी पूछ वाला शेर तो नही बन गया वह बालक। तो मुख्य सत्त्वके बिना कही उपचरित सत्त्वकी बात नही कही जा सकती है। इसी प्रकार जो व्यवहार कालका प्रचलन है वह भी मुख्यकालके बिना नही हो सकता है और जो मुख्यकाल है वह अनेक द्रव्य है, एक काल द्रव्य नही है क्योंकि प्रत्येक आकाश प्रदेशपर व्यवहारकाल भेदकी अन्यथा उत्पत्ति नही बन सकती। यदि काल द्रव्य एक नित्य सर्वव्यापी होता तो प्रत्येक आकाश प्रदेशपर जो व्यवहार कालका भेद बन रहा है वह नही हो सकता था। देखो! व्यवहार कालका भी प्रत्येक आकाश प्रदेशमे भेद है अन्यथा कुरुक्षेत्र आदिक जो भिन्न-भिन्न आकाश देश हैं, उनमें दिन्दिन या दक भेदोंकी उपपत्ति नही बन सकती जैसे कहीं दक्षिणायन सूर्य होता उत्तरायण होता, छोटे, दिन होते बडे दिन होते, कही दिन है तो और जगह रात है आदिक भेद जो आकाश प्रदेशमे नाना प्रकारके व्यवहार कालके बन रहे हैं वे न हो सकते थे, यदि प्रत्येक प्रदेशपर भिन्न-भिन्न काल द्रव्य न

माना जाय। इससे सिद्ध है कि प्रत्येक लोकाकाशपर अणुरूपसे उतने ही काल द्रव्य बराबर अवस्थित हैं। जैसे कि रत्नोंकी राशि कही रखी हो तो प्रत्येक रत्न भिन्न-भिन्न प्रदेशोमे हैं इसी तरह कालद्रव्य भी रत्नोकी राशिकी तरह एक दूसरेसे पृथक् प्रत्येक आकाश प्रदेशपर एक एक कालाणु अवस्थित है।

कालकी एकद्रव्यरूपताका प्रतिषेध—शकाकार कहता है कि युगपत् अयुगपत् चिरक्षिप्र आदिक जो भी प्रत्यय हो रहे हैं वे सब एक काल सामान्यरूप हैं, उन प्रत्ययोमे परस्पर विशेषता न होनेसे कालकी एकता सिद्ध होती है कि काल एक है। क्योकि समय निमित्तक ज्ञानोमे कोई विशेषता नही पायी जा रही है समयकी दृष्टिसे। समाधानमे कहते हैं कि यह बात भी असत्य है, क्योकि युगपत् अयुगपत् आदिक प्रसगोमे अविशेषता सिद्ध है। वे भिन्न-भिन्न प्रत्यय हैं क्योकि उनमे भेद पाया जाता है। एक साथ कार्य होता है कुछ, कोई कार्य क्रमसे होता है, क्या इनमे कुछ फर्क नही है। कोई कार्य देरसे बनता है कोई शीघ्र तो क्या इनमे समय भेद नही है? तो इन सब प्रत्ययोमें परस्पर भेद होनेसे कालमे भी भेद सिद्ध होता है। शकाकार कहता है कि कालमे जो यह भेद नजर आ रहा है कालकी विशिष्टता जो ज्ञानमे आ रही है वह कालमे नही है, वह सहकारी कारणोंकी विशेषता है। जैसे एक सूर्य जितने समयमे एक ओरसे दूसरी ओर निकल गया उसको एक दिन कहते हैं। तो यह सहकारी कारणोकी वजहसे विशेषता है—एक दिन, दो दिन, आधा दिन या देरसे हुआ, जल्दी हुआ ये सब सहकारी कारणोके भेदसे भेद बनते हैं। कालके भेदसे नही। काल तो एक रूप ही है। समाधानमे कहते हैं कि यह भी तुम्हारा उत्तर सही नही है क्योकि सहकारी कारणोकी जरूरत वहाँ क्या पड़ती है। यदि सहकारी कारण जिसके लिए कहा गया है उसके स्वरूपमे भेद न डालें। जहाँ जहाँ भी सहकारी कारण कहे जाते हैं, जिसके जो सहकारी बोले गए हैं वे उसके स्वरूपमे भेद बताते हैं। स्वरूपमे यदि भेद नही डालते हो तो उन कारणोको सहकारी कारण नही कह सकते।

कालको नित्य निरश व्यापक माननेपर अतीतादिव्यवहारके लोपका प्रसग—और भी बात देखिये। यदि कालको निरवयव एक द्रव्यरूप माना जाय तो यह बतलावो कि फिर भूत भविष्य कालका व्यवहार कैसे बनेगा? आपका काल तो हो गया एक तथा निरंश सर्वव्यापी तब फिर यह काल अतीत है, यह वर्तमान है, यह वर्तमान है, यह भविष्य है यह भेद कैसे बन जायगा? ये तो कालके भेद है। काल माना तुमने एक सर्वव्यापक नित्य, निरवयव। क्या उन अतीत आदिक व्यवहारोको अतीत आदिक पदार्थोंकी क्रियाके सम्बन्धसे बताओगे अथवा स्वत ही बताओगे? यदि अतीत आदिक अर्थ क्रियाके सम्बन्धसे कालमें अतीत आदिक व्यवहार बताओगे तो उसमें दो विकल्प उठते हैं, क्या अपर अतीतादि अर्थ क्रियाके सम्बन्धसे अर्थ क्रियाकी अतीतता दिता है या अतीतादिकालके सम्बन्धसे। यदि अपर अतीतादि अर्थ क्रियाके

सम्बन्धसे कहो तो अनवस्था दोष आ जाता है क्योंकि फिर यह बतलावो कि उस अपर अतीत अर्थकी क्रिया जो हुई है उसमे अतीतका व्यवहार कैसे बना ? तब यह ही तो कहोगे कि अन्य अतीत अर्थक्रियाके सम्बन्धसे बना तो उसमें अतीतपनेका व्यवहार कैसे बना ? इस तरह यहाँ अनवस्था दोष आयगा, और कदाचित् कहो कि अतीत कालके सम्बन्धसे बना तो इसमे अन्योन्याश्रय दोष आता है। जब क्रियावोंकी अतीतता सिद्ध हो जाय तो उसके सम्बन्धसे कालमे अतीतपनेका व्यवहार बने और जब कालमे अतीतपना सिद्ध हो जाय तब उस कालके सम्बन्धसे उन क्रियावोंमे अतीतपनाकी सिद्धि हो। तो इस तरह अतीत अर्थक्रियाके सम्बन्धसे अतीतकालका व्यवहार बनाना युक्त नहीं है। यदि कहो कि कालमें जो अतीत भविष्यत आदिक व्यवहार होते हैं वे स्वत. ही होते हैं तो यह बात आपके सिद्धान्तमे अयुक्त है क्योंकि कालका माना है निरंश और फिर कह रहे हो कि काल द्रव्यमे स्वतः ही अतीत भविष्यका व्यवहार होता है। काल अतीत रूप भी है और वह स्वतः होता है तो यह तो हुई भेदकी बात और भेद की बात लगाना चाहते तुम अभेद निरंश निरवयव नित्य कालमे, तो निरंशताका और भेद रूपताका तो परस्पर विरोध है क्योंकि निरंश कालमे अतीतपना, वर्तमानपना भविष्यपना इन धर्मोंका सद्भाव नहीं घट सकता, क्योंकि इन धर्मोंके सद्भावसे तो कालके भेद कहलाने लगेंगे। और कालको माना है सिद्धान्तत. एक, तो नित्य निरवयव एक काल द्रव्य माननेपर अतीत आदिक कालका व्यवहार नहीं बन सकता।

कालको एक माननेपर यौगपद्य अयौगपद्य आदि प्रत्ययोके भेदकी असिद्धि—अब साथ ही अन्य बात सुनो ! जो ऐसा कहते हैं कि काल नित्य निरवयव एक है। तो कालको एक नित्य निरवयव माननेपर उनके सिद्धान्तसे फिर युगपत् अयुगपत् आदिक ज्ञानोका अभाव हो जायगा, क्योंकि काल माना है एक और वह एक काल है समस्त कार्योंका निमित्त, तो जितने भी कार्य समूह हैं वे सब एक कालमे ही आ गए ना। तो सारे पदार्थ एक साथ ही आ गए यों सिद्ध मानना पड़ेगा और जब कालकी एकता माना और उसमें समस्त कार्योंके एक कालमें उत्पत्ति माननी पड़ी तो जब एक साथ ही समस्त कार्य उत्पन्न हो गए तब क्रमसे किया गया तो कुछ रहेगा ही नहीं। जब परिणमनका निमित्त है काल और वह माना गया एक तो एक कालमें फिर सभी पदार्थोंकी उत्पत्ति हो गई, फिर कुछ भी अयुगपत् न कहलायेगा। न चिर क्षिप्रका भेद रहेगा न छोटे बड़ेका। चिर क्षिप्रका व्यवहार कैसे न रहेगा सो देखो, जो काम बहुत कालके द्वारा किया जाता है उसको तो कहते हैं चिरकालमें किया गया। और जो काम थोड़े ही कालके द्वारा कर लिया जाता है उसे कहते हैं जल्दी किया गया। अब माना है तुमने कालको एक तो चिर और क्षिप्र ये दोनों बातें कालको एक माननेपर कैसे घट सकती हैं ? जब उन परिणमनोका निमित्त काल एक है और वह भी निरवयव नित्य तो उस एक कालके निमित्तसे चिर क्षिप्र कार्य कैसे होंगे ? यह भी भेद कालकी एकता माननेपर बन नहीं सकता।

कालके एकत्वमें उपाधिभेदसे भेद प्रतीत होनेकी शंका—शंकाकार कहता है कि काल तो एक ही है लेकिन कालके एक होनेपर भी जो साथमे उपाधिभेद लग रहा है उससे भेदकी उपपत्ति होती है और उपाधिभेदसे भेदकी उपपत्ति होनेसे युगपत् अयुगपत् चिर क्षिप्र आदिक अवयवोका अभाव नही हो सकता। जैसे स्फटिक मणि तो एक ही प्रकारका स्वच्छ है पर उसके साथ रग विरग उपाधियोका सम्पर्क लगा हो तो उस उपाधिभेदसे मणिके परिणमनमे भेद माना गया है। अथवा मणिके रग विरगे भेदका ज्ञान हो जाता है। अथवा जैसे अग्नि तो एक ही है, पर जैसे ईंधन का सम्बन्ध पाये अग्नि, उस प्रकारसे अग्निका भेद कर लिया जाता है पर अग्निका लक्षण देखो तो उष्णता है। उस लक्षणकी ओरसे अग्निमे कोई भेद नही है, पर उपाधिके भेदसे भेद हो जाता है। यह खरी अग्नि है, यह हल्की अग्नि है, यह लोहेकी अग्नि है, यह काठकी अग्नि है, आदिक जो भेद अग्निमे बन जाते हैं वे उपाधिके भेद से बनते हैं तो इसी प्रकार काल भी एक है पर उसके साथ उपाधिभेद लगा है उससे भेद हो जाता है। जैसे सूर्यका गमन, घडीका चलना, घडीका देखना इन उपाधिभेदो से उसमे भेद हो जाते हैं अथवा अतीत भविष्य ये उपाधिया साथमे लगती हैं तो उस से कालमे भेद हो जाता है।

द्रव्यरूपसे तथा परिणमनरूपसे कालके अनेकत्वकी सिद्धि—अब उक्त शकाके समाधानमे कहते हैं कि यह बात भी अयुक्त है, क्योकि यहाँ कालके सबधमे जो उपाधिभेद है वह कार्यभेद ही है जैसे सूर्य १२ घटेमे एक ओरसे दूसरी ओर निकल जाता है तो सूर्यके निकलनेसे काल निकला या कालके होनेसे सूर्य निकला ? तो वह सूर्य निमित्तक सम्बन्धका भेद नही हुआ किंतु वह भेद भी जैसे कि सूर्य १२ घटेमे निकला इतने समयमे निकला तो वह कार्य भेद ही है। कालकी ही बात कही गयी है। कोई उपाधिकी बात नही है। और जब कार्यभेद ही बना वह सब कुछ तो जब काल मान लिया एक तो एक साथ किया ऐसा कहनेमे भी तो काल है एक अथवा कार्य भेद है। तो जब वहाँ कार्यभेद होगया तो उससे फिर क्रमसे किये गए इस प्रकारके कार्यभेदका ज्ञान क्यो नही हो जाता ? जब कालको एक मान लिया तो युगपत् हो हुआ कुछ तो उसमे युगपत् ही बोले, अयुगपत् न बोले ऐसे ज्ञानविभागका कारण क्या है ? यदि कहो कि क्रमसे होने वाला जो वह कार्यभेद है वह कालभेदके व्यवहारका कारण है तो यह बतलाओ कि उस क्रमभावका अर्थ क्या है ? एक साथ उत्पन्न न होना यह अर्थ यदि है तो एक साथ उत्पन्न न हो ऐसा बोलनेका भाव क्या है ? क्या यह भाव है कि एक कालमे अनुत्पाद है अर्थात् एक कालमें उत्पन्न नहीं हुआ तो इसमे इतरेतराश्रय दोष आयगा, किस तरह कि जब तक कालका भेद सिद्ध नही होता तब तक कार्यमे ये भिन्न कालमे उत्पन्न हुए है इस प्रकारका क्रम सिद्ध नहीं होता और जब तक कार्यमे क्रमभाव सिद्ध नही होता तब तक कालमें उपाधिभेदसे भेद सिद्ध नही होता, इस कारण सीधा ही तत्त्व मानना चाहिए कि प्रतिक्षण क्षण क्षण पर्याय वाले

काल द्रव्य भिन्न-भिन्न अनेक हैं और व्यवहारमें भी एक एक समय रहने वाले मूल व्यवहार काल भिन्न-भिन्न हैं। उनके समूहको हम घडी घटा आदिक कहते हैं। और ऐसा माननेपर यह एक साथ हुआ है यह क्रमसे हुआ है, यह चिरकालमे हुआ है ये सब व्यवहार बन जाते हैं। कालको अनेक माने बिना काल व्यवहार भेद बन नही सकते।

कालापेक्षया विप्रकृष्ट सन्निकृष्टमे परापर व्यवहारकी संगतता— शंकाकारने कालके एकत्वको सिद्ध करनेके लिए जो परापरका विपर्ययपना बताया था वह भी संगत नही है। देखिये जैसे कि देशकी अपेक्षा यह उरे है यह परे है, अपरको कहते हैं उरे। अपरका प्राकृत बना अवर और अवरका अपभ्रंस हुआ उरे और परसे हुआ परे, तो जैसे भूमिके अवयवो द्वारा, बहुत अवयवोंके द्वारा जो वस्तु अन्तरित हो याने भूमिके बहुत बडे हिस्सेके बाद वस्तु पडी हो उसे तो कहते हैं परे है और भूमिके स्वल्प अवयवोंसे ही अन्तरित हो अर्थात् भूमिके थोडे हिस्सेके बाद ही वस्तु रखी हो तो उसे कहते हैं अपर। इसी प्रकार कालकी अपेक्षा भी बहुत समयोसे, रात दिनोसे अन्त रित हो, दूर हो उसे तो कहते हैं पर और जो थोडेसे समयोके द्वारा रात्रि दिवसोंके द्वारा अन्तरित हो उसे कहते हैं अपर। अर्थात् जो विप्रकृष्ट हो वह तो है पर और जो सन्निकृष्ट हो वह है अपर। तो परापरमें विपर्यय कहां आयगा ? दिग्देशकी अपेक्षा तो भूमिके प्रदेसके द्वारा दूर और निकटपना है और कालकी दृष्टिमें समाके द्वारा, रात्रि दिवसोंके द्वारा दूर और निकट है।

कालके एकद्रव्यरूपत्वके प्रतिषेधपर कुछ प्रश्नोत्तर— कालको यदि एक मान लोगे तो बहु और अल्पपना घटित नही हो सकता। यह बहुत समय पहिलेकी चीज है, यह थोडे समयकी चीज है, यह बात कालके नाना माननेपर घटित होती है। कालको एक माननेपर यह बहुत और अल्पका भेद नही बन सकता। जैसे कि गुरुत्व का परिमाण अपेक्षापूर्वक है, यह इससे वजनदार है, यह अमुकसे वजनदार है, तो यह व्यवहार वस्तुके एकत्वमे नही बन सकता। इसी प्रकार यह बहुत पहिले समयकी बात है, यह थोडे समय पहिलेकी बात है, यह व्यवहार भी कालको एक माननेपर नही बन सकता। और भी सुनो ! जैसे कि शंकाकारने यह कहा कि यौगपद्य आदिक प्रत्यय सब कालकी अपेक्षा समान हैं इस कारणसे काल एक है तो यो तो गुरुत्व परिमाण भी गुरुताकी अपेक्षा समान-समान है इसलिए एक वस्तुमे भी गुरुताकी बातें बन जानी चाहियें। अब परापरत्वमे जो तुम प्रश्न करोगे वही प्रश्न गुरुत्वमे भी लगा दिया जायगा। गुरुत्वसे वस्तुका एकत्व बचानेके लिए जो तुम उत्तर दोगे वही उत्तर कालमें घटित कर दिया जायगा। इस कारणसे जैसे गुरुत्व परिमाणमे अनेक गुण-रूपता है है इसी प्रकार कालमें भी अनेक द्रव्यरूपता मानना चाहिये। अब जो पुरुष

वास्तविक काल द्रव्यको नही मानते उनके यहाँ भी यौवपद्य अयौवपद्य चिरक्षिप्र प्रत्ययोका अभाव हो जायगा, क्योकि यह जो ज्ञान हो रहा है यह पर है यह अपर है, यह ज्येष्ठ है यह लघु है, यह एक साथ हुआ कार्य है यह क्रमसे हुआ कार्य है ये सब प्रत्यय अकारण तो हैं नही, क्योकि कादाचित्क हैं, जो चीज कादाचित्क होती है, कभी हुई कभी न हुई तो वह अकारणक नही होती। जैसे-घट पट आदिक, ये अनित्य हैं। मिट जाने वाले हैं। तो ये अहेतुक न रहे और यह भी बात नही कह सकते कि पर अपर आदिक प्रत्यय निर्निमित्तक नही है तो न सही, इनका कोई सामान्य निमित्त हो ही जायगा। सो अविशिष्ट निमित्त वाले भी नही हैं, किंतु इन सब प्रत्ययोका कोई विशिष्ट कारण है, क्योंकि यह स्वय विशिष्ट प्रत्यय है, और इसका जो कारण है, वह निमित्त है वह है काल द्रव्य। और चूँकि ये प्रत्यय नाना हैं, ये कार्य नाना हैं तो उन के निमित्तभूत द्रव्य भी नाना सिद्ध होते हैं।

परापरादि व्यवहारमें दिग्गुणजातिनिमित्तकत्वका प्रतिषेध—शकाकार कहता है कि अपर चिरक्षिप्र आदिक जो प्रत्यय होते हैं वे दिशा गुण जातिके निमित्तसे होते हैं। जैसे—दिशाओमे भी तो पर अपरका व्यावहार है, कोई पुरुष एक गाँवसे दूसरे गाँव गया तो क्रमसे गया। तो इस क्रमसे काल द्रव्यकी सिद्धि होती है मगर कोई यो भी कह सकता कि उन दिशाओमे क्रमसे गया इसलिए क्रम बना। तो दिग्देशकी बात सम्पर्कको देखकर दिशा गुण जातिके निमित्तसे उन प्रत्ययोको माना जाना चाहिये। समाधानमे कहते हैं कि यह भी बात सिद्ध नही होती, क्योकि दिशाओके कारण जो पर अपर प्रत्यय होते हैं वे दूसरी जातिके हैं और कालकी सत्तामे जो पर अपर प्रत्यय होते हैं वे दूसरी जातिके देखो हैं।! तभी तो कोई अपर दिशामे बैठा हुआ है अर्थात् निकट देशमे बैठा हुआ है, कौन बैठा है ? कोई गुणहीन पुरुष अधम जातिका बूढा बैठा हुआ है। तो यह हर तरहसे अपर हुआ कि नही ? अपर देशमे बैठा है, अपर जातिका है। अपर मायने कडम। अवस्था भी उसकी अपर है, गुण भी उसका अपर है, लेकिन उरे बैठा है, उसको कालकी अपेक्षा अधिक उम्र वाला होनेसे पर कहा जाता है अर्थात् दिशाओका पर अपरका मतलब दूसरा है। और कालका पर अपरका मतलब दूसरा है। अपर देशमे तो बैठा है और बूढा होनेके कारण पर कहा जाता है कालकी अपेक्षासे, और कोई पुरुष पर दिक प्रदेशमे बैठा है दूर स्थानमे बैठा है लेकिन प्रशस्त है, ऊँची जातिका है, जवान है, इतनी उत्कृष्टता है उसमे, पर कालकी दृष्टिसे उसे अपर कहा जायगा, क्योकि उम्रमें छोटा है। तो दिक गुण जातिकी अपेक्षा जो प्रत्यय हो रहे हैं उन प्रत्ययोसे कालकृत प्रत्यय जुदी चीज है। देखो ! वहाँ दिक भी अपर था, गुण भी अपर था, जाति भी अपर थी, मगर कालसे वृद्ध था तो वहाँ परका व्यवहार हुआ और वहाँ जवान पुरुष जहाँ बैठा है वह देश पर है, पर जातिका है। अर्थात् उत्तम जातिका है और पर शरीर है अर्थात् जवान शरीर है, जाति भी पर है, ऊँच कुल है, लेकिन उम्र कम होनेसे उसमे अपर यह प्रत्यय किया गया। इस कारण

यह कहना अयुक्त है कि पर अपर आदिक प्रत्यय दिशा, गुण जातिके निमित्तसे हो जायेंगे ।

आदित्यादि क्रियाके परापरादिव्यवहारनिमित्तत्वका प्रतिषेध— यदि पर अपर आदिक प्रत्ययोके व्यवहारके लिये कालको छोडकर अन्य कोई निमित्त तुम ढूंढना ही चाहते हो तो स्पष्ट बताओ ना, कि वह निमित्त क्या हो सकता है ? क्या सूर्य आदिककी क्रियाको उन पर अपर प्रत्ययोमे निमित्त मानते हो या वस्तुकी क्रियाको ही तुम काल अर्थात् परस्पर व्यवहारमे निमित्त मानते हो ? या कर्ता कर्मको उस परापर व्यवहारमे निमित्त मानते हो ? इन तीन विकल्पोमेंसे यदि पहिला विकल्प अङ्गीकार करते हो कि आदित्य आदिककी क्रिया निमित्त है, तो जैसे कि शङ्काकार कह रहा है कि जन्मसे लेकर एक प्राणीके सूर्यके परिभ्रमण बहुत हो गए । जैसे कोई बच्चा एक सालका है तो अर्थ क्या लगाया जा रहा है कि ३६५ सूर्य भ्रमणका यह बच्चा है, क्योंकि ३६५ बार सूर्यने चक्कर लगाया ना ! तो यो ही जवान है तो जन्मसे लेकर उस पुरुषके आदित्यवर्तन बहुत हो गए इसलिए वह पर कहलाता है, और दूसरे पुरुषके आदित्य वर्तन थोडे हुए, अर्थात् उसके सूर्यकी घुमेरियाँ कम सख्यामें हुई इस लिए उसमें अपरत्व व्यवहार होता है । इस तरह पर अपर व्यवहारमे सूर्यकी घुमेरियाँ कारण हैं न कि काल यो मानोगे तो उसका उत्तर देते हैं कि ऐसा माननेपर भी अर्थात् सूर्यकी घुमेरियाँ पर अपर व्यवहारके कारण हैं ऐसा माननेपर भी तो दोष दूर नही होता कि यौवनत्व आदिक प्रत्ययकी उत्पत्ति कैसे हो, क्योकि सूर्य घुमेरीमे समस्त पदार्थोंके उत्पन्न होनेका प्रसग आ जाता है इसका कारण यह है कि सूर्यकी घुमेरी जब पदार्थोंके परिणमनका कारण बन गई तो किसी भी एक सूर्यकी घुमेरीमे समस्त पदार्थों का सारा परिणमन क्यो नही हो जाता ? इसका कोई उत्तर नही । और, स्पष्ट बात तो यह है कि इस प्रकारका व्यपदेश कभी नही होता । अर्थात् ऐसा तो लोग कहते हैं कि यह एक साथका कार्य है यह एक साथ काल है पर यो कोई नही कहता कि ये एक साथ सूर्यकी घुमेरियाँ हैं तो आदित्य आदिककी क्रिया पर अपर आदिक प्रत्ययके व्यवहारमे कारण नही हो सकती ।

क्रियाके परापरादि व्यवहारके निमित्तत्वका निषेध और कालका यथार्थ स्वरूप— यदि कहा कि क्रिया ही काल बन गया अर्थात् पर अपर आदिक व्यवहारमे क्रिया ही निमित्त हो जाती है तो यह भी बात युक्त नही है, क्योकि फिर तो क्रियाओमे क्रिया रूपताकी तो अविशेषता रही । सारे पदार्थोंकी क्रिया क्रिया होती है और क्रिया बन गई यौवनत्व आदिक प्रत्ययका कारण । तो फिर एक ही क्रियामे सब उत्पन्न हो जाने चाहिए । फिर भी कुछ युगपत् और अयुगपत् प्रत्यय न रहा । यदि इस प्रकारके पर अपर आदिक कार्योंके रचने वाले कालका ही नाम क्रिया रखते हो तो रख लो, एक नामान्तर कर लो । नाम मात्रका भेद रहा । वस्तु तो मानना ही

पडा ना. काल और वह काल द्रव्य है अनेक। रत्नोको राशिकी तरह आकाशके प्रत्येक प्रदेशपर एक-एक काल द्रव्य अवस्थित है, तभी अपने-अपने काल द्रव्यके क्षेत्रमे रहने वाले पदार्थोका परिणमन भिन्न-भिन्न होता रहता है। इसमे काल द्रव्य अनेक हैं और वे प्रत्येक काल द्रव्य सामान्य विशेषात्मक हैं। जितने भी सत् हैं वे सब स्वय सामान्य विशेषात्मक हैं न कि सामान्य भी कोई अलग पदार्थ हो विशेष भी कोई अलग पदार्थ हो और फिर ये काल आदिक अलग हो पदार्थ ही स्वय सामान्य विशेषात्मक होता है, और काल द्रव्य द्रव्य पर्यायात्मक है। अर्थात् उसका शाश्वत द्रव्यपना भी है और परिणमन होता है। उसका परिणमन अविभागी एक समय है। प्रत्येक काल द्रव्योका परिणमन अविभागी एक एक समय है। उन समयोके समूहमे हम आवली पल घडी दिन महान कल्पकाल ये सारे व्यवहार करते है। तो काल द्रव्य है और वे अनेक हैं, सामान्य विशेषात्मक है। उससे समय नामक व्यवहार कालकी उत्पत्ति होती है। उनके समूहमे ये सब व्यवहार चलते हैं। यहाँ काल द्रव्यका निषेध नही किया जा रहा है किन्तु यह बताया जा रहा है कि नित्य निरवयव सर्वव्यापी काल माननेकी बात घटित नही होती।

कर्ता कर्ममे भी परापरव्यवहारकी कारणता न होनेसे काल द्रव्यकी सिद्धि—शकाकारसे पूछा जा रहा है कि पर अपर यौगपद्य अयौगपद्य आदिक प्रत्ययो का निमित्त यदि कर्ता कर्मको कहोगे तो वह बात यो युक्त नही होती कि कर्ताश्रय यौगपद्य नाम क्या है कि बहुतसे कर्ताओंका एक कार्यमें व्यापार हो तो कहा जायगा कि कि ये एक साथ कर रहे हैं यह है कर्ताका यौगपद्य और कर्मका यौगपद्य क्या है? बहुतसे कर्ता जब एक कार्यमे एक साथ व्यापार करते हो तभी तो इस प्रत्ययके द्वारा यह जाना जायगा कि ये एक साथ करते हैं। अब कर्मका यौगपद्य देखिये! बहुतसे कार्य यदि एक साथ किए जा रहे हैं तो वहाँ वह यौगपद्य इस प्रत्ययसे जाना जाता है कि ये कार्य एक साथ किए गए। तो यह कर्ताका यौगपद्य तो रहा और कर्मका यौगपद्य भी रहा, पर कालके सम्बन्धमे जो यौगपद्य ज्ञान चल रहा है वहाँ न कर्ता मात्रका आलम्बन है और न कार्यमात्रका आलम्बन है, अर्थात् काल सम्बन्धी पर अपर युगपद आदिक ज्ञानोका कर्ता और कर्म विषय नही पडा करते। जहाँपर क्रमसे कार्य है वहाँ पर भी कर्ता और कर्मका सद्भाव होनेसे झटपट युगपत् ज्ञान बन जाय पर ऐसा तो नही है, क्योंकि ऐसा मान लेनेपर जो "क्रमसे यह करते हैं" और "क्रमसे यह किया गया है" ये जो दो प्रत्यय हैं इनमे कर्ता और कर्मका अवलम्बनकी विशेषता न होनेसे व्यवहाराभावका अतिप्रसग आयगा इस कारण यह मानना चाहिए कि एक साथ करते है या एक साथ किए गए, इस कर्ता कर्ममे काल विशेषण हैं, कर्ताका विशेषण नही है। कालके माने बिना कर्ता और कर्मका विषय करके भी युगपत् अयुगपत्का ज्ञान नही हो सकता। यदि कालके विशेषण बिना युगपत् अयुगपत् आदिक ज्ञान मान लिए जायें तो फिर यह बतलावो कि ये विलम्बसे किए गए, ये शीघ्र किए गए यह

व्यवहार कैसे बना ? इसमे तो कर्ता कर्मकी बात नही है । एक ही कर्ता किसी कार्य को रुचिवान न होनेके कारण कहो या अनेक कार्योंमे व्यस्त होनेके कारण कहो, बहुत विलम्बसे करता है और वही एक कर्ता इसी एक कार्यको रुचि होनेके कारण जल्दी कर देता है तो वहाँपर विलम्बसे किया गया या जल्दी किया गया, ये जो दो प्रत्यय हैं, बोध हैं ये विशिष्ट होनेके किसी विशिष्ट निमित्तको सिद्ध करते हैं और वह है काल ।

लोकव्यवहार व व्यवहारकालसे भी कालद्रव्यकी सिद्धि—यहाँ उन लोगोसे कहा जा रहा है कि जो वास्तविक कालद्रव्य मानते ही नही हैं । प्रथम तो—विशेषवादियोसे कहा जा रहा था कि जो कालद्रव्यको तो मानते हैं, पर नित्य निरवयव सर्वव्यापक मानते हैं । अब यहाँपर कहा जा रहा उनको कि जो कालद्रव्य मानते ही नही हैं । सूर्यकी गतिसे काल बनता है या पदार्थोंकी क्रियामे काल बनता है ? या कर्ता कर्मसे कालका व्यवहार बनता है ? स इस तरहसे परका नाम लेकर इन सब पर अपर आदिक व्यवहारोको सिद्ध करते हैं और वास्तवमें कालद्रव्य नही मानते, उनके यहाँ ये सब बातें बन नही सकती । और, फिर लोकव्यवहार भी प्रसिद्ध है । यह सब देखा जारहा है कि प्रतिनियत कालमे ही प्रतिनियत वनस्पतियाँ फूलती हैं । लोग ऐसा व्यवहार करते हैं, पहिलेसे ही बता देते हैं कि बसत ऋतुमे आम बौरते हैं । अनेक बातें पहिलेसे ही निश्चित हैं तो प्रतिनियत कालमें प्रतिनियत वनस्पतियाँ फलती फूलती हैं अन्य समयमे नही । जब साधारण कालके सम्बन्धमे व्यवहार देखा जारहा है तो अन्य कार्योंमें जैसे पुत्रप्रसवके सम्बन्धमे लोग कहते हैं कि ९ महीनेमे होगा । तो इस व्यवहार कालसे भी यह सिद्ध होता है कि काल नामक कोई द्रव्य है । इतना तो सबको मानना पडेगा कि कालका व्यवहार तो अवश्य है । अब रही मुख्य कालद्रव्यकी बात । व्यवहारकालको कोई मना नही कर सकता । जैसे—घटा, घडी, दिन, महीना, ये व्यवहारकाल हैं, इनको मना नही कर सकते । अब यह समझना है कि किसीका भी जो व्यवहार होता है वह मुख्य माने बिना नही होता । व्यवहारका कारण व्यवहारके अनुरूप मूलमे कोई मुख्य होता है । तो जब व्यवहार काल देखा जा रहा है तो उसका आधारभूत मुख्य काल है और वह मुख्य काल अब एक है कि अनेक है ? इस सम्बन्धमे कुछ विवाद किया जा सकता है, पर यह एक स्पष्ट ज्ञान होनेसे कि प्रत्येक आकाश प्रदेशपर परिणमनभेद देखा जाता है, वहाँपर अवस्थित पदार्थोंका परिणमन और अन्य अवस्थित पदार्थोंका परिणमन अन्य-अन्य है । यद्यपि वे भिन्न-भिन्न परिणमन उपादानकी उस प्रकारकी योग्यता बिना नही हो सकते, तो यह तो उपादानकी ओरका उत्तर है । लेकिन विभिन्न परिणमनोमे निमित्त भी विभिन्न हुआ करते हैं । जैसे किसी भी आत्मामे क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक विभिन्न परिणमन होते हैं, तो ये परिणमन भी विभिन्न हैं योग्यता भी अपने-अपने कालमे विभिन्न हैं, पर उनके निमित्तभूत कर्म प्रकृति भी विभिन्न हैं । निमित्तकी विभिन्नता हुए बिना

नैमित्तिक क्रियाकी विभिन्नता सिद्ध नही की जा सकती । तो यो प्रति आकाश प्रदेशमें एक एक कालद्रव्य ठहरा है यह सिद्ध हो जाता है ।

असख्यात एकप्रदेशी, निरंश कालद्रव्यकी सिद्धि—समस्त प्रत्येक काल द्रव्योके प्रतिक्षणमे एक-एक समय वाली पर्याय होती है, जिसको हम वर्तना शब्दसे कहते हैं । वर्तन और परिवर्तनमें अन्तर है । परिवर्तन तो अन्य समयकी अपेक्षा करता है और वर्तन एक समयस्थ होता है । जैसे कभी कहते कि यह चीज बदल गई ! तो बदलनेके दो क्षणोका उपयोग रखना पड़ेगा । उस क्षणमे यो था, इस क्षणमे यो हुआ यह कहलाया परिवर्तन । किन्तु वर्तन एक समयमे ही होता है । एक समयमे जिस रूपमे वर्त रहा है वह है वर्तन, इसी कारण मुख्य कालका लक्षण वर्तना कहा है । यद्यपि वर्तन भी पर्यायरूप अतएव वह भी व्यवहार काल है, लेकिन उससे लोक व्यवहार नही बन रहा है । एक समयके वर्तनसे लोकव्यवहार नही बनता, इस कारण वर्तनाको तो निश्चय कालका लक्षण कहा है और फिर परत्व अपरत्व आदिक ये व्यवहारकालके लक्षण कहे गए हैं । समय मुहूर्त प्रहर रात दिन महीना सम्वत्सर आदिक व्यवहार भी लोकमे प्रसिद्ध हैं, उनसे भी कालद्रव्यकी सिद्धि होती है । इस तरह जो कालद्रव्य कतई नही मानते उन्हे भी समझ लेना चाहिये कि कालद्रव्यके कारण बिना परिणमन नही हो पाता है और जो कालद्रव्यको एक नित्य निरवयव सर्वव्यापक मानते हैं उन्हे भी जान लेना चाहिये कि कालद्रव्यको एक माननेपर अतीत भविष्य परत्व अपरत्व आदिक व्यवहार नही बन सकते । इसी तरह नित्य निरवयव व्यापक माननेपर भी यह कालभेद नही हो सकता है । इससे कालद्रव्य मुख्य है और रत्नराशिवत् प्रति आकाश प्रदेशमे अनादि अनन्त अवस्थित हैं । उनका जो समय-समयरूप परिणमन होता है उन समय परिणमनोका जो समूह है उस समूहमे घडी, पल, दिन, माह, वर्ष आदिक भेद बनाये जाते हैं ।

सामान्यविशेषात्मक प्रमेय स्वरूपके विरोधमें अनेक प्रमेय जातियो की कल्पना—प्रकरण यहाँ यह चल रहा था कि प्रमाणका विषय क्या होता है इस न्याय ग्रन्थमे प्रमाणके स्वरूपका वर्णन है । प्रमाणके स्वरूपका भेदोका प्रभेदोका सयुक्तिक वर्णन करनेके बाद अन्तमे यह प्रश्न रह गया था कि प्रमाणका विषय क्या होता है ? कुछ और विषय रह गए है कि प्रमाणका फल क्या होता है । उनका वर्णन आगे किया जायगा । यहाँ विषय बताया जा रहा है सामान्यविशेषात्मक पदार्थ । यह बात सुनकर विशेषवादके सिद्धान्तमे आस्था रखने वाले लोग बोल उठे कि सामान्य और विशेष तो स्वय अलग पदार्थ हैं । वे स्वय प्रमेय हैं सामान्य विशेषात्मक पदार्थ फिर प्रमेय कैसे बने ? पदार्थ भी जुदा है, सामान्य भी जुदा है, विशेष भी जुदा है । जब सामान्य विशेष जुदे मान लिए गए तब द्रव्य गुण क्रियाको भी जुदा निरखना पडा विशेषवादमे क्योकि यदि जुदा नही निरखते, द्रव्य गुणात्मक हो गया तो सामान्य

विशेषात्मकताकी बात बन जायगी। पदार्थ यदि क्रियात्मक है क्रिया, कर्म पदार्थका है, द्रव्यका ही उस समयका स्वरूप है तो फिर सामान्य विशेषात्मकता आ बैठेगी। मुख्य चिह्न तो इस जगह शंकाकारकी सामान्यविशेषात्मक पदार्थ न माननेके लिए है। तो जब सामान्य अलग रहा, विशेष अलग रहा, द्रव्य, गुण, कर्म भी अलग रहे तो अब इन ५ पदार्थोंके अत्यन्त पृथक् रहनेपर व्यवस्था तो न बनेगी। इनका मेल होना चाहिए। द्रव्यमे गुण बसा है। द्रव्यमे क्रिया होती है, द्रव्यमे सामान्य धर्म भी देखा जाता है जिससे कि यह इसके समान है, यह व्यवहार बनता है। द्रव्यमे विशेष भी देखा जाता है यह इससे विलक्षण है भैंस गायसे निराली है। तो जब एक पदार्थमे ये सब बातें नजर आती हैं तो उसका फिर उत्तर क्या होगा? तो उस उत्तरके लिए समवाय मानना पड़ा कि हैं तो ये सब पाँचो भिन्न-भिन्न मगर इनका समवाय सम्बन्ध होता है। जिनमे द्रव्य द्रव्यका तो संयोग सम्बन्ध है वहाँ समवाय नही जलता, बाकी द्रव्योमे गुण कर्म सामान्य विशेष ये सब समवाय सम्बन्धसे रहते हैं, इस तरह सामान्य विशेषात्मकताके विरोधमे ये ६ प्रकारके पदार्थ जो वैशेषिकको मानने पड़े उनमेसे यहाँ द्रव्य नामक प्रथम पदार्थके विषयमे बात चल रही है जिस प्रकार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, कालका स्वरूप माना है वह घटित नही होता, और हैं ये सब द्रव्य, किन्तु पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तो परस्पर उपादान उपादेय भाव होनेसे एक जातिमे हैं। और, उस जातिका नाम है पुद्गल। आकाश एक नित्य निरवयव सिद्ध नही होता आकाश एक है अखण्ड है और सर्व व्यापी है, पर अखण्ड होनेपर भी सावयव है, इसी प्रकार काय द्रव्य भी नित्य एक निरवयव सर्वव्यापी सिद्ध नही होता। काल एक नही है यह बात कही गई। काल नित्य ही नहीं है, नित्यानित्यात्मक है, काल व्यापक नही है, वह एक प्रदेशी है। हाँ उसे निरवयव कह सकते हैं। जब काल एक प्रदेशी ही है तो वह निरंश हो गया। तो इस प्रकार विशेषवादमें सम्मत काल द्रव्यकी सिद्धि नही होती।

दिशानामक द्रव्य सिद्ध करनेकी आरेका—दिशा भी कोई द्रव्य नही है। दिशाकी सत्ता सिद्ध करनेमे कोई प्रमाण नही मिलता। शंकाकार कहता है कि दिशावोका सिद्ध करने वाला प्रमाण है, आगम है, युक्तियाँ भी प्रमाण बनेंगी। वैशेषिक सिद्धान्तके आगममें कहा है कि मूर्त पदार्थोंमे ही मूर्त पदार्थकी अवधि करके जो ये १० प्रकारके प्रत्यय होते हैं कि कुछ पूर्वसे हैं, कुछ पश्चिमसे, कुछ दक्षिणसे और कुछ उत्तरसे, कुछ ईशानसे, कुछ आग्नेयसे, कुछ वायव्यसे तथा कुछ ऊर्ध्वसे और कुछ अधःसे हैं। तो जिन दिशाओंके सम्बन्धमे यह प्रसिद्ध व्यवहार है कि १० दिशायें होती हैं उन दिशाओंका कैसे खण्डन किया जा सकता? दिशायें १० हैं। तो जिनमे संख्या भी बताई गई है, संख्यावान चीज तो सत् हुआ करती है। यदि दिशायें वास्तवमें कुछ नही होतीं, कल्पना ही होती तो उसकी संख्या नही बन सकती थी। दिशाओंकी संख्या बन रही, यह बात जबरदस्त प्रमाण है कि दिशायें कोई वास्तविक चीज हैं।

और, दिशाओंका चिन्ह बताया गया है कि 'यहाँसे यह' है। जितने भी ये व्यवहार चलते कि यहाँसे इतना आगे यह है, यहासे पूरबमे दो योजन वह गांव है आदिक जो यहाँसे वह, यहाँसे वह, इस तरहका जो प्रत्यय होता है उस चिन्हसे समझा जाता है दिशा। जैसे आकाशका लिङ्ग शब्द है, कालका लिंग पर अपर आदिक प्रत्यय हैं। तो दिशाओंका लिग यहाँसे यहाँ, उरे–परे, इस प्रकारका जो बोध होता है वह दिशाओंका चिन्ह है।

अन्य द्रव्योसे भिन्न दिग्द्रव्यके सिद्ध करनेके लिये शङ्काकारकी आशंका शकाकार कह रहा है कि दिशाओंका चिन्ह यह प्रत्यय है जो यह बोध होता है कि यह इससे पूर्वमे है, यह इससे दक्षिणमें है, इस तरहका जो प्रत्यय है वह दिशाओंका लिङ्ग है। और, जब दिशाओंका लिग सिद्ध हो गया तो दिशा नामका द्रव्य अन्य है याने द्रव्योसे भिन्न है। तथा 'दिशायें हैं' इस प्रकारका व्यवहार करना योग्य है, क्योंकि उनमे पूर्व, दक्षिण आदिक प्रत्यय हुआ करते हैं। जो दिग्द्रव्यसे इतर पदार्थोंसे भिन्न नही है वे पूर्वादि प्रत्यय लिंग भी नही हैं। जैसे पृथ्वी आदिक और ये पूर्वादि प्रत्यय कारणक हैं इस कारण दिशा नामका द्रव्य अन्य द्रव्योसे जुदा है। और भी देखिये! ये पूर्व दक्षिण पश्चिम आदिकके ज्ञान हो रहे हैं। ये अहेतुक तो हैं नही, इनका कोई निमित्त न हो और पूर्व दक्षिण आदिक ज्ञान करले, ऐसा कोई मान सकता नही, क्योंकि जब यह ज्ञान कादाचित्क है, सो पूर्वादिक दिशाओंका जो बोध है, यह कादाचित्क होनेसे सहेतुक ही है और यह भी नही कह सकते कि चलो रहा आवे, नैमित्तिक लेकिन आकाश आदिक साधारण चीज निमित्त है। यह यो नही कह सकते कि आकाश आदिकके आलम्बनसे जो प्रत्यय होता है उस प्रत्ययसे यह विशिष्ट प्रत्यय है। पूर्व दक्षिण पश्चिम आदिक दिशाओ सम्बन्धी ज्ञान यह विशिष्ट ज्ञान है। तो जो विशिष्ट ज्ञान होता है वह साधारण निमित्त वाला नही है। यह भी नही कह सकते कि वह विशिष्ट कारण मूर्तद्रव्य हो जायगा। गाँवकी रचना, पर्वतकी रचना, नदी आदि पडी हुई हैं ये सब मूर्तद्रव्य हैं. इनकी अपेक्षासे दिशाओंका ज्ञान कर लिया जायगा। इस पहाडसे अमुक पहाड पश्चिममे है आदिक, मूर्त द्रव्योके निमित्तसे पूर्वादि दिशाओंका ज्ञान हो जायगा। शकाकार ही कहना आ रहा है कि यह भी बात नही कह सकते, क्योंकि मूर्त द्रव्योकी अपेक्षाके निमित्तसे यदि पूर्व पश्चिम आदिकका ज्ञान माना जाय तो वे परस्पर आश्रयरूप हो गए। इस पहाडकी अपेक्षा नदी पश्चिममे है, उस नदीकी अपेक्षा पहाड पूर्वमे है, तो जब दोनोमे परस्पर आश्रय होगया अर्थात् एक वस्तुमे पूर्वपना सिद्ध करनेपर उसकी अपेक्षा औरको पश्चिम सिद्ध करें औरको पश्चिम सिद्ध करनेपर अन्यमे पूर्वपना सिद्ध होगा तो इस तरह उनमे पूर्व आदिकका ज्ञान परस्पराश्रित हो गया। तो इसका अर्थ यह है कि असलमे दोनो ही प्रत्यय नही हो सकते। इस कारण जब पूर्व दक्षिण आदिक प्रत्ययोका कोई निमित्त सम्भव नही है तो ये सब दिशायें हैं।

पूर्वादि दिशावोंके प्रत्ययसे दिग्द्रव्य सिद्ध करनेका शंकाकार द्वारा अनुमान—ये सब पूर्व दक्षिण आदिक ज्ञान दिशावोंसे ही होते हैं यह अनुमान प्रमाणभूत बन जाता है, इसका अनुमान प्रयोग भी है यह कि ये जो पूर्वापर आदिक ज्ञान हो रहे हैं ये मूर्त द्रव्योंसे भिन्न किन्हीं पदार्थोंके निमित्तसे हो रहे हैं, क्योंकि मूर्त द्रव्य सम्बन्धी प्रत्ययसे विलक्षण है यह प्रत्यय । जैसे सुख आदिकका ज्ञान । सुख आदिकका ज्ञान मूर्त द्रव्यसे भिन्न किसी अन्य पदार्थके निमित्तसे होता है क्योंकि सुख आदिकका ज्ञान मूर्त द्रव्य सम्बन्धी ज्ञानसे भिन्न ज्ञान है, जैसे कि चटाई चौकी आदिक मूर्त द्रव्योंका ज्ञान किया जाता है, एक वह ज्ञान । और किसी सुखका अनुभव किया जाता है एक वह ज्ञान । इन दोनोंमें अन्तर है । चूँकि चटाई आदिकका ज्ञान तो मूर्त पदार्थ निमित्तक है, पर सुखका जो ज्ञान है वह मूर्त द्रव्यसे व्यतिरिक्त आत्म द्रव्य निबन्धनक है । तो इसी प्रकार जो पर्वत नदी आदिक मूर्त द्रव्योंमें जो प्रत्यय होता है वह भिन्न जातिका प्रत्यय है । और जो पूर्व दक्षिण दिशा रूपसे प्रत्यय होता है वह विलक्षण है। इस तरह दिशा नामक द्रव्य सिद्ध है और वह दिशा द्रव्य विभु है, सर्वव्यापक है, एक है नित्य है और निरवयव है । यहाँ कोई यह संदेह न करे कि जब दिशा एक ही है द्रव्य, तो पूर्व दक्षिण पश्चिम आदिक व्यवहार कैसे बन बैठे ? यों बन बैठे कि सूर्य भगवान जब मेरुकी प्रदक्षिणा दे रहा है, तो सूर्यका लोकपालके द्वारा ग्रहण किए गए दिशाके प्रदेशका संयोग होता है । सूर्यका लोकपालके द्वारा अधिकृत दिशाओंके क्षेत्रका संयोग हो जानेसे पूर्व दक्षिण पश्चिम आदिक भेद बन गए । वस्तुतः तो दिशा नामका द्रव्य भेद रहित है । इस प्रकार शंकाकारने दिशा नामक द्रव्य सब द्रव्योंसे भिन्न सिद्ध किया ।

सूर्योदयादिवश आकाशप्रदेशश्रेणियोंमें पूर्वादि दिशाकी कल्पना—अब उक्त शंकाओंके समाधानमें कहते हैं। दिशाओंको द्रव्य सिद्ध करनेके लिए जो कुछ भी शंकाकारने कहा है वह सब विपरीत कथन है । देखिये पूर्व दक्षिण पश्चिम आदिक जो ज्ञान होते हैं वे सब ज्ञान आकाश हेतुक हैं । कहीं दिशा नामका एक द्रव्य अलग हो और उसके कारणसे ज्ञान चलता हो सो बात नहीं । वे सब ज्ञान आकाश हेतुक होनेसे आकाशसे भिन्न दिशा नामक कोई द्रव्य सिद्ध नहीं होता । आकाशके प्रदेश श्रेणियोंमें ही सूर्यके उदय आदिकके वशसे पूर्व पश्चिम आदिक दिशाओंके व्यवहारकी उत्पत्ति होती है । यद्यपि आकाश एक है लेकिन आकाश निरवयव तो नहीं है, सावयव है, अनन्त प्रदेशी है और इसी कारण सूर्यके उदय आदिकके वशसे उन आकाश श्रेणियोंमें पूर्व आदिक दिशाओंके व्यवहारकी उत्पत्ति बन जाती है इसी कारण दिशाओंको निर्हेतुक भी नहीं कह सकते । और, न यह कह सकते कि किसी सामान्य पदार्थके निमित्तसे पूर्व आदिक दिशाओंका ज्ञान होता है । जिन आकाश प्रदेशोंमें सूर्यका उदय होता है वह तो है पूर्व दिशा । जिन आकाश प्रदेशोंमें सूर्यका अस्त होता है, वह है पश्चिम दिशा । अब सूर्योदयवाली पूर्व दिशाकी ओर मुह करके खड़े हो तो उसका

दक्षिण हाथ जिस ओर हो वह है दक्षिण दिशा, शेष बचे हुए बायें हाथकी ओर है, उत्तर दिशा तो ये आकाश प्रदेश श्रेणियोमे ही सूर्योदय आदिकके वशसे पूर्व आदिक दिशाओका प्रत्यय होता है। तो जब आकाश प्रदेश लक्षण रूप पूर्व आदिक दिशाओके सम्बन्धमे मूर्त द्रव्योमे पूर्व पश्चिम आदिक प्रत्यय विशेष होने लगे, अर्थात् यह पर्वत पूर्व दिशामे है तो यह आकाशप्रदेशश्रेणीरूप जो पूर्व दिशा है उसमें वह पर्वत है इस पर्वतको पूर्वमे कहते हैं। तो मूर्त द्रव्योमे पूर्व पश्चिम आदिक प्रत्यय विशेषकी उत्पत्ति आकाशप्रदेशलक्षणभूत दिशाओके सम्बन्धसे है इस कारण यह दोष नही दे सकते कि परस्पर अपेक्षा लेकर मूर्त द्रव्य ही यदि पूर्व पश्चिम आदिक दिशाओके ज्ञानके कारण बन गए तो परस्परा श्रत हो जायेंगे अर्थात् एक का जब पूर्व सिद्ध न हुआ तो दूसरेका पश्चिम सिद्ध न होगा। इस तरहसे इतरेतराश्रय दोष होनेसे दोनोका ही अभाव हो जायगा, यह दोष नही दे सकते क्योंकि केवल मूर्त द्रव्यके कारण ही पूर्व पश्चिमका ज्ञान नही हो रहा, किन्तु वे मूर्त पदार्थ आकाशप्रदेश लक्षण पश्चिम आदिक दिशामे रह रहे हैं इससे उन द्रव्योके पूर्व पश्चिम आदिकका ज्ञान होता है और वह दिशा है क्या ? आकाशकी प्रदेश श्रेणियाँ। तो इस तरह आकाश प्रदेशपंक्ति हेतुक होनेसे पूर्वापर आदिक प्रत्यय किसी दिशा नामक द्रव्यके कारण हुए यह बात सिद्ध नही होती।

आकाशप्रदेशपंक्तियोमें पूर्वादिव्यवहारके कारणके प्रश्नकी असंगतता

अब शंकाकार कहता है कि तुमने यह तो सिद्ध कर दिया कि आकाशप्रदेशश्रेणियोके निमित्तसे पूर्व पश्चिम आदिक व्यवहार हो रहा है पर यह तो बतावो कि उन आकाशप्रदेशश्रेणियोमे पूर्व पश्चिम आदिक व्यवहार कैसे बने ? पूर्व आदिक दिशाओका ज्ञान तो आकाशके कारण बता दिया। अब आकाशमे जो पूर्वत्व, पश्चिमत्वका ज्ञान होता है वह किस तरहसे सिद्ध होता है ? यदि कहो कि आकाशमे पूर्व पश्चिम आदिक का बोध स्वतः हो जायगा अपने ही स्वरूपसे हो लेगा तब तो पूर्व पश्चिम आदिकमें निवृत्तिके अभावका प्रसग हो जायगा। अर्थात् यह दिशा पूर्व ही है, पश्चिम नही है, यह दृढ़तासे नही कह सकते। जब आकाश प्रदेश श्रेणियोमें स्वरूपसे ही पूर्व पश्चिम आदिक ज्ञान किया जाने लगा तो वहाँ यह निर्णय कैसे करेंगे कि यह प्रदेश श्रेणि पूर्व ही है, पश्चिम नही, सो वहाँ तब फिर अट पट पश्चिमको पूर्व कह देना चाहिए, पूर्वको पश्चिम कह देना चाहिए। तो कहा यदि कहो कि एक दूसरेकी अपेक्षा पूर्व पश्चिम सिद्ध हो जायगा। आकाश प्रदेशकी इस ओर की श्रेणीकी अपेक्षा उसके सामने कि प्रदेश श्रेणी पश्चिम कह लायगी। इसकी अपेक्षा वह पूर्व कह लायेगा। इस तरह अन्योन्यापेक्षासे पूर्व पश्चिम आदिक सिद्ध करोगे तो इतरेतराश्रय दोष होनेसे दोनो ही प्रत्ययोका अभाव हो जायगा। इस कारण आकाशे हेतुक पूर्व पश्चिम आदिकका ज्ञान नही होता, किंतु दिग् द्रव्यके कारण पूर्व पश्चिम आदिकका बोध होता है। समाधानमे कहते हैं कि इस तरहका जो प्रश्न किया गया है वह प्रश्न तो दिशाओके प्रदेश में भी किया जा सकता है। दिग द्रव्यकी वजहसे मूर्त द्रव्योमे यह पूर्वमे है यह पश्चि-

जाता है अर्थात् मेरुकी प्रदक्षिणा देते हुए सूर्यका आकाश प्रदेश पंक्तियोंमें सम्बन्ध होता है सो उसके पूर्वापर (उदय अस्त) सम्बन्धके कारण पूर्व पश्चिम आदिक दिशाओं का व्यवहार बनता है। तो यों दिग् द्रव्यकी कल्पना करना व्यर्थ है। आकाश प्रदेश पंक्तियोंमे ही सूर्यके उदय और अस्तके सम्बन्धसे पूर्व आदिक दिशाओंका व्यवहार होता है। और दिशा द्रव्य न होकर भी फिर भी एक कल्पना करके उसकी व्यवस्था बताते हो तो फिर यो देश द्रव्यकी भी कल्पना कर डालना चाहिये। जैसे कि दिशाओंमें यह व्यवहार होता है कि यह पूर्व दिशा है, यह पश्चिम है इसी प्रकार देशमे भी तो यह कल्पना होती है कि यह इससे पूर्व है, यह इससे पश्चिम है, यह इससे उरे हैं, यह परे है, यो यो देश द्रव्यकी भी कल्पना कर देना चाहिये और कल्पना कर डालें, कि यदि देश द्रव्य न होता तो यह इससे पूर्व देश है आदिक प्रत्यय कैसे बनते। तो यह इससे पूर्व देश है, इस प्रत्ययकी विलक्षणता मानकर देश द्रव्यकी भी कल्पना कर डालना चाहिये। जब देश भी द्रव्य मान लोगे तब द्रव्य ९ होते हैं इस संख्याका विघात हो जायगा। यदि कहोगे कि पृथ्वी आदिक ही देश द्रव्य कहलाते हैं तो यह बात असत्य है, क्योंकि पृथ्वी आदिकमे तो पृथ्वी आदिकका ही ज्ञान बनता है। उसमें यह इससे पूर्व देश है इस प्रकारका प्रत्यय नही बनता, केवल यह ही ज्ञान हो जायगा कि यह पृथ्वी है और उस पृथ्वीका आकार रूप रस आदिक, ये भी जान लिये जायेंगे, पर यह देश इससे पूर्वमे है इस प्रकारका बोध पृथ्वीसे सम्बन्ध नही रखता, किन्तु देश द्रव्यका सम्बन्ध रखता है। यो सोचकर देश द्रव्य मान लिया जायगा और फिर १० द्रव्य बन बैठेंगे। यदि कहो कि पृथ्वी आदिकके पूर्व देश आदिकका ज्ञान पूर्व आदि दिशावोंके द्वारा किया गया है तो वहीं ही पूर्वादि आकाश द्वारा पूर्वादि दिशावोंका प्रत्यय हो जावो फिर दिशा द्रव्यकी कल्पना करना व्यर्थ है। शंकाकारका यहाँ यह अभिमत हो रहा है कि देशमे जो यह इससे पूर्व है ऐसा प्रत्यय होता है तो उस प्रत्ययका आधार तो रहा पृथ्वी, ग्राम, नगर, पर्वत आदिक और उनमे जो पूर्वत्व, अपरत्वका ज्ञान होता है वह पूर्व पश्चिम आदिक दिशाओंके द्वारा किया गया है। इस शंकाके समाधानमे कहते हैं कि तब तो यह ही सीधा मान लेना चाहिए कि पूर्व पश्चिम आदिक आकाश कृत वे पूर्व आदिक प्रत्यय हैं इस कारण पूर्व आदिक दिशा द्रव्य नही हैं। इसी सब यह मूर्त द्रव्योंमे ही कल्पना कि यह इससे पूर्व है, यह इससे पश्चिममे है लेकिन इसका कारण है आकाश प्रदेश पंक्तियाँ और उस आकाश प्रदेश पंक्तियोंका पूर्व पश्चिम आदिक के बोधका कारण है सूर्यका उदय और अस्त होना। इस तरह दिशा नामका द्रव्य गुण अलग द्रव्य नही है, उसका सत्व नही है, केवल सूर्यके उदय अस्तमे भेदसे पूर्व आदिक दिशायें मान ली गई हैं।

आकाश प्रदेश पंक्तिकल्पनाकी सार्थकता—अब शंकाकार कहता है कि इस तरहसे तो अर्थात् जैसे यह मान लिया समाधानकारने कि सूर्यके उदय अस्त आदिककी वजहसे आकाश प्रदेश पंक्तियोंमे ही पूर्व आदिक प्रत्यय बनते हैं तो इस

माननेकी तरह सीधा यह ही क्यो नही मान लिया जाता कि सूर्यके उदय अस्तकी वजह से पृथ्वी आदिकमें ही पूर्व पश्चिम आदिक ज्ञान कर लिए जाते हैं। फिर तो आकाश प्रदेश श्रेणियोकी कल्पना भी अनर्थक हो गया। सूर्यके उदय अस्तके सम्बन्धसे जो पर्वत ग्राम आदिक मूर्त पृथ्वी पदार्थ हैं उनमें ही पूर्व पश्चिम आदिककी कल्पना बन जायगी। आकाश प्रदेश पक्तियोकी कल्पना करना फिर व्यर्थ है। उत्तरमें कहते हैं कि यह कथन सही नही है। पूर्व आदिक दिशाओमें ये पर्वत नगर आदिक पाये जाते हैं इस प्रकारका आधार आधेय व्यवहार पाया जा रहा है। इस व्यवहारसे यह सिद्ध होता है कि पृथ्वी आदिकका आधारभूत आकाश प्रदेश श्रेणियाँ हैं। सभी लोगोंको ऐसा प्रत्यय हुआ करता है कि यह नगर पूर्व दिशामें है, अमुक पश्चिम दिशामें है, तो यहाँ व्यवहारमें दिशायें तो हुई आधार और ग्राम नगर आदिक हुए आधेय। अब यहाँ यह विचार करनेकी बात है कि उनका जो आधार हैं दिशायें एक सूर्यके उदय अस्तसे निर्णीतकी गईं। आकाशकी प्रदेश पक्तियाँ है इस कारण आकाश प्रदेश पंक्तियोंकी कल्पना सार्थक है। और, आकाश भी है कुछ और उसकी प्रदेश श्रेणियाँ भी हैं कुछ। यह बात प्रमाणसे सिद्ध कर ही दी गई है। आकाश नामक कोई द्रव्य है क्योंकि अन्य समस्त पदार्थोका अवगाह अन्यथा बन नही सकता था। समस्त द्रव्योंके अवगाहकी उपपत्ति होनेसे आकाशकी सिद्धि है और आकाशके रहनेसे। जो पदार्थ पूर्व दिशामें रह रहा है वह वहाँ ही है, सर्वत्र नही हैं। दूसरा पदार्थ पश्चिम दिशामे रह रहा है वह वहीं है, अन्यत्र नही हैं। यदि आकाशके अवयव न माने जायें तब समस्त पदार्थ एक ही जगह अवस्थित हो जायेंगे यह दोष आवेगा। अतः पदार्थोंका भिन्न-भिन्न स्थानोंमें जो ठहरना हो रहा है वह आकाशके अवयवोको सिद्ध कर रहा है। आकाशके किसी अवयवमे विन्ध्याचल है किसी अवयवमे हिमालय है तो यो पदार्थोंका भिन्न-भिन्न देशमे अवस्थान सिद्ध हो जाता है। तो यहाँ तक यह बात सिद्ध हुई कि दिशा कोई अलग द्रव्य नही है किन्तु सूर्यके उदय अस्तके कारण आकाश प्रदेश पक्तियोंमें ही दिशाका व्यवहार किया जाता है। जिन आकाशके अवयवोमे सूर्योदय होता है वह तो है पूर्व दिशा और जहाँ अस्त होता है वह है पश्चिम। पूर्वाभिमुख पुरुषका जिस ओर दक्षिण हस्त है वह है दक्षिण दिशा और जिस ओर वाम हस्त है वह है उत्तर दिशा। अब पूर्व और दक्षिण दिशाके बीचका जो भाग है वह है नैऋत दिशा और दक्षिण पश्चिमके बीचका जो भाग है वह है आग्नेय दिशा। पश्चिम और उत्तर दिशाके बीचका जो भाग है वह है वायव्य दिशा और उत्तर पूर्वकी दिशाके बीचको जो भाग है वह है ईशान दिशा। जहाँ हम सब लोग ठहरे हैं इससे ऊपर ऊर्ध्व दिशा है और नीचे अधो दिशा है। तो इन १० दिशाओंकी इस तरह कल्पनावश आकाश प्रदेश पक्तियोमे उपपत्ति होती है। दिशा नामका को द्रव्य हो यह सिद्ध नही होता और फिर उस दिशामें यह कल्पना बनी कि दिशा नामका पदार्थ एक है, नित्य है, एक है, सर्व व्यापक है, यह तो और भी बेतुकी कल्पना है। इस तरह विशेषवादमे माना गया दिग् नामका द्रव्य भी सिद्ध

नहीं होता है ।

प्रमाणविषयभूत प्रमेयके स्वरूपकी चर्चामें विशेषवादकी मीमासा — प्रकरणमे यह बताया जा रहा है कि प्रमाणका विषय क्या है । इस न्याय ग्रन्थमे प्रमाणके स्वरूप विषय और फलकी चर्चा की गई है । प्रमाण कहते हैं ज्ञानको सम्यक् जाननेका नाम प्रमाण है ' जो स्व और परपदार्थका निश्चय कराये उसे प्रमाण ज्ञान कहते हैं । स्व और पर अर्थका निश्चय करने वाला ज्ञान इस कारण प्रमाण है कि उस ज्ञानमे ही यह सामर्थ्य है कि हितकी प्राप्ति कराये और अहितकारीका परिहार कराये । ज्ञानमे जैसे परको प्रतिभासने का सामर्थ्य है इसी प्रकार अपने ही स्वरूपके कारण अपनेको भी प्रतिभासने की सामर्थ्य है । जैसे कि दीपक अपना भी प्रकाश करता है और परका भी प्रकाश करता है इसी तरह ज्ञान स्वयंका भी निर्णय रखता है और पर पदार्थका भी निर्णय करता है । उस ज्ञानके दो प्रकार होते हैं प्रत्यक्ष और परोक्ष । जो विशद हो सो प्रत्यक्ष होता, और जो स्पष्ट न हो सो परोक्ष है । प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकारके होते हैं — एक सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और दूसरा पारमार्थिक प्रत्यक्ष । सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष तो इन्द्रियाधीन होनेके कारण वस्तुत: परोक्ष ही है, लेकिन उसमे एकदेश विशदता होती है इस कारण उसे सांव्यवहारि प्रत्यक्षमे अन्तर्गत किया है । पारमार्थिक प्रत्यक्षके तीन भेद हैं—अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान । इनमे से केवलज्ञान तो सम्पूर्ण ज्ञान है और अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान ये विकल प्रत्यक्ष कहलाते हैं । परोक्षज्ञान, स्मृतिप्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम यो पाँच भेद कहे गए हैं । इन सबका विधिवत् स्वरूप बताया गया है । स्वरूप व्यवस्था बतानेके बाद जब स्व और अपूर्व अर्थके सम्बन्धमे विचार चलाया गया कि जिस स्व और अपूर्व अर्थको प्रमाण विषयभूत करता है वह विषयभूत पदार्थ किस प्रकारका है ? तो उत्तर दिया गया कि प्रमाणका विषय याने प्रमेय सामान्यविशेषात्मक है । स्याद्वाद सिद्धान्त मे व्यवहारदृष्टिसे धर्मको धर्मीसे भिन्न बताया गया है, केवल प्रतिपादन और समझानेके प्रसगमे ही भेद करनेकी आज्ञा दी गई है और यत्र धर्म धर्मीसे भिन्न सज्ञा स्वरूपसे बनता है. इतने मात्रसे धर्म कोई स्वतन्त्र सत् हो जाय, धर्मी स्वतन्त्र सत् हो यह बात नही बनती, किन्तु एकान्तवादमें या तो अभेद किया है तो इस तरह कि समस्त विश्व एकरूप है । उनमे भेद किया है तो इस तरह कि धर्म धर्मीमे धर्म धर्मियोमे अत्यन्त भेद डाला गया है । तो प्रकरणमे भेदभाव पद्धतिसे पदार्थों की व्यवस्थाकी शका की गई थी कि प्रमाणके विषयभूत प्रमेय ६ जातिके हैं— द्रव्य, गुण कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय । सामान्य विशेष भी पदार्थसे अलग करके स्वतन्त्र मान लिए गए हैं । उनमे द्रव्य ९ प्रकारके बताये गए—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन । इन ९ प्रकारके द्रव्योमे से पहिले ७ प्रकारके द्रव्योके सम्बन्धमे विचार किया गया और उनमे दिशा तो कोई सत् ही नही सिद्ध होती । पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये सत् तो सिद्ध होते हैं, किन्तु पृथक पृथक जातिके

पदार्थ सिद्ध नही होते, ये पुद्गल द्रव्य ही कहलाते हैं। आकाश द्रव्य है लेकिन वह निरवयव और शब्दलिंग नही है, कालद्रव्य है लेकिन वह एक नित्य सर्व व्यापक नहीं है। इस तरह ७ द्रव्योके सम्बन्धमे विचार किया गया। अब आत्मा और मन इन दो द्रव्योके सम्बन्धमे तथा शेष गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवायके सम्बन्धमे विचार किया जायगा।